दृष्टि The Vision

संघ लोक सेवा आयोग (UPSC)

हिन्दी साहित्य

प्रश्नपत्र-1 (खण्ड-क)

(हिन्दी भाषा और नागरी लिपि का इतिहास)

दृष्टि The Vision

641, प्रथम तल, डॉ. मुखर्जी नगर, दिल्ली-110009
दूरभाष : 011-475[illegible]596, 8750187501
टोल फ्री : 1800-[illegible]-6260
Web : www.drishtiIAS.com
E-mail : online@groupdrishti.com

पाठ्यक्रम, नोट्स तथा बैच संबंधी updates निरंतर पाने के लिये निम्नलिखित पेज को "like" करें
www.facebook.com/drishtithevisionfoundation
www.twitter.com/drishtiias

प्रिय अभ्यर्थियो,

सिविल सेवा परीक्षा की तैयारी के इच्छुक अभ्यर्थियों द्वारा परीक्षोपयोगी अध्ययन-सामग्री की भारी मांग को देखते हुए हमने एक दूरस्थ शिक्षा कार्यक्रम (Distance Learning Programme) तैयार किया है। हमारे इस कार्यक्रम का मुख्य उद्देश्य ऐसे अभ्यर्थियों को घर बैठे उनकी आवश्यकता की संपूर्ण अध्ययन-सामग्री उपलब्ध कराना है, जो व्यक्तिगत, आर्थिक या किन्हीं अन्य कारणों से दिल्ली आकर कोचिंग नहीं ले सकते।

सिविल सेवा परीक्षा की तैयारी करने वाले अभ्यर्थियों के बीच संस्थान के तौर पर 'दृष्टि' सर्वाधिक लोकप्रिय संस्थान है और इसका कारण 'दृष्टि' का परीक्षोन्मुखी एवं परिणाम-केंद्रित दृष्टिकोण व सिविल सेवा परीक्षा की तैयारी के क्षेत्र में कार्यरत देश के सर्वश्रेष्ठ शिक्षकों एवं विषय-वस्तु लेखकों की टीम और सक्षम प्रबंधन व्यवस्था है।

लेकिन ऐसे अभ्यर्थी जो दिल्ली आकर 'दृष्टि' के नियमित कक्षा कार्यक्रम का हिस्सा नहीं बन सकते, वे हमारे शिक्षण एवं हमारी अध्ययन-सामग्री से वंचित रह जाते हैं। इसलिये ऐसे अभ्यर्थियों की भारी मांग एवं सुझावों के बाद 'दृष्टि' प्रबंधन ने इन अभ्यर्थियों की सिविल सेवा परीक्षा की तैयारी में मदद करने के लिये परीक्षोन्मुखी कार्यक्रम तैयार किया है।

इस कार्यक्रम के अंतर्गत इच्छुक अभ्यर्थियों को निम्नलिखित खंडों पर अध्ययन-सामग्री उपलब्ध कराई जाएगी–

- **वैकल्पिक विषय:**
  - हिंदी साहित्य
  - दर्शनशास्त्र
  - इतिहास
  - भूगोल
- **सामान्य अध्ययन**
  - सामान्य अध्ययन (प्रारंभिक-सह-मुख्य परीक्षा)
  - सीसैट (प्रारंभिक परीक्षा, द्वितीय प्रश्नपत्र)
  - सामान्य अध्ययन प्रश्नपत्र के प्रारंभिक परीक्षा की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण अध्यायवार (Topic-wise) वैकल्पिक प्रश्न एवं उनके उत्तर
  - सामान्य अध्ययन प्रश्नपत्र के मुख्य परीक्षा की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण प्रश्नों के आदर्श उत्तर (Model Answers)
  - समसामयिक मुद्दों (Current Affairs) के लिये दृष्टि संस्थान की मासिक पत्रिका 'दृष्टि करेंट अफेयर्स टुडे'
  - मध्य प्रदेश पी.सी.एस.
  - राजस्थान पी.सी.एस. (आर.ए.एस./आर.टी.एस.)
  - बिहार पी.सी.एस.
  - उत्तराखंड पी.सी.एस.

UPSC DIP विषय सूची (Contents)

1. **हिन्दी भाषा का परिचय** **9-18**
   - 1.1 हिन्दी भाषा की ध्वनि व्यवस्था 9
   - 1.2 हिन्दी की शब्द व्यवस्था तथा शब्द-संपदा 11
2. **मानक हिन्दी की व्याकरणिक संरचना** **19-35**
   - 2.1 हिन्दी की पद संरचना 19
   - 2.2 हिन्दी की संज्ञा व्यवस्था 19
   - 2.3 हिन्दी की सर्वनाम व्यवस्था 20
   - 2.4 हिन्दी की विशेषण व्यवस्था 22
   - 2.5 हिन्दी की क्रिया व्यवस्था 23
   - 2.6 हिन्दी की कारक व्यवस्था 26
   - 2.7 विकारोत्पादक तत्त्व 28
   - 2.8 हिन्दी की लिंग व्यवस्था 29
   - 2.9 हिन्दी की वचन संरचना 30
   - 2.10 हिन्दी की वाक्य संरचना 32
3. **हिन्दी भाषा की विकास-यात्रा** **36-37**
   - 3.1 आर्यभाषाओं का ऐतिहासिक विकास 36
   - 3.2 हिन्दी भाषा का ऐतिहासिक विकास 36
4. **पालि- मध्यकालीन आर्य भाषा की पहली अवस्था** **38-40**
   - 4.1 नामकरण की समस्या 38
   - 4.2 पालि की भाषा संबंधी विशेषताएँ 38
5. **प्राकृत- मध्यकालीन आर्य भाषा की दूसरी अवस्था** **41-44**
   - 5.1 प्राकृत की अवस्थाएँ 41
   - 5.2 प्राकृत की भाषा संबंधी विशेषताएँ 42
   - 5.3 प्राकृत के भेद 43

6. अपभ्रंश- मध्यकालीन आर्यभाषा की तीसरी अवस्था **45-50**

6.1 विकास प्रक्रिया से जुड़ा विवाद 45

6.2 अपभ्रंश: भाषा या भाषिक विकास की स्थिति 45

6.3 अपभ्रंश की भाषा संबंधी विशेषताएँ 46

6.4 अपभ्रंश के भेद 49

7. अवहट्ट- मध्यकालीन आर्यभाषा की अंतिम अवस्था **51-54**

8. पुरानी/प्रारंभिक हिन्दी **55-58**

9. अपभ्रंश, अवहट्ट और पुरानी हिन्दी- तुलनात्मक अध्ययन **59-62**

10. हिन्दी के विकास में अपभ्रंश/अवहट्ट का योगदान **63-66**

10.1 हिन्दी भाषा को अपभ्रंश का योगदान 63

10.2 हिन्दी साहित्य को अपभ्रंश का योगदान 65

11. मध्यकाल में अवधी का साहित्यिक भाषा के रूप में विकास **67-74**

11.1 भौगोलिक परिचय 67

11.2 अवधी भाषा का उद्भव व स्रोत 67

11.3 सूफी काव्यधारा में अवधी का विकास 67

11.4 रामभक्ति काव्यधारा में अवधी का विकास 69

11.5 हिंदू प्रेमाख्यानकारों की अवधी 70

11.6 समकालीन स्थिति 70

11.7 काव्यभाषा के रूप में अवधी का भाषायी/स्वरूपगत विकास 70

11.8 अवधी की शक्तियाँ और सीमाएँ 73

11.9 अवधी (टिप्पणी) 74

12. मध्यकाल में ब्रजभाषा का साहित्यिक भाषा के रूप में विकास **75-88**

12.1 परिचय 75

12.2 सूरपूर्व युग की ब्रजभाषा 75

12.3 सूरदास का युग 76

12.4 रीतिकालीन काव्य में ब्रजभाषा का विकास 77

12.5 रीतिकाल के पश्चात् ब्रजभाषा का विकास 79
12.6 निष्कर्ष 79
12.7 काव्यभाषा के रूप में ब्रजभाषा का स्वरूपगत विकास 80
12.8 अखिल भारतीय काव्यभाषा के रूप में ब्रजभाषा 82
12.9 ब्रजभाषा (टिप्पणी) 85
12.10 ब्रजभाषा में निहित गंभीर कलात्मकता के कारण 85
12.11 ब्रजभाषा की शक्तियाँ और सीमाएँ 86
13. खड़ी बोली **89-105**
13.1 खड़ी बोली का नामकरण 89
13.2 19वीं शताब्दी से पूर्व खड़ी बोली का विकास 89
13.3 19वीं सदी में खड़ी बोली के तीव्र विकास के कारण 93
13.4 उन्नीसवीं शताब्दी में खड़ी बोली का साहित्यिक स्वरूप 96
13.5 20वीं शताब्दी में पद्य की भाषा के रूप में खड़ी बोली का विकास 99
13.6 गद्य-भाषा के रूप में खड़ी बोली का विकास 102
14. भाषा, उपभाषा, काव्यभाषा तथा बोली **106-137**
14.1 भाषा और बोली में अंतर 106
14.2 काव्यभाषा तथा बोली में अंतर्संबंध 107
14.3 हिन्दी भाषा का क्षेत्र 108
14.4 हिन्दी की उपभाषाएँ व बोलियाँ 108
14.5 दक्खिनी हिन्दी 117
14.6 पूर्वी हिन्दी और पश्चिमी हिन्दी का अन्तर 123
14.7 हिन्दी के विकास में प्रमुख बोलियों का योगदान 126
14.8 हिन्दी और उसकी बोलियों का संबंध 130
14.9 हिन्दी की बोलियों को भाषा का दर्जा दिए जाने का मुद्दा 132
15. राजभाषा, राष्ट्रभाषा एवं संपर्क भाषा **138-140**

15.1 राजभाषा का तात्पर्य 138

15.2 राष्ट्रभाषा 138

15.3 संपर्क भाषा 138

15.4 राष्ट्रभाषा व राजभाषा में अंतर 139

16. राजभाषा हिन्दी 141-148

16.1 'राजभाषा' हिन्दी की संवैधानिक स्थिति 141

16.2 राजभाषा हिन्दी के प्रयोग की प्रगति 142

16.3 राजभाषा हिन्दी की प्रगति की समीक्षा 145

16.4 राजभाषा के रूप में हिन्दी के विकास के सुझाव 147

17. राष्ट्रभाषा हिन्दी 149-164

17.1 राष्ट्रभाषा की कसौटियाँ 149

17.2 हिन्दी के राष्ट्रभाषा होने के तर्क 149

17.3 राष्ट्रभाषा के रूप में हिन्दी की ऐतिहासिक विकास-यात्रा 151

17.4 स्वतंत्रता आन्दोलन के दौरान राष्ट्रभाषा के रूप में हिन्दी का विकास (संक्षिप्त चर्चा) 152

17.5 राष्ट्रभाषा हिन्दी के विकास में विभिन्न नेताओं का योगदान 154

17.6 राष्ट्रभाषा हिन्दी के विकास में प्रमुख संस्थाओं का योगदान 157

17.7 राष्ट्रभाषा हिन्दी के विकास में दक्षिण भारतीय राज्यों का योगदान 160

17.8 राष्ट्रभाषा हिन्दी के विकास हेतु सुझाव 162

17.9 भूमंडलीकरण के दौर में राष्ट्रभाषा की धारणा की प्रासंगिकता 162

17.10 हिन्दी तथा अन्य भारतीय भाषाओं का संबंध/क्या हिन्दी को महत्त्व देना भाषायी साम्राज्यवाद है? 163

17.11 त्रिभाषा सूत्र 163

18. हिन्दी भाषा का मानकीकरण 165-173

18.1 मानक भाषा की धारणा 165

18.2 भाषा के मानकीकरण की प्रक्रिया 165

18.3 भाषा के मानकीकरण के कारण 166

18.4 मानक हिन्दी का स्वरूप 166

18.5 मानक हिन्दी की व्याकरणिक विशेषताएँ 167

18.6 हिन्दी के मानक रूप का ऐतिहासिक विकास 169

18.7 वर्तमान समय में मानकीकरण की समस्याएँ 170

19. देवनागरी लिपि 174-179

19.1 'लिपि' की धारणा एवं महत्त्व 174

19.2 भाषा व लिपि का अंत:संबंध एवं अन्तर 174

19.3 देवनागरी लिपि का उद्भव 174

19.4 देवनागरी लिपि का नामकरण 175

19.5 मानक या आदर्श लिपि की विशेषताएँ 176

19.6 'देवनागरी लिपि' की विशेषताएँ/वैज्ञानिकता 176

19.7 देवनागरी लिपि की सीमाएँ 177

20. देवनागरी लिपि का मानकीकरण 180-186

20.1 देवनागरी लिपि के मानकीकरण के प्रयास 180

20.2 देवनागरी लिपि के मानकीकरण के सुझाव 182

20.3 हिन्दी वर्तनी का मानकीकरण 184

20.4 अखिल भारतीय लिपि के रूप में देवनागरी 185

21. हिन्दी भाषा का वैज्ञानिक एवं तकनीकी विकास 187-196

21.1 परिचय 187

21.2 हिन्दी का वैज्ञानिक विकास 187

21.3 हिन्दी का तकनीकी विकास 188

21.4 कम्प्यूटर में हिन्दी टाइपिंग 191

21.5 तकनीकी भाषा के रूप में नए विकास 193

22. पारिभाषिक शब्दावली की समस्या 197-201

22.1 पारिभाषिक शब्दावली का अर्थ 197

22.2 निर्माण के ऐतिहासिक प्रयास 197

22.3 पारिभाषिक शब्दावली के निर्माण की युक्तियाँ तथा सम्बन्धित विवाद 198

22.4 डॉ. रघुवीर का योगदान 199

22.5 पारिभाषिक शब्दावली के निर्माण की उपयुक्त नीतियाँ 199

22.6 वैज्ञानिक-तकनीकी शब्दावली आयोग द्वारा स्वीकृत सूत्र 200

22.7 निष्कर्ष, मूल्यांकन 201

23. हिन्दी में वैज्ञानिक लेखन 202-205

24. भाषा खंड से संबंधित कुछ अन्य विषय 206-212

24.1 हिन्दी व्याकरण लेखन का ऐतिहासिक विकास 206

24.2 हिन्दी के शब्दकोश 208

24.3 काशी नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा देवनागरी लिपि में सुधार का प्रयास 209

24.4 केंद्रीय हिन्दी निदेशालय 210

24.5 हिन्दी भाषा एवं लिपि के विकास में 'नागरी प्रचारिणी सभा' का योगदान 210

24.6 डॉ. गिलक्रिस्ट का योगदान 211

24.7 खड़ी बोली आन्दोलन व अयोध्या प्रसाद खत्री 211

24.8 प्रयोजनमूलक भाषा के रूप में हिन्दी 211

अध्याय
1

हिन्दी भाषा का परिचय

[यह टॉपिक सीधे तौर पर आपके पाठ्यक्रम में शामिल नहीं है। इसे पाठ्यक्रम के टॉपिक (मानक हिन्दी की व्याकरणिक संरचना) को समझने के लिए पढ़ना ज़रूरी है।]

किसी भी भाषा का अध्ययन चार इकाइयों के स्तर पर किया जा सकता है-

1. ध्वनि व्यवस्था 2. शब्द व्यवस्था 3. व्याकरणिक संरचना 4. लिपि व वर्तनी

1.1 हिन्दी भाषा की ध्वनि व्यवस्था

हिन्दी भाषा में कुल 59 ध्वनियाँ स्वीकार की गई हैं। इस दृष्टि से हिन्दी दुनिया की सर्वाधिक समृद्ध भाषाओं में से एक है। विश्व की सभी भाषाओं में प्रचलित प्राय: सभी ध्वनियाँ इसमें विद्यमान हैं।

इन ध्वनियों को मूल रूप से तीन वर्गों में बाँटा जा सकता है:

(क) स्वर (ख) व्यंजन (ग) अयोगवाह ध्वनियाँ

(क) स्वर

स्वर उस ध्वनि को कहते हैं जिसका उच्चारण बिना किसी अन्य ध्वनि की सहायता के होता है। हिन्दी भाषा में बारह स्वर हैं जिन्हें तीन वर्गों में विभाजित किया जा सकता है:

(अ) **मूल स्वर** अर्थात् वे स्वर जिनका कोई विभाजन नहीं हो सकता। ये संख्या में चार हैं - अ, इ, उ, ऋ।

(आ) **दीर्घ स्वर** अर्थात् एक ही मूल स्वर के दो बार जुड़ने से बनने वाले स्वर। ये भी संख्या में चार हैं -

आ (अ + अ) ऊ (उ + उ) ई (इ + इ) ॠ (ऋ + ऋ)

(इ) **संयुक्त स्वर** अर्थात् वे दीर्घ स्वर जो दो अलग-अलग स्वरों से मिलकर बने हों। ये भी संख्या में चार हैं-

ए (अ + इ) ओ (अ + उ) ऐ (अ + ए) औ (अ + ओ)

(ख) व्यंजन

व्यंजन वे ध्वनियाँ हैं जिनके उच्चारण के लिए किसी अन्य ध्वनि (स्वर) की सहायता लेनी पड़ती है। स्वर के बिना व्यंजन पूर्ण नहीं होते। हिन्दी में कुल 45 व्यंजन हैं जिनका कई आधारों पर वर्गीकरण किया जा सकता है-

1. अवरोध के आधार पर व्यंजनों के भेद

इस आधार पर व्यंजनों के तीन भेद किये जाते हैं - **अंतस्थ, ऊष्म** व **स्पर्श।**

(अ) अंतस्थ व्यंजन: ये वे व्यंजन हैं जिनका उच्चारण स्वर और व्यंजन का मध्यवर्ती होता है। इन व्यंजनों में श्वास का अवरोध बहुत कम होता है। ऐसे व्यंजन चार हैं- **य, र, ल, व।** य और व में यह प्रवृत्ति अधिक है। इस विशेष योग्यता के कारण इन दोनों को '**अर्द्धस्वर**' भी कहा जाता है।

(आ) ऊष्म या संघर्षी व्यंजन: ये वे व्यंजन हैं जिनके उच्चारण में विशेष रूप से श्वास का घर्षण होता है। वस्तुत:, जीभ तथा होठों के निकट आने के कारण इनके उच्चारण में वायु रगड़ खाती हुई बाहर निकलती है व इसी से संघर्ष/घर्षण होता है। ये संख्या में चार हैं- **श, ष, स, ह।**

(इ) स्पर्श व्यंजन: ये वे व्यंजन हैं जिनके उच्चारण में जीभ या निचला होठ उच्चारण स्थान का स्पर्श करके वायु को रोकता है। इन व्यंजनों को उच्चारण स्थान के आधार पर पाँच वर्गों में पाँच-पाँच की संख्या में बाँटा गया है-

क वर्ग : क ख ग घ ङ
च वर्ग : च छ ज झ ञ
ट वर्ग : ट ठ ड ढ ण
त वर्ग : त थ द ध न
प वर्ग : प फ ब भ म

ऊपर दिए गए तेंतीस व्यंजन हिन्दी में मूल रूप से स्वीकार किए गए हैं किंतु विकास की प्रक्रिया में आठ और व्यंजन भी हिन्दी में स्वीकृत हुए हैं। इनकी सूची स्रोतों के साथ इस प्रकार है-

1. मराठी से : ळ
2. फारसी से : क़ ख़ ग़ ज़ फ़ (नुक्ते के साथ)
3. अपभ्रंश से : ड़ ढ़

इन इक्तालीस व्यंजनों के अतिरिक्त हिन्दी में चार संयुक्त व्यंजन स्वीकृत हैं- **क्ष, त्र, ज्ञ, श्र।**

इस प्रकार कुल पैंतालीस व्यंजन हिन्दी भाषा में स्वीकार किए गए हैं।

2. उच्चारण स्थान के आधार पर व्यंजनों का वर्गीकरण

कंठ्य	-	क, ख, ग, घ, ङ, ह (:)	दंत्य	-	त, थ, द, ध, न, ल, स
तालव्य	-	च, छ, ज, झ, ञ, य, श	ओष्ठ्य	-	प, फ, ब, भ, म, व
मूर्धन्य	-	ट, ठ, ड, ढ, ण, ड़, ढ़, र, ष,			

3. व्यंजनों के अन्य वर्गीकरण

व्यंजनों को कुछ और आधारों पर भी वर्गीकृत किया जाता है। ऐसे तीन वर्गीकरण प्रमुख हैं :

(अ) अल्पप्राण व महाप्राण व्यंजन (आ) अघोष व सघोष व्यंजन (इ) संयुक्त व्यंजन

(अ) **अल्पप्राण तथा महाप्राण व्यंजनों** का अंतर उच्चारण में खर्च होने वाले श्वास की मात्रा पर आधारित है। **अल्पप्राण व्यंजन** वे व्यंजन हैं जिनमें ऊर्जा, श्वास या वायु की मात्रा कम खर्च होती है जबकि **महाप्राण व्यंजन** वे व्यंजन हैं जिनमें ज्यादा ऊर्जा, श्वास या वायु खर्च होती है। एक सामान्य नियम यह भी है कि प्राय: अल्पप्राण ध्वनियों में ह् जोड़ दिया जाए तो वे महाप्राण बन जाती हैं, जैसे-

क् + ह् = ख् ग् + ह् = घ्

हिन्दी के वर्गीय व्यंजनों में पहले, तीसरे और पाँचवे व्यंजन अल्पप्राण होते हैं तथा दूसरे व चौथे व्यंजन महाप्राण।

(आ) **अघोष और सघोष व्यंजन** का मूल अंतर यह है कि सघोष व्यंजन के उच्चारण में स्वरतंत्री के अधिक कंपन के कारण आवाज़ काफी भारी होती है जबकि अघोष व्यंजन में स्वरतंत्री के कम कंपन के कारण आवाज़ अधिक भारी नहीं होती। हिन्दी व्यंजनमाला में वर्गीय व्यंजनों में पहले दो व्यंजन अघोष व अंतिम तीन सघोष होते हैं।

(इ) **संयुक्त व्यंजन:** दो या दो से अधिक व्यंजनों के मेल से निर्मित होने वाले व्यंजनों का भी एक वर्ग है जिन्हें 'संयुक्त व्यंजन' कहते हैं। हिन्दी वर्णमाला में चार संयुक्त व्यंजन हैं-क्ष, त्र, ज्ञ तथा श्र, जिनकी निर्मिति इस प्रकार है-

क्ष - (क् + ष) ज्ञ - (ज् + ञ) त्र - (त् + र) श्र - (श् + र)

(ग) अयोगवाह ध्वनियाँ

ये वे ध्वनियाँ हैं जो न स्वर हैं और न ही व्यंजन। ये स्वर इसलिए नहीं हैं कि इनकी स्वतंत्र गति नहीं है और व्यंजन इसलिए नहीं हैं कि ये स्वरों के बाद आती हैं, उनसे पहले नहीं आतीं। ऐसी तीन ध्वनियाँ हैं:

1. अनुस्वार 2. अनुनासिक 3. विसर्ग

1. **अनुस्वार:** अनुस्वार एक नासिक्य ध्वनि है। अनुस्वार का अर्थ है - अनु + स्वर, अर्थात् स्वर के बाद आने वाला, अर्थात् जो नासिक्य ध्वनियाँ स्वर के उच्चारण के बाद आती हैं जैसे गंगा (गङ्गा)। अनुस्वार के रूप में वर्गीय व्यंजनों के संदर्भ में नियम यह है कि अनुस्वार अपने से बाद में आने वाले व्यंजन के वर्ग का ही पाँचवा व्यंजन होगा। उदाहरण के लिए,

   गंगा > गङ्गा खंभा > खम्भा गंदा > गन्दा गंजा > गञ्जा
2. **अनुनासिक:** वह नासिक्य ध्वनि जो स्वर के साथ जोड़कर बोली जाती है। इसके संकेत के रूप में अ, आ के साथ चंद्रबिंदु तथा ए व ओ की मात्रा के साथ बिंदु का प्रयोग किया जाता है, जैसे - बाँस, जोंक।
3. **विसर्ग:** यह वह ध्वनि है जो कुछ तत्सम शब्दों में स्वर के बाद 'ह' रूप में उच्चरित होती है, जैसे दु:ख, छ:, प्राय:, अत: आदि।

यहाँ यह ध्यान रखना आवश्यक है कि वर्णमाला में अनुस्वार और अनुनासिक ध्वनियों की गणना एक ध्वनि के रूप में ही की जाती है। इस प्रकार अयोगवाह ध्वनियाँ दो ही बचती हैं।

इस प्रकार हमने देखा कि हिन्दी वर्णमाला में कुल बारह स्वर हैं, पैंतालीस व्यंजन हैं तथा दो अयोगवाह ध्वनियाँ हैं। ये सभी ध्वनियाँ परस्पर मिलकर उनसठ हो जाती हैं।

1.2 हिन्दी की शब्द व्यवस्था तथा शब्द-संपदा

1. शब्द का अर्थ तथा वर्गीकरण

शब्द ध्वनियों के उस समूह को कहते हैं जिसका कोई विशेष अर्थ हो।

किसी भी विकसित या प्रगतिशील भाषा की मूल विशेषता यह होती है कि उसमें विविध प्रकार के शब्द जुड़ते जाते हैं तथा वह अधिक से अधिक भौगोलिक क्षेत्रों तथा संदर्भों के लिए प्रयुक्त होने लगती है। भाषा में किस-किस प्रकार के शब्द हैं तथा प्राय: वे किस अनुपात में हैं - इन तथ्यों के माध्यम से उस भाषा के विकास के स्तर तथा स्वरूप आदि के संबंध में विश्लेषण किया जा सकता है।

हिन्दी की शब्द संपदा का वर्गीकरण विभिन्न आधारों पर किया जा सकता है। ऐसे प्रमुख आधार निम्नलिखित हैं -

(क) स्रोत की दृष्टि से
(ख) निर्माण या गठन की दृष्टि से
(ग) प्रयोग के संदर्भ की दृष्टि से
(घ) परिवर्तनशीलता या परिवर्तनीयता की दृष्टि से।

हम इन सभी आधारों पर हिन्दी शब्दावली को वर्गीकृत कर सकते हैं। इन सभी वर्गीकरणों का क्रमश: विश्लेषण करते हुए हमें यह देखना चाहिये कि वे वर्गीकरण भाषा के स्वरूप की दृष्टि से कितने उचित हैं।

(क) स्रोत की दृष्टि से शब्द भंडार

स्रोत की दृष्टि से शब्द भंडार के विश्लेषण का अर्थ है कि विभिन्न शब्द भाषा में किस प्रक्रिया से शामिल हुए हैं। हिन्दी के शब्द भंडार को स्रोत की दृष्टि से प्राय: चार भागों में बाँटा जाता है-

1. तत्सम शब्द

'तत्सम' अर्थात् तत् (उस के) + सम (समान)। यहाँ 'उस' का तात्पर्य है 'संस्कृत'। तत्सम शब्द वे शब्द हैं जो संस्कृत से लिए गए हैं, और ठीक उसी रूप में लिये गए हैं जैसे वे संस्कृत में मिलते थे। हिन्दी चूँकि संस्कृत से ही विकसित हुई भाषा है, अत: स्वाभाविक रूप से संस्कृत शब्द हिन्दी के शब्द भंडार में काफी महत्त्वपूर्ण स्थान रखते हैं।

तत्सम शब्द अपनी जटिलता के कारण प्राय: बोलचाल की भाषा में कम प्रयुक्त होते हैं और लिखित भाषा में अधिक। लिखित भाषा में भी जटिल वैचारिक अभिव्यक्तियों यथा निबंध, आलोचना में इनका प्रयोग अधिक होता है जबकि मानवीय

अनुभवों तथा यथार्थ पर आधारित विधाओं यथा कहानी, उपन्यास में ये प्राय: कम मात्रा में मिलते हैं। कोई रचना यदि ऐतिहासिक प्रसंग को लेकर चलती है तो स्वाभाविक रूप से वातावरण निर्माण के उद्देश्य से तत्सम शब्दों का प्रयोग अधिक होने लगता है।

सामाजिक वर्गीकरण की दृष्टि से देखें तो तत्सम शब्द प्राय: अभिजात वर्ग की भाषा में प्रयुक्त होते हैं। शब्द भी सामाजिक अंतरों को गहराई से व्यक्त करते हैं, इसके प्रमाण के रूप में तत्सम शब्दों के प्रयोक्ता वर्ग को देखा जा सकता है।

कुछ तत्सम शब्द सरल प्रकृति के होते हैं, अत: वे समाज के एक बड़े हिस्से में प्रचलित हो जाते हैं, जैसे - अंग, उपकार, साधु, महात्मा, जल, कल, नेता, मंत्री इत्यादि। इसके विपरीत कुछ तत्सम शब्द अति जटिल प्रकृति के होते हैं और समाज के सुशिक्षित वर्ग के लोग ही इनका प्रयोग कर पाते हैं, जैसे औषधालय, द्विचक्रिका, वायुयान, अंतर्भूत, बहिर्गमन इत्यादि।

हिन्दी साहित्य के इतिहास में तत्सम शब्दों के प्रयोग की प्रवृत्ति मुख्यत: छायावादी काव्य में मिलती है। तुलसी की भाषा में तत्सम शब्द अवधी के प्रवाह में आते हैं तो प्रयोगवादी काव्य में तत्सम शब्द कई विजातीय शब्दों के साथ आते हैं। तत्सम शब्दों के आधार पर रचित गद्य साहित्य में शुक्ल जी के निबंधों को; आचार्य द्विवेदी व अन्य लेखकों के ऐतिहासिक-पौराणिक उपन्यासों (जैसे बाणभट्ट की आत्मकथा) तथा नाटकों और सैद्धांतिक आलोचना को महत्त्वपूर्ण रूप में रखा जा सकता है। तत्सम शब्दों की अधिकता से निर्मित होने वाली भाषा पद्धति का उदाहरण इस प्रकार है -

"हिमाद्रि तुंग श्रृंग से प्रबुद्ध शुद्ध भारती,
स्वयंप्रभा समुज्ज्वला स्वतंत्रता पुकारती"

2. तद्भव शब्द

तद्भव का अर्थ है तत् (उससे) + भव (निर्मित)। इसका अर्थ हुआ है कि जो शब्द संस्कृत के समान तो नहीं हैं, पर संस्कृत से ही निर्मित हैं, उन्हें तद्भव शब्द कहा जाता है। भाषा के विकास की परंपरा में शब्दों की प्रकृति निरंतर परिवर्तित होती रहती है। संस्कृत के जो शब्द समय के साथ कुछ परिवर्तित होकर हिन्दी भाषा में आ गए हैं, वे ही तद्भव शब्द कहलाते हैं। ऐसे शब्दों के उदाहरण हैं-

संस्कृत		हिन्दी	संस्कृत		हिन्दी
उच्च	>	ऊँचा	दुर्बल	>	दुबला
ओष्ठ	>	ओठ	क्षीर	>	खीर
धूम्र	>	धुआँ	बधिर	>	बहरा

तद्भव शब्द हिन्दी के शब्द भंडार में सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण हैं। हिन्दी संस्कृत से ही निर्मित पर उससे अलग भाषा है। तद्भव शब्द इस रूप में हिन्दी के हिन्दीपन को पूर्णत: धारण करते हैं क्योंकि वे भी संस्कृत से ही निर्मित पर उससे अलग शब्द हैं। संस्कृत से हिन्दी तक के भाषिक विकास को 'सरलीकरण' की जिस परंपरा के रूप में विश्लेषित किया जाता है, तद्भव शब्द उसी परंपरा के आधार स्तंभ हैं।

तद्भव शब्दों का प्रयोग प्राय: लोक-अनुभवों में आने वाले तथ्यों, विचारों, घटनाओं तथा वस्तुओं आदि के लिए किया जाता है। स्वाभाविक रूप से ये शब्द मूलत: समाज के उस वर्ग से संबंधित होते हैं जो वर्ग शैक्षिक तथा आर्थिक दृष्टि से साधारण होता है। यह वर्ग जटिल भाषा का सरलीकरण करता रहता है क्योंकि भाषा का महत्त्व इनकी दृष्टि में सामान्य मानवीय अनुभवों को व्यक्त करना मात्र होता है, न कि जटिल सैद्धांतिक चिंतन या विश्लेषण करना। साहित्यिक परंपरा में भी ये शब्द उन रचनाकारों के साहित्य में ज्यादा आते हैं जो लोक-धर्म का पालन करते हैं तथा आम जनता को साहित्यिक रचना के केंद्र में रखते हैं। ऐसा ही एक उदाहरण इस प्रकार है-

"गोरख जगायो जोग, भगति भगायो लोग"

3. देशज शब्द

देशज शब्द वे शब्द हैं जिनका जन्म देश में ही हुआ है। यहाँ देश का अर्थ भाषा के अपने क्षेत्र से है। ये वे शब्द हैं जो लोक-परंपरा में ही पैदा हुए हैं। देशज शब्द प्राय: ध्वन्यात्मक होते हैं तथा ध्वनि के अनुकरण में ही बन जाते हैं। इनके कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं- खर्राटा, भोंपू, हिनहिनाना, घर्घर, चिड़चिड़ाना, किलकारी इत्यादि।

देशज शब्दों और तत्सम शब्दों की प्रकृति में एक बात समान है। ये दोनों ही परंपराएँ वर्ग-विशेष से संबंधित होने के कारण संपूर्ण समाज के लिए सुबोध नहीं होतीं। तत्सम शब्द सामाजिक रूप से एक वर्ग विशेष (अभिजात वर्ग) की भाषा में प्रयुक्त होते हैं जबकि देशज शब्द भौगोलिक रूप से एक वर्ग विशेष (स्थान/प्रदेश) की भाषा में प्रयुक्त होते हैं।

देशज शब्दों की मूल विशेषता यह मानी गई है कि उनमें किसी अंचल की लोक-संस्कृति पूरी गहराई से व्यक्त होती है। किसी भी संस्कृति के विशेष तत्व प्राय: देशज भाषा का निर्माण करते हैं क्योंकि वे शब्द अन्य संस्कृतियों के लिए समान अर्थ में प्रयुक्त होने की क्षमता नहीं रखते। ये शब्द प्राय: ध्वन्यात्मक तो होते ही हैं, अर्थ-व्यंजकता भी इनमें गज़ब की होती है। साहित्य में इनका सर्वश्रेष्ठ प्रयोग उन रचनाओं में होता है जो किसी विशेष क्षेत्र या अंचल से संबंधित होती हैं। उदाहरण के लिए, हिन्दी साहित्य में 'मैला आँचल' एक महत्त्वपूर्ण आंचलिक उपन्यास है जो बिहार के एक पिछड़े गाँव के जीवन को संपूर्णता में प्रदर्शित करता है। इस उपन्यास में स्वाभाविक रूप से देशज भाषा का प्रयोग काफी अत्यधिक मात्रा में हुआ है। उदाहरण के लिए-

"टन-टनाँग! घड़ीघंट बजता है।
तिन तिरकट-तिन्ना! धिन्ना धा-धा धिन्ना!
माँ रे! काँचहि बाँस के खाट रे खटोलना
आखैर मूंज के रहे डोर।"

4. विदेशज शब्द

विदेशी शब्द वे हैं जो हमारे भाषा क्षेत्र में नहीं जन्मे हैं बल्कि सांस्कृतिक आदान-प्रदान की प्रक्रिया में हिन्दी भाषा में स्वीकार किए गए हैं।

विदेशी शब्द किसी भी भाषिक परंपरा में एक लंबे समय तक शुद्धतावादियों द्वारा 'अशुद्ध' माने जाते हैं किंतु धीरे-धीरे वे भाषा में शामिल हो जाते हैं। जब भी दो संस्कृतियाँ एक-दूसरे से मिलती हैं तो भाषिक संक्रमण होता है और इसी प्रक्रिया में शब्दों का भी आदान-प्रदान होता है।

विदेशी शब्दों को स्वीकृति प्राय: इसलिए मिलती है कि जो विशेष बातें उस संस्कृति की हैं, वे उन्हीं की भाषा में मिल सकती हैं, हमारी भाषा में नहीं। उदाहरण के लिए, गंगा या अमेजन जैसे संस्कृति या स्थान विशेष से संबद्ध शब्द किसी भी अन्य भाषा में विदेशी ही हो सकते हैं। कभी-कभी ऐसा भी होता है कि एक शब्द मूल भाषा में होता है, पर ज्यादा प्रचलन के कारण विदेशी शब्द देशज शब्द को विस्थापित कर देते हैं। उदाहरण के लिए, 'डॉक्टर' शब्द धीरे-धीरे 'चिकित्सक' का स्थान लेने लगा है।

हिन्दी में विदेशी शब्द मूलत: दो परंपराओं के हैं। एक परंपरा अरबी-फारसी की है तथा दूसरी यूरोपीय भाषाओं की। भारतीय समाज में मध्यकालीन संक्रमण की प्रक्रिया में अरबी-फारसी परंपरा के शब्द हिन्दी में आए तथा आधुनिक काल के संक्रमण में यूरोपीय शब्द तेजी से आने लगे। संक्रमण के इन दोनों युगों में कई-कई भाषाओं के शब्द हिन्दी ने स्वीकार किए जिनके उदाहरण निम्नलिखित हैं -

फारसी परंपरा:

फारसी - नापसंद, चश्मा, कुश्ती, दरबार, सरकार, हज़ार, उम्मीद

तुर्की - कालीन, कैंची, बेगम, बंदूक, तोप, बहादुर

अरबी - अजीब, अदालत, आदमी, शराब, दुकान, दुनिया

यूरोपीय परंपरा:

अंग्रेज़ी - कलक्टर, पेन्शन, ऑपरेशन, लैम्प, सूटकेस, साइकिल, स्कूटर

फ्रेंच - कूपन, कारतूस

पुर्तगाली - गमला, चाबी, नीलाम, बाल्टी, पादरी

अन्य एशियाई परंपराएँ:

जापानी - रिक्शा चीनी - चाय, लीची

विदेशी शब्दों का साहित्यिक प्रयोग इस बात पर निर्भर करता है कि रचनाकार की सांस्कृतिक समझ कैसी है। जो रचनाकार भाषा और संस्कृति की व्यापकता और परिवर्तनशीलता में विश्वास रखता है, वह इन शब्दों का प्रयोग करता है परंतु जो रचनाकार सांस्कृतिक आदान-प्रदान को संकीर्ण नज़रिये से देखता है, वह इनसे यथासंभव बचने का प्रयास करता है। दूसरी बात यह भी है कि प्राय: विदेशी भाषा विदेशी शासन के साथ आती है तथा राजभाषा और अभिजात वर्ग की भाषा बन जाने के कारण एक आभामंडल से युक्त हो जाती है। उदाहरण के लिए, अंग्रेजों के चले जाने के बाद भी सांस्कृतिक रूप से भारत स्वाधीन नहीं हो सका है क्योंकि अंग्रेजी भाषा और संस्कृति के सामने सामान्य भारतीय अपनी भाषा और संस्कृति को हीन समझता है। इन कारणों से विदेशी शब्दों का प्रयोग तेजी से बढ़ता है। ऐसी ही स्थिति भारतेंदु युग से पूर्व फारसी के प्रयोग को लेकर दिखाई देती है जहाँ राजा शिवप्रसाद सितारे हिंद 'उर्दूपन' से युक्त भाषा का प्रयोग कर रहे थे जबकि राजा लक्ष्मण सिंह भाषा को 'उर्दूपन' से बचाने का प्रयास कर रहे थे।

साहित्य में विदेशी शब्दों का प्रयोग समर्थ रचनाकार उचित संदर्भों में इस प्रकार करते हैं कि वे शब्द विजातीय प्रतीत नहीं होते। उदाहरण के लिए, तुलसी ने राम के लिए जिस विशेषण का प्रयोग सर्वाधिक किया है, वह 'गरीबनेवाज़' है। फारसी परंपरा का यह शब्द राम भक्तिधारा के विचारों से सामंजस्य कैसे बिठाता है - यही तुलसी की काव्यकला है। प्रेमचंद के उपन्यासों में विदेशी शब्दों का आवश्यक प्रयोग हुआ है और प्रयोगवाद तथा नई कविता में तो विदेशी शब्दों को खुली छूट दे दी गई है। एक उदाहरण द्रष्टव्य है -

"विचित्र प्रोसेशन
गंभीर क्विक मार्च
कलाबत्तूवाली काली जरीदार ड्रेस पहने
चमकदार बैंड-दल"

(मुक्तिबोध-अंधेरे में)

समीक्षा

स्रोत के आधार पर शब्द-संपदा का वर्गीकरण उपर्युक्त चार वर्गों में किया गया है। यह वर्गीकरण हिन्दी भाषाविज्ञान की परंपरा में रूढ़ हो चुका है, पर इसमें कुछ मूलभूत समस्याएँ हैं जिनकी ओर संकेत करना आवश्यक है -

1. कुछ शब्द ऐसे भी हैं जो इनमें से किसी एक वर्ग में शामिल नहीं होते। ये शब्द संकर शब्द होते हैं, जो दो प्रकार की परंपराओं के शब्दों के मिश्रित रूप होते हैं। ऐसे कुछ शब्दों के उदाहरण हैं -

   फैशनपरस्त (अंग्रेजी + फारसी) मोटरगाड़ी (अंग्रेजी + तद्भव)

   थानेदार (तद्भव + फारसी) लाजशरम (तद्भव + फारसी)

   ध्यातव्य है कि इन्हें सामान्यत: देशज शब्दों के अंतर्गत स्वीकार किया जा चुका है।

2. कुछ शब्द ऐसे हैं जिनकी पूरी व्याख्या इस वर्गीकरण से नहीं हो पाती। उदाहरण के लिए, अंग्रेजी से लिए गए शब्द दो प्रकार से प्रयुक्त हो सकते हैं - एक, उसी रूप में जैसे वे अंग्रेजी में प्रयुक्त होते हैं, तथा दूसरे, मूल रूप से कुछ परिवर्तित रूप में। संस्कृत के साथ रूप-परिवर्तन होने पर हम उसका नया नामकरण करते हैं, किंतु अंग्रेजी या किसी अन्य विदेशी भाषा के शब्दों के दोनों प्रकार के प्रयोग 'विदेशी' शब्द के रूप में ही ग्रहण किए जाते हैं। ऐसी स्थिति में उन शब्दों की समग्र व्याख्या नहीं हो पाती जो विदेशी परंपरा से तो हैं, पर उनका रूप कुछ बदल गया है। उदाहरण के लिए -

   एकेडमी (अंग्रेजी) > अकादमी (हिन्दी) मैडम (अंग्रेजी) > मादाम (हिन्दी)

3. इस वर्गीकरण में देशी-विदेशी शब्दों का अंतर भाषा क्षेत्र के आधार पर किया गया है, न कि देशों की सीमाओं के आधार पर। इसका अर्थ यह हुआ कि पाकिस्तान में प्रयुक्त होने वाले शब्द हिन्दी के नज़दीक होने के कारण विदेशज नहीं माने जाएंगे जबकि भारत के ही कुछ राज्यों जैसे तमिलनाडु या कर्नाटक में उत्पन्न होने वाले शब्द विदेशज माने जाएंगे। यहाँ भाषायी क्षेत्रों तथा राजनीतिक सीमाओं का अंतर्विरोध सामने आने लगता है।

(ख) निर्माण या गठन की दृष्टि से शब्द भंडार

निर्माण या गठन की दृष्टि से शब्दों के तीन भेद किए जाते हैं- रूढ़, यौगिक तथा योगरूढ़ शब्द।

रूढ़ शब्द

ये वे शब्द हैं जिनकी ध्वनियों को अलग करके कोई अर्थ नहीं निकाला जा सकता या जिनकी व्युत्पत्ति ज्ञात न हो, जैसे- हाथ, पेट, किताब इत्यादि।

यौगिक शब्द

ये वे शब्द हैं जो दो या दो से अधिक रूढ़ शब्दों से मिलकर बनते हैं तथा जिनका अर्थ दोनों के अर्थ जुड़ने से निर्धारित होता है, जैसे पुस्तकालय, हथगोला, जलज इत्यादि।

योगरूढ़ शब्द

ये ऐसे शब्द हैं जो संरचना की दृष्टि से यौगिक हैं किंतु जिनका अर्थ एक विशेष रूप में रूढ़ हो चुका है। उदाहरण के लिए पंकज शब्द का यौगिक दृष्टि से अर्थ होगा - कीचड़ में जन्म लेने वाला, किंतु इसका प्रचलित अर्थ है कमल, जो कि रूढ़ हो चुका है। इसी प्रकार नीलकंठ इत्यादि शब्द भी इसी प्रकार के हैं।

(ग) प्रयोग के संदर्भ की दृष्टि से शब्द भंडार

प्रयोग क्षेत्र के आधार पर शब्दों को प्रायः सभी भाषाओं में तीन भागों में विभाजित किया जाता है- सामान्य शब्द, पारिभाषिक शब्द तथा अर्द्ध-पारिभाषिक शब्द।

1. सामान्य शब्द

सामान्य शब्द वे हैं जो सामान्य व्यवहार की भाषा में प्रयुक्त होते हैं। इन शब्दों का निश्चित और वस्तुनिष्ठ अर्थ होना आवश्यक नहीं होता है। संदर्भ के परिवर्तन के साथ ये शब्द अलग-अलग अर्थों में प्रयुक्त हो जाते हैं। इनके अतिरिक्त इनके संबंध में एक और विशेष बात यह भी है कि इनका अपने नज़दीकी शब्दों से अंतर निश्चित नहीं होता है। इन दोनों पक्षों को इन उदाहरणों के माध्यम से समझा सकते हैं-

राम अच्छा लड़का है। अच्छा, मैं जाता हूँ। मैं अच्छा हूँ, आप कैसे हैं?

उपरोक्त तीनों वाक्यों में 'अच्छा' शब्द का प्रयोग हुआ है किंतु तीनों संदर्भों में ही इसका अर्थ अलग-अलग है। पहले संदर्भ में इसका अर्थ एक चारित्रिक विशेषता के रूप में है, दूसरे संदर्भ में एक अलविदासूचक शब्द के रूप में है तथा तीसरे संदर्भ में यह शारीरिक स्वास्थ्य को सूचित करने के लिए आया है। एक ही शब्द का ऐसा बहुआयामी प्रयोग उसे सामान्य शब्द बनाता है।

अब हम इसी का एक और उदाहरण देखते हैं-

राम तथा सीता वनवास के लिए गए। राम और सीता वनवास के लिए गए।

राम व सीता वनवास के लिए गए। राम एवम् सीता वनवास के लिए गए।

उपरोक्त वाक्यों में 'तथा', 'और', 'व', 'एवम्', जैसे शब्द परस्पर पर्यायवाची बनकर आए हैं। भाषाविज्ञान की दृष्टि से कोई भी दो शब्द पूर्ण पर्यायवाची नहीं हो सकते। ये शब्द भी संदर्भों के साथ बदल सकते हैं, पर सामान्यतः हम यह देख सकते हैं कि इन शब्दों के अर्थों में कोई विशेष अंतर नहीं है। इसका अर्थ यह हुआ कि ये शब्द आमतौर पर एक दूसरे के स्थान पर प्रयुक्त हो सकते हैं। यह सामान्य शब्दों की ही दूसरी प्रवृत्ति है।

2. पारिभाषिक शब्द

पारिभाषिक शब्द वे शब्द हैं जिनका अर्थ और संदर्भ पूर्णतः परिभाषित होता है। ये शब्द किसी खास संदर्भ में प्रयुक्त होते हैं और प्रयुक्ति के संदर्भ में इनका अर्थ एकदम निश्चित व वस्तुनिष्ठ होता है। प्रत्येक विषय या क्षेत्र के अपने पारिभाषिक शब्द होते हैं। इनके कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं -

अर्थशास्त्र - संपत्ति, आपूर्ति

राजनीतिशास्त्र - सत्ता, प्राधिकार, गणतंत्र, नियम, अधिनियम

दर्शनशास्त्र - रहस्यवाद, तत्वमीमांसा, ज्ञानमीमांसा

इतिहास - सामंतवाद, राष्ट्रवाद, मनसबदारी, पूंजीवाद

भौतिकी - बल, ऊर्जा, ध्वनि

3. अर्द्ध-पारिभाषिक शब्द

ये वे शब्द हैं जो किसी संदर्भ में पारिभाषिक शब्द बन जाते हैं तो किसी अन्य संदर्भ में सामान्य शब्दों की तरह व्यवहार करते हैं। अतः जो शब्द संदर्भ बदल जाने से पारिभाषिक से सामान्य या सामान्य से पारिभाषिक में रूपांतरित हो जाए, उसे अर्द्ध-पारिभाषिक शब्द कहा जाएगा। उदाहरण के लिए-

"मेरा बल इस बात पर है कि तुम सफल हो सको।"

"हँसते-हँसते मेरे पेट में बल पड़ गए।"

"क्षेत्र जितना सीमित होगा, बल उतना ही अधिक होगा।"

उपरोक्त उदाहरणों में पहले दो में 'बल' शब्द सामान्य शब्द के रूप में हैं जबकि तीसरे उदाहरण में यह शब्द पारिभाषिक रूप में हैं। इसी प्रकार एक और उदाहरण देखा जा सकता है-

"मेरी मांग पूरी करो" *"मेरी मांग पूरी भरो"*

उपरोक्त उदाहरण में पहले वाक्य में मांग शब्द का पारिभाषिक प्रयोग है जबकि दूसरे वाक्य में सामान्य।

समीक्षा

उपरोक्त वर्गीकरण में विशेष दोष नहीं हैं। इसकी एकमात्र समस्या यह है कि एक ही शब्द ऐसा भी हो सकता है जो कई क्षेत्रों में एक साथ पारिभाषिक शब्द के रूप में प्रयुक्त होता है। ऐसी स्थिति में यह तय करना कठिन हो जाता है कि वह शब्द मूलतः किस क्षेत्र से संबंधित है। उदाहरण के लिए-

"यह वस्तु किस धातु की बनी है?"

"धातु के माध्यम से क्रिया का ज्ञान होता है।"

उपरोक्त दोनों वाक्यों में धातु शब्द का प्रयोग पारिभाषिक अर्थ में है पर पहला प्रयोग रसायनशास्त्र या भौतिकी के संदर्भ में है जबकि दूसरा भाषाविज्ञान के संदर्भ में।

इन सीमाओं के बावजूद यह वर्गीकरण व्यावहारिक रूप से मान्य है।

(घ) परिवर्तनीयता की दृष्टि से शब्द भंडार

परिवर्तनीयता का अर्थ है परिवर्तित होने की क्षमता। इस दृष्टि से भाषा के सभी शब्दों को दो भागों में बाँट दिया जाता है - विकारी शब्द तथा अविकारी शब्द। अविकारी शब्द वे हैं जो हर स्थिति में समान बने रहते हैं। इसके विपरीत विकारी शब्द वे हैं जो काल, लिंग, वचन आदि के साथ परिवर्तित हो जाते हैं।

विकारी शब्द

ये शब्द हैं जो लिंग, वचन या काल आदि के परिवर्तन से बदल जाते हैं। हिन्दी में चार प्रकार के विकारी शब्द मिलते हैं। उन्हें तथा उनके परिवर्तनशील रूप को हम निम्नलिखित उदाहरणों से देख सकते हैं -

(अ) **संज्ञा** : लड़का, लड़के, लड़कियाँ इत्यादि।

(आ) **विशेषण** : काला, काले, काली इत्यादि।

(इ) **सर्वनाम** : वह, वे, वही इत्यादि।

(ई) **क्रिया** : जाता है, जाते हैं, जाती है इत्यादि।

अविकारी शब्द

ये वे शब्द हैं जो किसी भी स्थिति में परिवर्तित नहीं होते हैं। प्रत्येक लिंग, वचन तथा काल में इनकी एक सी संरचना बनी रहती है। अविकारी शब्द निम्नलिखित वर्गों में विभाजित किए गए हैं :

(अ) **क्रियाविशेषण:** ये वे विशेषण हैं जो संज्ञा की नहीं, क्रिया की विशेषता बताते हैं, जैसे- 'धीरे चलना' में 'धीरे' शब्द 'चलना' क्रिया का विशेषण है।

(आ) **योजक या समुच्चयबोधक शब्द:** ये वे शब्द हैं जो दो वाक्यों या उपवाक्यों या शब्दों को जोड़ते हैं, जैसे: और, तथा, या, किंतु इत्यादि।

(इ) **सम्बन्धबोधक शब्द:** ये वे शब्द हैं जो वस्तुओं या व्यक्तियों के आपसी सम्बन्धों को व्यक्त करते हैं, जैसे 'के लिए', 'के बिना' इत्यादि।

(ई) **विस्मयादिबोधक शब्द:** ये वे शब्द हैं जो विस्मय को प्रकट करने के लिए प्रयुक्त होते हैं, जैसे: अरे, उफ, वाह इत्यादि।

संक्षेप में, हिन्दी की शब्द-संपदा उपरोक्त शब्दों की ही समष्टि या समग्रता है। हिन्दी की शब्द संपदा काफी विस्तृत है तथा तेजी से विकसित होते हुए उस बिंदु पर पहुँचने का प्रयास कर रही है जहाँ हिन्दी संपूर्ण भारत की राजभाषा बनकर राष्ट्रीय एकीकरण की सूत्रधार बन सके।

2. शब्द निर्माण की प्रमुख युक्तियाँ

भाषा में कुछ ऐसी युक्तियाँ होती हैं जो खुद शब्द न होकर भी शब्दों के निर्माण में अति महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। ऐसी तीन युक्तियाँ प्रमुख हैं-

(क) उपसर्ग (ख) प्रत्यय या परसर्ग (ग) संधि और समास

(क) उपसर्ग

ये शब्द नहीं, शब्दांश हैं जो किसी शब्द के पूर्व में जुड़कर अर्थ परिवर्तन कर देते हैं, जैसे - निराकार = निर् + आकार। इसमें 'आकार' शब्द के पूर्व में 'निर्' उपसर्ग लगने से अर्थ का परिवर्तन हो गया है। ध्यातव्य है कि उपसर्ग स्वत: सार्थक नहीं होते, अत: इन्हें शब्द नहीं माना जा सकता किंतु इनका प्रभाव अर्थपूर्ण होता है।

हिन्दी में उपसर्ग प्राय: तीन स्रोतों से आए हैं :- संस्कृत से, फारसी से एवं हिन्दी में स्वत: विकसित उपसर्ग।

संस्कृत के उपसर्ग लगभग 22 हैं, जैसे - सम्, प्र, सत् इत्यादि। इनके उदाहरण इस प्रकार हैं -

सम् + उचित : समुचित सत् + संग : सत्संग प्र + दूषण : प्रदूषण सत् + जन : सज्जन

फारसी के उपसर्ग भी हिन्दी में बड़ी संख्या में प्रचलन में हैं, जैसे हम, ला, बा, बे इत्यादि। इनके कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं-

हम + राही : हमराही बा + कायदा : बाकायदा ला + जवाब : लाजवाब बे + बाक : बेबाक

हिन्दी की परंपरा में भाषिक विकास के साथ-साथ कुछ उपसर्ग स्वत: विकसित हुए हैं। इन उपसर्गों में स, अन, पर आदि प्रमुख हैं। इनके उदाहरण इस प्रकार हैं -

स + पूत : सपूत पर + वर्ती : परवर्ती अन + जान : अनजान पर + देस : परदेस

(ख) प्रत्यय या परसर्ग

ये भी शब्दांश हैं पर ये उपसर्ग के विपरीत शब्द के अंत में आकर अर्थ परिवर्तन करते हैं, जैसे- पन > लड़कपन, बचपन इत्यादि। संस्कृत की प्रत्यय परंपरा अत्यंत समृद्ध है जिसे हिन्दी में प्राय: स्वीकार किया गया है। संस्कृत के प्रत्ययों को दो भागों में बाँटा गया है:

(क) कृदंत (ख) तद्धित

कृदंत : ये वे प्रत्यय हैं जो किसी क्रिया या धातु के अंत में लगते हैं, जैसे क, एरा, आक इत्यादि। इनके उदाहरण निम्नलिखित हैं -

क : अध्यापक, रक्षक आक : तैराक एरा : लुटेरा आलू : झगड़ालू

तद्धित : ये वे प्रत्यय हैं जो क्रियाओं के अतिरिक्त अन्य सभी प्रकार के शब्दों जैसे संज्ञा, विशेषण आदि में जुड़ते हैं, जैसे : पा, पन, आ इत्यादि। इनके कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं-

पा : बुढ़ापा, बहनापा आ : प्यासा, निराशा पन : बचपन

हिन्दी के अपने प्रत्यय भी काफी मात्रा में हैं। इस संदर्भ में एक विशेष बात यह भी है कि संस्कृत से हिन्दी के विकास की प्रक्रिया में जिन क्षेत्रों में सर्वाधिक विकास हुआ है, उनमें से एक क्षेत्र प्रत्ययों का भी है। ऐसे प्रत्ययों में आरी, आहट, अक्कड़ इत्यादि प्रमुख हैं। इनके कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं-

अक्कड़ : भुलक्कड़, पियक्कड़ आहट : फुसफुसाहट आरी : पुजारी

(ग) संधि और समास

ये भाषा की वे युक्तियाँ हैं जिनमें अलग-अलग शब्द या शब्दांश आपस में जुड़कर एक नए शब्द का निर्माण करते हैं। समास का संयोग दो शब्दों के परस्पर जुड़ने से ही होता है जबकि संधि एक शब्द व दूसरे शब्दांश के बीच भी हो सकती है। अभी तक के उदाहरणों में कई बार संधियों के उदाहरण हमने देखे हैं, जैसे निर् + आकार = निराकार तथा सत् + जन = सज्जन आदि। अब हम समास के संबंध में विशेष चर्चा करेंगे।

हिन्दी में प्रमुख रूप से चार प्रकार के समास स्वीकार किए गए हैं- अव्ययीभाव, तत्पुरुष, द्वंद्व तथा बहुब्रीहि समास। इनकी संक्षिप्त व्याख्या इस प्रकार है -

1. **अव्ययीभाव समास:** यह वह समास है जिसमें पूर्व पद प्रधान हो व उत्तर पद गौण हो, जैसे प्रतिदिन।
2. **तत्पुरुष समास:** यह वह समास है जिसमें उत्तर पद प्रधान हो और पूर्व पद गौण हो जैसे घुड़सवार, हस्तलिखित इत्यादि। तत्पुरुष समास के दो उपभेद माने गए हैं- कर्मधार्य समास तथा द्विगु समास। ध्यातव्य है कि कुछ तत्पुरुष समास ऐसे भी हो सकते हैं जो इन दोनों में शामिल न होते हों। इन दोनों का संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है -
   (अ) **कर्मधारय:** वह समास जिसमें पूर्व पद विशेषण तथा उत्तर पद विशेष्य हो, जैसे : नीलगाय।
   (आ) **द्विगु:** वह समास जिसमें पूर्व पद कोई संख्या हो तथा वह उत्तर पद की व्याख्या करती हो, जैसे चतुर्भुज, चौराहा, अष्टावक्र, सतसई इत्यादि।
3. **द्वंद्व समास:** यह वह समास है जिसमें पूर्व पद तथा उत्तर पद बराबर महत्त्व के हों, जैसे दाल-रोटी, माता-पिता, ज्वार-भाटा, हेरा-फेरी इत्यादि।
4. **बहुब्रीहि समास:** यह वह समास है जिसमें दोनों शब्द मिलकर किसी तीसरे अर्थ की व्यंजना करें। योगरूढ़ शब्द ही एक प्रकार से बहुब्रीहि समास कहलाते हैं। उदाहरण के तौर पर 'दशानन' शब्द दो शब्दों दश + आनन से मिलकर बना है पर इसका अर्थ 'रावण' इन दोनों से भिन्न एक अन्य अर्थ है। ऐसे ही नीलांबर, चक्रपाणि इत्यादि भी इसी समास के उदाहरण हैं।

3. पद संरचना

आमतौर पर शब्द व पद को पर्यायवाची माना जाता है पर इनमें एक अंतर है। शब्द स्वयं में स्वतंत्र भी हो सकता है किंतु वही शब्द जब व्याकरण सम्मत नियमों के आधार पर किसी वाक्य में निश्चित स्थान ग्रहण कर लेता है तो पद बन जाता है, जैसे- 'राम', 'ने', 'रावण', 'को', 'मारा' ये सभी शब्द हैं किंतु 'राम ने रावण को मारा' वाक्य में ये पाँचों पद बन गए हैं। जब तक ये शब्द थे, हम इनका स्थान परिवर्तन कर सकते थे पर अब स्थान परिवर्तन करने से अर्थ के परिवर्तित होने की संभावना हो जाएगी।

हिन्दी में पदों का वर्गीकरण दो भागों में किया गया है- विकारी पद तथा अविकारी पद या अव्यय। यह वर्गीकरण ठीक वही है जो हमने परिवर्तनीयता की दृष्टि से शब्दों के अंतर्गत पढ़ा था। विकारी शब्दों को ही विकारी पद कहा जाता है और अविकारी शब्दों को अविकारी पद।

(हिन्दी की पद संरचना पूछे जाने पर चार प्रकार के विकारी पदों और चार प्रकार के अविकारी पदों की व्याख्या करें।)

अध्याय
2

मानक हिन्दी की व्याकरणिक संरचना

किसी भाषा में निहित व्यवस्था उसके व्याकरण पर निर्भर होती है। व्याकरण का अध्ययन चार भागों में बाँटकर किया जा सकता है-

1. पद संरचना 2. कारक व्यवस्था 3. विकारोत्पादक तत्त्व 4. वाक्य संरचना

हम क्रमशः इन चारों भागों का अध्ययन करेंगे।

2.1 हिन्दी की पद संरचना

पद संरचना पर आरंभिक चर्चा शब्द संपदा के अंतर्गत की जा चुकी है। शब्द और पद प्रायः समानार्थक शब्द हैं। इनमें अंतर सिर्फ यह है कि व्याकरण की व्यवस्था से युक्त होने के बाद शब्द पद कहलाते हैं।

पहले बताया जा चुका है कि हिन्दी के पद दो प्रकार के हैं- विकारी तथा अविकारी। विकारी पदों में संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण तथा क्रिया शामिल हैं जबकि अविकारी पदों में क्रियाविशेषण, योजक या समुच्चयबोधक, संबंधबोधक तथा विस्मयादिबोधक पद शामिल हैं। अविकारी पदों के संबंध में जो चर्चा पहले हो चुकी है, वह पर्याप्त है। विकारी पदों के संबंध में यहाँ विस्तृत चर्चा की जा रही है।

2.2 हिन्दी की संज्ञा व्यवस्था

परिचय

संज्ञा वह पद है जो किसी व्यक्ति, वस्तु, विचार, भाव, द्रव्य, समूह या जाति के नाम को व्यक्त करता है। वाक्य निर्माण से पूर्व संज्ञा पद **प्रातिपदिक** कहलाता है किंतु कारक के अनुसार विभक्ति या परसर्ग से जुड़कर यही प्रातिपदिक **'संज्ञापद'** बन जाता है।

संज्ञा के भेद

हिन्दी में संज्ञाओं को प्रायः तीन वर्गों में विभाजित किया जाता है- 'व्यक्तिवाचक संज्ञा', 'जातिवाचक संज्ञा' व 'भाववाचक संज्ञा'। कुछ विद्वान इन तीन के अतिरिक्त दो और वर्गों- 'द्रव्यवाचक संज्ञा' व 'समूहवाचक संज्ञा' को भी स्वीकार करते हैं। अब यह मान लिया गया है कि ये दोनों वर्ग संज्ञा के स्वतंत्र भेद न होकर जातिवाचक संज्ञा के ही उपभेद हैं। संज्ञा के भेदों का परिचय इस प्रकार है -

(क) व्यक्तिवाचक संज्ञा: किसी व्यक्ति, स्थान, प्राणी या वस्तु विशेष का नाम बताने वाला पद व्यक्तिवाचक संज्ञा कहलाता है। उदाहरण के लिये - राम, श्याम, सीता, दिल्ली, कानपुर इत्यादि व्यक्तिवाचक संज्ञाएँ हैं।

(ख) जातिवाचक संज्ञा: जब कोई पद किसी वर्ग के नाम को व्यक्त करता है तो जातिवाचक संज्ञा कहलाता है। व्यक्तिवाचक संज्ञा किसी न किसी जातिवाचक वर्ग की सदस्य होती है। उदाहरण के लिये राम, श्याम जैसी व्यक्तिवाचक संज्ञाएँ 'मनुष्य' जातिवाचक संज्ञा की सदस्य हैं।

जातिवाचक संज्ञा के अन्तर्गत दो उपभेदों की चर्चा भी की जा सकती है-

(अ) **समूहवाचक संज्ञा:** ये वे पद हैं जो किसी व्यक्ति, प्राणी या वस्तुओं के समूह को व्यक्त करते हैं। इन्हें समूह होने के कारण व्यक्तिवाचक नहीं मान सकते व विशिष्ट होने के कारण जातिवाचक नहीं मान सकते। उदाहरण के लिये *"सेना आगे बढ़ रही है"* वाक्य में 'सेना' समूहवाचक संज्ञा है।

(आ) **द्रव्यवाचक संज्ञा** - यदि कोई संज्ञा किसी पदार्थ का बोध कराती हो तो उसे द्रव्यवाचक संज्ञा कहते हैं। उदाहरण के लिये "पानी भर गया है" में पानी।

(ग) **भाववाचक संज्ञा** - जब कोई पद किसी वस्तु या व्यक्ति के गुण, स्वभाव या स्थिति को अथवा किसी भाव, विचार, अनुभव, भावना आदि को व्यक्त करे तो उसे भाववाचक संज्ञा कहते हैं। उदाहरण के लिये- 'विनम्रता', 'प्रेम', 'घृणा', 'मानवता', 'बचपन', 'बुढ़ापा' आदि भाववाचक संज्ञा के उदाहरण हैं। भाववाचक संज्ञाएँ प्राय: अन्य शब्दों (जातिवाचक संज्ञाओं, क्रियाओं, विशेषणों आदि) में ई, त्व, ता, पन, पा, वट आदि प्रत्यय लगाकर बनाई जाती हैं।

वर्गीकरण की अनिश्चयात्मकता

संज्ञाओं के ये वर्ग पूर्णत: निश्चयात्मक नहीं हैं। कभी-कभी संज्ञाएँ विशेष प्रयोगों के कारण अपना वर्ग बदलती हैं। जब कोई व्यक्तिवाचक संज्ञा किसी विशेष गुण के साथ जुड़ जाती है तो उसका प्रयोग जातिवाचक संज्ञा के रूप में होने लगता है, जैसे "वह आधुनिक भारत का जयचंद है" वाक्य में 'जयचंद' व्यक्तिवाचक नहीं, जातिवाचक संज्ञा है। इसी प्रकार किसी जातिवाचक संज्ञा को व्यक्त करने वाला पद यदि किसी व्यक्ति के नाम से गहराई से जुड़ जाए तो वह व्यक्तिवाचक संज्ञा बन जाता है, जैसे "नेताजी ने कहा था तुम मुझे खून दो, मैं तुम्हें आजादी दूंगा" वाक्य में 'नेताजी' पद सुभाष चंद्र बोस के लिये आया है, अत: यह व्यक्तिवाचक संज्ञा है, जातिवाचक नहीं।

संस्कृत व अंग्रेज़ी से तुलना

अंग्रेज़ी में संज्ञाएँ प्राय: वचन परिवर्तन के अपवाद को छोड़कर प्राय: अविकारी बनी रहती हैं जबकि हिन्दी में संज्ञा विकारी पद है। उदाहरण के लिये-

Girls, come here > लड़कियों, यहाँ आओ

Girls are going > लड़कियाँ जा रही हैं।

हिन्दी की संज्ञा संरचना संस्कृत की तुलना में काफी सरल है। इसका कारण यह है कि संस्कृत में 8 कारकों, 3 लिंगों तथा 3 वचनों के कारण संज्ञा के 72 रूप बनते थे। हिन्दी में लिंग व वचन 2-2 रह गए और कारक रचना में विभक्तियों का स्थान परसर्गों ने ले लिया। इसलिये संज्ञा रूपों की विविधता काफी कम हो गई।

निष्कर्ष

कुल मिलाकर, हिन्दी की संज्ञा व्यवस्था व्याकरण के दायित्वों का कुशल निर्वाह करती है। यद्यपि यह संस्कृत के सरलीकरण से बनी है किंतु इस सरलीकरण की परिणति अतार्किकता में नहीं हुई है।

2.3 हिन्दी की सर्वनाम व्यवस्था

परिचय व महत्त्व

सर्वनाम वे पद हैं जो संज्ञा के स्थान पर प्रयुक्त होते हैं। सर्वनाम शब्द दो शब्दांशों का योग है-सर्व + नाम। इसका अर्थ हुआ कि जो सभी का नाम हो सकता है, वही सर्वनाम है। संज्ञाएँ व्यक्ति, वस्तु, भाव, समूह, द्रव्य या जाति विशेष को व्यक्त करती हैं जबकि सर्वनाम बहुत सी संज्ञाओं के लिये समान रूप से प्रयुक्त हो सकते हैं। इसका प्रयोग इसलिये किया जाता है कि भाषा में संज्ञा पदों की आवृत्ति बार-बार न करनी पड़े। उदाहरण के लिये "राम कह रहा था कि आज राम, राम के भाई से मिलने के लिये जाएगा" वाक्य में 'राम' संज्ञापद की आवृत्ति प्रवाह में बाधक है। इसके स्थान पर "राम कह रहा था कि वह आज अपने भाई से मिलने जाएगा" ज़्यादा उपयुक्त वाक्य है।

सर्वनामों के भेद

हिन्दी में सर्वनामों के 6 भेद स्वीकार किये गए हैं -

(क) पुरुषवाचक सर्वनाम (ग) संबंधवाचक सर्वनाम (ङ) अनिश्चयवाचक सर्वनाम
(ख) प्रश्नवाचक सर्वनाम (घ) निश्चयवाचक सर्वनाम (च) निजवाचक सर्वनाम

(क) पुरुषवाचक सर्वनाम: हिन्दी तथा अन्य भाषाओं में 3 पुरुष स्वीकार किये गए हैं- उत्तम पुरुष, मध्यम पुरुष व अन्य पुरुष। इन तीनों के लिये हिन्दी में निम्नलिखित सर्वनाम प्रचलित हैं-

	एकवचन	बहुवचन
उत्तम पुरुष	मैं	हम
मध्यम पुरुष	तू	तुम
अन्य पुरुष	वह	वे

पुरुषवाचक सर्वनामों में व्यावहारिक तौर पर कुछ समस्याएँ आती हैं, जैसे-

(अ) बिहारी हिन्दी तथा पूर्वी हिन्दी की कुछ बोलियों में उत्तम पुरुष एकवचन में 'मैं' के स्थान पर 'हम' सर्वनाम का प्रयोग होता है। इस कारण उत्तम पुरूष में बहुवचन में 'हम' के स्थान पर 'हम लोग' का प्रयोग किया जाता है।

(आ) हिन्दी की कई बोलियों तथा आभिजात्य वर्ग की भाषा में 'तू' शब्द का प्रयोग निंदनीय माना जाता है। इसका परिणाम यह होता है कि मध्यम पुरुष बहुवचन का सर्वनाम 'तुम' मध्यम पुरुष एकवचन में प्रयुक्त होने लगता है। इसी का अगला चरण यह है कि मध्यम पुरुष बहुवचन के लिये 'तुम लोग' का प्रयोग करना पड़ता है।

(इ) मध्यम पुरुष तथा प्रथम पुरुष में यदि किसी आदरणीय व्यक्ति की चर्चा हो रही हो तो एकवचनीय सर्वनाम के स्थान पर बहुवचनीय सर्वनाम का प्रयोग किया जाता है। उदाहरण - "आप कहाँ जा रहे हैं?"

(ख) प्रश्नवाचक सर्वनाम: ये वे सर्वनाम हैं जो किसी वस्तु या व्यक्ति के संबंध में प्रश्नवाचकता को व्यक्त करते हैं जैसे "राम कहाँ गया" में 'कहाँ' प्रश्नवाचक सर्वनाम है जो कि "राम अयोध्या गया" की व्यक्तिवाचक संज्ञा 'अयोध्या' के स्थान पर प्रयुक्त हुआ है।

(ग) संबंधवाचक सर्वनाम: इस सर्वनाम का प्रयोग प्राय: मिश्र वाक्यों में होता है जहाँ एक से अधिक वाक्यों के संबंध जोड़ने के लिये इनकी आवश्यकता पड़ती है। उदाहरण के लिये, "जो पढ़ेगा, वह सफल होगा'' वाक्य में 'जो' व 'वह' संबंधवाचक सर्वनाम हैं।

(घ) निश्चयवाचक सर्वनाम: ये सर्वनाम किसी संज्ञा की निश्चयात्मकता को व्यक्त करते हैं। ये प्राय: अकारान्त (यह, वह) होते हैं परन्तु इनमें प्राय: ईकारान्त होने की गहरी प्रवृत्ति विद्यमान होती है, जैसे- यही, वही, यहीं, वहीं इत्यादि।

(ङ) अनिश्चयवाचक सर्वनाम: ये सर्वनाम संज्ञा पद की अनिश्चितता को व्यक्त करते हैं, जैसे "कोई है" वाक्य में 'कोई' पद। 'कभी' और 'कहीं' भी अनिश्चयवाचक सर्वनामों की तरह प्रयुक्त होते हैं।

(च) निजवाचक सर्वनाम: जो सर्वनाम उत्तम पुरुष, मध्यम पुरुष या अन्य पुरुष के संबंध में अपनेपन का बोध कराते हैं, वे निजवाचक सर्वनाम कहलाते हैं। जैसे- "यह मेरा अपना काम है" वाक्य में 'अपना' निजवाचक सर्वनाम है। 'अपना', 'अपनी', 'अपने लिये', 'अपने आप को' जैसी शब्दावली का प्रयोग निजवाचक सर्वनाम में प्राय: किया जाता है।

संस्कृत व अंग्रेज़ी से तुलना

हिन्दी में सर्वनाम विकारी पद है अर्थात् भाषा की अन्य इकाइयों के अनुसार परिवर्तनीय है। ध्यातव्य है कि संस्कृत व अंग्रेज़ी में सर्वनाम लिंग तथा वचन दोनों के अनुसार परिवर्तनीय होते हैं जबकि हिन्दी में वचनानुसार ही परिवर्तित होते हैं, लिंगानुसार नहीं। उदाहरण के लिये-

	हिन्दी	संस्कृत	अंग्रेज़ी
पुल्लिंग	वह जाता है।	स: गच्छति	He Goes.
स्त्रीलिंग	वह जाती है।	सा गच्छति	She goes.
एकवचन	वह जाता है।	स: गच्छति	He goes.
बहुवचन	वे जाते हैं।	ते गच्छन्ति	They go.

ध्यातव्य है कि हिन्दी के सर्वनाम संस्कृत से वैसे के वैसे स्वीकार नहीं किये गए। इस रूप में यह हिन्दी का अपना विकासहै।

2.4 हिन्दी की विशेषण व्यवस्था

परिचय

विशेषण वह विकारी पद है जो किसी संज्ञा या सर्वनाम की विशेषता बताता है। यह सामान्यत: संज्ञा की विशेषता सूचित करता है पर जब सर्वनाम संज्ञा का स्थानापन्न बनता है तो वही विशेष्य हो जाता है। कभी-कभी कुछ विशेषण क्रिया की विशेषता भी बताते हैं जो क्रिया-विशेषण कहलाते हैं और अपनी प्रकृति में अविकारी होते हैं।

विशेषणों के भेद

हिन्दी व्याकरण में प्राय: 4 प्रकार के विशेषण स्वीकृत हैं जिनका विश्लेषण निम्नलिखित है -

(क) गुणवाचक विशेषण: जो विशेषण संज्ञा के गुणों (जैसे- रंग, आकार, स्थान काल आदि) का बोध कराते हैं, वे गुणवाचक विशेषण कहलाते हैं। ध्यातव्य है कि यहाँ गुण का अर्थ विशेषता से है, अच्छाई से नहीं। उदाहरण के लिये, 'मोटा', 'पतला', 'बुरा', 'ऊँचा', 'नीचा', 'काला', 'पुराना' आदि गुणवाचक विशेषण हैं।

(ख) सार्वनामिक विशेषण: वे विशेषण जो अपने सार्वनामिक रूप में ही संज्ञा की विशेषता बताते हैं, 'सार्वनामिक विशेषण' कहलाते हैं। उदाहरण के लिये "कितने लंबे हो तुम", "अपनी दुनिया में रहो", "तुम्हारी स्थिति कैसी है" आदि वाक्यों में 'कितने', 'अपनी' व 'तुम्हारी' सार्वनामिक विशेषण हैं। सार्वनामिक विशेषण के चार उपभेद हैं-

(i) निश्चयवाचक सार्वनामिक विशेषण - 'वह' किताबदो।

(ii) अनिश्चयवाचक सार्वनामिक विशेषण - 'कोई' किताब दो।

(iii) प्रश्नवाचक सार्वनामिक विशेषण - 'कौन सी' किताब चाहिये?

(iv) संबंधवाचक सार्वनामिक विशेषण - 'जो' कल मांगी थी, 'वही' दो।

(ग) परिमाणबोधक विशेषण: ये विशेषण प्राय: तब आते हैं जब विशेष्य के रूप में कोई द्रव्यवाचक संज्ञा हो। ये भी दो प्रकार के हैं-

(i) निश्चित परिमाणबोधक - 'एक मीटर' कपड़ादो।

(ii) अनिश्चित परिमाणबोधक - 'थोड़ा' पानी पिलाओ।

(घ) संख्यावाचक विशेषण: यह विशेषण भी लगभग परिमाणबोधक विशेषण के समान है किंतु ये तब आते हैं जब विशेष्य के रूप में कोई जातिवाचक संज्ञा हो। ये भी दो प्रकार के हैं -

(अ) निश्चित संख्यावाचक - 'बीस' राक्षस आए थे।

(आ) अनिश्चित संख्यावाचक - 'कुछ' देवता आए थे।

विकारी तथा अविकारी विशेषण

ध्यातव्य है कि विशेषण के इन चारों प्रकारों में से पहले दो प्रकार के विशेषण विकारी हैं जबकि अंतिम दो अविकारी। गुणवाचक व सार्वनामिक विशेषण लिंगवचनानुसार परिवर्तित होते हैं जबकि परिमाणबोधक व संख्यावाचक विशेषण परिवर्तित नहीं होते। इसे हम निम्नांकित उदाहरणों के माध्यम से समझ सकते हैं-

(क) गुणवाचक विशेषण

(अ) वह बहुत <u>अच्छा</u> है (पुल्लिंग + एकवचन)

(आ) वह बहुत <u>अच्छी</u> है (<u>स्त्रीलिंग</u> + एकवचन)

(इ) वे बहुत <u>अच्छे</u> हैं (पुल्लिंग + <u>बहुवचन</u>)

(ख) सार्वनामिक विशेषण

(अ) वह कितना लंबा है। (पुल्लिंग + एकवचन)

(आ) वह कितनी लंबी है। (स्त्रीलिंग + एकवचन)

(इ) वे कितने लंबे हैं। (पुल्लिंग + बहुवचन)

(ग) परिमाणबोधक विशेषण

(अ) राम ने कुछ पानी पिया (पुल्लिंग + एकवचन)

(आ) सीता ने कुछ पानी पिया (स्त्रीलिंग + एकवचन)

(इ) देवताओं ने कुछ पानी पिया (पुल्लिंग + बहुवचन)

(घ) संख्यावाचक विशेषण

(अ) एक बच्चा खेल रहा है। (पुल्लिंग + एकवचन)

(आ) एक दर्जन बच्चे खेल रहे हैं। (पुल्लिंग + बहुवचन)

(इ) एक बच्ची खेल रही है। (स्त्रीलिंग + एकवचन)

अन्य विशेषताएँ

हिन्दी की विशेषण व्यवस्था की कुछ और विशेषताएँ इस प्रकार हैं -

(क) विशेषणों के दो भेद '**उद्देश्य विशेषण**' व '**विधेय विशेषण**' भी किये जाते हैं। यदि विशेषण विशेष्य से पूर्व आता है तो उद्देश्य विशेषण कहलाता है जैसे 'वह काला लड़का है' में 'काला'। यदि विशेषण विशेष्य के बाद आए तो उसे विधेय विशेषण कहते हैं, जैसे - "वह लड़का काला है" वाक्य में 'काला'। ध्यातव्य है कि विधेय विशेषण भी तार्किक रूप से संज्ञा की ही विशेषता बताते हैं।

(ख) कभी-कभी कुछ विशेषण विशेषण की ही विशेषता बताते हैं। ऐसे विशेषणों को '**प्रविशेषण**' कहते हैं। उदाहरण के लिये "वह बहुत चालाक है" में 'चालाक' विशेषण व 'बहुत' प्रविशेषण है।

(ग) कहीं-कहीं विशेषण का प्रयोग संज्ञा रूप में किया जाता है। उदाहरण के लिये - "उस लंबू को देखो" व "बड़ों की बात माननी चाहिये" वाक्यों में 'लंबू' व 'बड़ों' का संज्ञावत् प्रयोग किया गया है।

(घ) हिन्दी में कुछ विशेषण तो मूलत: विशेषण शब्द ही हैं, जैसे सुंदर, काला, मोटा इत्यादि। शेष विशेषण संज्ञा, सर्वनाम व क्रिया से निर्मित होते हैं। उदाहरण के लिये-

संज्ञा से विशेषण - बनारस > बनारसी

सर्वनाम से विशेषण - मैं > मेरा

क्रिया से विशेषण - खाना > खाऊ, लड़ना > लड़ाकू

2.5 हिन्दी की क्रिया व्यवस्था

परिचय

क्रिया भाषा का वह विकारी पद है जिसके माध्यम से कुछ करना या होना सूचित होता है। व्याकरणिक दृष्टि से क्रिया किसी भी भाषा की मूल इकाई मानी जाती है क्योंकि कोई भी स्वतंत्र वाक्य सर्वनाम, विशेषण आदि के अभाव में तो हो सकता है, किंतु क्रिया के अभाव में नहीं।

क्रिया के भेद: अकर्मक व सकर्मक क्रिया

हिन्दी में क्रिया का वर्गीकरण कई आधारों पर किया गया है जिसमें सबसे महत्त्वपूर्ण है- 'अकर्मक' तथा 'सकर्मक' क्रिया के मध्य किया गया विभाजन-

(क) अकर्मक क्रिया - जब कोई क्रिया बिना कर्म की अपेक्षा के हो तो अकर्मक क्रिया कहलाती है। उदाहरण के लिये 'राम हँसा', 'पक्षी उड़ रहे हैं' आदि।

(ख) सकर्मक क्रिया - यह वह क्रिया है जिसके साथ कर्त्ता ही नहीं कर्म भी विद्यमान होता है। उदाहरण के लिये "राम ने रावण को मारा" वाक्य में कर्त्ता 'राम' व क्रिया 'मारा' के साथ कर्म के रूप में 'रावण' भी विद्यमान है। यदि कर्म व्यक्त न हो, किंतु कर्म की अपेक्षा विद्यमान हो तो भी क्रिया सकर्मक ही होगी- जैसे- 'राम ने खाया' में 'खाना' कर्म की अपेक्षा विद्यमान है।

क्रिया के भेद: संयुक्त क्रिया

क्रियाओं का एक प्रमुख वर्ग "**संयुक्त क्रिया**" कहलाता है। 'संयुक्त क्रिया' वहाँ होती है जहाँ एक से अधिक क्रियाएँ मिलकर किसी वाक्य में कार्य के होने या किये जाने को सूचित करें। संयुक्त क्रिया के भीतर क्रियाएँ चार उपखंडों में विभाजित होती हैं-

(क) मुख्य क्रिया (ख) संयोजी क्रिया (ग) रंजक क्रिया (घ) सहायक क्रिया

(क) मुख्य क्रिया: मुख्य क्रिया संयुक्त क्रिया का मूल भाग है जिस पर संपूर्ण क्रिया संरचना टिकी होती है। उदाहरण के लिये 'राम तेज़ी से चलता जा रहा है' वाक्य में 'चलना' मुख्य क्रिया है।

(ख) संयोजी क्रियाएँ: ये वे क्रियाएँ हैं जो मुख्य क्रिया के पक्ष या वृत्ति आदि की सूचना देती हैं। उदाहरण के लिये उपरोक्त वाक्य में 'जा रहा' संयोजी क्रिया को सूचित करता है।

(ग) रंजक क्रियाएँ: ये क्रियाएँ संयुक्त क्रियाओं में कभी-कभी हिस्सा बनती हैं। इनकी विशेषता यह है कि ये मुख्य क्रिया को विशिष्ट अर्थ छवि प्रदान करती हैं। उदाहरण के लिये - 'गिर पड़ना' व 'फेंक देना' जैसी संयुक्त क्रियाओं में 'पड़ना' व 'देना' रंजक क्रियाएँ हैं।

(घ) सहायक क्रिया: ये संयुक्त क्रिया का अनिवार्य अंग नहीं हैं। ये वे क्रियाएँ हैं जो मुख्य क्रिया की उत्तरपदी होती हैं व उसी पर निर्भर होती हैं। उदाहरण के लिये उपरोक्त वाक्य में 'है' सहायक क्रिया है।

क्रिया के भेद: समापिका व असमापिका क्रिया

एक और दृष्टि से देखें तो क्रियाओं को 2 भागों में बाँट सकते हैं - समापिका व असमापिका क्रिया।

(क) समापिका क्रिया: यह क्रिया वाक्य के अंत में विधेय पक्ष के भीतर आती है। हिन्दी में किसी भी सरल व संपूर्ण वाक्य में यह जरूरी है कि क्रिया अंत में ही आए। इस रूप में हिन्दी में प्राय: सभी क्रियाएँ समापिका क्रियाएँ ही हैं। उदाहरण के लिये "राम अयोध्या जाएगा" वाक्य में 'जाएगा' समापिका क्रिया है।

(ख) असमापिका क्रिया: यदि कोई क्रिया वाक्य के विधेय पक्ष के अंतिम हिस्से में आने की बजाय कहीं और आ जाए तो वह असमापिका क्रिया कहलाती है। ऐसी क्रियाओं को कृदन्तीय क्रिया/क्रिया का कृदन्तीय रूप भी कहते हैं। हिन्दी में कृदन्तीय क्रियाएँ 4 प्रकार से प्रत्ययों से निर्मित होती हैं-

(अ) ता/ती/ते - चढ़ता/चढ़ती/चढ़ते (इ) ना/नी/ने - सुना/सुनी/सुने

(आ) आ/ई/ए - बैठा/बैठी/बैठे (ई) कर प्रत्यय - उठकर/बैठकर इत्यादि।

कृदन्तीय क्रियाएँ प्रत्ययों से निर्मित तो होती हैं किंतु प्रत्ययों से बनने के बाद भी ये क्रियापद तीन ही रूपों में हो सकते हैं - संज्ञा, विशेषण या क्रिया-विशेषण। उदाहरण के लिये-

संज्ञा - टहलना, **विशेषण** - चलती (गाड़ी),

क्रियाविशेषण - चलते-चलते (ए/ए), बैठकर (कर)

क्रिया के भेद: प्रेरणार्थक व नामधातु क्रिया

क्रियाओं के दो और भेद माने जाते हैं - 'प्रेरणार्थक क्रिया' व 'नामधातु क्रिया'।

(क) प्रेरणार्थक क्रिया: जहाँ किसी कार्य का होना या करना कर्त्ता के माध्यम से न हो बल्कि कर्त्ता की प्रेरणा से किसी अन्य व्यक्ति के माध्यम से हो तो क्रिया प्रेरणार्थक क्रिया कहलाती है। उदाहरण के लिये मरवाना, उठवाना इत्यादि।

(ख) नामधातु क्रिया: जिन क्रियाओं का निर्माण संज्ञा या विशेषण शब्दों के रूप परिवर्तन के माध्यम से हुआ हो, उन्हें नामधातु क्रिया कहते हैं। उदाहरण के लिये -

हाथ (संज्ञा) > हथियाना (नामधातु क्रिया)

गर्म (विशेषण) > गर्माना (नामधातु क्रिया)

लज्जा (संज्ञा) > लजाना (नामधातु क्रिया)

क्रिया में विकार पैदा करने वाले तत्त्व

हिन्दी व्याकरण में क्रिया एक विकारी पद है जिसमें 6 कारणों से विकार आता है। ये हैं - लिंग, वचन, काल, वाच्य, पुरुष तथा भाव या वृत्ति।

(क) लिंग के आधार पर क्रिया परिवर्तन-

पुल्लिंग	**स्त्रीलिंग**
राम जाता है।	सीता जाती है।

(ख) वचन के आधार पर क्रिया परिवर्तन-

एकवचन - मैं जाता हूँ।

बहुवचन - हम जाते हैं।

(ग) काल के आधार पर क्रिया परिवर्तन-

भूतकाल - मैं गया था।

वर्तमान काल - मैं जा रहा हूँ।

भविष्य काल - मैं जाऊंगा।

(घ) वाच्य के आधार पर क्रिया परिवर्तन-

कर्तृवाच्य - रावण ने तीर चलाया।

कर्मवाच्य - रावण द्वारा तीर चलाया गया।

भाववाच्य - चलना ही तीर का काम है।

(ङ) पुरुष के आधार पर क्रिया परिवर्तन-

उत्तम पुरुष - मैं जाऊंगा।

मध्यम पुरुष - तुम जाओगे।

अन्य पुरुष - वह जाएगा।

(च) भाव या वृत्ति के आधार पर क्रिया परिवर्तन-

विध्यर्थ - तुम वहाँ जाओ। (आदेशसूचक)

संदेहार्थ - वह जाता ही होगा।

निश्चयार्थ - वह जा रहा है। (सूचना के लिये)

संकेतार्थ - पानी बरसेगा तो वह जाएगा।

संभावनार्थ - शायद वह जाए।

वाक्य में क्रिया का क्रम

हिन्दी में वाक्य के भीतर क्रिया का क्रम प्रायः निश्चित है। अंग्रेज़ी में 'क्रिया' कर्त्ता के पश्चात् परंतु कर्म से पूर्व आती है। इसीलिये उसे कर्त्ता-क्रिया-कर्म भाषा (SVO Language) कहते हैं जबकि हिन्दी में कर्त्ता के पश्चात् पहले कर्म आता

है और तब क्रिया आती है। यही कारण है कि हिन्दी को कर्त्ता-कर्म-क्रिया (SOV Language) कहते हैं। जहाँ तक संस्कृत का प्रश्न है, वहाँ भी व्यावहारिक क्रम तो हिन्दी के समान कर्त्ता-कर्म-क्रिया का है परंतु विभक्ति आधारित संश्लिष्ट भाषा होने के कारण वहाँ क्रम परिवर्तन होने पर भी अर्थ संरचना पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। उदाहरण के लिये-

संस्कृत	हिन्दी	अंग्रेज़ी
स: तत्र गच्छति	वह वहाँ जाता है	He goes there
(कर्त्ता-कर्म-क्रिया)	(कर्त्ता-कर्म-क्रिया)	(कर्त्ता-क्रिया-कर्म)

निष्कर्ष

कुल मिलाकर, हिन्दी की क्रिया संरचना काफी वस्तुनिष्ठ एवं वैज्ञानिक है। इसका मूल ढाँचा चाहे संस्कृत क्रिया संरचना से लिया हो किंतु पालि, प्राकृत, अपभ्रंश, अवहट्ट और पुरानी हिन्दी में आधुनिक हिन्दी के निर्माण की निरंतर प्रक्रिया में इसने बहुत सी विशेषताएँ स्वत: अर्जित की हैं। संयुक्त क्रियाएँ तो हिन्दी का अपना विकास हैं ही, क्रियाओं के कृदन्तीय रूपों का विकास भी भाषिक सरलीकरण व भाषिक विकास का एक अत्यंत महत्त्वपूर्ण तत्त्व रहा है। इस रूप में भाषा को जनसाधारण की भाषा बनाने के लिये जैसी सरल किंतु वस्तुनिष्ठ क्रिया सरंचना की आवश्यकता थी, वैसी हिन्दी भाषा ने अर्जित की है।

2.6 हिन्दी की कारक व्यवस्था

व्याकरण में पद संरचना के बाद दूसरा पक्ष कारक व्यवस्था का होता है। सार्थक वाक्यों के निर्माण के लिये कारक व्यवस्था का कठोर अभ्यास आवश्यक होता है।

कारक व्यवस्था का अर्थ

किसी भी भाषा में कारक व्यवस्था का अर्थ उस संरचना से है जिसमें कोई संज्ञा पद या सर्वनाम पद किसी वाक्य में निश्चित संबंध से युक्त स्थान ग्रहण करता है। उदाहरण के लिये, "राम ने रावण को मारा" वाक्य में यद्यपि राम और रावण दोनों संज्ञा पद हैं किंतु निश्चित संबंध होने के कारण 'राम' कर्त्ता पद है जबकि 'रावण' कर्म पद। इसलिये 'राम' के कारकीय संबंध को 'ने' परसर्ग तथा 'रावण' के निश्चित स्थान को 'को' परसर्ग व्यक्त करते हैं। इसी संबंध व्यवस्था को कारक संरचना कहते हैं। यहाँ कारक शब्द का अर्थ यही है कि वाक्य में होने वाली क्रिया के साथ कोई संज्ञा पद या सर्वनाम पद किस रूप में संबंधित है?

संस्कृत कारक व्यवस्था से तुलना

हिन्दी की कारक व्यवस्था सामान्यत: संस्कृत कारक व्यवस्था से व्युत्पन्न हुई है। अत: कई बिंदुओं पर यह संस्कृत के समान है, हालांकि कुछ बिंदुओं पर विकास की प्रक्रिया में परिवर्तित भी हुई है। संस्कृत में आठ कारक थे- कर्त्ता, कर्म, करण, संप्रदान, अपादान, संबंध, अधिकरण व संबोधन। हिन्दी में भी यही आठों कारक मान्य हैं हालांकि इनमें से छ: कारक प्रमुख माने जाते हैं जबकि दो कारक (संबंध कारक व संबोधन कारक) गौण माने जाते हैं। इसके अतिरिक्त संस्कृत की कारक व्यवस्था जहाँ विभक्तियों पर आधारित थी, वहीं हिन्दी की कारक व्यवस्था परसर्गों पर आधारित है। यही कारण है कि जहाँ संस्कृत के कारक पूर्णत: लिंगवचन सापेक्ष थे, वहीं हिन्दी के कारक प्राय: लिंगवचन निरपेक्ष हैं।

सभी कारकों का परिचय

हिन्दी के आठों कारकों तथा उनके परसर्गों (या विभक्तियों) का सामान्य परिचय निम्नलिखित काव्य पंक्तियों से मिल जाता है-

"कर्त्ता 'ने' अरु कर्म 'को' तथा करण 'से' जान;
संप्रदान 'को', 'के लिये', अपादान 'से' मान।
'का', 'के', 'की' संबंध में, 'में', 'पे', 'पर' अधिकरण;
संबोधन 'हे', 'भो', 'अरे'- यही विभक्ति प्रकरण।।"

अब हम प्रत्येक कारक तथा उसके परसर्गों का विशिष्ट अध्ययन कर सकते हैं-

(क) कर्त्ता कारक: कर्त्ता कारक का अर्थ है वह संज्ञा या सर्वनामपद जो किसी क्रिया को करता है। हिन्दी में कर्त्ता कारक की अभिव्यक्ति या तो 'ने' परसर्ग से होती है या बिना किसी संकेत के। इस संबंध में नियम यह है कि भूतकालीन क्रियाओं में कर्त्ता के साथ प्राय: 'ने' का प्रयोग किया जाता है जबकि वर्तमान या भविष्य काल की क्रियाओं में नहीं किया जाता-

	भूतकाल	भविष्य काल	वर्तमान काल
उत्तम पुरुष	मैंने खाना खाया	मैं खाना खाऊंगा	मैं खाना खा रहा हूँ
मध्यम पुरुष	तुमने खाना खाया	तुम खाना खाओगे	तुम खाना खा रहे हो
अन्य पुरुष	उसने खाना खाया	वह खाना खाएगा	वह खाना खा रहा है

ध्यातव्य है कि बिहारी हिन्दी में भूतकालीन क्रिया के प्रसंग में भी 'ने' परसर्ग का प्रयोग नहीं किया जाता। उदाहरण -

उत्तम पुरुष	मैं खाना खाया हूँ।
मध्यम पुरुष	तुम खाना खाये हो।
अन्य पुरुष	वह खाना खाया है।

(ख) कर्म कारक: कर्म कारक उस संज्ञा या सर्वनाम पद को कहते हैं जिसके प्रति कोई क्रिया की जाती है। उदाहरण के लिये 'राम ने रावण को मारा' वाक्य में 'रावण' कर्मपद है। कर्मकारक की अभिव्यक्ति 'को' परसर्ग से की जाती है हालांकि कई वाक्यों में कर्मकारक का बिना किसी परसर्ग के आ जाता है। उदाहरण के लिये ''मैंने सीता को पुस्तक दी'' तथा "मैंने आम खाया'' वाक्यों में प्रथम वाक्य में 'को' परसर्ग है जबकि दूसरे में नहीं। कभी-कभी ऐसा भी होता है कि कर्मकारक के लिये प्रयुक्त होने वाले परसर्ग 'को' का प्रयोग अनुचित तरीके से कर्त्तापद के लिये किया जाता है। उदाहरण के लिये 'मुझको आपको समझाना है" तथा "हमको घर जाना है'' वाक्यों में।

(ग) करण कारक: करण कारक वह संज्ञापद या सर्वनामपद है जो किसी क्रिया में साधन के रूप में प्रयुक्त होता है। जैसे 'राम ने रावण को तीर से मारा' वाक्य में 'तीर' करण पद है व इसका परसर्ग 'से' है।

(घ) संप्रदान कारक: संप्रदान कारक वह संज्ञापद या सर्वनामपद है, जो किसी क्रिया का उद्देश्य होता है। उदाहरण के लिये 'राम ने रावण को सीता के लिये मारा' वाक्य में 'सीता' संप्रदान पद है व 'के लिये' उसका परसर्ग है।

(ङ) अपादान कारक: अपादान कारक वह संज्ञा या सर्वनामपद है, जो किसी क्रिया का आरंभिक आधार होता है किंतु आगे चलकर क्रिया उससे अलग हो जाती है। उदाहरण के लिये 'पेड़ से अंगूठी गिरी' वाक्य में 'अंगूठी का गिरना' क्रिया है और इस क्रिया का आरंभ जिस आधार से हुआ है वह 'पेड़' है। अत: यह 'पेड़' अपादान कारक है और 'से' इसे व्यक्त करने वाला परसर्ग है।

(च) संबंधकारक: संबंध कारक का अर्थ है, वह संज्ञा या सर्वनामपद जिसका क्रिया या क्रिया से संबंधित अन्य कारक के साथ संबंध होता है। इसकी अभिव्यक्ति "का, की, के, रा, री, रे" इत्यादि परसर्गों के माध्यम से की जाती है। व्याकरण की दृष्टि से इसे गौण कारक माना जाता है। यह अकेला कारक है जिसके परसर्ग लिंग व वचन के अनुसार परिवर्तनशील होते हैं। उदाहरण के लिये "सीता का भाई राम के दर्शन करना चाहता है वाक्य में "का" व "के" संबंध कारक के परसर्ग हैं।

(छ) अधिकरण कारक: यह वह संज्ञा या सर्वनामपद है जो किसी क्रिया का भौगोलिक, कालिक या मानसिक आधार होता है। इसकी अभिव्यक्ति 'में', 'पे' तथा 'पर' परसर्गों से की जाती है। उदाहरण - ''मैं आधुनिक काल में हूँ'' (कालिक आधार), मेरा घर मेरी पर है (भौगोलिक आधार), या ''सीता भावनात्मक रूप से राम पर आश्रित है'' (मानसिक आधार) आदि।

(ज) **संबोधन कारक:** संबोधन कारक वह संज्ञा या सर्वनामपद है जिसे संबोधित करके वाक्य की शुरुआत की जाती है। कहीं-कहीं औपचारिक वाक्यों में इसका प्रयोग होता है किंतु सामान्यत: विस्मयादिबोधक वाक्यों में इसका प्रयोग दिखाई पड़ता है। संबोधन की एक विशेषता यह भी है कि यह हमेशा वाक्य के आरंभ में आता है। 'हे' तथा 'अरे' इस कारक के लिये प्रचलित परसर्ग हैं। उदाहरण के लिये - "हे मित्रो! हमें कल युद्ध लड़ना है" वाक्य में 'मित्रो' संबोधन कारक है तथा 'हे' उसका परसर्ग। संबोधन कारक की एक विशेषता यह है कि इसमें परसर्ग का प्रयोग पूर्ववर्ती होता है, उत्तरवर्ती नहीं। यह भी ध्यातव्य है कि संबोधन कारक के बहुवचन में 'अनुनासिक' का प्रयोग व्याकरणिक रूप से गलत होता है। अत: 'हे साथियो' ठीक है जबकि 'हे साथियों' गलत।

हिन्दी कारक व्यवस्था की अन्य विशेषताएँ

हिन्दी की कारक व्यवस्था के संबंध में कुछ अन्य विशेषताएँ इस प्रकार हैं-

(क) वाक्य रचना में प्राय: आठों कारकों का क्रम निश्चित है जो इस प्रकार है-

संबोधन (यदि हो) > कर्त्ता > अधिकरण > संबंध > अपादान > संप्रदान > करण > कर्म

इस क्रम को निम्न उदाहरण में देखा जा सकता है -

अरे मोहन (संबोधन)! तुमने (कर्त्ता) विद्यालय में (अधिकरण) खेल अध्यापक की (संबंध) अलमारी से (अपादान) बच्चों के लिये (संप्रदान) हाथ से (करण) खेलने वाले खिलौने (कर्म) क्यों चुराए (क्रिया)?

(ख) हिन्दी वाक्य रचना में परसर्गों का प्रयोग तीन अलग-अलग पद्धतियों से किया जाता है -

(अ) यदि परसर्ग संज्ञा के साथ प्रयुक्त होता है तो अलग से लिखा जाता है जैसे 'राम ने फूलतोड़ा'।

(आ) यदि परसर्ग सर्वनाम पद के साथ आता है तो प्राय: संयुक्त करके लिखा जाता है। उदाहरण- 'उसने फूल तोड़ा।' कभी-कभी इसका अपवाद भी दिखाई पड़ता है, जैसे- 'सभी ने', 'उसी ने', 'वहीं पर' इत्यादि।

(इ) यदि सर्वनाम के साथ एक से अधिक परसर्ग आ जाएँ तो प्राय: परसर्गों को अलग-अलग लिखा जाता है। पहला परसर्ग सर्वनाम से जोड़कर लिखा जाता है जबकि शेष परसर्ग अलग करके, जैसे *"उसके लिये कोई प्रयास मत करो।"* कभी-कभी ऐसा भी हो सकता है कि पहला परसर्ग भी सर्वनाम से अलग लिखा जाए, जैसे- *"उसी के लिये यह काम करना है।"*

(ई) हिन्दी की कारक संरचना की एक महत्त्वपूर्ण विशेषता यह भी है कि थोड़े बहुत अंतरों के साथ यह हिन्दी की सभी बोलियों में एक जैसी है।

निष्कर्ष

समग्रत: मानक हिन्दी की कारक व्यवस्था संस्कृत कारक व्यवस्था से विकसित तो हुई है किंतु यह जनसाधारण की भाषिक अंतर्क्रियाओं से जुड़ने के कारण सरल रूप में उभरी है। विभक्तियों के स्थान पर परसर्गों पर आधारित होने के कारण यह भाषा को आम आदमी के लिये बेहद सरल बनाती है। अपभ्रंश से ही जो निर्विभक्तिक प्रयोगों की परंपरा शुरु हुई थी, वही कई चरणों को पार करते हुए वर्तमान समय में परसर्गों के साथ उपस्थित है। संक्षेप में, वैज्ञानिकता को बनाये रखते हुए भी भाषाई सरलीकरण की उपलब्धि करने का एक अनूठा प्रयास इसमें झलकता है।

2.7 विकारोत्पादक तत्त्व

व्याकरण के अंतर्गत तीसरा पक्ष यह है कि विकारी पदों में विकार उत्पन्न करने वाले कौन-कौन से तत्त्व या कारक हैं? अलग-अलग भाषाओं में इन तत्त्वों की संख्या व प्रकृति अलग हो सकती है। क्रिया संरचना के अंतर्गत इस बात पर चर्चा की गई है कि हिन्दी में छ: विकार उत्पादक तत्त्व हैं- लिंग, वचन, काल, पुरुष, वाच्य तथा भाव। इनमें से अंतिम चार के बारे में उतना जानना पर्याप्त है जितना क्रिया संरचना के अंतर्गत दिया गया है। सबसे प्रमुख विकारोत्पादक तत्त्व लिंग तथा वचन हैं जिन पर विस्तृत चर्चा करने की आवश्यकता है।

2.8 हिन्दी की लिंग व्यवस्था

परिचय व तुलनात्मक स्थिति

हिन्दी व्याकरण में मूलत: दो ही लिंग माने गये हैं- पुल्लिंग व स्त्रीलिंग, जबकि हिन्दी की मूल स्रोत भाषा संस्कृत में इन दोनों के अतिरिक्त तृतीय लिंग के रूप में नपुंसक लिंग को भी स्वीकारा गया है। इसी प्रकार अंग्रेज़ी भाषा में 'नपुंसक लिंग के साथ-साथ चौथे लिंग के रूप में 'उभय लिंग' को भी स्वीकार किया गया है। संस्कृत से सरलीकरण की प्रक्रिया में नागर अपभ्रंश वह अंतिम अवस्था थी जहाँ नपुंसक लिंग के कुछ प्रयोग विद्यमान थे। उसके बाद से मराठी और गुजराती भाषाओं में तो नपुंसक लिंग बचा रहा किंतु हिन्दी में दो ही लिंग शेष बचे। नपुंसक लिंग के अधिकांश शब्द पुल्लिंग शब्दों में शामिल हो गए तथा कुछ शब्द, विशेषत: आकारान्त (गंगा) व ईकारांत (धरती) स्त्रीलिंग में शामिल हो गए। कुछ भाषा वैज्ञानिकों का मानना है कि हिन्दी में भी कुछ शब्द उभयलिंगी हैं जैसे राष्ट्रपति, प्रधानमंत्री, डॉक्टर इत्यादि।

लिंग पहचान के नियम

हिन्दी की लिंग संरचना निश्चित तार्किक नियमों पर आधारित न होकर लोक प्रचलित सरलीकरण से विकसित हुई है। यही कारण है कि इस संबंध में निश्चित नियम नहीं बताये जा सकते। तब भी प्राय: नौ प्रत्ययों पर आधारित शब्द स्त्रीलिंग होते हैं जबकि शेष पुल्लिंग। स्त्रीलिंग शब्दों के प्रत्यय निम्नलिखित हैं-

प्रत्यय 'आ' - गंगा, यमुना
प्रत्यय 'नी' - शेरनी, मोरनी
प्रत्यय 'ई' - लड़की, दादी
प्रत्यय 'आनी' - जेठानी, देवरानी
प्रत्यय 'इ' - रीति, नीति, पद्धति
प्रत्यय 'इन' - ग्वालिन, डाकिन, बाघिन
प्रत्यय 'इका' - बालिका, तूलिका, अट्टालिका
प्रत्यय 'आइन' - ठकुराइन, पंडिताइन
प्रत्यय 'इया' - बिटिया, चुहिया

पुल्लिंग शब्दों के लिये कोई व्यवस्थित नियम तो नहीं है किंतु कुछ व्यावहारिक नियम ज़रूर दिखते हैं। आम तौर पर पुल्लिंग व्यक्तिवाचक संज्ञाएँ अकारान्त होती हैं जैसे कमल, सुरेश इत्यादि जबकि पुल्लिंग जातिवाचक संज्ञाएँ प्राय: आकारान्त होती हैं जैसे लड़का, बेटा इत्यादि।

लिंग परिवर्तन के नियम

पुल्लिंग से स्त्रीलिंग के परिवर्तन की प्रक्रिया भी मोटे तौर पर निश्चित है जिसके प्रमुख सूत्र इस प्रकार हैं-

(क) आ > ई - लड़का > लड़की
(ख) आ > इया - चूहा > चुहिया
(ग) अ > अनी/इन - शेर/बाघ > शेरनी/बाघिन
(घ) अ > आइन - ठाकुर > ठकुराइन
(ङ) आ > आइन - पंडा > पंडाइन
(च) ई > आइन/इन - हलवाई > हलवाइन, माली > मालिन
(छ) आ/ई > आनी - जेठ > जेठानी, चौधरी > चौधरानी

लिंग संरचना की अन्य विशेषताएँ

हिन्दी की लिंग संरचना की कुछ अन्य विशेषताएँ इस प्रकार हैं-

(क) हिन्दी में क्रियाएँ लिंग के अनुसार परिवर्तनशील हैं जबकि संस्कृत व अंग्रेज़ी में ऐसा नहीं होता।

उदाहरण- वह जाता है/वह जाती है (हिन्दी)
स: गच्छति/सा गच्छति (संस्कृत)
He goes / She goes (अंग्रेज़ी)

(ख) विशेषणों का कोई स्वयंसिद्ध लिंग नहीं होता। केवल आकारान्त विशेषण विशेष्य के अनुसार परिवर्तित होते हैं शेष नहीं। उदाहरण-

काला आदमी > काली औरत शाही पुरूष > शाही महिला नेक आदमी > नेक औरत

हिन्दी की लिंग संरचना से जुड़ी समस्याएँ

हिन्दी व्याकरण में लिंग की समस्या अत्यंत जटिल है क्योंकि हिन्दी भाषा सिर्फ दो लिंगों के आधार पर कार्य करती है। न तो इसके पास संस्कृत की तरह नपुंसक लिंग है और न ही अंग्रेज़ी की तरह उभय लिंग। अत: जो संज्ञाएँ पुल्लिंग या स्त्रीलिंग से निरपेक्ष होती हैं, उनका लिंग निर्धारण कठिन हो जाता है। यूँ तो लोक प्रचलन के आधार पर कुछ नियम निश्चित हो गए हैं, पर सच यही है कि आज भी हिन्दी की लिंग व्यवस्था पूर्णत: वस्तुनिष्ठ नहीं हो सकी है।

हिन्दी में लिंग संबंधी प्रमुख समस्याएँ निम्नलिखित हैं-

(क) लिंग निर्णय की समस्या मूलत: प्राकृतिक तथा लिंग निरपेक्ष पदार्थों के संबंध में आती है, जैसे- दही, पानी, सड़क इत्यादि शब्दों में। उदाहरण के लिये, बस को स्त्रीलिंग माना जाता है जबकि ट्रक को पुल्लिंग, टमाटर को पुल्लिंग माना जाता है जबकि भिंडी और गोभी को स्त्रीलिंग; मकान को पुल्लिंग जबकि कोठी को स्त्रीलिंग; नदी को स्त्रीलिंग जबकि तालाब को पुल्लिंग।

यह समस्या संस्कृत व अंग्रेज़ी में नहीं है क्योंकि संस्कृत में नपुंसक लिंग तथा अंग्रेज़ी में नपुंसक लिंग व उभयलिंग की व्यवस्था है।

जहाँ तक हिन्दी में इस संबंध में किये गए प्रयासों का सवाल है, प्राय: सभी ग्रहों, तारों, पहाड़ों, सागरों, रत्नों/धातुओं, द्रव पदार्थों, वर्षों, महीनों, वृक्षों को पुल्लिंग मान लिया गया है जबकि भाषाओं, तिथियों व नदियों को स्त्रीलिंग।

(ख) दूसरी समस्या पदनामों के संबंध में आती है। अधिकांश पदनाम अपनी मूल प्रकृति में ही पुल्लिंग हैं, जैसे- राष्ट्रपति, प्रधानमंत्री, सेनापति इत्यादि। इन्हें स्त्रीलिंग में परिवर्तित करना कठिन तथा हास्यास्पद हो सकता है क्योंकि राष्ट्रपति का स्त्रीलिंग राष्ट्रपत्नी करना समाज को अजीब लग सकता है। इसका समाधान यही है कि पदनामों को उभयलिंगी शब्द मान लिया जाए।

(ग) तीसरी समस्या देशज और विदेशज शब्दों को लेकर आती है। जब ये शब्द अपने स्थान से बाहर निकलते हैं तो दूसरे स्थान पर कुछ लोग उनकी लिंग संरचना को भी स्वीकार कर लेते हैं जबकि कुछ लोग नहीं करते। इस अनिश्चितता से भी लिंग संबंधी जटिलता बढ़ जाती है।

(घ) चौथी समस्या व्याकरण से संबंधित है। जब पुल्लिंग एकवचन से बहुवचन में रुपांतरण होता है तो मुख्य क्रिया व सहायक क्रिया दोनों का वचन बदल जाता है किंतु स्त्रीलिंग में ऐसा परिवर्तन होने पर सिर्फ सहायक क्रिया बदलती है, मुख्य क्रिया नहीं, जैसे-

लड़का जाता है > लड़के जाते हैं लड़की जाती है > लड़कियाँ जाती हैं

रोचक बात है कि भारतेंदु युग की भाषा में स्त्रीलिंग में भी मुख्य क्रियाएँ बदल जाती थीं और दक्खिनी हिन्दी में आज भी ऐसे प्रयोग मिल जाते हैं, जैसे-

लड़की जाती है > लड़कियाँ जातियाँ हैं

यह सही है कि हिन्दी की लिंग संरचना काफी जटिल है, किंतु लंबे प्रचलन के साथ इसकी अधिकांश समस्याएँ समाप्त हो चुकी हैं। मानकीकरण की प्रक्रिया जैसे-जैसे सघन होती जाएगी, यह समस्या और कम होती जाएगी।

2.9 हिन्दी की वचन संरचना

परिचय

हिन्दी में दो ही वचन स्वीकार किये गए हैं - एकवचन तथा बहुवचन, जबकि हिन्दी की स्रोत भाषा संस्कृत में तीसरे वचन के रूप में द्विवचन को भी स्वीकार किया गया है। संस्कृत से सरलीकरण की प्रक्रिया जब चली तो पालि > प्राकृत

> अपभ्रंश > अवहट्ट > आधुनिक हिन्दी की विकास प्रक्रिया के दौरान धीरे-धीरे द्विवचन लुप्त हो गया। स्वाभाविक रूप से द्विवचन बहुवचन में शामिल हो गया।

पहचान के नियम

हिन्दी की वचन संरचना किसी तार्किक चिंतन का परिणाम न होकर भाषा के व्यावहारिक लोक प्रयोगों से उभरी है। अत: इस संबंध में निश्चित नियम नहीं हैं। तब भी, कुछ व्यावहारिक नियम इस प्रकार हैं-

(क) पुल्लिंग शब्दों में वचन संरचना

(अ) आकारान्त पुल्लिंग एकवचन शब्द बहुवचन में एकारान्त हो जाते हैं। उदाहरण के लिये-

लड़का > लड़के बेटा > बेटे

(आ) शेष सभी पुल्लिंग शब्द बहुवचन में भी अपरिवर्तित रहते हैं। केवल क्रिया व सर्वनाम के परिवर्तन से ही वचन परिवर्तन का ज्ञान होता है। उदाहरण के लिये-

यह उसका घर है > ये उसके घर हैं।

(ख) स्त्रीलिंग शब्दों में वचन संरचना

(अ) ईकारान्त एकवचन शब्द बहुवचन में 'इयाँ' हो जाते हैं

उदाहरण: मिठाई > मिठाइयाँ

नदी > नदियाँ

(आ) इकरान्त स्त्रीलिंग शब्दों में बहुवचन में 'याँ' जुड़ जाता है-

उदाहरण: नीति > नीतियाँ रीति > रीतियाँ

(इ) आकारान्त शब्दों में बहुवचन में 'एँ' जुड़ता है-

उदाहरण: अबला > अबलाएँ

कामना > कामनाएँ

(ई) अकारान्त एकवचन शब्दों में बहुवचन में 'अ' का 'एँ' हो जाता है-

उदाहरण: बहन > बहनें आँख > आँखें

ध्यातव्य है कि हिन्दी में संस्कृत की तरह वचनानुसार क्रिया परिवर्तन होता है जबकि अंग्रेज़ी में ऐसा मात्र सहायक क्रियाओं के साथ वर्तमान काल व भूतकाल में होता है। उदाहरण के लिये-

संस्कृत: स: गच्छति > ते गच्छन्ति

हिन्दी: वह जाता है > वे जाते हैं।

English: He is going > They are going

I was going > We were going

I shall go > We shall go

वचन व्यवस्था की कुछ अन्य विशेषताएँ

(क) कुछ शब्द ऐसे हैं जो बहुवचन के रूप में ही प्रयुक्त होते हैं, जैसे प्राण, होश, आँसू, दर्शन इत्यादि।

उदाहरण: "शेर देखकर मेरे प्राण निकल गए।"

"भला हुआ, जो तुम्हारे दर्शन हुए।"

(ख) कुछ शब्द हमेशा एकवचन में प्रयुक्त होते हैं -जैसे - जनता, आग, वर्षा इत्यादि।

उदाहरण: "आग ने घरों को जला दिया।"

"वर्षा ने किसानों को [illegible] दिया।"

(ग) आदरसूचक शब्द यदि एकवचन भी हों तो उनका प्रयोग बहुवचन के नियमों के अनुसार होता है। यह परंपरा न तो संस्कृत में थी, न अंग्रेज़ी में है।

(घ) पूर्वी हिन्दी व बिहारी हिन्दी में उत्तम पुरुष एकवचन के लिये 'मैं' के स्थान पर 'हम' शब्द के प्रयोग का प्रचलन है।

(ङ) 'तुम' शब्द अब बहुवचन के स्थान पर एकवचन में प्रयुक्त होता है। बहुवचन में 'तुम लोग' का प्रयोग होता है।

(च) विशेषणों में जो आकारान्त हैं, वे वचन के अनुसार परिवर्तित होते हैं जबकि शेष नहीं होते। उदाहरण -

काला आदमी > काले आदमी गर्म पकौड़ा > गर्म पकौड़े

(छ) बहुवचन बनाने के लिये एक अन्य पद्धति भी है जिसमें वर्ग, लोग, जन आदि शब्दों का प्रयोग प्रत्यय रूप में होता है। उदाहरण -

अधिकारी > अधिकारी वर्ग आप > आप लोग

श्रोता > श्रोता गण/श्रोतावृंद सभ्य > सभ्यजन

2.10 हिन्दी की वाक्य संरचना

व्याकरण का चौथा तथा अंतिम पक्ष होता है- वाक्य संरचना। इसके अंतर्गत वाक्य निर्माण के नियम तथा वाक्यों के भेद आदि पढ़े जाते हैं।

वाक्य का अर्थ

वाक्य सार्थक शब्दों या पदों का वह व्यवस्थित व क्रमबद्ध समूह होता है जो किसी पूर्ण अर्थ को व्यक्त करने में सक्षम हो। व्याकरणिक दृष्टि से अर्थबोधन की मूल इकाई वाक्य को ही माना गया है।

सार्थक वाक्य की शर्तें

भारतीय भाषाविज्ञान में सार्थक वाक्य के निर्माण की तीन शर्तें मानी जाती हैं - आकांक्षा, योग्यता तथा सन्निधि।

(क) **'आकांक्षा'** का अर्थ है कि वाक्य में शब्द एक दूसरे के बिना अर्थबोधन नहीं कर सकते। उदाहरण के लिये, यदि सिर्फ 'लाओ' कहा जाए तो बात पूरी नहीं होती किंतु यदि 'लाओ' से पहले 'किताब' कहा जाए तो अर्थबोधन होता है। यहाँ 'किताब' तथा 'लाओ' पदों के मध्य परस्पर आकांक्षा विद्यमान है।

(ख) **'योग्यता'** का अर्थ है कि वाक्य से प्रकट होने वाला अभिप्राय व्यावहारिक दृष्टि से बाधित नहीं होना चाहिये। उदाहरण के लिये, यदि कहा जाए कि 'पानी से लकड़ी सुखाओ' तो सार्थक शब्दों का व्यवस्थित समूह होते हुए भी यह वाक्य नहीं बनता क्योंकि इसमें योग्यता नहीं है।

(ग) **'सन्निधि'** का अर्थ है कि वाक्य के विभिन्न शब्द कालिक या दैशिक दृष्टि से पर्याप्त निकट होने चाहिये। यदि एक वाक्य के चार शब्द एक-दो दिनों के अंतराल पर बोले जाएँ (कालिक अंतराल) या अलग-अलग पृष्ठों पर लिखे जाएँ (दैशिक अंतराल) तो अर्थबोधन की क्षमता पैदा नहीं होती।

अत: कोई वाक्य तभी सार्थक बनता है जब आकांक्षा, योग्यता तथा सन्निधि की शर्तों को पूरा करता हो।

संरचना की दृष्टि से वाक्यों का वर्गीकरण

हिन्दी व्याकरण में वाक्यों को संरचना की दृष्टि से तीन प्रकार का माना गया है- सरल वाक्य, संयुक्त वाक्य तथा मिश्रित वाक्य।

(क) **सरल वाक्य:** ये वे वाक्य हैं जिनमें एक उद्देश्य तथा एक विधेय होता है, जैसे- 'राम लंबा है'। ऐसे वाक्यों में सामान्यत: उद्देश्य के रूप में कर्त्ता तथा विधेय के रूप में गुण या क्रिया विद्यमान होते हैं।

(ख) **संयुक्त वाक्य:** जब एक से अधिक वाक्य आपस में जुड़ते हैं तो उनके बीच दो ही प्रकार के संबंध संभव हैं- समानाधिकरण तथा व्याधिकरण संबंध। समानाधिकरण संबंध पर आधारित वाक्य-समुच्चय को संयुक्त वाक्य कहते हैं।

इसमें सामान्यत: दो स्वतंत्र वाक्यों को योजक शब्द से जोड़ा जाता है। उदाहरण के लिये- "पिछले कई दिनों से निरंतर बरसात हो रही है जिसके कारण सड़कों की हालत जर्जर हो गई है।"

(ग) मिश्र वाक्य: एक से अधिक उपवाक्य यदि व्याधिकरण संबंध में व्यवस्थित किये जाएँ तो मिश्र वाक्य का निर्माण होता है। इसका अर्थ हुआ कि इन उपवाक्यों में से एक उपवाक्य मूल या आधार उपवाक्य तथा शेष उपवाक्य उस पर निर्भर होने के कारण आश्रित उपवाक्य कहलाते हैं। उदाहरण के लिये, "राम के पास आकर श्याम ने बताया कि कल अवकाश का दिन है।"

अन्य दृष्टि से वाक्यों का वर्गीकरण

एक और दृष्टि से हिन्दी के वाक्यों को दो वर्गों में विभाजित किया जाता है - स्वतंत्र वाक्य तथा लघु वाक्य।

(क) स्वतंत्र वाक्य: वे वाक्य जो अन्य वाक्यों के बिना भी पूरा अर्थ व्यक्त करते हैं, स्वतंत्र वाक्य कहलाते हैं। उदाहरण के लिये, सरल वाक्य, संयुक्त वाक्य तथा मिश्र वाक्य तीनों ही स्वतंत्र वाक्य हैं।

(ख) लघु वाक्य: ऐसे शब्द या शब्द समूह हैं जो व्याकरणिक संरचना की दृष्टि से तो वाक्य नहीं हैं किंतु अर्थ बोधन की दृष्टि से वाक्य की अपेक्षाएँ पूरी करते हैं। उदाहरण के लिये निम्न संवाद द्रष्टव्य है-

"राम : तुम कहाँ के रहने वाले हो?

कृष्ण : मथुरा।"

यहाँ 'मथुरा' केवल एक शब्द नहीं है अपितु अर्थबोधन की दृष्टि से वाक्य है। इसका पूरा अर्थ है "मैं मथुरा का रहने वाला हूँ"। ध्यातव्य है कि यह अर्थबोधन इसलिये कर पा रहा है कि इसके ठीक पहले एक स्वतंत्र वाक्य इसे आधार दे रहा है। लघु वाक्यों को दूसरी दृष्टि से परतंत्र वाक्य भी कहते हैं।

अभिव्यक्ति शैली की दृष्टि से वाक्यों का वर्गीकरण

अभिव्यक्ति शैली की दृष्टि से हिन्दी में आठ प्रकार के वाक्य माने गये हैं। इनका वर्गीकरण उदाहरण सहित इस प्रकार है-

(क) विधेयात्मक या निश्चयात्मक वाक्य: वे वाक्य जो कोई सकारात्मक सूचना देते हों। उदाहरण के लिये- "राम दयालु हैं।

(ख) निषेधात्मक वाक्य: वे वाक्य जो कोई नकारात्मक सूचना देते हैं, जैसे- "हवा में नमी नहीं है।"

(ग) प्रश्नवाचक वाक्य: वे वाक्य जो आकुलता व्यक्त करते हों, जैसे- "क्या आज बरसात होगी?"

(घ) संदेहवाचक वाक्य: वे वाक्य जिनमें संदेह दिखाई दे, जैसे- "शायद आज बरसात होगी?"

(ङ) इच्छावाचक वाक्य: वे वाक्य जिनमें कथनकर्त्ता अपनी हृदयगत इच्छाओं को व्यक्त करता है, जैसे- *"ईश्वर तुम्हें सद्बुद्धि प्रदान करे।"*

(च) विधिवाचक/आदेशवाचक वाक्य: वे वाक्य जिनमें किसी को आदेश दिया जाता है, उदाहरणार्थ- *"खड़ेरहो।"*

(छ) विस्मयादिबोधक वाक्य: वे वाक्य जिनमें आश्चर्य या विस्मय व्यक्त किया जाए, उदाहरण के लिये- "अरे वाह! क्या बात है!"

(ज) संकेतवाचक/शर्तवाचक: वे वाक्य जिनमें कोई शर्त प्रस्तुत की जाए, जैसे- *"यदि तुम पढ़ोगे तो मिठाई मिलेगी।"*

वाक्य के पदक्रम से संबंधित नियम

किसी वाक्य में संज्ञाएँ तथा क्रियाएँ किस क्रम में आती हैं, यह भी व्याकरण द्वारा निश्चित होता है। वाक्य के भीतर विद्यमान इकाइयों के व्याकरण सम्मत क्रम को पदक्रम कहते हैं। हिन्दी की वाक्य संरचना में पदक्रम से संबंधित नियम इस प्रकार हैं-

(क) हिन्दी में **कर्त्ता-कर्म-क्रिया (SOV)** का क्रम स्वीकार किया जाता है जो अंग्रेज़ी के कर्त्ता-क्रिया-कर्म (SVO) क्रम से अलग है। संस्कृत में व्यवहारतः कर्त्ता-कर्म-क्रिया (SOV) का ही नियम है पर संश्लिष्ट भाषा होने के कारण तर्कतः उसमें प्रत्येक क्रम समानार्थी होता है। उदाहरण के लिये-

हिन्दी - मैं पुस्तक पढ़ता हूँ।
कर्त्ता कर्म क्रिया

संस्कृत - अहं पुस्तकं पठामि।
कर्त्ता कर्म क्रिया

अंग्रेज़ी - I read the book
कर्त्ता क्रिया कर्म

(ख) कर्त्ता व कर्म के बीच में सामान्यतः अधिकरण, संबंध, अपादान, संप्रदान और करण कारक क्रमशः आते हैं। यदि संबोधन भी हो तो वह वाक्य के आरंभ में आता है। उदाहरण के लिये-

"अरे भाई (संबोधन कारक)! तुमने (कर्त्ता) विद्यालय में (अधिकरण) अध्यापक कक्ष की (संबंध कारक) अलमारी से (अपादान) बच्चों के लिये (संप्रदान) हाथ से (करण) खेलने वाले खिलौने (कर्म) क्यों निकाले (क्रिया)?"

(ग) उद्देश्य या कर्त्ता के विस्तार को उद्देश्य से पूर्व तथा विधेय या क्रिया के विस्तार को विधेय से पूर्व रखा जाता है। उदाहरण के लिये -

"बुद्धिमान	व्यक्ति	प्रत्येक कार्य सावधानीपूर्वक	करतेहैं।
उद्देश्य का विस्तार	उद्देश्य	विधेय का विस्तार	विधेय

(घ) विशेषण सामान्यतः विशेष्य से पूर्व आता है, जैसे - "सुंदर व्यक्ति आकर्षण का केंद्र होता है" वाक्य में।

(ङ) क्रिया विशेषण को क्रिया से पूर्व रखा जाता है। उदाहरण -

राधा	*बहुत तेज़*	*दौड़ती है।*
	क्रियाविशेषण	क्रिया

(च) 'न' तथा 'नहीं' का प्रयोग निषेधमूलक वाक्य में क्रिया से पूर्व होता है जबकि आग्रहमूलक वाक्य में क्रिया के बाद। उदाहरण के लिये:

"तुम वहाँ नहीं जाना" *(निषेधमूलक वाक्य)*

"तुम वहाँ चले जाना न" *(आग्रहमूलक वाक्य)*

वाक्य योजना के अन्य नियम

हिन्दी वाक्य संरचना से संबंधित कुछ अन्य नियम इस प्रकार हैं -

(क) परसर्ग संज्ञा शब्दों से अलग तथा सर्वनाम शब्दों से मिलाकर लिखे जाते हैं। उदाहरण - राम ने उसको देखा।

(ख) यदि एक वाक्य में लिंग तथा वचन वैविध्य से युक्त एकाधिक संज्ञाएँ विद्यमान हों तो क्रिया का निर्धारण मात्र अंतिम संज्ञा के आधार पर होता है। उदाहरण- "पंडित जी ने कई रुपए, कई मिठाइयाँ तथा काफी सारा भोजन प्राप्त किया।"

(ग) यदि कर्त्ता का लिंग अज्ञात हो तो उसे पुल्लिंग माना जाता है। उदाहरण के लिये- 'शायद कोई आया है?'

(घ) आदरणीय व्यक्तियों के संबंध में एकवचन में भी बहुवचन के नियम लागू होते हैं। उदाहरण के लिये - "गांधीजी आ रहे थे जबकि मैं जा रहा था।"

निष्कर्ष

स्पष्ट है कि हिन्दी की वाक्य संरचना न केवल सरल है, बल्कि वैज्ञानिक व व्यवस्थित भी है।

अभ्यास हेतु प्रश्न

1. मानक हिन्दी के सर्वनामों का सोदाहरण विवेचन कीजिये। U.P.S.C. (Mains) 2016
2. मानक हिन्दी की कारक-व्यवस्था का सोदाहरण विवेचना कीजिये। U.P.S.C. (Mains) 2015
3. मानक हिन्दी के स्वरूप पर प्रकाश डालिए। U.P.S.C. (Mains) 2013
4. मानक हिन्दी की व्याकरणिक विशेषताओं का परिचय दीजिए। U.P.S.C. (Mains) 2013
5. मानक हिन्दी का विवेचन निम्नलिखित दृष्टियों से कीजिये: U.P.S.C. (Mains) 2012
   (क) ध्वनि-संरचना (ख) रूप-संरचना (ग) वाक्य-संरचना
6. परिनिष्ठित हिन्दी के व्याकरणिक स्वरूप की विवेचना कीजिये। U.P.S.C. (Mains) 2011
7. हिन्दी की विभिन्न व्याकरणिक कोटियों का उल्लेख करते हुए पद-रचना में उनकी भूमिका स्पष्ट कीजिये। U.P.S.C. (Mains) 2009
8. हिन्दी की लिंग-व्यवस्था (टिप्पणी) U.P.S.C. (Mains) 2009
9. मानक हिन्दी की व्याकरणिक संरचना पर संक्षेप में प्रकाश डालिए। U.P.S.C. (Mains) 2008
10. वाक्य रचना के विभिन्न तत्त्व (टिप्पणी) U.P.S.C. (Mains) 2004
11. हिन्दी भाषा में लिंग समस्या (टिप्पणी) U.P.S.C. (Mains) 2003
12. आधुनिक हिन्दी में लिंग और वचन व्यवस्था (टिप्पणी) U.P.S.C. (Mains) 2002
13. आधुनिक हिन्दी की वाक्य संरचना को सोदाहरण निरूपित कीजिये। U.P.S.C. (Mains) 2001
14. आधुनिक हिन्दी में लिंग व्यवस्था (टिप्पणी) U.P.S.C. (Mains) 2001

अध्याय
3

हिन्दी भाषा की विकास-यात्रा

हिन्दी एक आधुनिक आर्यभाषा है जिसका विकास आर्यों की मूल भाषा संस्कृत से हुआ है। भारतीय तथा बाहरी क्षेत्रों में आर्य भाषाओं का विकास अलग-अलग पद्धति पर हुआ है।

3.1 आर्यभाषाओं का ऐतिहासिक विकास

भारतीय आर्यभाषा के विकास को प्राय: तीन चरणों में विभक्त किया जाता है-

1. प्राचीन आर्यभाषाएँ

इनका समय लगभग 2000 ई. पू. से 500 ई. पू. तक माना गया है। इसके अन्तर्गत दो स्थितियाँ शामिल हैं- **वैदिक संस्कृत** (2000 से 1000 ई. पू.) तथा **लौकिक संस्कृत** (1000 से 500 ई. पू.)।

2. मध्यकालीन आर्यभाषाएँ

इनका काल 500 ई. पू. से 1000 ई. तक स्वीकार किया गया है। इस भाग के अन्तर्गत चार चरण मिलते हैं- **पालि** (500 ई. पू. से ईस्वी सन् के आरंभ तक), **प्राकृत** (ईस्वी सन् के आरंभ से 500 ई. तक) और **अपभ्रंश** तथा **अवहट्ट** (500 ई. से 1100 ई. तक)।

3. आधुनिक आर्यभाषाएँ

इनका समय लगभग 1100 ईस्वी से अभी तक माना जाता है। इनमें हिन्दी, बांग्ला, उड़िया, असमी, मराठी, गुजराती, पंजाबी तथा सिन्धी जैसी भाषाएँ शामिल हैं।

3.2 हिन्दी भाषा का ऐतिहासिक विकास

उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट है कि हिन्दी एक आधुनिक आर्यभाषा है जिसका विकास मूलत: प्राचीन आर्यभाषा संस्कृत से हुआ है। संस्कृत और हिन्दी के संपर्क सूत्र को स्थापित करने वाली भाषिक स्थितियों को हम मध्यकालीन आर्यभाषाएँ कहते हैं। अत: हिन्दी के विकास का अध्ययन मध्यकालीन आर्यभाषाओं से आरंभ करना उचित प्रतीत होता है।

हिन्दी का उद्भव कब हुआ, इस पर भाषाविज्ञानियों में गंभीर मतभेद है। कुछ का दावा है कि अपभ्रंश के विकास से ही हिन्दी का विकास मान लेना चाहिए तो दूसरे छोर पर कुछ अन्य का मत है कि पुरानी हिन्दी के विकास से पहले की स्थितियों को अपभ्रंश और अवहट्ट के रूप में स्वतंत्र माना जाना चाहिए और हिन्दी की शुरुआत पुरानी या प्रारंभिक हिन्दी से मानी जानी चाहिए।

वर्तमान भाषा विज्ञान में सामान्यत: पुरानी हिन्दी से ही हिन्दी की शुरुआत माने जाने का प्रचलन है। इसका अर्थ है कि हिन्दी का आरंभ लगभग 1100 ईस्वी में हो गया था। किंतु, यह भी ध्यान रखना ज़रूरी है कि तब से आज तक की विकास यात्रा कई अलग-अलग प्रवृत्तियों पर आधारित है। इस कारण हिन्दी के विकास को भी तीन चरणों में बाँटा जाता है-

1. प्राचीन हिन्दी (1100 ई. से 1350 ई. लगभग)
2. मध्यकालीन हिन्दी (1350 ई. से 1850 ई. लगभग)
3. आधुनिक हिन्दी (1850 ई. से अभी तक)

1. प्राचीन हिन्दी

प्राचीन हिन्दी, पुरानी हिन्दी तथा आधुनिक हिन्दी शब्द कुछ विवादों के बावजूद प्राय: समानार्थी शब्दों के रूप में स्वीकार कर लिये गये हैं। इस काल में हिन्दी का कोई निश्चित स्वरूप तो नहीं मिलता लेकिन हिन्दी की बोलियों के स्वतन्त्र विकास की पूर्वपीठिका ज़रूर दिखायी देती है। इस काल में हिन्दी भाषा अपभ्रंश के केंचुल को धीरे-धीरे छोड़कर हिन्दी की बोलियों के रूप में विकसित हो रही थी।

2. मध्यकालीन हिन्दी

मध्यकालीन हिन्दी उस समय की भाषा है जब पहली बार हिन्दी की बोलियाँ स्वतन्त्र रूप से साहित्य के क्षेत्र में प्रयुक्त होने लगी थीं। इस काल में व्यावहारिक स्तर पर यद्यपि हिन्दी की सभी वर्तमान बोलियाँ विकसित हो चुकी थीं किन्तु साहित्यिक स्तर पर ब्रजभाषा और अवधी ने विकास की चरम स्थितियों को उपलब्ध किया। इस युग में खड़ी बोली साहित्य के केन्द्र में तो नहीं आ सकी किन्तु वह साहित्यिक कृतियों में किसी न किसी रूप में प्राय: व्यक्त होती रही।

3. आधुनिक हिन्दी

हिन्दी का आधुनिक काल हिन्दी भाषा का ही नहीं, हिन्दी साहित्य का भी आधुनिक काल है। इस काल में हिन्दी के स्वरूप में पहले के सभी कालों की तुलना में अधिक तीव्रता के साथ परिवर्तन होने शुरू हुए। सबसे पहले 19वीं शताब्दी में खड़ी बोली साहित्यिक भाषा के रूप में स्थापित हुई, उसके बाद हिन्दी राष्ट्रीय स्वाधीनता संग्राम की सम्पर्क भाषा बनकर राष्ट्रभाषा के पद पर आसीन हुई। आज़ादी मिलने के बाद उसे कुछ सीमाओं के साथ राजभाषा का पद मिला, फिर भारत सरकार के सहयोग से हिन्दी भाषा और देवनागरी लिपि को मानकीकृत बनाने के प्रयास किये गये तथा पिछले कुछ वर्षों में वैज्ञानिक तथा तकनीकी विकास जैसे कम्प्यूटरीकरण आदि के सन्दर्भ में हिन्दी को विकसित करने के प्रयास किये गये हैं।

अध्याय
4

पालि- मध्यकालीन आर्यभाषा की पहली अवस्था

मध्यकालीन आर्य भाषाओं का विकास जिस भाषा से आरंभ हुआ है, उसी का नाम 'पालि' है। सामान्य रूप से इसका कालखंड 500 ईस्वी पूर्व से ईस्वी सन् की शुरूआत तक माना गया है।

पालि के अध्ययन के स्रोत

पालि भाषा के अध्ययन के मुख्य आधार हैं त्रिपिटक (बुद्ध वचन), अशोक के कुछ अभिलेख तथा तत्कालीन अन्य साहित्य। बौद्ध धर्म का प्रचार भारत से बाहर तक होने के कारण पालि भाषा का भी अत्यधिक क्षेत्र विस्तार हुआ।

4.1 नामकरण की समस्या

पालि भाषा का नाम पालि किस प्रकार पड़ा, इस विषय पर विद्वानों में मतभेद है। मतभेद का आधार यह है कि विभिन्न विद्वानों ने पालि शब्द की उत्पत्ति अलग-अलग शब्दों से मानी है। इनमें से कुछ व्याख्याएँ इस प्रकार हैं :

(क) पालि की व्युत्पत्ति **'पल्लि' अर्थात ग्राम** से स्वीकार की जा सकती है। इस अर्थ में पालि से तात्पर्य होगा 'ग्रामीण भाषा'।

(ख) पालि शब्द की उत्पत्ति **'पाटलि' (पाटलिपुत्र)** से भी मानी गई है, इस संदर्भ में पालि का अर्थ होगा मगध की भाषा।

(ग) पालि शब्द का तीसरा संबंध **'पंक्ति'** से माना गया है। बुद्ध वचनों में जो पंक्तियाँ प्रयुक्त की गई हैं, उन्हें भी पालि कहा जाता है। सारा बुद्ध साहित्य इसी भाषा में होने के कारण इस मत को काफी अधिक महत्त्व दिया जाता है।

(घ) कुछ भाषा वैज्ञानिक 'पालि' शब्द को **प्राकृत शब्द का तद्भव रूप** मानते हैं। उनके अनुसार 'प्राकृत' से पहले 'पाइल' तथा अंत में 'पालि' शब्द का विकास हुआ। इस दृष्टि से प्राकृत का ही विशेष रूप पालि है।

(ङ) कुछ विद्वानों ने यह भी माना है कि पालि का अर्थ **पालने वाली** है। यह मत मानने वाले विद्वान पालि को बौद्ध साहित्य को पालने वाली या रक्षा करने वाली भाषा मानते हैं।

उपरोक्त नामकरणों में से कौन सा सही है, यह प्रामाणिक रूप से बता पाना संभव नहीं है। इतना अवश्य है कि यह मगध की भाषा नहीं है क्योंकि मागधी के लक्षणों से यह मेल नहीं खाती। सामान्यत: विद्वानों की मान्यता यही है कि यह भाषा मथुरा और उज्जैन के बीच के क्षेत्र में विकसित हुई थी, किंतु धीरे-धीरे इतनी व्यापक हो गई कि बुद्ध ने अपने धर्म के प्रचार के लिए इसी भाषा को माध्यम बनाया।

भाषा वैज्ञानिकों की सामान्य मान्यता यह है कि पालि शब्द का वास्तविक संबंध 'पंक्ति' या 'प्राकृत' शब्द से है। पंक्ति से इसलिये कि यह भाषा मूलत: बौद्ध साहित्य से संबंधित है तथा प्राकृत से इसलिए कि भाषिक स्वरूप की दृष्टि से यह प्राकृत से काफी मिलती जुलती है। कुछ विद्वानों ने इन दोनों मतों को मिलाकर इसे बौद्ध-प्राकृत भी कहा।

4.2 पालि की भाषा संबंधी विशेषताएँ

1. ध्वनि संरचना संबंधी विशेषताएँ

(क) पालि के **स्वर** इस प्रकार हैं-

ह्रस्व - अ, इ, उ, एँ, अँ **दीर्घ** - आ, ई, ऊ, ए, ओ

(ख) पालि की स्वर संरचना में संस्कृत के 'ऐ' तथा 'औ' जैसे जटिल संयुक्त स्वर प्राय: ए तथा ओ के रूप में प्रचलित रहे, जैसे-

शैलं > सेलं कौशल > कोसल

(ग) संस्कृत का 'ऋ' स्वर प्रायः लुप्त हो गया है। इसका प्रयोग कहीं 'अ' के रूप में होता है, कहीं 'इ' के रूप में, कहीं 'उ' के रूप में, जैसे-

नृत्यं > नच्चं ऋतु > उतु मृत्यु > मित्तु

(घ) संस्कृत की 'लृ' ध्वनि भी पालि में समाप्त हो गयी है।

(ङ) इकारान्त तथा उकारान्त पदों के साथ लगने वाले विसर्गों का प्रायः लोप होज गया है, जैसे-

अग्निः > अग्गि धेनुः > धेनु गुरूः > गुरू

(च) पालि में निम्नलिखित **व्यंजन** प्राप्त होते हैं -

क ख ग घ/ च छ ज झ/ट ठ ड ढ ण/ त थ द ध न/ प फ ब भ म/ य र ल व/ स ह

(छ) पालि में व्यंजनों में भी बड़े स्तर पर परिवर्तन दिखते हैं जो इस प्रकार हैं-

(अ) श, ष का स हो गया है, जैसे - शिष्यः > सिस्सो, मनुष्यः > मनुसो।

(आ) क का प्रायः ग हो गया है, जैसे - लोक > लोग।

(इ). ल और र कहीं-कहीं एक दूसरे के स्थान पर आने लगे, जैसे - अंगुलि > अंगुरि।

(ई) महाप्राण व्यंजन प्रायः ह के रूप में उच्चरित होने लगे, जैसे - गाथा > गाहा, लघु > लहु, रुधिर > रुहिर।

(उ) पदान्त हलन्त व्यंजन (स्वर रहित) का प्रायः लोप हो गया, जैसे - जगत् > जग, महान् > महा।

(ज) संयुक्त व्यंजनों में भी अत्यधिक परिवर्तन हुए क्योंकि संस्कृत की जटिलता का एक बड़ा कारण यही है। सरलीकरण के प्रयासों में संयुक्त व्यंजनों का रूप परिवर्तन होना स्वाभाविक ही था। ये परिवर्तन इस प्रकार हैं-

(अ) रेफ युक्त संयुक्त व्यंजन में रेफ का लोप होने लगा तथा परवर्ती व्यंजन का द्वित्वीकरण होने लगा, जैसे- कर्म > कम्म, सर्पः > सप्पो, धर्म > धम्म।

(आ) पद के आरंभ में आने वाले युक्त व्यंजन के र् का लोप होने लगा, जैसे- प्रियः > पियो, त्रिपिटक > तिपिटक।

(इ) द्य का ज हो गया या ज्ज, जैसे- द्यूत > जूअ, विद्युत > बिज्जु।

(ई) क्ष का कहीं ख हो गया तो कहीं-कहीं च्छ हो गया, जैसे- क्षमा > छमा, पक्षी > पक्खी, क्षण > खण, भिक्षा > भिच्छा।

(उ) त्य का च्च हो गया, जैसे - सत्यं > सच्चं, नृत्यम् > नच्चम्।

2. पालि की व्याकरणिक संरचना

पालि की व्याकरणिक संरचना में मुख्य रूप से सरलीकरण और संक्षिप्तीकरण की प्रवृत्ति दिखायी देती है। दरअसल संस्कृत से लेकर आधुनिक हिन्दी तक का विकास मूल रूप से सरलीकरण की ही प्रक्रिया है जिसके अलग-अलग चरणों को अलग-अलग भाषिक प्रवृत्तियों के रूप में हम जानते हैं। सरलीकरण की इस प्रक्रिया के सूत्रपात का श्रेय पालि को है। इस पहले चरण में ही कई ऐसे परिवर्तन दिखायी देने लगते हैं जिनका सीधा संबंध आधुनिक हिन्दी से है। ये सूक्ष्म परिवर्तन इस प्रकार हैं :

(क) पालि में संस्कृत के **नपुंसक लिंग** का लोप होने लगा। आमतौर पर सारे नपुंसक लिंगी शब्द पुल्लिंग शब्दों की तरह व्यक्त होने लगे। इसका कारण यह था कि संस्कृत में भी कर्ता और कर्म विभक्तियों को छोड़कर शेष सभी विभक्तियों में नपुंसक लिंग के नियम पुल्लिंग के समान ही होते हैं।

(ख) पालि में संस्कृत के **द्विवचन का** भी लोप होने लगा। द्विवचन के सभी रूप बहुवचन के नियमों के अनुरूप चलने लगे। इन दोनों कारणों से रूप रचना काफी सरल और संक्षिप्त हो गयी। एक शब्द के तीन लिंगों तथा तीन वचनों में कुल बहत्तर या कम से कम चौबीस रूप बनते थे। अब इनकी संख्या मात्र बत्तीस रह गयी।

(ग) एक लिंग तथा एक वचन को समाप्त करने के अतिरिक्त कई अन्य कारणों से रूप रचना में सरलीकरण आया। इसमें सबसे महत्त्वपूर्ण प्रवृत्ति यह है कि अधिकतर व्यंजनांत प्रातिपदिक स्वरान्त होने लगे। इस प्रक्रिया में अंतिम हलन्त व्यंजन हटने लगा या उसमें स्वर जोड़ा जाने लगा, जैसे-

जगत् > जग चल् > चल राजन् > राज

(घ) सरलीकरण की प्रवृत्ति के आधार पर विभक्तियों या परसर्गों की जटिलता को दूर करने का प्रयास अन्य तरीकों से भी हुआ। उदाहरण के लिए-

(अ) कर्त्ता और कर्म कारक बिना विभक्ति या परसर्ग के व्यक्त होने लगे।

(आ) करण और अपादान (तृतीया, पंचमी) के अन्तर समाप्त होने लगे।

(इ) कभी-कभी कर्म और अधिकरण (द्वितीय और सप्तमी) तथा कभी-कभी करण और अधिकरण (तृतीया और सप्तमी) एक जैसे होने लगे।

(ङ) क्रिया में तिडंत प्रवृत्ति घटने लगी अर्थात् संस्कृत के ति - तः - अन्ति आदि क्रिया रूपों का 'त' लुप्त होने लगा, जैसे-

पठति > पढइ करोति > करोइ

एक विशेष बात यह है कि इन्हीं के बहुवचन में कई स्थानों पर त बना रहा किन्तु इ लुप्त होने लगा, जैसे-

पठंति > पठंत चलंति > चलंत

(च) लृट लकार की (भविष्यकालिक) क्रियाओं में प्रयुक्त होने वाला 'इष्य' पालि में 'स्स' हो गया, जैसे -

करिष्यति > करिस्सइ पठिष्यति > पठिस्सइ

(छ) पालि की क्रिया रचना में एक विशेष बात यह भी है कि इसमें हिन्दी में प्रयुक्त होने वाली भूतकालिक क्रियाओं का विकास होना आरंभ हो गया था, जैसे -

स्थितः > थिअ (जो हिन्दी में 'था' के रूप में है)

भवंति > हुअंति (आगे चलकर 'होता')

भूतः > हुआ (आगे चलकर 'हुआ' या 'हुयी')

3. शब्दकोशीय प्रवृत्तियाँ

पालि की शब्द सम्पदा का मूल आधार स्वाभाविक रूप से तद्भव शब्द हैं क्योंकि संस्कृत शब्दों का तद्भवीकरण इस भाषा के विकास का मूल आधार रहा है। कई तत्सम शब्द इस भाषा में बने रहे हैं। आमतौर पर ये वे शब्द हैं जो या तो जनप्रयोग में विशेष रूप से काम नहीं आते या संरचना की दृष्टि से जटिल नहीं हैं। चूँकि इस काल में भाषा का विकास तेजी से विकेन्द्रित पद्धति से होने लगा था, इसलिए देशज, स्थानीय या आंचलिक शब्दों का विकास भी पालि में अच्छी गति से होता हुआ दिखता है। उदाहरण के लिए- धण (स्त्री), बप्प (पिता), ढेकणी (ढक्कन)।

निष्कर्ष

इस प्रकार, हमने देखा कि पालि मध्यकालीन आर्यभाषाओं में काल या विकास क्रम की दृष्टि से पहले स्थान पर आती है। यहीं से संस्कृत तेजी से उस प्रक्रिया पर चल पड़ी थी जिसके समकालीन पड़ाव का नाम हिन्दी है। पालि की भाषिक प्रवृत्तियों को व्यावहारिक दृष्टि से निम्नलिखित उदाहरण से समझा जा सकता है जो 'धम्मचक्कपवत्तनसुत्त' (धर्मचक्रप्रवर्तनसूत्र) से लिया गया है-

"यो चायं भिक्खवे! कामेसु काम सुखाल्लिकानुयोगो हीनो, गम्मो, पोथज्जनिको, अनरियो, अनत्थसंहितो ...."

(भिक्षुओं! यह जो 'खाओ, पीओ, मौज करो' का सिद्धान्त है, वह हीन है, ग्राम्य है, अनार्य है, अनर्थकर है।)

अध्याय
5

प्राकृत- मध्यकालीन आर्यभाषा की दूसरी अवस्था

मध्यकालीन आर्य भाषा के विकास की दूसरी अवस्था को प्राकृत नाम से व्यक्त किया जाता है। सामान्य रूप से इसका कालखंड ईस्वी सन् के आरंभ से 500 ईस्वी तक स्वीकार किया गया है।

प्राकृत के अध्ययन के स्रोत

प्राकृत का अध्ययन करने के लिए आधार सामग्री के रूप में प्रचुर साहित्य उपलब्ध है। आदिकाल का बौद्ध और जैन साहित्य मूल रूप से मागधी और अर्ध-मागधी प्राकृतों में ही रचा गया है। इनके अतिरिक्त प्राकृत साहित्य में सेतुबंध तथा गौडवहो (गौड वध) जैसे महाकाव्य तथा गाहासतसई (गाथासप्तशती) और वज्जालग्ग जैसे खंडकाव्य भी रचे गए हैं। इन्हीं साहित्यिक स्रोतों के आधार पर प्राकृत भाषा की भाषिक प्रवृत्तियों का विश्लेषण किया जा सकता है।

प्राकृत और संस्कृत का संबंध

प्राकृत के संदर्भ में एक महत्त्वपूर्ण विवाद यह है कि यह संस्कृत से विकृत होकर बनी भाषा है या वह मूल भाषा है जिसकी विकसित एवं संस्कारित अवस्था को संस्कृत कहा जाता है। हेमचंद्र, मार्कण्डेय तथा सिंहदेव आदि आचार्यों का मानना है कि संस्कृत मूल वाणी या देववाणी है तथा प्राकृत उसी से विकसित हुई है- *'प्रकृति संस्कृतम्, तद्भव प्राकृतम्'*। इसके विपरीत कुछ अन्य विद्वान जिनमें पिशल का नाम महत्त्वपूर्ण है, मानते हैं कि प्राकृत जन बोलियों और जन-भाषाओं से निर्मित भाषा है, और इसी का अभिजात रूप संस्कृत बनकर विकसित हुआ।

5.1 प्राकृत की अवस्थाएँ

किशोरीदास वाजपेयी आदि वैयाकरणों ने प्राकृत के विकास को कुछ अवस्थाओं में विभाजित किया है। उनकी दृष्टि में प्राकृत के तीन चरण हैं- पहली प्राकृत, दूसरी प्राकृत तथा तीसरी प्राकृत।

पहली प्राकृत वह है जिसका जन्म सभ्यता के आरंभ में लोक प्रचलन के माध्यम से हुआ होगा। ऐसा माना जाता है कि यही प्राकृत ऋषियों तथा वैयाकरणों के हाथों में पड़कर संस्कारित होते-होते वैदिक संस्कृत बन गयी। वैदिक संस्कृत बनने के बाद हिन्दी तक का विकास सरलीकरण की प्रक्रिया से हुआ है। वैदिक संस्कृत सरल होकर लौकिक संस्कृत हुई और लौकिक संस्कृत सरल होकर प्राकृत बनी जिसे **दूसरी प्राकृत** कहा जाता है। दूसरी प्राकृत और पहली प्राकृत एक दूसरे से असम्बद्ध हों, ऐसा नहीं है। समय के बड़े अन्तर के कारण इनका बाहरी स्वरूप अचानक देखने पर चाहे अलग-अलग लगता हो, गहराई से देखने पर ये दोनों एक ही परम्परा की दो कड़ियाँ प्रतीत होती हैं। प्राकृत के बाद जिसे अपभ्रंश कहा जाता है, कुछ विद्वान उसी को **प्राकृत की तीसरी अवस्था** कहते हैं। जब हम प्राकृत को इन तीन अवस्थाओं के रूप में देखते हैं तो प्राकृत से हमारा अर्थ साधारण या प्रकृतजनों द्वारा बोली जाने वाली भाषा से होता है।

कुछ विद्वानों ने पहली प्राकृत पालि को ही कहा है। ये विद्वान प्राकृत से उसी भाषा को लेते हैं जो लौकिक संस्कृत से विकसित हुयी। इन विद्वानों का मानना है कि लौकिक संस्कृत से प्राकृत का ही विकास हुआ था किन्तु बौद्ध धर्म के आगमन के कारण उसी की एक कृत्रिम शैली पालि नाम से प्रसिद्ध हुयी। इस कारण जो वास्तविक रूप में प्राकृत थी उसे साहित्यिक भाषा के रूप में प्रचलित होने के लिए लगभग 500 वर्ष इन्तजार करना पड़ा।

सामान्य रूप से वर्तमान काल में प्राकृत नाम उस भाषा के लिए रूढ़ हो गया है जो ईस्वी सन् की शुरूआत से पाँचवी शताब्दी तक प्रमुख साहित्यिक भाषा के रूप में प्रचलित रही है। कुछ विद्वानों ने इसके संदर्भ को स्पष्ट करने के लिए इसे **'साहित्यिक प्राकृत'** भी कहा है।

5.2 प्राकृत की भाषा संबंधी विशेषताएँ

1. ध्वनि संरचना संबंधी विशेषताएँ

प्राकृत की ध्वनि संरचना पालि के समान ही है। जो बातें पालि से अलग हैं, वे इस प्रकार हैं-

(क) विसर्ग के लुप्त होने की प्रक्रिया पालि में ही शुरू हो गई थी। प्राकृत में इस संबंध में एक और विकास हुआ तथा विसर्गयुक्त अकारांत शब्द विसर्गहीन ओकारांत शब्दों में परिवर्तित होने लगे। उदाहरण के लिए-

वीर: > वीरो प्रश्न: > पण्हो

देव: > देवो

(ख) पालि में 'य' व्यंजन का प्रयोग पर्याप्त मात्रा में होता था, जबकि प्राकृत में प्राय: 'य' समाप्त होने लगा और उसके स्थान पर 'ज' प्रयुक्त होने लगा। उदाहरण के लिये -

यश > जस य: > जो

(ग) पालि में संस्कृत के संयुक्त व्यंजनों को सरल करने के लिए द्वित्वीकरण की प्रक्रिया आरंभ हुई थी। प्राकृत में पहली बार इससे अगले चरण के रूप में एक नई परंपरा शुरू हुई जिसे **'क्षतिपूरक दीर्घीकरण'** कहा जाता है। इसके अंतर्गत द्वित्वीकृत रूप में प्राप्त व्यंजन का भी मूल व्यंजन बचा रहा किंतु दूसरे व्यंजन के स्थान पर वह स्वर से युक्त होकर दीर्घरूप में व्यक्त होने लगा। उदाहरण के लिए-

मृत्यु > मिच्चु > मीच जिव्हा > जिब्भा > जीभ

क्षतिपूरक दीर्घीकरण संस्कृत से हिन्दी के विकास में सबसे महत्त्वपूर्ण प्रक्रिया है। प्राकृत का योगदान यह है कि उसी स्थिति से यह प्रक्रिया दिखाई देने लगी।

2. व्याकरणिक संरचना संबंधी विशेषताएँ

1. कारकों की रूप रचना के संबंध में पालि से ही विभिन्न कारकों को एकसमान बनाने की परंपरा आरंभ हो गई थी। इस प्रक्रिया में पालि में सम्प्रदान और संबंध कारकों के रूप एक से हो गए थे, अब कर्ता और कर्म के बहुवचन रूप भी एक से होने लगे।
2. क्रिया की रचना में संस्कृत की तुलना में कुछ विशेष अंतर प्राकृत में दिखाई देते हैं। ऐसा सबसे महत्त्वपूर्ण परिवर्तन यह है कि प्राकृत में भूतकाल के रूप में कृदंतों का प्रयोग तेजी से बढ़ने लगा। यह पालि में भी शुरू हो गया था किंतु प्राकृत में इसकी स्वाभाविकता सहज ही दिखाई देती है। कृदंतों के कारण क्रियाएँ लिंग भेद से बदलने लगीं किंतु उनमें पुरुष भेद समाप्त होने से जटिलताएँ कम हो गईं।
3. प्राकृत में परसर्गों का विकास पालि की तुलना में काफी अलग स्तर पर दिखाई देता है। उदाहरण के लिए, इस काल में 'कए', 'केरक' तथा 'मज्झ' परसर्ग दिखते हैं जो आगे चलकर 'का, के, की' और 'में' के रूप में विकसित हुए।

3. प्राकृत की शब्दकोशीय प्रवृत्तियाँ

शब्दकोशीय प्रवृत्तियों के स्तर पर जो मूल विशेषता इस काल में दिखती है, वह यह है कि संस्कृत के सरलीकरण की प्रक्रिया में जो शब्द परिवर्तित हुए थे, उनमें पुन: तत्समीकरण की प्रवृत्ति शुरू हुई। ऐसा इसलिए करना पड़ा कि संस्कृत से सरल किए गए कई शब्द ध्वनि साम्य के कारण अन्य शब्दों से अलग करने मुश्किल हो गए। शब्दों के पुनर्तत्समीकरण की यह प्रवृत्ति अपभ्रंश में काफी अधिक मात्रा में दिखाई देती है। उदाहरण के लिए 'उचित' और 'उदित' दोनों शब्द सरल होकर 'उइत' हो गए, अत: अर्थ के स्पष्टीकरण के लिए पुन: तत्समीकरण करना पड़ा। इसी प्रकार 'अति' से 'अइ' हो गया था और निरर्थक होने के कारण इसे पुन: परिवर्तित करके 'अति' करना पड़ा।

5.3 प्राकृत के भेद

किसी भी जनभाषा का स्वरूप क्षेत्र की दृष्टि से धीरे-धीरे बदलता रहता है, अतः उसके भेदों की संख्या निश्चित करना कठिन होता है। प्राकृत के संबंध में भी प्रायः यही स्थिति है। कुछ विद्वानों ने तो प्राकृत के सत्ताईस या बयालीस प्रकार निश्चित किये हैं। **वररुचि** ने प्राकृत के चार प्रकार माने - **'शौरसेनी प्राकृत'**, **'महाराष्ट्री प्राकृत'**, **'मागधी प्राकृत'** एवम् **'पैशाची प्राकृत'**। आधुनिक भाषा वैज्ञानिकों में **डॉ. धीरेन्द्र वर्मा** ने स्पष्ट किया कि इन चारों प्राकृतों के साथ **'अर्धमागधी प्राकृत'** को भी स्वीकार किया जाना चाहिए क्योंकि इसमें भी पर्याप्त मात्रा में साहित्य उपलब्ध होता है। अतः प्राकृत के यही पाँच भेद स्वीकार किए जा सकते हैं। इन भेदों का संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है-

(क) पैशाची प्राकृत

पैशाची प्राकृत का क्षेत्र पश्चिमोत्तर पंजाब, अफगानिस्तान और चीनी तुर्किस्तान माना गया है। इसका एक अन्य नाम **'भूतभाषा'** भी है। इसकी मूल विशेषताओं में 'ण' का 'न' हो जाना (गुण > गुन), र और ल में परस्पर परिवर्तन (फल > फर), ल का ळ हो जाना (कमल से कमळ) आदि प्रमुख हैं। इसके अतिरिक्त पुल्लिंग एकवचन कर्ता में अः के स्थान पर ओ का प्रयोग (नरः > नरो) इसकी प्रमुख विशेषताएँ हैं।

(ख) अर्धमागधी प्राकृत

अर्धमागधी प्राकृत को **'जैन अर्धमागधी'** भी कहते हैं क्योंकि जैन साहित्य इस भाषा में अत्यधिक मात्रा में मिलता है। हिन्दी की एक उपभाषा पूर्वी हिन्दी का विकास इसी से हुआ है। इसकी विशेषताओं में 'क' का 'ग' होना (प्रकल्प > पगप्प), 'श' और 'ष' का 'स' होना (श्रावण > सावण, मूषक > मूसअ), 'य' का 'ज' होना (यौवन > जोव्वण) इत्यादि प्रमुख हैं।

(ग) मागधी प्राकृत

मागधी प्राकृत बिहारी हिन्दी के विकास की पृष्ठभूमि है। अश्वघोष के नाटकों में इसके प्रारंभिक उदाहरण दिखाई देते हैं। इसकी प्रमुख विशेषताओं में अः का ए होना (देवः > देवे), 'र' का 'ल' होना (राजा > लाया), 'ज' का 'य' होना (जानाति > याणादि), द्य, र्ज, र्य का य्य में रूपांतरण (अद्य > अय्य, अर्जन > अय्यण, आर्य > अय्य) तथा कई ध्वनियों के स्थान पर सघोषीकरण के रूप में 'द' का आगमन (गच्छति > गस्चदि) आदि प्रमुख हैं। मागधी प्राकृत में उत्तम पुरुष एकवचन सर्वनाम के लिए हके/अहके का प्रयोग भी उल्लेखनीय है।

(घ) शौरसेनी प्राकृत

शौरसेनी प्राकृत मथुरा के आसपास का प्रदेश शूरसेन की भाषा रही है। पश्चिमी हिन्दी की बोलियों यथा ब्रजभाषा, कौरवी, हरियाणी आदि का विकास इसी प्राकृत से हुआ है। यह प्राकृत संस्कृत की परंपरा के सर्वाधिक निकट है। इसकी प्रमुख विशेषताएँ हैं - अः का ओ होना (देवः > देवो), अल्पप्राण अघोष व्यंजनों का सघोषीकरण (भवति > होदि, विकल्प > विगल), महाप्राण व्यंजनों जैसे 'ख', 'घ', 'थ', 'ध' और 'भ' का 'ह' में रूपांतरण (वधू > बहु, मेघ > मेह, मुख > मुह), 'क्ष' का 'क्ख' होना आदि। सघोषीकरण की प्रवृत्ति इस प्राकृत में सबसे अधिक मात्रा में है, उदाहरण के लिए- अतिथि > अदिधि, शती > सदी इत्यादि।

(ङ) महाराष्ट्री प्राकृत

महाराष्ट्री प्राकृत के बारे में यह भ्रम होना स्वाभाविक हो जाता है कि इसका संबंध महाराष्ट्र प्रदेश से है। वस्तुतः यह उत्तर भारत की ही एक सामान्य और परिनिष्ठित भाषा थी। दंडी ने इसे **'प्रकृष्ट प्राकृत'** कहा है और प्राकृत भाषा के विशिष्ट विद्वान 'हार्नले' ने यह स्थापना की है कि महाराष्ट्री में महाराष्ट्र का अर्थ महान राष्ट्र से है। प्राकृत का अस्सी प्रतिशत ललित साहित्य

इसी भाषा में मिलता है। महाराष्ट्री प्राकृत की प्रमुख भाषिक विशेषताएँ इस प्रकार हैं- दो स्वरों के बीच आने वाले अल्पप्राण व्यंजनों जैसे क, ग, च, ज, त, द और य का लोप (रजत > रअअ, लोक: > लोओ), महाप्राण व्यंजनों जैसे ख, घ, थ, ध आदि का ह में रूपांतरण (सखा > सहा, मधुर > महुर), 'क्ष' का 'क्ख', 'च्छ' में रूपांतरण (कुक्षि > कुच्छि, इक्षु > उक्खु), न का ण में रूपांतरण (अर्जुन > अय्यण), पंचमाक्षर का अनुस्वार के रूप में प्रयुक्त होना (गङ्गा > गंगा, मञ्जन > मंजन) इत्यादि। महाराष्ट्री प्राकृत में संज्ञा के अधिकरण कारक में 'अम्मि' प्रत्यय (लोकम्मि = लोक में) तथा अपादान कारक में 'आहि' प्रत्यय (लोकाहि = लोक से) की स्थापना होना भी महत्त्वपूर्ण विशेषताएँ मानी गई हैं।

इन सभी प्राकृतों में उपर्युक्त विशेष लक्षणों के अतिरिक्त सामान्य रूप से वे सभी लक्षण मिलते हैं जो हमने प्राकृत की सामान्य विशेषताओं के अंतर्गत वर्णित किए हैं।

निष्कर्ष

समग्रत: यह कहा जा सकता है कि सामान्यत: पालि की प्रवृत्तियाँ धारण करने के बाद भी प्राकृत संस्कृत के सरलीकरण की प्रक्रिया में एक महत्त्वपूर्ण कदम बढ़ाती है। संस्कृत की केंद्रीकृत भाषिक स्थिति के विपरीत हिन्दी की कई उपभाषाएँ और बोलियाँ उसकी विकेंद्रीकृत स्थिति का प्रमाण हैं। प्राकृत में पहली बार भाषिक विकेंद्रीकरण होना आरंभ हुआ तथा स्थान भेद से पाँच प्राकृतें विकसित हुईं। यही पाँच प्राकृतें अपभ्रंश अवस्था से गुज़रने के बाद आधुनिक हिन्दी की उपभाषाओं के निर्माण में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं।

प्राकृत की भाषिक विशेषताओं को निम्नलिखित व्यावहारिक उदाहरण के माध्यम से समझा जा सकता है-

"खग्ग विसाहिउ जहिं लहहुँ, प्रिय तेहि देसहिं जाहुँ।
रण दुब्भिक्खें भग्गाइँ, विणु जुज्झें न बलाहुँ।।"

(सिद्ध हेम शब्दानुशासन)

(अर्थात् नायिका प्रिय से कहती है कि यह हम कहाँ आ गये? यहाँ तो युद्ध का अकाल पड़ा हुआ है। युद्ध न करने से हम दुर्बल हो गये हैं, अत: हे प्रिय, उस देश चलो जहाँ तलवारों का व्यवसाय होता हो।)

अध्याय
6

अपभ्रंश - मध्यकालीन आर्यभाषा की तीसरी अवस्था

अपभ्रंश का शाब्दिक अर्थ है भ्रष्ट भाषा। व्याडि, पतंजलि, हेमचन्द्र और दण्डी आदि प्रमुख भाषाशास्त्रियों की व्याख्या से प्रतीत होता है कि जिस भाषा के शब्द संस्कृत के मानक शब्दों से विकृत हुए हों, उसे ही भ्रष्ट भाषा या अपभ्रंश कहा जाता है। कालक्रम की दृष्टि से अपभ्रंश मध्यकालीन आर्यभाषाओं की तीसरी और अंतिम अवस्था का नाम है। इसका समय पालि, प्राकृत के बाद लगभग पाँच सौ ईस्वी में आरंभ होता है तथा लगभग ग्यारहवीं-बारहवीं शताब्दी में यह पुरानी हिन्दी में पर्यवसित हो जाती है। पुरानी हिन्दी से आधुनिक आर्यभाषा का आरम्भ माना गया है।

अपभ्रंश के अध्ययन के स्रोत

अपभ्रंश की पहचान के लिए आधुनिक भाषा विज्ञान के पास कई स्रोत उपलब्ध हैं। इनमें से कुछ शिलालेखों के रूप में हैं और कुछ साहित्यिक रचनाओं के रूप में। आठवीं शताब्दी में सिद्ध साहित्य के विकास में पूर्वी प्राकृत मिश्रित अपभ्रंश मिलती है। बाद के समय में बौद्ध, रासो तथा विशेषकर जैन साहित्य की रचनाओं में अपभ्रंश के प्रयोग के उदाहरण दिखायी देते हैं। इनमें "महापुराण", "जसहर चरिउ", "णायकुमार चरिउ", "जिनदत्त कहा", "भविस्यत कहा", "पाहुड़ दोहा" आदि रचनाएँ प्रमुख हैं। कालिदास के नाटकों में भी निम्नवर्ग के पात्र इसी भाषा का प्रयोग करते हैं।

6.1 विकास प्रक्रिया से जुड़ा विवाद

अपभ्रंश के सम्बन्ध में एक महत्त्वपूर्ण विवाद यह है कि इस भाषा का विकास केवल संस्कृत की परम्परा में हुआ है या विदेशी तत्वों का प्रभाव भी इसके विकास की प्रक्रिया में शामिल है। पालि व प्राकृत का विकास मुख्यत: संस्कृत की देशीय परम्परा में ही हुआ है किंतु अब यह बात स्वीकृत है कि अपभ्रंश के विकास में संस्कृत की देशीय परम्परा के साथ-साथ कुछ बाहरी प्रभाव भी शामिल रहे हैं। सातवीं शताब्दी के आस-पास उत्तर पश्चिमी भारत में गुर्जर, आभीर और जाट आदि समूह बसने लगे थे जो संस्कृत की परम्परा में दीक्षित नहीं थे। उनकी भाषा को भी आरंभ में भ्रष्ट समझा गया। धीरे-धीरे उनकी भाषा पर शौरसेनी प्राकृत का प्रभाव पड़ा तथा उनकी भाषा क्षेत्रीय भाषा के नज़दीक आने लगी। सत्ता प्राप्त होने पर यही नये समूह राजपूत कहलाने लगे तथा इनकी भाषा तीव्र गति से विकसित होकर राजभाषा व साहित्यिक भाषा के रूप में प्रतिष्ठित हो गयी। अपभ्रंश का सम्बन्ध इसी मिश्रित भाषिक परम्परा से माना जाता है।

6.2 अपभ्रंश: भाषा या भाषिक विकास की स्थिति

अपभ्रंश के सम्बन्ध में एक अन्य विवाद यह भी है कि यह अपने आप में एक विशेष 'भाषा' है या भाषिक विकास की एक 'स्थिति'? इन दोनों में अन्तर यह है कि यदि यह भाषा है तो एक निश्चित समय और स्थान में इसका विकास दिखना चाहिए और यदि यह भाषिक विकास की 'स्थिति' है तो हिन्दी क्षेत्र की प्रत्येक प्राकृत के बाद अपभ्रंश की स्थिति आनी चाहिए। पहली स्थिति में अपभ्रंश एक भाषा होगी जबकि दूसरी स्थिति में सभी प्राकृतों के बाद एक-एक अपभ्रंश होगी। सुनीति कुमार चटर्जी जैसे विद्वानों ने स्पष्ट माना है कि अपभ्रंश एक भाषा नहीं, भाषिक विकास की केवल एक स्थिति है और छठी से ग्यारहवीं शती तक प्रत्येक प्राकृत की एक अपभ्रंश अवस्था देखी जा सकती है। दूसरा मत यह है कि अपभ्रंश हिन्दी प्रदेश के उत्तर-पश्चिमी भूभाग की भाषा थी। समकालीन भाषाविज्ञान मानता है कि प्रारम्भ में अपभ्रंश का विकास उत्तर-पश्चिमी भूभाग में ही हुआ होगा किंतु राजभाषा और साहित्यिक भाषा बनने के बाद इसका प्रभाव पूरे हिन्दी क्षेत्र पर पड़ा होगा। इस प्रक्रिया में अपनी देशी परम्परा तथा इस बाहरी प्रभाव से मिलकर प्रत्येक प्राकृत की एक अपभ्रंश अवस्था पैदा हुई होगी। इस मत के भी कई अपवाद हो सकते हैं किंतु आमतौर पर इस मत को स्वीकार करने में कोई बाधा नहीं है।

6.3 अपभ्रंश की भाषा संबंधी विशेषताएँ

1. ध्वनि संरचना

(क) अपभ्रंश में **प्रयुक्त होने वाले स्वर** इस प्रकार हैं -

ह्रस्व स्वर - अ, इ, उ, एँ, ओँ

दीर्घ स्वर - आ, ई, ऊ, ए, ओ

ऐ और औ नहीं मिलते क्योंकि पालि में ही वे ए और ओ हो गये थे।

(ख) **ऋ का प्रयोग** अपभ्रंश में नहीं था, उसका उच्चारण सामान्य 'रि' की तरह हो गया था। तत्सम शब्दों में इसका प्रयोग चलता रहा था किंतु सामान्य शब्दों में इसका रूपान्तर अ, इ, उ और ए के रूप में होने लगा था।

कृष्ण > कण्ह ऋतु > उतु

मृत्यु > मित्तु गृह > गेह

ऋण > रिण

(ग) अपभ्रंश अपनी प्रवृति में **उकारबहुला भाषा** के रूप में विकसित हुई। इस दृष्टि से बहुत से शब्द उकारान्त होने लगे, जैसे -

मन > मनु कारण > कारणु

चल > चलु अंग > अंगु

(घ) **अनुनासिकता** के सम्बन्ध में तीन तरह की प्रवृत्तियाँ दिखायी देती हैं-

(अ) कहीं-कहीं **स्वरों के अनुनासिक रूप** विकसित होने लगे, जैसे -

चलहि > चलहिं पक्षी > पाँखि

(आ) कभी-कभी शब्दों में **अकारण अनुनासिकता** आने लगी, जैसे -

अश्रु > अंसु वक्र > वंक

(इ) कहीं-कहीं ऐसा भी हुआ कि कुछ अनुनासिक शब्द अनुनासिकता से रहित हो गये। इस प्रवृत्ति को **निरनुनासिकीकरण** कहते हैं। उदाहरण के रूप में -

सिंह > सीह विंशति > वीस

(ङ) व्यंजनों के संयोग को सरल बनाने के लिए व्यंजन संयोग के मध्य स्वर लाने की प्रक्रिया शुरू हुयी, जिसे **स्वर भक्ति** कहते हैं। उदाहरण के तौर पर -

प्रदेश > परदेस मर्यादा > मरियाद

क्रिया > किरिया

(च) कई शब्दों में **स्वरलोप** होने लगा। आमतौर पर या तो आरंभिक स्वर लुप्त हुए या अंतिम स्वर। उदाहरण के तौर पर -

अरण्य > रण्ण लज्जा > लाज

(छ) अपभ्रंश की **व्यंजन माला** इस प्रकार है -

क, ख, ग, घ/च, छ, ज, झ/ट, ठ, ड, ढ, ण/त, थ, द, ध/प, फ, ब, भ, म/य, र, ल, व/स, ह

इस सूची से स्पष्ट है कि अपभ्रंश में ङ्, ञ, न, श, ष व्यंजन नहीं हैं। अपनी प्रकृति में अपभ्रंश 'टवर्ग प्रधान भाषा' है।

(ज) अपभ्रंश में तेजी से **अन्त्य व्यंजन लुप्त** होने लगे। वैसे, यह प्रक्रिया पालि प्राकृत से ही चली आ रही थी। उदाहरण के तौर पर-

जगत् > जग पश्चात् > पच्छा महान् > महा

(झ) **संयुक्त व्यंजन** प्राय: समाप्त होने लगे। इससे अंतस्थ व्यंजनों य, र, ल, व की अत्यधिक क्षति हुयी तथा इनके साथ के व्यंजन का **द्वित्वीकरण** होने लगा, जैसे-

चक्र > चक्क धर्म > धम्म कर्म > कम्म

(ञ) **संयुक्त व्यंजनों में निम्नलिखित परिवर्तन** भी दिखते हैं-

क्ष > क्ख (द्राक्षा > दाक्ख) द्य > ज्ज (अद्य > अज्ज)

ज्ञ > ण्ण (अज्ञानी > अण्णाणी) त्य > च्च (सत्य > सच्च)

(ट) शब्द के बीच में आने वाले व्यंजनों में काफी परिवर्तन हुए। **अल्पप्राण व्यंजन** क, ग, च, ज, त, द आदि 'अ' अथवा 'य' में परिवर्तित हो गये, जैसे -

वचन > वयण नगर > णयर कोकिल > कोअल

(ठ) शब्द के मध्य में आने वाले **महाप्राण व्यंजन** जैसे ख, घ, थ, ध और भ आदि 'ह' में रूपांतरित हो गये, जैसे-

रुधिर > रुहिर मुख > मुह दधि > दहि

2. अपभ्रंश की व्याकरणिक संरचना

व्याकरणिक संरचना के अंतर्गत संज्ञा, वचन, लिंग, विशेषण, काल, सर्वनाम तथा क्रिया आदि तत्वों का विश्लेषण किया जा सकता है-

(क) संज्ञा तथा कारक व्यवस्था

सरलीकरण की प्रक्रिया अपभ्रंश के संज्ञा-रूपों में कई प्रकार से चलती रही। इस संबंध में तीन तरह के नये प्रयोग इस काल में दिखते हैं-

(अ) बहुत से ऐसे प्रयोग होने लगे जिनमें किसी विभक्ति का प्रयोग नहीं होता था। इन्हें **निर्विभक्तिक प्रयोग** कहते हैं। इनके अन्तर्गत शब्दों को केवल प्रातिपदिक के रूप में व्यक्त किया जाता था या एक ही विभक्ति से कई कारकों का काम लिया जाता था। उदाहरण के तौर पर अपभ्रंश में हिं प्रत्यय से कर्म, करण, सम्प्रदान, अपादान और अधिकरण कारकों का काम लिया जाता रहा।

(आ) जो प्रयोग **सविभक्तिक** थे उनमें भी सरलीकरण हुआ। इस संबंध में सबसे पहले यह हुआ कि सारे **प्रातिपदिक स्वरांत** हो गये, जैसे-

जगत् > जग महान् > महा

इसके बाद अगली स्थिति यह आयी कि प्रातिपदिक के अन्त में स्वर चाहे कोई भी हो, उसका रूपान्तरण **'अकारान्त'** शब्दों की तरह होने लगा। इसके अतिरिक्त विभक्ति रूप जो संस्कृत में आठ थे, अपभ्रंश में तीन रह गये-

1. कर्त्ता, कर्म और सम्बोधन के लिए एक रूप।
2. करण व अधिकरण के लिए एक रूप।
3. सम्प्रदान, अपादान और सम्बन्ध कारक के लिए एक रूप।

इस प्रकार अपभ्रंश में किसी एक संज्ञा के एक लिंग में केवल छः रूप बचे जो पालि, प्राकृत में प्रायः बारह थे और संस्कृत में चौबीस थे। इस प्रक्रिया में एक और सरलीकरण यह हुआ कि पुल्लिंग और स्त्रीलिंग शब्दों के विभक्ति चिन्ह भी एक होने लगे।

(इ) अपभ्रंश में ही पहली बार **परसर्गों का स्वतन्त्र विकास** शुरू हुआ। वियोगीकरण या सरलीकरण की प्रक्रिया में ऐसा होना स्वाभाविक भी था। इस काल में विकसित हुए प्रमुख परसर्ग हैं- कर्म कारक के लिए 'हिं', सम्प्रदान के लिए 'तेहि', और संबंध के लिए 'का' और 'करु'। संबंध कारक के लिए 'का' का विकास इस युग की एक बड़ी उपलब्धि है क्योंकि यह वर्तमान युग तक हिन्दी में यथारूप प्रचलित है।

(ख) वचन व्यवस्था

संस्कृत के तीन वचनों के स्थान पर अपभ्रंश में दो वचन मिलते हैं। द्विवचन के सारे शब्द बहुवचन में शामिल हो गए। इससे भाषा की जटिलता काफी कम हो गयी तथा बड़ी संख्या में अनावश्यक शब्द भाषा से अलग हो गये।

(ग) लिंग व्यवस्था

संस्कृत में पुल्लिंग तथा स्त्रीलिंग के अतिरिक्त नपुंसक लिंग का प्रयोग भी होता था जबकि हिन्दी के विकास की प्रक्रिया में नपुंसक लिंग लुप्त होने लगा और नपुंसक लिंगी शब्द प्राय: पुल्लिंग में शामिल होने लगे। यह प्रक्रिया पालि प्राकृत से ही तेजी से शुरू हो गयी थी और अपभ्रंश में भी चलती रही। यद्यपि नागर अपभ्रंश में नपुंसक लिंग का कहीं-कहीं अति सीमित रूप में प्रयोग मिलता है, किंतु सामान्यत: दो लिंगों का प्रयोग अपभ्रंश की मूल विशेषता है।

(घ) विशेषण

हिन्दी के विशेषणों का विकास आमतौर पर संस्कृत की परम्परा के अनुसार ही हुआ। संज्ञा के लिंग और वचन के अनुसार विशेषणों का परिवर्तित होना अपभ्रंश में भी संस्कृत की तरह स्वीकार किया गया है। इस काल में विशेष प्रवृत्ति संख्यावाचक विशेषणों के विकास की है। कई संख्याएँ ठीक उस रूप में विकसित हो गईं जिस रूप में आधुनिक हिन्दी में मिलती हैं, जैसे - दस, बारह, तेरह, अठ्ठारह, तीस इत्यादि। कुछ संख्याएँ लगभग आधुनिक हिन्दी जैसी होने लगी थीं, जैसे एक्क, सत्त, इगारह, सोरह इत्यादि।

(ङ) काल संरचना

काल रचना के संबंध में अपभ्रंश में तीन तरह की प्रवृत्तियाँ दिखाई देती हैं। इसमें वर्तमान काल आमतौर पर संस्कृत की परम्परा में चलता है, भूतकाल हिन्दी की तरह कृदंतों के आधार पर चलता है जबकि भविष्य काल में संस्कृत की परम्परा भी है और कृदंतों के आधार पर भी प्रयोग होते हैं। विशेष बात यह है कि इस काल में भविष्यकाल के लिए दो रूप विकसित हुए- 'स'-रूप तथा 'ह'-रूप। उदाहरण के लिए-

स - रूप → चलिसई

ह - रूप → चलिहिय

इसके अतिरिक्त परवर्ती अपभ्रंश में एक तीसरा रूप विकसित हुआ जिसे 'ब'-रूप कहते हैं। यह वही रूप है जो आज भी पूर्वी हिन्दी तथा बिहारी हिन्दी की कई बोलियों में मिलता है, जैसे- चलब, आइब, जाइब, खाइब इत्यादि।

(च) सर्वनाम व्यवस्था

सर्वनामों के रूपों में अपभ्रंश काल में जटिलता बनी हुयी है किंतु इनकी संख्या में काफी कमी दिखती है। सर्वनाम में कुछ विकास ऐसे हुए जो सीधे-सीधे वर्तमान हिन्दी तथा हिन्दी की कुछ बोलियों से मिलते-जुलते हैं जैसे- 'तुम्हें' सर्वनाम का विकास। इसके अतिरिक्त पूर्वी हिन्दी की बोलियों में प्रयुक्त होने वाले कुछ सर्वनाम जैसे - 'तुहार', 'महार' इत्यादि भी इस काल में विकसित हो गये थे। इनके अतिरिक्त 'मइ', 'तुहु', 'ते', 'तासु' आदि सर्वनाम भी मिलते हैं।

(छ) क्रिया संरचना

क्रिया में इस काल में कोई विशेष परिवर्तन नहीं हुए। क्रियाएँ कई आधारों पर विकसित होने लगी थीं। कुछ नये धातु रूप विकसित हुए जैसे - उट्ठ तथा बोल्ल।

वर्तमान कृदंतों पर आधारित कुछ नयी क्रियाएँ प्रचलित हुईं, जैसे - देखत और चाखत।

प्रेरणार्थक क्रियाएँ वर्तमान काल की पूर्वी हिन्दी से मिलती हैं, जैसे - बैठाव, पठाव आदि।

3. अपभ्रंश की शब्दकोशीय प्रवृत्तियाँ

शब्दावली के स्तर पर अपभ्रंश में निम्नलिखित विशेष प्रवृत्तियाँ दिखाई देती हैं -

(क) इस काल में शब्द भण्डार में सबसे अधिक मात्रा **तद्भव शब्दों** की थी। **देशज** शब्द दूसरे स्थान पर आ गये थे।

तत्सम शब्द तीसरे तथा **विदेशज** शब्द अन्तिम स्थान पर थे। तद्भव शब्दों का सबसे अधिक होना स्वाभाविक भी था क्योंकि अपभ्रंश का विकास पूरी तरह से संस्कृत से परिवर्तनों के आधार पर ही हुआ है। तद्भव शब्दों के कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं -

कम्म, धम्म, किरिया, अज्ज, अंसु

हिन्दी की सारी संख्याएँ भी तद्भव शब्दों में ही शामिल की जा सकती हैं, जैसे-

बारह, तेरह, दस, तीस, अठ्ठारह

(ख) अपभ्रंश का विकास विकेन्द्रीकृत पद्धति से हुआ जिससे देशज भाषा के शब्द तेजी से विकसित हुए। आमतौर पर ध्वन्यात्मक शब्दों, घर गृहस्थी से सम्बन्धित शब्दों तथा कुछ विशेष क्रियाओं में देशज शब्द दिखायी पड़ते हैं-

ध्वन्यात्मक शब्द - किल-किल, झल-झल, खुण-खुण

घर गृहस्थी वाले शब्द - रस्सी, मुक्कट, मुग्ग

क्रियाएँ - थक्कई (थकता है), तड़प्पडई (तड़पता है)

(ग) तत्सम शब्द अपभ्रंश के आरंभिक काल में कम संख्या में थे किंतु धीरे-धीरे उनकी संख्या बढ़ने लगी। संख्या बढ़ने के दो कारण थे। पहला यह कि परवर्ती अपभ्रंश के काल में ब्राह्मण वर्ग का पुनरुत्थान हुआ। दूसरा कारण यह था कि सरलीकरण की प्रक्रिया में कई शब्द इतने दुर्बोध हो गये थे कि उन्हें समझना तथा अन्य शब्दों से अलग करना संभव नहीं रहा था। उदाहरण के लिए, संस्कृत के चार शब्दों - सुप्त, सूत्र, सूक्त तथा शक्ति का अपभ्रंश में 'सुत्त' हो गया। इसी प्रकार सुख, शुभ और सुधि - तीनों शब्दों का अपभ्रंश में 'सुह' हो गया। इस वजह से शब्दों में अन्तर करना कठिन होने लगा और इस समस्या को दूर करने के लिए पुनः तत्समीकरण की शुरुआत हुई।

(घ) अपभ्रंश के अन्तिम काल में भारत में विदेशी संस्कृतियों के आगमन के कारण फारसी और अरबी के कुछ विदेशी शब्द भी शामिल होने लगे, जैसे- तहसील, नौबति, रूमाल इत्यादि। आगे चलकर इनकी संख्या काफी बढ़ने लगी।

समग्रतः यही अपभ्रंश की भाषिक प्रवृत्तियाँ हैं। इन प्रवृत्तियों का महत्त्व इस बात में है कि यही प्रवृत्तियाँ आधुनिक हिन्दी के विकास में ज़िम्मेदार रही हैं। अपभ्रंश की प्रकृति को एक व्यावहारिक साहित्यिक उदाहरण से समझना ज्यादा उपयुक्त होगा-

"सिरु जिम्मु नग्गुह गिउ, भडसिरि खग्ग ण भग्गु।
तक्खा तुरीय ण माणिया, गोरी गले ण लग्गु।।"

अर्थात् जिस व्यक्ति ने सिर से तलवार को न तोड़ा हो, जिसने तेज घोड़े को नियन्त्रित न किया हो तथा जिसने स्त्री से प्रेम न किया हो, उस का जीवन बेकार है।

6.4 अपभ्रंश के भेद

विभिन्न भाषावैज्ञानिकों ने अपभ्रंश के अलग-अलग भेदों की चर्चा की है जिसके कारण यह एक विवादास्पद प्रश्न बन गया है। इस विवाद के हल न हो पाने का बड़ा कारण यह है कि अपभ्रंश में रचित साहित्य बहुत कम मात्रा में उपलब्ध है और उससे इन भेदों की प्रामाणिक पुष्टि करना संभव नहीं हो पाता।

जिन विद्वानों ने अपभ्रंश को एक प्रदेश विशेष की भाषा माना है, उन्होंने आमतौर पर अपभ्रंश के सीमित भेद प्रस्तुत किये हैं। ऐसे विद्वानों में नमिसाधु तथा मार्कण्डेय के नाम प्रमुख हैं। नमिसाधु ने अपभ्रंश के तीन भेद किये हैं: (क) उपनागर अपभ्रंश, (ख) आभीर अपभ्रंश, तथा (ग) ग्राम्य अपभ्रंश।

मार्कण्डेय ने अपने ग्रंथ 'प्राकृत प्रकाश' में अपभ्रंश के तीन ही भेद माने हैं किंतु उनके द्वारा दिये गये नाम अलग हैं। उनके अनुसार अपभ्रंश के निम्नलिखित भेद हैं - (क) नागर, (ख) उपनागर, तथा (ग) व्राचड़।

यह बताना कठिन है कि इन तीनों भेदों में क्या समानताएँ तथा क्या अंतर हैं? डॉ. **नामवर सिंह** ने अपभ्रंश संबंधी अपने अनुसन्धान में यह निश्चित किया कि नमिसाधु द्वारा वर्णित उपनागर अपभ्रंश और मार्कण्डेय द्वारा वर्णित नागर अपभ्रंश सामान्यतः एक ही हैं जिन्हें 'परिनिष्ठित अपभ्रंश' भी कहा जा सकता है। शेष चारों भेदों की व्याख्या वे प्रमाणों के अभाव

में नहीं कर सके हैं। कुछ दूसरे विद्वानों ने मार्कण्डेय द्वारा प्रस्तुत अपभ्रंश के तीनों भेदों का सम्बन्ध भौगोलिक क्षेत्रों के साथ निश्चित किया है। उनके अनुसार अपभ्रंश पूरे उत्तर पश्चिमी भूखण्ड की भाषा थी जिसके अन्तर्गत नागर अपभ्रंश गुजरात में, उपनागर अपभ्रंश राजस्थान में तथा व्राचड़ अपभ्रंश सिन्ध प्रदेश में बोली जाती थी। कुल मिलाकर प्रामाणिक सामग्री के अभाव में कोई निश्चित व्याख्या करना कठिन प्रतीत होता है।

अपभ्रंश के भेदों के संबंध में **डॉ. तगारे** का विश्लेषण भी महत्त्वपूर्ण माना जाता है। उन्होंने भी अपभ्रंश के तीन भेद स्वीकार किए हैं, यद्यपि इनके द्वारा दिए गए नाम भी अलग हैं। इनके द्वारा प्रस्तुत तीन भेद हैं- पूर्वी अपभ्रंश, पश्चिमी अपभ्रंश तथा दक्षिणी अपभ्रंश।

(क) **पूर्वी अपभ्रंश:** यह भाषा मध्यदेश के पूर्वी भाग में प्रयुक्त की जाती थी। इसमें सरहपा, कण्हपा आदि सिद्धों का साहित्य मिलता है।

(ख) **पश्चिमी अपभ्रंश:** अपभ्रंश के इस भेद का संबंध गुजरात और राजस्थान से है। कालिदास के नाटकों के निम्नवर्गीय पात्र यही भाषा बोलते हैं। इसके अतिरिक्त जैन साहित्य की रचनाओं जैसे 'भविस्यतकहा' तथा 'पाहुड़ दोहा' में इनका प्रयोग हुआ है।

(ग) **दक्षिणी अपभ्रंश:** दक्षिणी अपभ्रंश संभवत: बरार आदि के उस क्षेत्र की भाषा है जहाँ जैन कवियों ने रचनाएँ की हैं। कुछ विद्वानों जैसे नामवर सिंह ने इस भेद को स्वीकार नहीं किया है। जिन विद्वानों ने इस भेद को स्वीकार किया है, वे 'जसहर चरिउ', 'महापुराण' तथा 'णायकुमार चरिउ' जैसी जैन रचनाओं को इसका प्रमाण मानते हैं।

कुछ अन्य विद्वानों ने, जो अपभ्रंश को भाषा के स्थान पर भाषिक विकास की एक विशेष अवस्था मानते हैं, ने कुछ प्राचीन विद्वानों के माध्यम से अपभ्रंश के अनेकों भेद स्वीकार किये हैं। उदाहरण के लिए **विष्णुधर्मोत्तर** ने स्पष्ट रूप से कहा है कि शैली भेद के आधार पर अपभ्रंश के अनन्त भेद प्राप्त होते हैं। **मार्कण्डेय** ने स्वयं यह लिखा है कि कुछ लोग अपभ्रंश के सत्ताइस भेद मानते हैं। उन्होंने इन सत्ताइस भेदों के नाम भी प्रस्तुत किये हैं जिनमें से व्राचड़, वैदर्भ, उपनागर, नागर, लाट, पांचाल, मालव, आभीर, कैकय, टक्क, पाण्ड्य तथा कौन्तल जैसे भेद प्रसिद्ध हैं।

अपभ्रंश को भाषिक विकास की एक अवस्था मानने वाले भाषावैज्ञानिकों में **डॉ. धीरेन्द्र वर्मा** की चर्चा भी वांछनीय है। इन्होंने माना कि प्रत्येक प्राकृत की एक अपभ्रंश रही होगी। इस दृष्टि से ये हिन्दी देश में पाँच अपभ्रंशों की स्थिति स्वीकार करते हैं-

शौरसेनी प्राकृत > शौरसेनी अपभ्रंश

पैशाची प्राकृत > पैशाची अपभ्रंश

महाराष्ट्री प्राकृत > महाराष्ट्री अपभ्रंश

अर्धमागधी प्राकृत > अर्धमागधी अपभ्रंश

मागधी प्राकृत > मागधी अपभ्रंश

स्पष्ट है कि भाषावैज्ञानिकों में इन भेदों को लेकर पर्याप्त विवाद है। वास्तविकता यह है कि अपभ्रंश के साहित्य में ऐसे प्रमाण उपलब्ध नहीं हो पाये हैं जिनसे इन भेदों की पुष्टि की जा सके। इसके बावजूद यह कहना भी कठिन है कि ये भेद काल्पनिक हैं। संभावना के तौर पर इन भेदों को स्वीकार किया जा सकता है किंतु प्रामाणिकता के लिए हमें कुछ और भाषावैज्ञानिक प्रमाणों की प्रतीक्षा करनी होगी।

अभ्यास हेतु प्रश्न

1. अपभ्रंश की व्याकरणिक विशेषताएँ (टिप्पणी) **U.P.S.C. (Mains) 2007**
2. अपभ्रंश की व्याकरणिक विशेषताएँ बताइए। **U.P.S.C. (Mains) 2006**

अध्याय
7

अवहट्ट – मध्यकालीन आर्यभाषा की अंतिम अवस्था

अवहट्ट शब्द संस्कृत शब्द 'अपभ्रष्ट' का तद्भव रूप है। इस संबंध में एक समस्या यह है कि अपभ्रंश और अवहट्ट दोनों शब्द समानार्थी हैं क्योंकि दोनों ही 'भ्रष्ट भाषा' को व्यक्त करते हैं। इसलिए स्वाभाविक रूप से यह प्रश्न उठता है कि क्या अवहट्ट अपभ्रंश से अलग एक स्वतंत्र भाषा है? यह समस्या इसलिए और भी जटिल हो जाती है क्योंकि उस काल के जितने भी कवियों और विद्वानों ने तत्कालीन भाषाओं के नाम गिनाए हैं, उन्होंने या तो अपभ्रंश का नाम लिया है या अवहट्ट का; किसी ने भी इन दोनों का नाम एक साथ नहीं लिखा। इससे यह संभावना प्रतीत होने लगी कि ये दोनों नाम एक ही भाषा के हैं, जिनमें से कहीं किसी एक का प्रयोग होता है और कहीं दूसरे का।

आधुनिक भाषावैज्ञानिकों के अनुसंधानों से अब यह साबित हो चुका है कि अवहट्ट केवल एक भाषिक शैली नहीं बल्कि एक स्वतंत्र भाषा है। इस भाषा का काल लगभग नवीं से ग्यारहवीं शताब्दी के बीच स्वीकार किया गया है, यद्यपि साहित्यिक प्रयोग की दृष्टि से यह भाषा चौदहवीं शताब्दी तक दिखाई देती है। संदेशरासक तथा कीर्तिलता इस भाषा से संबंधित दो प्रमुख रचनाएँ हैं। इनके अतिरिक्त 'वर्ण रत्नाकर' और 'प्राकृत पैंगलम' के कुछ अंश, 'बाहुबलि रास' आदि भी इसके स्त्रोतों के रूप में स्वीकार किए जाने वाले ग्रंथ हैं। कीर्तिलता में तो विद्यापति ने स्पष्टत: संस्कृत की तुलना में अवहट्ट को वरीयता देने की बात कही है-

"सक्कय बाणी बुहजण भावइ।
पाउअं रस को मम्म नपावइ।
देसिल बअणा सभ जण मिट्ठा।
तं तै सण जंपऔ अवहट्ठा।।"

1. ध्वनि संरचना

(क) अवहट्ट में प्रयुक्त होने वाले स्वर निम्नलिखित हैं -

ह्रस्व - अ, इ, उ, ऍ, ओ ॅ दीर्घ - आ, ई, ऊ, ए, ऐ, ओ औ

स्पष्ट है कि अपभ्रंश के सभी स्वरों के अतिरिक्त अवहट्ट में दो अतिरिक्त स्वर मिलते हैं - **'ऐ'** और **'औ'**। संस्कृत में ये दोनों स्वर संध्यक्षर के रूप में थे, तथा इनका उच्चारण 'अइ' तथा 'अउ' के रूप में होता था। अवहट्ट में ये पहली बार सरल स्वर बनकर उभरे। जैसे - बैल, चौड़ा।

(ख) संस्कृत के शब्दों में **'ऋ' का प्रयोग** बना हुआ था किंतु तद्भव शब्दों मे 'ऋ' के स्थान पर 'अ', 'इ', 'ए' और 'उ' का प्रयोग तेजी से बढ़ने लगा था। यह प्रवृत्ति शुरु तो अपभ्रंश में ही हो गई थी, अवहट्ट में आकर और बढ़ने लगी। उदाहरण के लिए-

पृच्छ > पुच्छ हृदय > हिय

(ग) **अनुनासिकता** के संबंध में अपभ्रंश में तीन प्रवृत्तियाँ दिखती थीं। अवहट्ट में उनमें से एक प्रवृत्ति **'अकारण अनुनासिकता'** बनी हुई है। उदाहरण के लिए -

द्यूत > जूँआ निद्रा > निंद ग्रीवा > गींव

(घ) अवहट्ट की ध्वनि संरचना में एक खास प्रक्रिया दिखती है जिसे **'क्षतिपूरक दीर्घीकरण'** कहते हैं। संयुक्त व्यंजनों को सरल करने के लिए अपभ्रंश में दोनों व्यंजनों में से एक के द्वित्वीकरण की जो प्रक्रिया शुरू हुई थी, उसी का अगला चरण 'क्षतिपूरक दीर्घीकरण' है। द्वित्वीकरण की प्रक्रिया में संयुक्त व्यंजनों की जो क्षति हुई, उसकी पूर्ति के

लिए आदि स्वर को दीर्घ बनाने की प्रवृत्ति का विकास हुआ। यह प्रवृत्ति बहुत सीमित मात्रा में अपभ्रंश में भी थी, अवहट्ट में इसका प्रयोग बढ़ा और पुरानी हिन्दी में तो यह प्रमुख प्रवृत्ति बन गई। उदाहरण के लिए-

मित्त > मीत काम्म > काम अज्ज > आज हत्थ > हाथ

(ङ) स्त्रीलिंग शब्दों के अंत में 'आ' लगाने की प्रवृत्ति समाप्त होने लगी। जो स्त्रीलिंग शब्द आकारांत थे, वे भी प्राय: अकारांत होने लगे, जैसे-

शिक्षा > सीख भिक्षा > भीख

(च) अवहट्ट में स्वर गुच्छों में संधि या संकोच एक विशेष प्रवृत्ति है। स्वर गुच्छों की प्रवृत्ति अपभ्रंश में बढ़ी थी, जैसे- अंधकार का अंधआर, उपवास का उपआस। अवहट्ट में सरलीकरण के दूसरे चरण में ये स्वर गुच्छ इस प्रकार हो गए-

अंधआर > अंधार उपआस > उपास

इसी स्वर संकोच की प्रवृत्ति के कारण यह भी हुआ कि यदि किसी शब्द में एक जैसे स्वर दो बार आते थे तो उनमें से एक का लोप हो गया, जैसे -

धरित्रि > धरती गृहिणी > घरणी

(छ) अवहट्ट की **व्यंजन माला** इस प्रकार थी-

क, ख, ग, घ/ च, छ, ज, झ/ ट, ठ, ड, ढ, ण, ड़, ढ़/ त, थ, द, ध/ प, फ, ब, भ, म/ य, र, ल, व/ स, ह।

स्पष्ट है कि इसमें अपभ्रंश की व्यंजनमाला के अतिरिक्त 'ड़' और 'ढ़' दो नए व्यंजन विकसित हुए थे।

(ज) संस्कृत के **संयुक्त व्यंजनों का द्वित्वीकरण** प्राकृत से ही चला आ रहा था, जैसे - कर्पूर > कप्पूर। यह प्रवृत्ति अवहट्ट में भी चलती रही। कहीं-कहीं व्यंजनों में **'अकारण द्वित्वीकरण'** भी दिखता है जो अवहट्ट की अपनी विशेषता है, जैसे-

कमान > कम्माण दुकान > दोक्काण

(झ) शब्दों के मध्य में आने वाले **अल्पप्राण तथा महाप्राण व्यंजनों** में जो परिवर्तन अपभ्रंश में आने लगे थे, वही अवहट्ट में भी आ रहे थे किंतु इनकी मात्रा काफी बढ़ गई थी। 'क', 'च' तथा 'त' वर्ग के अल्पप्राण व्यंजनों क, ग, च, त, द का 'अ' या 'य' में रूपांतरण होता रहा तथा महाप्राण व्यंजनों ख, घ, थ, ध, भ आदि का ह में, जैसे -

यदि > जइ मुख > मुह मेघ > मेह

2. अवहट्ट की व्याकरणिक संरचना

अपभ्रंश की तरह अवहट्ट में भी व्याकरणिक कोटियों में तीव्र परिवर्तन घटे। ये परिवर्तन इस प्रकार हैं -

(क) संज्ञा तथा कारक व्यवस्था

संज्ञा के स्तर पर अपभ्रंश में चल रही सरलीकरण की प्रवृत्ति और अधिक विकसित हुई। अवहट्ट में इस दृष्टि से निम्नलिखित विशेषताएँ दिखाई देती हैं -

(अ) सभी प्रातिपदिक **स्वरांत** हो गए, व्यंजनांतता की प्रवृत्ति पूर्णत: लुप्त हो गई।

(आ) अधिकाधिक प्रातिपदिक **'अकारांत'** होने लगे। इससे रूप-रचना और सरल होने लगी।

(इ) **निर्विभक्तिक या लुप्तविभक्तिक प्रयोगों** की संख्या काफी बढ़ गई। इससे वाक्य में शब्दों का क्रम निश्चित होने लगा। ऐसे वाक्यों में न विभक्ति होती थी, न ही परसर्ग।

(ई) कुछ प्रयोग ऐसे दिखाई देते हैं जिनमें **विभक्तियाँ और परसर्ग** दोनों मिलते हैं, जैसे - "युवराजन्हि माँझ तान्हि केरो पुत्त"। इस उदाहरण में 'न्हि' विभक्ति तथा 'माँझ' और 'केरो' परसर्गों का प्रयोग द्रष्टव्य है।

(उ) कुछ प्रयोग ऐसे मिलते हैं जिनमें **स्वतंत्र रूप से परसर्ग** दिखाई देने लगे हैं। दरअसल, लुप्तविभक्तिक प्रयोगों से भाषा दुरुह होने लगती है, अत: परसर्गों का प्रयोग बढ़ना स्वाभाविक ही था। अवहट्ट में निम्नलिखित परसर्ग पाए जाते हैं-

कर्ता - ने अपादान - से, सउँ कर्म - केहि, केहिं संबंध - का, के, की, केर, केरा

करण - सउँ, से अधिकरण - माँझ, महिं संप्रदान - केहि, लागि

(ऊ) 'हि' विभक्ति या परसर्ग का प्रयोग प्रायः सभी कारकों में होता रहा। कुछ भाषावैज्ञानिकों ने तो इसी को अवहट्ट की सबसे बड़ी विशेषता माना है। अपभ्रंश का 'हिं' यहाँ प्रायः 'हि' हो गया है, जैसे-

जलहिं > जलहि मणहिं > मणहि

(ऋ) कर्ता की 'ए' विभक्ति को डॉ. तगारे ने अवहट्ट की सबसे प्रमुख विशेषता माना है।

(ख) लिंग संरचना

अपभ्रंश की भांति अवहट्ट में भी दो ही लिंग हैं - पुल्लिंग तथा स्त्रीलिंग। संस्कृत के नपुंसकलिंग को अपभ्रंश ने ही अस्वीकार करना आरंभ कर दिया था। अवहट्ट में भी यही प्रवृत्ति बनी रही। यह प्रक्रिया द्रुत गति से चलने के कारण एक समस्या पैदा हुई। नपुंसक लिंग के शब्दों के लिए नए लिंग का निर्धारण करना कठिन हो गया। जो नए-नए शब्द विदेशी संस्कृतियों से आ रहे थे, यह समस्या उन शब्दों के साथ भी थी। कुल मिलाकर, लिंग निर्धारण को लेकर इस भाषा में जटिलता बनी रही है।

(ग) वचन व्यवस्था

अपभ्रंश में संस्कृत के तीन वचनों के स्थान पर दो वचनों के प्रयोग की परंपरा का आरंभ हो गया था। इस परिवर्तन में द्विवचन का लोप हो गया था। अवहट्ट में सरलीकरण की यह परंपरा और आगे बढ़ी तथा बहुवचन के भी बहुत से शब्द एकवचन के रूप में प्रयुक्त होने लगे। इसके अतिरिक्त संज्ञा पदों के बहुवचन रूप के लिए 'न्ह' या 'न्हि' परसर्गों का प्रयोग होने लगा, जैसे - हाथन्ह, पुहुपुन्हि।

(घ) सर्वनाम व्यवस्था

सर्वनामों के क्षेत्र में अवहट्ट में कई नए प्रयोग देखने को मिलते हैं। इनकी एक संक्षिप्त सूची इस प्रकार है-

(अ) उत्तम पुरुष - 'मैं', 'हौं', 'मेरा'

(आ) मध्यम पुरुष- 'तुम', 'तुम्ह', 'तुम्हार', 'तोहार'

(इ) अन्य पुरुष- 'वह', 'उन्ह'

इन सर्वनामों से अवहट्ट की आधुनिक हिन्दी से निकटता आसानी से देखी जा सकती है।

(ङ) विशेषण

अवहट्ट में कृदंतीय विशेषणों का विकास तीव्र गति से होने लगा। इनकी विशेषता यह है कि ये विशेष्य के लिंग-वचन के अनुसार परिवर्तित होते हैं। संख्यावाचक तथा सार्वनामिक विशेषण आधुनिक हिन्दी के काफी निकट दिखाई देते हैं -

संख्यावाचक विशेषण : सात, दस, [illegible], अट्ठाइस

सार्वनामिक विशेषण : अइस, ऐसो, [illegible]स, उत्ता, जित्ता, कित्ता

(च) क्रिया संरचना

क्रिया की दृष्टि से भी अवहट्ट में [illegible] विकास दिखाई देता है। कृदंतों के सहारे क्रिया-निर्माण की परंपरा, जो अपभ्रंश में ही आरंभ हो गई थी, अवहट्ट में पू[illegible] विस्तार के साथ दिखाई देती है। अवहट्ट के क्रिया रूप आधुनिक हिन्दी की बोलियों से काफी मिलते हैं। क्रियाओं की सरलता द्रष्टव्य है-

धातु - चल, उठ, कह, [illegible]

भूतकालिक कृदंत - भेल, कहल [illegible]पूर्वी)

पूर्वकालिक क्रिया - उठि, देखिअ, [illegible]निअ

वर्तमानकालिक कृदंत - लागत, करत, करन्ता

प्रेरणार्थक क्रिया - पैठाव, करावइ

सहायक क्रिया - है, छै (पूर्वी), रहे

इनके अतिरिक्त संयुक्त क्रियाओं की संख्या अवहट्ट में बढ़ रही थी, जैसे- बोल जाअ, टुटि गेलि, भागए चाह।

(छ) काल रचना

अवहट्ट में काल-रचना के रूप हिन्दी की बोलियों की तरह विकसित होने लगे थे। पूर्वी हिन्दी और पश्चिमी हिन्दी की पृष्ठभूमि के रूप में पूर्वी और पश्चिमी अवहट्ट के रूप विकसित होते हुए दिखते हैं -

(अ) वर्तमान काल: **पूर्वी अवहट्ट**- जात, करत
पश्चिमी अवहट्ट- करन्ता, करन्ते

(आ) भूतकाल: **पूर्वी अवहट्ट**- चलल, गइल (ल-रूप)
पश्चिमी अवहट्ट- थका, थके

(इ) भविष्यकाल: **पूर्वी अवहट्ट**- खाइब, जाइब (ब-रूप)
पश्चिमी अवहट्ट- करहि, करिहउँ (ह-रूप)

3. अवहट्ट की शब्दकोशीय विशेषताएँ

अवहट्ट की शब्दावली की प्रमुख विशेषताएँ इस प्रकार हैं-

(अ) **तद्भव शब्दों** की संख्या अभी भी सबसे अधिक है। जो प्रक्रिया अपभ्रंश में तेजी से आरंभ हुई थी, वह अवहट्ट में भी चलती रही। उदाहरण के लिए- दिट्ठि, लोयण इत्यादि।

(आ) **देशज शब्दों** का काफी अधिक विकास इस काल में दिखाई देता है। खिखणी (लोमड़ी), गुंडा, हांडी जैसे देशज शब्द इसी युग में विकसित हुए हैं।

(इ) **विदेशी शब्द** अपभ्रंश की तुलना में काफी बढ़ गए हैं। ये सभी शब्द अरबी, फारसी और तुर्की परंपरा के हैं, जैसे- कसीदा, खुदा, चाबुक इत्यादि।

(ई) **तत्सम शब्द** भी अपभ्रंश के अंत में पुनः आने लगे थे। यही प्रवृत्ति अवहट्ट में भी बनी रही। उदाहरण के लिए- उत्तम, कटाक्ष, पृथ्वी आदि।

निष्कर्ष

इस प्रकार हम देखते हैं कि संस्कृत के सरलीकरण की जो परंपरा पालि से शुरु हो गई थी, वह अपभ्रंश में आकर हिन्दी के निकट होने लगी और अवहट्ट में उसके विकास की गति तीव्र हो गई। अवहट्ट की एक विशेषता यह मानी गई है कि इसमें हिन्दी की आधुनिक बोलियों का मूलभूत स्वरूप दिखाई देने लगता है।

अवहट्ट का एक वास्तविक उदाहरण देखकर हम इसकी प्रवृत्तियों का प्रत्यक्ष परिचय प्राप्त कर सकते हैं -

"संदेसड़उ सवित्थरउ, पर मइ कहण न जाइ।
जो काणंगुलि मूंदड़उ, सो बाहड़ी समाइ।।" *(संदेश रासक)*

अर्थात् संदेश तो बहुत विस्तृत है परंतु मुझसे कहते नहीं बन रहा; और यदि मैं कान में उँगली डाल लूँ तो वह संदेश बाहर ही रह जाएगा, मेरे अंत:करण को स्पर्श नहीं करेगा।

अभ्यास हेतु प्रश्न

1. अवहट्ट की व्याकरणिक विशेषताएँ (टिप्पणी) **U.P.S.C. (Mains) 2015**
2. अवहट्ट की विशेषताएँ (टिप्पणी) **U.P.S.C. (Mains) 2009**
3. अवहट्ट भाषा की विशेषताएँ (टिप्पणी) **U.P.S.C. (Mains) 2000**

अध्याय
8

पुरानी/प्रारंभिक हिन्दी

पुरानी हिन्दी अपभ्रंश तथा आधुनिक आर्यभाषाओं के बीच की कड़ी है। विभिन्न विद्वानों में इसके स्वरूप को लेकर मतभेद की स्थिति है। इस भाषा का काल लगभग तेरहवीं-चौदहवीं शताब्दी का है जब पहली बार हिन्दी तथा उसकी बोलियाँ स्वतंत्र रूप से प्रकट होने लगी थीं। इस भाषिक स्थिति को **चंद्रधर शर्मा गुलेरी** ने **'पुरानी हिन्दी'** नाम दिया है और उन्हीं के द्वारा किया गया यह नामकरण आज तक प्रचलित है। इस भाषा को अन्य विद्वानों ने अन्य नामों से व्यक्त किया है, जैसे **आचार्य द्विवेदी** इसे **'उत्तरकालीन अपभ्रंश'** कहते हैं, **पंडित वासुदेवशरण अग्रवाल** इसे **'उदीयमान हिन्दी'** कहते हैं, तो **डॉ. शिवप्रसाद सिंह** इसे **'परवर्ती संक्रांतिकालीन अपभ्रंश'** नाम देते हैं।

अध्ययन के स्रोत

आरंभिक हिन्दी के प्रामाणिक स्रोत कौन से हैं, यह एक विवादास्पद प्रश्न है। विद्वानों ने कई ऐसे स्रोत बताये हैं जिनमें सरहपा, कण्हपा आदि सिद्धों की रचनाएँ, जैन कवियों पुष्पदंत तथा स्वयंभू की रचनाएँ, विद्यापति के कुछ पद, मुल्ला दाउद की चंदायन, अमीर खुसरो के कुछ छंद तथा रोडा की 'राउलबेलि' आदि प्रमुख स्रोत माने गए हैं। प्राय: विद्वानों में इस बात पर सहमति है कि रोडा कृत 'राउलबेलि' इस भाषा का मूल स्रोत है जबकि शेष रचनाएँ कुछ अपवादों के साथ पुरानी या आरंभिक हिन्दी में शामिल हो सकती हैं।

1. ध्वनि संबंधी विशेषताएँ

(क) आरंभिक हिन्दी में **निम्नलिखित** स्वर मिलते हैं -

ह्रस्व - अ, इ, उ, ऍ, ऑ

दीर्घ - आ, ई, ऊ, ए, ऐ, ओ, औ

ऐ, औ का विकास अवहट्ट में हो गया था, पर अब ये ध्वनियाँ प्रयोग में और व्यापक हो गईं, जैसे-

मउर > मौर चखइ > चखै

(ख) सभी शब्द **स्वरांत** होने लगे। संस्कृत के व्यंजनांत शब्दों की परंपरा का ह्रास पालि-प्राकृत से ही आरंभ हो गया था, यहाँ आकर तो वह परंपरा लगभग लुप्त ही हो गई।

(ग) **ऋ** के स्थान पर अ, इ, उ, रि आदि ध्वनियाँ पहले से ही विकसित हो रही थीं। अब इनके बहुत से उदाहरण दिखाई देने लगे, जैसे-

वृद्ध > बुड्ढो मृत्यु > मीचु अमृत > अमिय

(घ) कुछ शब्दों में **स्वरों का ह्रस्वीकरण** हो गया, जैसे -

दीपावली > दिवारी आनंद > अनंद

(ङ) कुछ शब्दों में **स्वरों का दीर्घीकरण** होने लगा, जैसे -

मनुष्य > मानुख चित्र > चीत मित्र > मीत

(च) कई शब्दों में **स्वर-परिवर्तन** की मिसालें दिखाई देती हैं, जैसे-

दिवस > देवस नूपुर > नेउर शय्या > सेज

(छ) आमतौर पर शब्द **उकारांत** होने लगे। इसीलिए पुरानी हिन्दी को प्राय: **उकारबहुला भाषा** माना गया है, जैसे-

पापु, लेहु, कछु

(ज) कहीं-कहीं **अनुनासिकीकरण** के उदाहरण दिखाई देते हैं-

छाया > छाँह नग्न > नंग

(झ) पुरानी हिन्दी के व्यंजनों की सूची इस प्रकार है -

क ख ग घ ङ/ च छ ज झ ञ/ ट ठ ड ढ ण ड़ ढ़/ त थ द ध न/ प फ ब भ म/ य र ल व/ स ह

(ञ) तत्सम शब्दों में 'ष' सुरक्षित है, पर 'श' प्राय: 'स' के रूप में ही मिलता है -

शुण्ड > सूंड शङ्ख > संख

(ट) शब्दों के मध्य में आने वाले **अल्पप्राण व्यंजनों** का 'अ' या 'य' में तथा **महाप्राण व्यंजनों** का रूपांतरण 'ह' में पहले से ही हो रहा था। वह पुरानी हिन्दी में भी होता रहा-

राजा > राया कथा > कहा

नगर > नेअर मेघ > मेह

(ठ) पूर्वी हिन्दी और पश्चिमी हिन्दी में 'ण' और 'न' का अंतर इस काल में स्पष्ट होने लगा। पूर्वी हिन्दी में 'ण' का 'न' होने लगा जबकि पश्चिमी हिन्दी में 'न' का 'ण' होने लगा, जैसे -

पूर्वी हिन्दी - घृणा > घिन चरण > चरन गुण > गुन

पश्चिमी हिन्दी- सुजान > सुजाण तृन > तिण पठान > पठ्ठाण

(ड) **स्वरभक्ति** की प्रवृत्ति बनी हुई है जो अपभ्रंश से ही चली आ रही थी। इसके अंतर्गत व्यंजन संयोग को सरल करने के लिए बीच में स्वर लाया जाता है। उदाहरण के लिए-

प्रकार > परकार दर्शन > दरसन

(ढ) शब्द के आरंभ में आने वाले **संयुक्त व्यंजनों** में से एक व्यंजन ही रहा, जैसे -

स्कंध > कंधा प्रिय > पिय ग्राम > गाँव स्थल > थल

(ण) **क्षतिपूरक दीर्घीकरण** की प्रवृत्ति पुरानी हिन्दी की एक महत्त्वपूर्ण विशेषता है। अवहट्ट में संयुक्त व्यंजनों का द्वित्वीकरण होने लगा था। अब द्वित्व में भी केवल एक व्यंजन में स्वर बढ़ गया और दूसरा लुप्त होने लगा। इसी को क्षतिपूरक दीर्घीकरण कहते हैं -

पृष्ठ > पिट्ठ > पीठ पर्ण > पण्ण > पान

पुत्र > पुत्त > पूत

(त) क्ष पूर्वी हिन्दी में 'छ' तथा पश्चिमी हिन्दी में 'ख' होने लगा, जैसे-

लक्ष्मण > लछमन (पूर्वी हिन्दी) लक्ष्मण > लखन (पश्चिमी हिन्दी)

अक्षर > अच्छर (पूर्वी हिन्दी) अक्षर > आखर (पश्चिमी हिन्दी)

(थ) र और ल एक दूसरे के स्थान पर प्रयुक्त होते हैं, जैसे-

उज्ज्वल > ऊजर सरिता > सलिता

2. व्याकरणिक संरचना

संस्कृत की संयोगात्मक प्रकृति से हिन्दी की वियोगात्मक प्रकृति तक का मार्ग तय करने के लिए वियोगात्मकता की प्रवृत्ति पालि-प्राकृत से ही आरंभ हो गई थी। यह प्रवृत्ति पुरानी हिन्दी में बेहद स्पष्ट रूप से दिखाई देती है। पुरानी हिन्दी की व्याकरणिक संरचना की निम्नलिखित विशेषताएँ द्रष्टव्य हैं-

(क) संज्ञा व कारक व्यवस्था

संज्ञा के संबंध में निम्नलिखित तथ्य महत्त्वपूर्ण हैं-

(अ) संज्ञाओं के सविभक्तिक रूप मिलने लगभग समाप्त हो गए हैं। पुरानी हिन्दी में **परसर्गों का विकास** काफी तेजी से हुआ है। कुछ परसर्ग इस प्रकार हैं-

कर्ता - ने, नै संबंध - का, के, की, कै, केरा, केरी

संप्रदान - तईं, लागि करण-अपादान - से, तैं, ते, सौं, सउँ

कर्म - को, कों, कूँ अधिकरण - में, मैं, मँह, माँह, पर, पै

(आ) कुछ प्रयोग ऐसे हैं जिनमें **विभक्तियों का प्रयोग** हुआ है। 'हि' ऐसी विभक्ति है जिससे सभी कारकों का काम प्राय: चल जाता है, जैसे-

राजा गरबहि बोले नाहीं (करण) चरनोदक ले सिरहि चढ़ावा (अधिकरण)

(इ) कुछ प्रयोग ऐसे हैं जिनमें न परसर्ग है और न ही विभक्ति चिह्न, जैसे- 'बिरह तपाइ तपाइ', 'मान बढ़ावत'।

(ख) वचन व्यवस्था

पुरानी हिन्दी में बहुवचन बनाने के नियम स्पष्ट होने लगे। पुल्लिंग में बहुवचन के लिए 'ए' और 'अन' प्रत्यय जुड़ने लगे, जैसे-

बेटा > बेटे बेटा > बेटन

स्त्रीलिंग में एकवचन से बहुवचन बनाने के लिए कई प्रत्यय विकसित हुए, जैसे- अन, न्ह, ऐं, आँ इत्यादि। उदाहरण के लिए,

सखी > सखियन अँखिया > अँखियाँ वीथी > वीथिन्ह

(ग) लिंग संरचना

नपुंसक लिंग का अभाव पुरानी हिन्दी से पूर्व ही हो गया था। पुरानी हिन्दी में लिंग भेद के अनुसार शब्दों का स्वरूप निश्चित होने लगा। एक महत्त्वपूर्ण नियम यह है कि प्राय: स्त्रीलिंग शब्द 'इकारांत' होने लगे, जैसे -

आँखि, आगि, औरति, पापिनि, दुलहिनि

(घ) सर्वनाम

आधुनिक हिन्दी के सर्वनाम लगभग पूरी तरह से पुरानी हिन्दी में दिखाई देने लगते हैं। इनकी एक संक्षिप्त सूची इस प्रकार है-

	एकवचन	बहुवचन
उत्तम पुरुष -	मैं, हौं, मारे, मेरो, मेरा	हम, हमार, हमारो, हमारा
मध्यम पुरुष -	तूँ, तुहि, तोर, तेरो, तेरा	तुम, तुम्ह, तुम्हारा, तिहारे
अन्य पुरुष -	सो, सेइ	ते, वे, वैं

इनके अतिरिक्त कुछ और उदाहरण द्रष्टव्य हैं -

प्रश्नवाचक सर्वनाम - को, कौन, क्या, काहे

संबंधसूचक सर्वनाम - जो, जेइ, जिस, जिन्हैं

अनिश्चयवाचक सर्वनाम - कोई, किसी, कुछ

(ङ) विशेषण

पुरानी हिन्दी के विशेषणों के संबंध में मूल विशेषता यह है कि संज्ञा के अनुसार विशेषणों के लिंग-वचन इत्यादि परिवर्तित होने लगे हैं। उदाहरण के लिए,

पीतवसन > पीरो वसन उच्च > ऊँच/ऊँचो/ऊँची/ऊँचे

(च) क्रिया रचना

पुरानी हिन्दी की क्रिया-रचना के संबंध में निम्नलिखित विशेषताएँ महत्त्वपूर्ण हैं-

(अ) संज्ञार्थ क्रियाओं या क्रिया संज्ञाओं के अंत में 'ण' या 'णु' परसर्ग लगाने की प्रवृत्ति है, जैसे-चलण, पढणु, कहण।

(आ) तिङंत क्रिया रूपों के स्थान पर कृदंत क्रिया रूपों की प्रमुखता है, जैसे- चलिहै, चलहुँ, करिहै, करउँ।

(इ) पूर्वकालिक क्रियाओं के लिए प्राय: 'इ' परसर्ग का प्रयोग होता है, जैसे- चलि, पठि, उठि, करि।

(ई) संयुक्त क्रियाओं की प्रवृत्ति जो अवहट्ट से ही तेजी से विकसित होने लगी थी, और बढ़ती गई है, जैसे- 'उड़ि चलइ', 'कहे जात हैं', 'देखौ चाहत', 'सुनि सकत'।

3. पुरानी हिंदी की शब्दकोशीय विशेषताएँ

इस युग में देशज शब्द-भंडार में तीव्र वृद्धि होने लगी थी। यह काल वही है जब विभिन्न देशी भाषाओं का विकास हो रहा था, अत: हजारों देशज शब्द भाषा में शामिल हुए, जैसे- चूड़ा, घाघरा, ठमकना, घनघन।

दूसरी महत्त्वपूर्ण बात यह है कि इस्लाम के आगमन के बाद दोनों संस्कृतियों के साहचर्य की लंबी परंपरा स्थापित हो गई थी जिसके कारण विदेशी शब्दों की मात्रा तेजी से बढ़ने लगी। एक हजार से अधिक विदेशी शब्द इस युग में भाषा में शामिल हो गए थे, जैसे- दीदार, सहनाई, जंग, दरबार।

समग्र रूप से यह कहा जा सकता है कि पुरानी हिन्दी वास्तविक रूप से हिन्दी की आरंभिक प्रवृत्तियों को धारण करने वाली भाषिक स्थिति है। सरलीकरण और वियोगीकरण की जो परंपरा पालि, प्राकृत से ही आरंभ और अपभ्रंश, अवहट्ट में काफी विकसित हो गई थी, वह पुरानी हिन्दी में आकर सीधे-सीधे आधुनिक आर्यभाषा के रूप में प्रकट हुई।

अभ्यास हेतु प्रश्न

1. आरंभिक हिन्दी की प्रमुख विशेषताओं का परिचय दीजिए। **U.P.S.C. (Mains) 2015**
2. आरम्भिक हिन्दी के विकास को स्पष्ट करते हुए उसकी प्रवृत्तियों की सोदाहरण विवेचना कीजिये। **U.P.S.C. (Mains) 2009**
3. आरम्भिक हिन्दी की व्याकरणिक विशेषताएँ (टिप्पणी) **U.P.S.C. (Mains) 2008**

अध्याय

9 अपभ्रंश, अवहट्ट और पुरानी हिन्दी- तुलनात्मक अध्ययन

तुलना का आधार	अपभ्रंश	अवहट्ट	पुरानी हिन्दी
कालगत अन्तर	7वीं से 9वीं शताब्दी (लगभग)	9वीं से 11 शताब्दी (लगभग)	12वीं से 14वीं शताब्दी (लगभग)
	ध्वनियों का अन्तर		
(क) ऐ, औ का प्रयोग	ऐ और औ का अभाव	ऐ और औ मिलने लगते हैं, यथा बैल, चौड़ा	ऐ और औ का अत्यधिक प्रयोग हुआ है, यथा मौर, चखै
(ख) ऋ का प्रयोग	ऋ का अ, इ, उ, ए में परिवर्तन होता है, जैसे- कृष्ण > कण्ह, ऋण > रिण, गृह > गेह	इसी प्रवृत्ति का और विकास हुआ।	विकास की यही प्रक्रिय चलती रही।
(ग) अनुनासिकता	अनुनासिकीकरण एवं निरनुनासिकीकरण की प्रवृत्ति दिखती है, जैसे- चलहि > चलहिं (अनुनासिकीकरण) अश्रु > अंसु (अनुनासिकीकरण) सिंह > सीह (निरनुनासिकीकरण) विंशति > वीस (निरनुनासिकीकरण)	केवल अनुनासिकीकरण की प्रवृत्ति	अनुनासिकीकरण की प्रवृत्ति बनी हुई है किन्तु कम मात्रा में।
(घ) स्वरभक्ति (व्यंजन-संयोग को सरल बनाने के लिए व्यंजनों के मध्य स्वर लाने की प्रक्रिया)	अपभ्रंश में दिखाई देने लगती है, जैसे- उदाहरण - क्रिया > किरिया	अधिक मात्रा में मिलती है।	और अधिक मात्रा में मिलने लगती है।
(ड़) स्वर संयोग (जहाँ दो स्वर एक साथ हों)	स्वर संयोग की प्रक्रिया काफी मात्रा में दिखाई देती है, जैसे- अंधकार > अंधआर	स्वर संयोग से शब्दों का समझने में कठिनाई पैदा होने लगी जिससे स्वरगुच्छों में संकोच की प्रवृत्ति पैदा हुई, जैसे - अंधआर > अंधार	कोई विशेष प्रवृत्ति नहीं दिखाई देती।
(च) स्वरलोप (स्वर का समाप्त हो जाना)	आरम्भिक व अन्त्य स्वरों के लुप्त होने की प्रवृत्ति है, जैसे- लज्जा > लाज, अरण्य > रण्ण	विशेषरूप से स्त्रीलिंग आकारान्त शब्दों के अन्तिम 'आ' का 'अ' हो जाना, जैसे- शिक्षा > सीख, भिक्षा > भीख	कोई विशेष प्रवृत्ति नहीं।
(छ) द्वित्वीकरण व दीर्घीकरण की प्रवृत्ति	संयुक्त व्यंजनों के स्थान पर द्वित्वीकरण करने की प्रवृत्ति दिखती है जैसे- चक्र > चक्क, कर्म > कम्म	क्षतिपूरक दीर्घीकरण का आरंभ होता है, जैसे- कम्म > काम, धम्म > धाम	क्षतिपूरक दीर्घीकरण का और अधिक विकास।
(ज) व्यंजनों का प्रयोग	इसमें निम्नलिखित सात व्यंजनों का अभाव है- ड़, ढ़, ऋ, श, ष	ड़, ढ़ का विकास हुआ परन्तु शेष का नहीं।	श, ष का विकास नहीं हुआ, शेष पाँच व्यंजनों का विकास हुआ।

(झ) 'ट' वर्ग प्रधानता	अपभ्रंश एक 'ट' वर्ग प्रधान भाषा है।	अवहट्ट में 'ट' वर्ग की व्यापकता है किन्तु सीमित मात्रा में।	पुरानी हिन्दी में भी अवहट्ट जैसी स्थिति है।
(ट) अल्पप्राण व्यंजनों मेंपरिवर्तन की प्रकृति	अल्पप्राण व्यंजन (जैसे - क, ग, च, ज, त, द) 'अ' या 'य' में परिवर्तित होते हैं, जैसे - वचन > वयण, नगर > णयर	यह प्रवृत्ति बढ़ती गई।	यह प्रवृत्ति और अधिक बढ़ती गई।
(ठ) महाप्राण ध्वनियों में परिवर्तनों की प्रकृति	महाप्राण व्यंजनों (जैसे- ख, घ, छ, झ, भ, ध) का 'ह' में परिवर्तन होने लगा, जैसे - दधि > दहि मुख > मुह	इस प्रवृत्ति में वृद्धि हुई।	इस प्रवृत्ति में और वृद्धि हुई।
(ड) 'क्ष' में परिवर्तन	क्ष का ख्ख हो गया। उदाहरण - द्राक्षा > दाख्ख	यही प्रवृत्ति बनी रही।	क्ष दो रूपों में विकसित हुआ- ख (पश्चिमी रूप) तथा छ (पूर्वी रूप)। उदाहरण - लक्ष्मण > लखन (पश्चिमी), लछमन (पूर्वी)
(ढ) 'ण' तथा 'न' की उपलब्धता	अपभ्रंश में 'ण' मिलता है, 'न' नहीं मिलता।	यही प्रवृत्ति बनी रही।	'न' और 'ण' दोनों मिलते लगते हैं। पूर्वी पुरानी हिन्दी में 'न' व पश्चिमी पुरानी हिन्दी में 'ण' की व्यापकता दिखाई देती है।
		व्याकरणगत अन्तर	
(क) संज्ञा तथा कारक व्यवस्था	1. निर्विभक्तिक प्रयोग आरम्भ हो गये।	1. यही प्रवृत्ति बनी रही।	1. यही प्रवृत्ति बनी रही।
	2. सभी प्रातिपदिक पहले स्वरान्त, फिर अकारान्त हुए।	2. यही प्रवृत्ति बनी रही।	2. यही प्रवृत्ति बनी रही।
	3. परसर्गों का आरम्भिक विकास होने लगा तथा सम्बन्ध कारक में 'का' परसर्ग का विकास अपभ्रंश की प्रमुख घटना है।	3. परसर्गों का विकास और बढ़ा। कर्त्ता कारक के लिए 'ने' तथा करण व अपादान के लिए 'से' परसर्ग का विकास प्रमुख घटनाएँ हैं।	3. परसर्गों का और विकास हुआ। कर्म कारक के लिए 'को' तथा अधिकरण के लिए 'पर' परसर्ग का विकास प्रमुख घटनाएँ हैं।
	4. 'हिं' विभक्ति से प्राय: सभी कारकों का काम लिया जाता है।	4. हिं विभक्ति का प्रयोग बना रहा किन्तु कर्त्ता की 'ए' विभक्ति का अत्यधिक प्रयोग डॉ. तगारे के अनुसार इस काल की प्रमुख घटना है।	4. यही दोनों प्रवृत्तियाँ बनी रहीं।
(ख) लिंग व्यवस्था	संस्कृत के तीन लिंगों के स्थान पर दो लिंगों (पुल्लिंग व स्त्रीलिंग) की व्यवस्था, यद्यपि नागर अपभ्रंश में नपुंसक लिंग कहीं-कहीं बना रहा।	दो लिंगों की व्यवस्था ही बनी रही। नपुंसक लिंग समाप्त होने लगा।	वही + स्त्रीलिंग शब्द इकारान्त होने लगे।

(ग) वचन व्यवस्था	द्विवचन का लोप हो गया। संस्कृत के तीन वचनों स्थान पर दो ही वचन (एकवचन एवं बहुवचन) बचे।	वही + संज्ञा बहुवचन के के लिए न्ह, न्हि परसर्गों का प्रयोग होने लगा, जैसे- हाथन्ह, पुहुपुन्हि।	वही + बहुवचन बनाने के नियम निश्चित होने लगे। पुल्लिंग संज्ञाओं के लिए 'ए' व 'अन' तथा स्त्रीलिंग संज्ञाओं के लिए 'अन', 'न्ह' प्रत्ययों का प्रयोग व्यापक रूप से होने लगा। उदाहरण- बेटा > बेटे (पुल्लिंग) सखी > सखिअन (स्त्रीलिंग)
(घ) सर्वनाम व्यवस्था	हिन्दी के सर्वनामों के आरम्भिक चिन्ह दिखाई देने लगे, जैसे 'तुम्हे' (मध्यम पुरूष बहुवचन कर्ता)। इसके अतिरिक्त 'महार' और 'तुहार' जैसे सर्वनाम दिखाई देते हैं।	वही + मेरा, मैं, तुम, वह और उन्ह जैसे सर्वनाम भी दिखाई देने लगे।	सर्वनामों का अत्यधिक विकास हुआ। इस काल में आधुनिक हिन्दी के प्राय: सभी सर्वनाम दिखाई देते हैं जैसे- वे, कौन, जो, तेरा इत्यादि।
(ङ) विशेषण व्यवस्था	संख्यावाची विशेषणों का विकास विशेषत: हुआ, उदाहरण - दस, बारह, इगारह आदि।	कृदंतीय विशेषणों की परंपरा का विकास होने लगा। 'आइस', 'उत्त', 'कित्ता' जैसे सार्वनामिक विशेषण भी विकसित हुए।	कृदंतीय विशेषणों की वृद्धि होने लगी, उदाहरण - पीतवसन > पीरोवसन।
(च) क्रिया संरचना	कृदंतीय क्रियाओं का आरम्भ इस काल की विशेष घटना है, उदाहरण - देखत, चाखत।	(क) कृदंतीय क्रियाओं का तीव्र विकास हुआ।	(क) कृदंतीय क्रियाओं व संयुक्त क्रियाओं का तीव्र विकास हुआ।
		(ख) संयुक्त क्रियाओं का आरम्भ हुआ, जैसे - 'बोलि जाअ', 'टुटि गलि' इत्यादि।	(ख) संज्ञार्थ क्रियाओं या क्रियार्थ संज्ञाओं के लिए 'ण' प्रत्यय निश्चित होने लगा, जैसे- चलण, पठण।
			(ग) पूर्वकालिक क्रियाओं के लिए 'इ' प्रत्यय निश्चित होने लगा, जैसे - गावइ, सोवइ।
(छ) काल संरचना	वर्तमान काल संस्कृत की परम्परा में, भूतकाल कृदंत की परम्परा में, तथा भविष्यकाल दोनों परम्पराओं में चलता है। भविष्यकाल के लिए दो रूप मिलते हैं - 'स' रूप और 'ह' रूप, जैसे - चलिसई, चलिहइ	1. कृदंतीय प्रयोगों की अधिकता है। 2. पूर्वी और पश्चिमी हिन्दी में अन्तर स्पष्ट होने लगे। पूर्वी अवहट्ट - जात ('त' रूप) (वर्तमान) चलल ('ल' रूप) (भूतकाल) खाइब ('ब' रूप) (भविष्य काल) पश्चिमी अवहट्ट-	प्राय: अवहट्ट के समान प्रवृत्तियाँ दिखाई देती हैं।

		करन्ता ('न्ता' रूप) (वर्तमान) थका ('क' रूप) (भूतकाल) करहि ('ह'रूप) (भविष्य काल)	
शब्दकोशीय विशेषताएँ			
(क) तद्भव शब्द	तद्भव शब्द सबसे अधिक हैं क्योंकि अपभ्रंश का विकास ही संस्कृत के तद्भवीकरण की परंपरा में हुआ है।	तद्भव शब्द सर्वाधिक बने रहे किन्तु उनका अनुपात कम हो गया।	तद्भव शब्द अभी भी सर्वाधिक बने रहे किन्तु अनुपात कुछ और कम हो गया।
(ख) देशज शब्द	देशज शब्दों का विकास आरम्भ हुआ (विशेषत: कुछ ध्वन्यात्मक शब्द, जैसे - किल-किल, खुण-खुण; तथा कुछ क्रियाएँ, जैसे - तडपडई (तड़पता है), थक्कई (थकता है) इत्यादि।	देशज शब्दों का विकास और बढ़ा।	देशज शब्दों का विकास और बढ़ा।
(ग) विदेशज शब्द	अरबी-फारसी परम्परा के विदेशज शब्दों का आगमन हो ना आरंभ हुआ जैसे- कमाल, नौबति, तहसील आदि।	विदेशज शब्द बढ़ते रहे।	विदेशज शब्दों की मात्रा और बढ़ी।
(घ) तत्सम शब्द	सरलीकरण से पैदा हुई दरुहता तथा ब्राह्मण वर्ग के पुनरुत्थान के कारण अपभ्रंश के अन्तिम काल में तत्समी शब्दों का पुन: विकास हुआ।	प्राय: अपभ्रंश जैसी स्थिति ही बनी रही।	प्राय: अवहट्ट जैसी स्थिति ही बनी रही।

अभ्यास हेतु प्रश्न

1. अपभ्रंश और अवहट्ट का पारस्परिक संबंध (टिप्पणी) **U.P.S.C. (Mains) 2014**
2. अपभ्रंश और अवहट्ट-तुलनात्मक विवेचन कीजिये। **U.P.S.C. (Mains) 2010**

अध्याय
10

हिन्दी के विकास में अपभ्रंश/अवहट्ट का योगदान

अपभ्रंश प्राचीन आर्यभाषा संस्कृत तथा आधुनिक आर्यभाषा हिन्दी के बीच की कड़ी है। इस दृष्टि से यह स्वाभाविक है कि आधुनिक हिन्दी की सारी मूलभूत विशेषताएँ अपभ्रंश पर ही आधारित हैं। वस्तुत: ध्वनि संरचना, व्याकरणिक संरचना, शब्द भंडार तथा साहित्यिक प्रवृत्तियाँ - किसी भी आधार पर हम अपभ्रंश के अभाव में आधुनिक हिन्दी की कल्पना नहीं कर सकते।

हिन्दी के विकास में अपभ्रंश के योगदान को विशेष रूप से दो प्रमुख स्तरों पर समझा जा सकता है- (क) भाषा के स्तर पर, (ख) साहित्य के स्तर पर।

10.1 हिन्दी भाषा को अपभ्रंश का योगदान

(क) मूल प्रवृत्ति

किसी भी भाषा का विकास प्राय: संयोगात्मक से वियोगात्मक रूप की ओर होता है। संयोगात्मक भाषा में प्राय: कारकीय विभक्तियाँ या प्रत्यय प्रातिपदिक में ही शामिल होते हैं जबकि वियोगात्मक भाषा में ये सभी पक्ष अलग-अलग होने लगते हैं। संस्कृत एक संयोगात्मक भाषा थी जबकि हिन्दी एक वियोगात्मक भाषा है। वियोगात्मकता की यह प्रवृत्ति हिन्दी को मूलत: अपभ्रंश से ही मिली है।

(ख) ध्वनि संरचना

ध्वनि संरचना के स्तर पर हिन्दी ने संस्कृत की जटिल ध्वनियों को प्राय: अस्वीकार किया है तथा संस्कृत से भिन्न कुछ सहज ध्वनियों को स्वीकार किया है। ये सारी प्रक्रियाएँ आमतौर पर अपभ्रंश काल में ही पूरी हुई थीं, जैसे-

(अ) संस्कृत की **दीर्घ ॠ (ॠ), ह्रस्व ऌ** और **दीर्घ ॡ** जैसी ध्वनियाँ अपभ्रंश में ही लुप्त हो गयी थीं, ये हिन्दी में भी नहीं हैं।

(आ) **ह्रस्व ऋ** का विकास हिन्दी में अ, इ, उ, ए तथा रि के रूप में हुआ है (तत्सम शब्दों को छोड़कर), यह प्रवृत्ति भी अपभ्रंश की ही देन है, जैसे-

कृष्ण > किशन मातृ > मात

(इ) संस्कृत के आरंभिक तथा अन्तिम **हलन्त व्यंजनों** का अपभ्रंश में प्राय: अभाव होता रहा। यह स्थिति हिन्दी में भी बनी हुई है, जैसे-

जगत् > जग महान् > महा स्रोत > सोता घृत > घी

(ई) ट वर्ग में **ड़** और **ढ़** - ये दो ध्वनियाँ अपभ्रंश में पहली बार विकसित हुई थीं। ये ध्वनियाँ सीधे-सीधे अपभ्रंश की हिन्दी को देन हैं, जैसे-

ड़ > लड़का, भेड़िया इत्यादि

ढ़ > बढ़िया, कढ़ाई इत्यादि

(उ) अपभ्रंश में संस्कृत की कुछ ध्वनियों के रूप परिवर्तित होने लगे थे, जैसे - श/ष का स, क्ष का छ/ष, त्र का त इत्यादि। ये रूप आधुनिक हिन्दी तक भी प्राय: बने रहे हैं। उदाहरण के लिए-

पक्ष > पंख मित्र > मीत साक्षी > साखी

(ऊ) नासिक्य व्यंजनों (ङ, ञ, ण, न, म) के जटिल संयोग को सरल बनाने के लिए अपभ्रंश में **अनुस्वार** के प्रयोग की परंपरा आरंभ हुई जो आज तक चली आयी है जैसे-

गङ्गा > गंगा नीलकण्ठ > नीलकंठ प्रत्यञ्चा > प्रत्यंचा

(ऋ) **विसर्ग के लोप** की जो प्रवृत्ति अपभ्रंश में दिखायी देती है, वह हिन्दी में भी बनी रही है, जैसे-

गुरुः > गुरु

(ए) संयुक्त व्यंजनों के परवर्ती व्यंजन के **द्वित्वीकरण** तथा पुनः **क्षतिपूरक दीर्घीकरण** की प्रक्रिया में हिन्दी के बहुत से शब्द अपभ्रंश ने निर्मित किये हैं, जैसे -

अद्य > अज्ज > आज कर्म > कम्म > काम

(ऐ) हिन्दी के स्वरों में 'एँ' तथा 'ओँ' ध्वनियाँ मूलतः अपभ्रंश की ही देन हैं। अपभ्रंश से पहले ये ध्वनियाँ प्रायः उपलब्ध नहीं होतीं।

(ग) व्याकरणिक संरचना

व्याकरण के स्तर पर भी अपभ्रंश ने हिन्दी के विकास में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है। इस योगदान का विश्लेषण निम्नलिखित बिन्दुओं के माध्यम से किया जा सकताहै-

(अ) संस्कृत में पुल्लिंग और स्त्रीलिंग के साथ **नपुंसक लिंग** के रूप भी चलते थे। अपभ्रंश ने नपुंसक लिंग को अस्वीकार कर दिया। हिन्दी में भी नपुंसक लिंग का अभाव है।

(आ) संस्कृत में एकवचन और बहुवचन के साथ **द्विवचन** का प्रयोग भी होता था। अपभ्रंश में द्विवचन बहुवचन में ही शामिल हो गया। हिन्दी में भी यही स्थिति है।

(इ) **कारकीय रूप रचना** की दृष्टि से अपभ्रंश का योगदान सबसे महत्त्वपूर्ण माना जाता है। इसमें निर्विभक्तिक पदों के प्रयोग के साथ-साथ परसर्गों के प्रयोग की परम्परा शुरू हुई थी। हिन्दी की वाक्य संरचना भी मूलतः परसर्गों के प्रयोग पर आधारित है। हिन्दी के कई प्रमुख परसर्गों का विकास अपभ्रंश से ही हुआ है, जैसे-

सईं > से केर > का, के, की

(ई) **क्रियाओं** की रचना में अपभ्रंश ने संस्कृत की तिडन्त परम्परा के स्थान पर कृदंतों के प्रयोग पर बल दिया। वर्तमान हिन्दी भी एक कृदंत प्रधान भाषा है।

(उ) संस्कृत में प्रायः **संयुक्त क्रियाओं** की परम्परा अधिक विकसित नहीं हो सकी थी। अपभ्रंश में संयुक्त क्रियाओं की परम्परा का तीव्र विकास हुआ और यही परम्परा आगे चलकर हिन्दी के विकास में महत्त्वपूर्ण रूप से बढ़ी। उदाहरण के लिए -

रटन्तउ जाई (अपभ्रंश) > रटता जाता है (हिन्दी)

(ऊ) हिन्दी की अधिकांश **क्रियाएँ** तद्भव हैं। स्वाभाविक रूप से इस तद्भवीकरण का श्रेय अपभ्रंश को है। विशेष रूप से सामान्य वर्तमान काल की क्रियाएँ सीधे-सीधे अपभ्रंश से प्रभावित दिखती हैं। उदाहरण -

करई > करै करऊँ > करौ

(ऋ) हिन्दी के अधिकांश **सर्वनामों** का विकास अपभ्रंश की परम्परा से ही हुआ है। उदाहरण के लिए -

मई > मैं तूई > तू

(ए) हिन्दी के **विशेषण** भी सीधे-सीधे अपभ्रंश से प्रभावित नज़र आते हैं। विशेष रूप से यह बात सार्वनामिक विशेषणों तथा संख्यावाची विशेषणों पर लागू होती है। उदाहरण के लिए-

जइस > जैसा एक्क > एक

अइस > ऐसा चउगुण > चौगुना

(घ) शब्द भंडार

शब्द भंडार के स्तर पर भी अपभ्रंश ने हिन्दी के विकास में अत्यधिक योगदान दिया है। इस सम्बन्ध में अपभ्रंश का योगदान तीन बिन्दुओं पर देखा जा सकता है-

(अ) अपभ्रंश ने संस्कृत के जटिल शब्दों के रूप को परिवर्तित किया तथा शब्द भंडार के स्तर पर सरलीकरण की प्रक्रिया को आरंभ किया।

(आ) सरलीकरण की प्रक्रिया का अनिवार्य परिणाम यह था कि हिन्दी भाषा को **तद्भव शब्दों** का एक विशाल भंडार मिला। आज भी हिन्दी अपनी मूल प्रकृति में तद्भव भाषा नज़र आती है। इसके अधिकांश प्रचलित शब्द तद्भव ही हैं, जैसे- काम, आज, हाथ, बाजा, दही, घी, मूरत इत्यादि।

(इ) देशज शब्दों का विकास भी अपभ्रंश में शुरू हुआ। प्रायः घरेलू जीवन से सम्बन्धित शब्द या ध्वन्यात्मक शब्द इसके भीतर आते हैं। उदाहरण के लिए, तड़पड़ई, किल-किल, घूंघट, मुग्ग इत्यादि।

10.2 हिन्दी साहित्य को अपभ्रंश का योगदान

जिस तरह से अपभ्रंश ने हिन्दी भाषा को विकसित करने में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है, उसी प्रकार उसने हिन्दी साहित्य के विकास में भी महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है। इस योगदान को हम दो स्तरों पर समझ सकते हैं- कथ्य के स्तर पर, तथा शिल्प के स्तर पर।

(क) कथ्य के स्तर पर योगदान

कथ्य के स्तर पर योगदान का अर्थ यह है कि अपभ्रंश ने संस्कृत साहित्य से अलग, लोकजीवन पर आधारित साहित्य की शुरुआत की जिसमें स्थापित होने वाली कुछ विशेष परम्पराएँ या रीतियाँ आगे चलकर हिन्दी साहित्य में भी बनी रहीं। ऐसी प्रमुख प्रवृत्तियाँ निम्नलिखित हैं -

(अ) **वीरगाथाओं** की रचना पहली बार अपभ्रंश के चारण कवियों के यहाँ दिखती है। वीरगाथा की यह परंपरा हिन्दी साहित्य के आदिकाल तथा रीतिकाल में विशेष काव्यधारा के रूप में प्रकट हुई।

(आ) अपभ्रंश में **चरित काव्यों** की रचना की प्रवृत्ति का विकास हुआ जिसका विशेष प्रयोग कुछ रासो तथा जैन काव्यों में दिखायी देता है। हिन्दी में भी यह परंपरा आधुनिक काल तक लगातार बनी रही है। भक्तिकाल का सर्वाधिक सफल महाकाव्य 'रामचरितमानस' तथा आधुनिक काल का प्रतिनिधि महाकाव्य 'कामायनी' भी चरितमूलक ही हैं।

(इ) अपभ्रंश में **धर्म** से सम्बन्धित साहित्यिक रचनाओं का प्रणयन बड़ी मात्रा में हुआ। इस काल में 'स्वयंभू' ने 'पउम चरिउ' (पद्म चरित) की रचना की जिसका स्पष्ट प्रभाव रामचरितमानस पर दिखता है। पुष्पदंत ने कृष्ण लीला का वर्णन किया जिसका संबंध कुछ मात्रा में कृष्ण भक्ति काव्य परंपरा से जोड़ा जा सकता है।

(ई) अपभ्रंश में **सिद्धों और नाथों** ने जो रचनायें कीं, उनमें 'संधा भाषा' का प्रयोग किया गया तथा सामाजिक असमानताओं और नारी के माया रूप पर कड़ी चोट की गयी। आश्चर्यजनक रूप से ठीक यही प्रवृत्तियाँ भक्तिकाल के सन्त साहित्य में दिखायी देती हैं।

(उ) अपभ्रंश में इन सभी परंपराओं के साथ-साथ एक छोटी सी परंपरा **लोककाव्य** की भी चल रही थी जिसमें संदेश रासक, बीसलदेव रासो आदि रचनायें आती हैं। यह परम्परा किसी न किसी रूप में आज तक चली आ रही है। पन्द्रहवीं शताब्दी में 'ढोला मारू रा दूहा' इसके एक विशेष उदाहरण के रूप में सामने आने वाली रचना है।

(ख) शिल्प के स्तर पर योगदान

अपभ्रंश ने परवर्ती हिन्दी साहित्य को न केवल संवेदना के स्तर पर बल्कि **शिल्प के स्तर** पर भी प्रभावित किया है। अपभ्रंश के शिल्प संबंधी योगदानों को कई बिन्दुओं के माध्यम से समझा जा सकता है-

(अ) संस्कृत साहित्य में वर्णिक छन्दों की बहुलता दिखायी देती थी जबकि अपभ्रंश में पहली बार **मात्रिक छन्दों की शुरुआत** हुई। इससे स्वाभाविक रूप से तुकान्त की परम्परा शुरू हुई। तबसे आज तक हिन्दी में मूल रूप से मात्रिक छन्दों का ही प्रयोग होता आया है। अपभ्रंश के प्रमुख छन्दों में गाहा, दूहा तथा छप्पय की चर्चा विशेष रूप से की जाती है। यह आश्चर्यजनक तथ्य है कि हिन्दी के दो सर्वाधिक प्रचलित छन्द दोहा तथा चौपाई मूलतः अपभ्रंश से ही हिन्दी को मिले हैं।

(आ) काव्य रूपों के स्तर पर भी हिन्दी साहित्य पर अपभ्रंश का स्पष्ट प्रभाव परिलक्षित होता है। अपभ्रंश काल में प्रसिद्ध काव्य रूपों में रास, फाग, चाँचरी, कुलक तथा पद महत्त्वपूर्ण हैं। इनमें से कई काव्य रूपों का अनुकरण बाद के कवियों ने किया है। कबीर के साहित्य में चांचरी के कुछ उदाहरण मिलते हैं। इसी प्रकार तुलसीदास की रचना 'रामलला नहछू' पर 'फाग' काव्यरूप का प्रभाव दिखता है। सूर और मीरा ने भक्तिकाल के अन्य कवियों के साथ-साथ अत्यधिक पदों की रचना की है।

(इ) हिन्दी साहित्य को अपभ्रंश का एक बड़ा योगदान **काव्य-रूढ़ियों के विकास** से संबंधित है। हिन्दी साहित्य में जो काव्य रूढ़ियाँ सामान्यत: दिखायी देती हैं, उनका सम्बन्ध संस्कृत साहित्य से कम, अपभ्रंश साहित्य से अधिक है। प्रबन्ध काव्य की शुरुआत में मंगलाचरण, दुर्जन निन्दा और सज्जन प्रशंसा; मुक्तक काव्य में कवियों द्वारा अपना नाम प्रयोग करने की परम्परा तथा नख-शिख वर्णन जैसी काव्य रूढ़ियाँ अपभ्रंश साहित्य में ही व्यापक रूप से प्रयुक्त होने लगी थीं।

(ई) अपभ्रंश का एक और महत्त्वपूर्ण योगदान दोहा, चौपाई की कड़वकबद्ध शैली विकसित करने में है जिसमें प्राय: सात चौपाइयों के बाद एक दोहा आता है। यह शैली भक्तिकाल में जायसी और तुलसी जैसे महान कवियों के यहाँ भी मिलती हैं।

समग्र रूप से यह कहा जा सकता है कि हिन्दी भाषा तथा साहित्य के वर्तमान स्वरूप को विकसित करने में अपभ्रंश ने असीमित योगदान किया है।

अभ्यास हेतु प्रश्न

1. हिन्दी के विकास में अपभ्रंश के योगदान का आकलन कीजिये। **U.P.S.C. (Mains) 2015**
2. हिन्दी के विकास में अपभ्रंश की भूमिका स्पष्ट कीजिये। **U.P.S.C. (Mains) 2011**
3. हिन्दी भाषा के विकास में अपभ्रंश के योगदान का विवेचन कीजिये। **U.P.S.C. (Mains) 2008**
4. हिन्दी भाषा के विकास में व्याकरणिक और शाब्दिक दृष्टियों से अपभ्रंश और अवहट्ट भाषाओं के योगदान पर प्रकाश डालिए। **U.P.S.C. (Mains) 2002**

अध्याय

11 मध्यकाल में अवधी का साहित्यिक भाषा के रूप में विकास

11.1 भौगोलिक परिचय

अवधी भाषा, जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है, उत्तर प्रदेश के अवध क्षेत्र से संबंधित है। उत्तर प्रदेश के अंतर्गत जो क्षेत्र लखनऊ-फैजाबाद के आसपास का है, उसे ही अवध कहा जाता है। इसका क्षेत्र लखनऊ, उन्नाव, रायबरेली, लखीमपुर खीरी, सीतापुर, गोण्डा, बहराइच, प्रतापगढ़, सुल्तानपुर, बाराबंकी, फैजाबाद, फतेहपुर आदि जिलों को मिलाकर निर्मित होता है। इसे 'पूर्वी' कोसली, बैसवाड़ी आदि उपनामों से भी जाना जाता है। 'अवध' शब्द अयोध्या से निकला है- ऐसा प्राय: सभी भाषा वैज्ञानिक मानते हैं। अयोध्या के रूप में जो नगर विख्यात है, वह भी इसी भाषा क्षेत्र के केंद्र में स्थित है।

11.2 अवधी भाषा का उद्भव व स्रोत

अवधी भाषा के उद्गम को लेकर भाषाविदों में विवाद की स्थिति है। दरअसल, जिस काल में मध्यकालीन आर्यभाषाएँ जन्म ले रही थीं, उस आरंभिक काल (पालि-प्राकृत काल) में पूर्वी उत्तर प्रदेश का यह क्षेत्र 'कोसल' के नाम से विख्यात था। बौद्ध साहित्य व जैन ग्रंथों में भी कोसल प्रदेश का ज़िक्र कई स्थानों पर किया गया है। इस क्षेत्र में ईसापूर्व दो सौ वर्ष से लेकर ईसा की दूसरी शताब्दी तक अर्धमागधी प्राकृत ने जनभाषा का स्वरूप ग्रहण किया। इसी प्रक्रिया में जो जनभाषाएँ विकसित हुईं, उनमें से एक का नाम कोसली पड़ा। अपभ्रंश-अवहट्ट काल (छठी से बारहवीं सदी) के मध्य जब आधुनिक आर्यभाषाओं के जन्म की पूर्वपीठिका बनी, तब यही कोसली अथवा उसकी कोई समकालीन समीपवर्ती लोकभाषा स्थिर और स्पष्ट होकर अवधी के उद्गम का आधार बन गई। इस संबंध में अभी तक कोई प्रामाणिक बात तो नहीं कही जा सकती है, पर प्राय: यह संभावना व्यक्त की जाती है कि कोसली का आधुनिक रूप ही अवधी है।

भाषा के रूप में अवधी का पहला स्पष्ट उल्लेख अमीर खुसरो की रचना 'खालिकबारी' में मिलता है। इस रचना में खुसरो ने अपने समय की भारतीय भाषाओं का ज़िक्र करते हुए 'अवधी' का स्पष्ट उल्लेख किया है। खुसरो का काल 1253-1325 ई. माना जाता है, अत: स्पष्ट है कि अवधी एक भाषा के रूप में 13वीं शती के अंत में संभवत: स्थापित हो चुकी थी। इससे पूर्व भी रोडा कृत 'राउलवेल' में कन्नौज की नायिका के वर्णन के प्रसंग में तथा दामोदर पंडित कृत 'उक्ति-व्यक्ति प्रकरण' में अवधी भाषा के निर्माणकालीन स्वरूप का परिचय होता है, पर इन दोनों रचनाओं का काल प्रामाणिक रूप से ज्ञात नहीं है।

11.3 सूफी काव्यधारा में अवधी का विकास

साहित्यिक भाषा के रूप में अवधी के तीव्र विकास का संबंध एक सुयोग से है। भारत की विभिन्न लोकभाषाओं में संस्कृत परंपरा से ही विकसित प्रेमकथाओं को रचने की प्रवृत्ति काफी अधिक व्याप्त थी। ऐसी प्रेमकथाओं में उर्वशी-पुरुरवा आख्यान, उषा-अनिरुद्ध कथा, मालती-माधव कथा आदि काफी प्रचलित थीं। चौदहवीं शती में सुयोग यह हुआ कि इन प्रेमाख्यानों के लिए अवधी भाषा और दोहा-चौपाई शैली रूढ़ सी हो गई। यह सुयोग होने का मूल कारण यह था कि पूर्वी उत्तर भारत में रहने वाले सूफी-प्रेमाश्रयी संतों ने अपने रहस्यवादी सिद्धांतों की अभिव्यक्ति भारत में पूर्णत: प्रचलित प्रेमाख्यानों के माध्यम से करनी आरंभ की। इस सुयोग ने अवधी को हिन्दी देश की सभी लोकभाषाओं में शिरोमणि बना दिया।

पहली रचना, जो संपूर्णत: अवधी में है और जिसने अवधी को एक झटके में लोकभाषा के पद से उठाकर साहित्यिक भाषा के रूप में प्रतिष्ठित करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई, **मुल्ला दाउद** की **'चन्दायन'** या **'लोरिकहा'** है। इस रचना में ठेठ अवधी का प्रयोग किया गया है। लोकभाषा कितनी मधुर हो सकती है, इसका प्रमाण चंदायन है। कवि स्वयं 'चंदायन' के प्रभाव के संबंध में कहता है-

"दाऊद कवि जो चांदा गाई।
जेई रे सुना सो गा मुरझाई।।"

इसी परंपरा में अगली रचना **कुतुबन** की **'मृगावती'** है जिसकी रचना 1503 ई. में हुई। किंतु सूफी प्रेमाख्यानों की इस समूची परंपरा को सबसे अधिक समृद्धि प्रदान करने वाले कवि **'मलिक मुहम्मद जायसी'** हैं जिन्होंने ठेठ अवधी का प्रयोग करते हुए चौदह ग्रंथों की रचना की। इनकी रचनाओं में **'पदमावत'** सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण है जिसकी रचना 1527 ई. से 1540 ई. के बीच हुई। इनकी भाषा भी ठेठ अवधी है जिसमें संस्कृत की तत्सम पदावली का प्रयोग नहीं के बराबर हुआ है। यह अवश्य है कि ठेठ अवधी के बीच-बीच में कहीं-कहीं प्राकृत-अपभ्रंश के कुछ प्रयोग (जैसे- दिनकर > दिनिअर, पृथ्वी > पुहुमी) तथा कहीं-कहीं पूर्वी-पश्चिमी कई प्रकार के पद इनकी भाषा में दिख जाते हैं। काव्य को ज्यादा से ज्यादा जनग्राह्य बनाने के लिए कवि ने तद्भव शब्दों का व्यापक इस्तेमाल किया है और इसके लिए 'ऊ' ध्वनि को शब्दों के साथ जोड़कर उन्हें अवधी बना लिया है, जैसे- मिठासू, छहूँ, जोगू, नरेसू, इंदू। पदमावत की एक अन्य विशेषता अवधी लोकजीवन के मुहावरों और लोकोक्तियों का अत्यंत सधा हुआ प्रयोग है, जैसे -''हिय फटा'' तथा "सूधी अंगुरी न निकसै घीऊ"।

जायसी का प्रयास संपूर्ण रचनाकर्म में यही रहा है कि भाषा अपने ठेठपन, देसीपन को खोए बिना, मिठास और लोक संस्कृति को धारण करते हुए कथ्य को व्यक्त करे। लोक जीवन की स्वाभाविकता उनके शब्द-चयन में स्पष्टत: दिखाई देती है। उदाहरण के लिए, जायसी ने एक जगह 'दवंगरा' शब्द का प्रयोग किया है जो अवध प्रदेश में मानसून की प्रथमवर्षा के लिए प्रयुक्त होता है। यह शब्द पढ़ते ही अवध की लोक-संस्कृति का चित्र आँखों के समक्ष सजीव हो उठता है।

इसके अतिरिक्त, जायसी की काव्यभाषा की बिंब योजना तथा अप्रस्तुत योजना अद्भुत हैं। बिंब योजना की सफलता मूलत: लोक बिंबों के निर्माण पर ही टिकी है। नागमती के वियोग प्रसंग की ये पंक्तियाँ अद्भुत रूप से बिंबात्मक हैं-

"जेठ जरै जग बहै लुवारा। उठै बवंडर धिकै पहारा।
चारिहु पवन झकोरै आगि। लंका दाहि पलंका लागि।।"

पदमावत में प्रयुक्त अवधी की सबसे बड़ी विशेषता इसकी मिठास है। रचनाकार ने भाषा का ऐसा प्रयोग किया है कि भाषा सीधे संवेदना से जुड़ने में समर्थ हो सकी है। उदाहरण के लिए-

"यह तन जारौं छार के कहौं कि पवन उड़ाव।
मकु तेहि मारग उड़ि परै कंत धरै जहँ पाँव।।"

भाषा की इसी मिठास को महसूस करके आचार्य शुक्ल को कहना पड़ा था कि- "जायसी की भाषा बहुत ही मधुर है पर उसका माधुर्य निराला है। वह माधुर्य भाषा का माधुर्य है, संस्कृत का माधुर्य नहीं। वह संस्कृत की कोमलकांत पदावली पर अवलंबित नहीं। उसमें अवधी अपनी निज की स्वाभाविक मिठास लिए हुए है।... अवधी की खालिस, बेमेल मिठास के लिए पदमावत का नाम बराबर लिया जाएगा।"

पदमावत के उपरांत भी सूफियों की प्रेमाख्यान परंपरा लंबे समय तक चलती रही। इस परंपरा में **उसमान** की **चित्रावली** (1613 ई.), **शेख नबी** की **'ज्ञानदीप'** (1619 ई.), कासिम शाह की **'हंस जवाहिर'** (1736 ई.), **नूर मुहम्मद** की **'इंद्रावती'** (1744) और **'अनुराग बाँसरी'** (1764), **शेख निसार** की **यूसुफ जुलेखा** (1790 ई.) आदि रचनाएँ प्रमुख हैं। थोड़ा और आगे देखें तो कुछ उदाहरणों के रूप में यह परंपरा 20वीं शताब्दी के आरंभ तक खिंचती चली आई है। 20वीं शती में **ख्वाजा अजमद** ने **'नूरजहाँ'** (1905), **शेख रहीम** ने **'भाषा प्रेम रस'** (1915 ई.) तथा **कवि नसीर** ने **'प्रेमदर्पण'** (1917 ई.) की रचना की है।

जायसी के बाद के कवियों की भाषा भी अवधी ही रही है पर इस भाषा में क्रमश: परिवर्तन आता गया है। ऐसा देखा गया है कि तुलसीदास के बाद के सूफी कवियों की भाषा में तत्सम तथा अर्द्धतत्सम शब्दों के प्रयोग की प्रवृत्ति बढ़ी है। इसका कारण संभवत: रामचरितमानस का प्रभाव हो सकता है। यह प्रभाव सबसे अधिक नज़र आता है नूर मुहम्मद की 'अनुराग बाँसरी' में। शुक्लजी ने भी यह बात साफ कही है कि अनुराग बाँसरी और सब सूफी रचनाओं से बहुत अधिक संस्कृतगर्भित है। इस भाषा का एक उदाहरण द्रष्टव्य है-

"यह बाँसुरी सुनै सो कोई। हिरदय स्रोत खुला जेहि होई।।"

शेख नबी ने तो साफ कहा है -

"ललित रूप जो आखर गढ़े।
चुनि चुनि अमरकोस से काढ़े।"

11.4 रामभक्ति काव्यधारा में अवधी का विकास

मध्यकाल में अवधी के काव्य भाषा के रूप में विकसित होने के पीछे एक और घटना का उल्लेख महत्त्वपूर्ण है। यह है- पंद्रहवीं शताब्दी में विशिष्टाद्वैतवादी दार्शनिक आचार्य रामानुज के शिष्य **रामानंद** द्वारा 'रामावत' संप्रदाय का प्रवर्तन। इस वैचारिक आंदोलन का उत्तर भारत पर इतना गहरा प्रभाव पड़ा कि एक ओर कबीर जैसे निर्गुण कवि रामकथा-प्रसंग अपने काव्यों में समाविष्ट करने लगे तो दूसरी ओर एक रामकाव्यधारा का ही प्रवर्तन हो गया। यह काव्यधारा अवधी में ही पुष्पित-पल्लवित हुई और इस धारा ने अवधी के भीतर निहित सौंदर्य को नए तरीके से प्रस्तुत किया। इस धारा के प्रधान कवि **तुलसीदास** हैं जिनकी सर्वाधिक प्रमुख कृति **'रामचरितमानस'** हिन्दी ही नहीं, विश्व की सभी भाषाओं में सफलतम तथा श्रेष्ठतम ग्रंथों में से एक है।

अब तक अवधी में काव्य रचना करने वाले कवि प्रायः उस सूफी परंपरा से थे जिनको कुछ हद तक अपभ्रंश और फारसी काव्य परंपरा का तो ज्ञान था, पर जो संस्कृत काव्य परंपरा से अनभिज्ञ थे। तुलसी के रूप में अवधी को एक ऐसा कवि मिला जिसने संस्कृत परंपरा का भी गहरा अध्ययन किया था। शुक्ल जी कहते हैं-

"जायसी की पहुँच अवध में प्रचलित लोकभाषा के भीतर बहते हुए माधुर्य स्रोत तक ही थी, पर गोस्वामी जी की पहुँच दीर्घ संस्कृत कवि-परंपरा द्वारा परिपक्व वाणी के भांडागार तक भी पूरी-पूरी थी।"

तुलसी और प्रकारांतर से रामकाव्यधारा के कवियों की काव्यभाषा की मूल विशेषता, जो उन्हें सूफियों की काव्यभाषा से अलग करती है, तत्सम शब्दों का प्रचुर प्रयोग है। ये तत्सम शब्द अवधी को संस्कृत नहीं बनाते क्योंकि गोस्वामी जी तत्सम शब्दों को तत्सम रूप में ही प्रयुक्त नहीं करते बल्कि उनके संभावित अवधी रूप में प्रयुक्त करते हैं। उदाहरण के लिए 'हंसगामिनी', 'अमृत', 'करुणा', और 'वन' शब्द उनके यहाँ क्रमशः 'हंसगवनि', 'अमिय', 'करुना' और 'बन' हो जाते हैं। इस प्रक्रिया में तत्सम शब्दों का अवधीकरण हो जाता है और वे बेमेल प्रतीत नहीं होते, जैसे-

"लोचनु जल रहे लोचन कोना।
जैसे परम कृपन कर सोना।"

तुलसी आदि रामभक्त कवियों की भाषा में अवधी केवल तत्सम शब्दों तक सिमट गई हो, ऐसा नहीं है। एक ओर तुलसी ने अपने समय में प्रचलित अरबी-फारसी शब्दों से परहेज़ नहीं किया है तो दूसरी ओर देशज-तद्भव शब्द भी उनके यहाँ काफी मात्रा में हैं। उदाहरण के लिए फारसी शब्द 'गरीबनेवाज़' तुलसी द्वारा राम के लिए प्रयुक्त सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण विशेषण है। इसके अतिरिक्त, बकसीस, बेकार, कसक आदि विदेशी शब्द भी तुलसी काव्य में आए हैं। भोजपुरी, राजस्थानी तथा खड़ी बोली के भी कई प्रयोग उन्होंने किये हैं और ठेठ अवधी के देशज शब्दों के भी जैसे- बांझ, अहेर आदि।

तुलसी की भाषा की एक महत्त्वपूर्ण विशेषता 'ध्वनि-मैत्री' का उनका अप्रतिम कौशल है। डॉ. रामविलास शर्मा ने कहा है कि *"भाव के साथ ध्वनि की तरंगें उठाने-गिराने में वह अद्वितीय हैं।"* इसी गुण की प्रशंसा करते हुए डॉ. विश्वनाथ त्रिपाठी अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'लोकवादी तुलसी' में कहते हैं कि *"शब्दों को ध्वनि योजना द्वारा अर्थ की झंकार देने में तुलसीदास जैसी निपुणता हिन्दी के किसी अन्य कवि के पास नहीं है।"* ध्वनि-मैत्री या नाद-सौंदर्य से अर्थ की अभिव्यंजना कैसे हो उठती है, यह इस उदाहरण में द्रष्टव्य है-

"सिथिल अंग पग मग डग डोलहिं।
बिहबल बचन पेम बस बोलहिं।"

तुलसी की भाषा का एक और गुण है-अलंकार प्रयोग की निपुणता। उन्होंने अनुप्रास अलंकार का प्रयोग इतनी सहजता से किया है कि आचार्य शुक्ल को कहना पड़ा- *"अनुप्रास के तो वह बादशाह थे।"* तुलसी के अनुप्रास चमत्कार पैदा नहीं करते बल्कि गहरा प्रभाव छोड़ते हैं, जैसे- *"जलचर, थलचर, नभचर नाना"* एवं *"कहि कहि कोटिक कपट कहानी"* इत्यादि। इसके अतिरिक्त, उपमा, सांगरूपक जैसे अलंकार तथा अद्भुत प्रतीक व बिंब योजना तुलसी के साहित्य में प्रयुक्त अवधी भाषा को गहरे कलात्मक स्तर पर आसीन करा देती है। उपमानों की नवीनता की मांग प्रयोगवादी कवियों ने तो आधुनिक काल में की, तुलसी भक्तिकाल में ही यह मांग कर रहे थे-

"सब उपमा कबि रहे जुठारी। केहि पटतरौं बिदेह कुमारी।"

तुलसी के बाद विशाल रामकाव्य परंपरा काव्य भाषा के स्तर पर धीरे-धीरे अवधी से दूर होकर ब्रजभाषा के साथ जुड़ने लगी। इसका कारण यह था कि कृष्ण भक्ति काव्यधारा का प्रचलन बढ़ने के साथ-साथ श्रृंगार व लोकरंजन जैसे तत्व साहित्य के केंद्र में आए। इन तत्वों की कलात्मक तथा चमत्कारपूर्ण अभिव्यक्ति करने की क्षमता अधिक होने के कारण अब ब्रजभाषा हिन्दी साहित्य के केंद्र में आने लगी।

11.5 हिंदू प्रेमाख्यानकारों की अवधी

मध्यकाल में अवधी का काव्यभाषा के रूप में विकास इन दो काव्य परंपराओं के रूप में हुआ था। इनके अतिरिक्त कुछ कवि ऐसे भी थे जिन्हें कुछ विद्वानों ने **'हिंदू प्रेमाख्यानकार'** कहा है। इन कवियों में नरपतिव्यास, गोवर्धनदास तथा दुखहरन जैसे कवि प्रमुख हैं। इनकी भाषा में अपभ्रंश, ब्रजभाषा का प्रभाव तो है ही, संस्कृत का बढ़ता हुआ प्रभाव भी स्पष्ट परिलक्षित होता है। इन कवियों की भाषा में व्यक्तिगत अंतर काफी अधिक हैं, फलत: कोई विशेष परंपरा नहीं बन सकी है। दुखहरन की निम्नलिखित चौपाई से इस धारा की भाषा का सामान्य परिचय प्राप्त किया जा सकता है-

"रोवत नैन रकत कै धारा।
टेसु फूलि बन भा रतनारा।
जौ सिंगार कोई बरबस करई।
अनिल समान होई सोजरई।।"

11.6 समकालीन स्थिति

20वीं सदी के प्रथम दशक (सन् 1919 ई.) के बाद अवधी साहित्य में खासी कमी आ गई है। खड़ी बोली के हिन्दी प्रदेश की मुख्य भाषा बनने तथा मानक भाषा के विकास के बाद अवधी साहित्य प्राय: नहीं लिखा जा रहा है। आज भी कुछ कवि हैं जो अवधी में कविताओं की रचना कर रहे हैं। इन कवियों में बलभद्र प्रसाद दीक्षित, वंशीधर शुक्ल, चंद्रभूषण द्विवेदी आदि प्रमुख हैं। यह दुर्भाग्य की बात है कि वर्तमान हिन्दी समीक्षा हिन्दी की बोलियों में लिखे जा रहे साहित्य की ओर प्राय: प्रवृत्त नहीं हो पा रही है।

11.7 काव्यभाषा के रूप में अवधी का भाषायी/स्वरूपगत विकास

सूफियों की अवधी की भाषायी विशेषताएँ

(क) **ध्वनि संरचना** के स्तर पर प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखितथीं-

(अ) व > ब → वर्षा > बरखा

(आ) ष > ख → षट > खट

(इ) ऋ > रि → ऋतु > रितु

(ई) स्वर भक्ति → प्रकार > परकार

(उ) क्षतिपूरक दीर्घीकरण → चित्त > चीत

(ख) प्राकृत और अपभ्रंश के कई शब्दों का प्रयोग इस आरम्भिक अवस्था में होता रहा है, जैसे - दिनिअर (दिनकर), पुहुमी (पृथ्वी)।

(ग) पुल्लिंग संज्ञाएँ प्राय: उकारान्त (पिउ), आकारान्त (राजा, धुआँ); अकारान्त (काग) हैं जबकि स्त्रीलिंग संज्ञाएँ प्राय: इकारान्त हैं, जैसे- 'धनि'।

(घ) **एकवचन से बहुवचन** बनाने के लिए इसमें 'न', 'नि' तथा 'न्ह' परसर्गों का प्रयोग होता है, जैसे - "रतन छुआ जिन्ह हाथन्ह सेतीं।" द्विवचन का प्रयोग पूर्णत: समाप्त हो गया है।

(ङ) आमतौर पर कर्त्ता की **'हि' विभक्ति** से सभी कारकों का काम लिया जाता है। यह प्रवृत्ति अपभ्रंश-अवहट्ट से ही चली आ रही थी। उदाहरण के लिए- (i) 'राजा गरवहि बोले नाहिं' (करण), (ii) 'जेहि जिउ दीन्ह कीन्ह संसारू' (कर्ता)।

(च) **प्रमुख परसर्ग** इस प्रकार हैं -

कर्ता	-	0, ने	संबंध	-	क, के, कर, की
सम्प्रदान	-	कहँ, लागि	करण, अपादान	-	सों, सेतीं, सैं
कर्म	-	कहँ, कों, कै	अधिकरण	-	महँ, माँह, मै, पर

(छ) **सर्वनामों की संरचना** प्राय: इस प्रकार रही -

उत्तम पुरुष	-	मइँ, हौं, मोर	मध्यम पुरुष	-	तूँ, तैं, तुम्ह, तुम
अन्य पुरुष	-	वह, ओइ, सो	अन्य सर्वनाम	-	जौं, जेहिं, किछु, कोउ, काहु

(ज) **क्रियाओं की संरचना** इस प्रकार हो-

(अ) वर्तमान काल के लिए 'त' रूप वाली क्रियाएँ प्रचलित थीं, जैसे- करत, बैठत।

(आ) भूतकाल के लिए प्राय: 'स' रूप तथा 'व' रूप दिखते हैं, जैसे- कीन्हेसि, आव।

(इ) भविष्यकाल के लिए 'ब' तथा 'ह' रूप का प्रचलन मिलता है, जैसे- जाब, चलब, चलहिं, करहि, कहेहुँ इत्यादि। उदाहरण के लिए, *"पदमावती सों कहेहुँ विहंगम।"*।

(ई) सहायक क्रियाओं के स्तर पर भा (हुआ), हुत (था), अहा (था), आहि या अहे (है) इत्यादि का प्रचलन रहा, जैसे- *"ओहि माँझ भा दूलह सोई।"*

(उ) संयुक्त क्रियाओं का भी प्रचलन था जो सहायक क्रियाओं से मिलकर निर्मित होती थीं, जैसे- *"कहन लागे, लाखि पाए।"*

(झ) **विशेषण** के लिंग वचन विशेष्य के लिंग-वचन के अनुसार परिवर्तित होते हैं, जैसे- झीना > झीनी, उजियारा > उजियारी आदि। संख्यावाचक विशेषण इस प्रकार के हैं-एक, दुइ, चारि, सोरह इत्यादि।

(ञ) **अव्यय** या **अविकारी पद** इस प्रकार थे- कत, ऊपर, आगे-पीछे, अस, तस, जस, अब, तब, फिर आदि।

राम काव्यधारा की अवधी की प्रमुख विशेषताएँ

(क) ध्वनियाँ: तत्सम ध्वनियों को प्राय: अवधी रूप में ढाल दिया गया है। इस प्रक्रिया में मुख्य ध्वनि परिवर्तन इस प्रकार हैं- व > ब (विश्वामित्र > बिस्वामित्र), श > स (कौशल्या > कोसल्या), क्ष > ख (लक्ष्मण > लखन), ण > न (रावण > रावन)।

(ख) शब्दावली: संस्कृत के शब्दों को अवधी के प्रवाह में ढालकर प्रयुक्त किया गया है, जैसे- अमृत > अमिय, वन > बन। शब्दों के प्रयोग में समन्वयवादी प्रवृत्ति रामभक्ति काव्यधारा की अवधी की प्रमुख विशेषता है। इसमें भोजपुरी, राजस्थानी और खड़ी बोली के साथ-साथ अरबी-फारसी शब्दों का प्रयोग हुआ है। उदाहरण के लिए, अरबी-फारसी के खलक, गुलाम, साहिब, गरीबनेवाज आदि द्रष्टव्य हैं।

(ग) कारक व्यवस्था:

(अ) कहीं-कहीं निर्विभक्तिक प्रयोग दिखाई देते हैं जिनमें न विभक्ति है, न परसर्ग; जैसे -

1. *"राम दरस मिटि गई कलुसाई।"* (संबंधकारक व करण कारक का लोप)
2. *"मै चरित संछेपहिं कहा।"* (कर्ता कारक तथा कर्म कारक का लोप)

(आ) 'हि' विभक्ति के प्रयोग से प्राय: कई कारकों का काम चलता है। यह प्रवृत्ति अपभ्रंश-अवहट्ट से ही चली आ रही थी।

(इ) आधुनिक आर्यभाषा के अनुकूल परसर्गों का तीव्र विकास रामकाव्यधारा की अवधी में दिखाई देता है। प्रमुख परसर्ग इस प्रकार हैं-

कर्ता	-	×	संबंध	-	कै, केर, केरा
सम्प्रदान	-	लागि, हित	करण, अपादान	-	सई, सैं, तैं
कर्म	-	का, कहँ	अधिकरण	-	पर, में, मँह, माँहि

(घ) सर्वनाम: इस काव्यधारा में भाषा को व्यापक बनाने के लिए खड़ी बोली के सर्वनामों वह, तुम्हारा, हमारा इत्यादि का प्रयोग भी किया गया है। इस काव्यधारा के अपने सर्वनाम इस प्रकार हैं -

	एकवचन	**बहुवचन**
उत्तम पुरुष	मैं, मोहि	हम
मध्यम पुरुष	तु, तुम्ह	तुम्हार
अन्य पुरुष	सो, वह	ते

अन्य सर्वनाम - जो, को, कौन, जिन्ह, कवन, कोई, किछू

उदाहरण- (अ) *"जैहों अवध कवन मुँह लाई"*

(आ) जो नहिं करै राम गुन गुनगाना, जीह सो दादुर जीह समाना।

(इ) जिन्ह हरि कथा सुनी नहिं काना।

(ङ) क्रिया व्यवस्था

वर्तमान काल: करत, देखत जैसे प्रयोग प्रमुख हैं, जैसे- "करत बतकही अनुज सन, मन सिय रूप लोभान"।

भूत काल: देखिके, करिके, पावा, आवा जैसे प्रयोग प्रचलित हैं।

भविष्य काल: इसके लिए प्राय: दो रूप प्रचलित हैं, 'ब' रूप (करब, जाइब) तथा 'ह' रूप (देखिहै, जाइ हैं)।

सहायक क्रिया: सहायक क्रियाओं के वर्तमानकालिक रूपों में आटे-बाटे का प्रयोग समाप्त हो गया है। इनके स्थान पर है, अहै जैसी क्रियाएँ मिलती हैं। भूतकालीन सहायक क्रियाओं में भये, भवा, भवे, भव जैसे प्रयोग विशेष रूप से दिखते हैं, जैसे -

"भये सब साधु किरात किरातिनी।
राम दरस मिटि गई कलुषाई।"

संज्ञार्थ क्रियाओं या क्रियार्थ संज्ञाओं में 'ब' रूप दिखाई देता है, जैसे - देखब, करब इत्यादि।

संयुक्त क्रियाएँ कम हैं किंतु दिखाई देती हैं।

(च) वचन - एकवचन से बहुवचन बनाने के लिए न, न्ह, न्हि प्रत्ययों का प्रयोग किया जाता है, जैसे-"सेवइ सबन्हि मान मद नाहीं।"

(छ) अव्ययों या **अविकारी पदों** में क्रियाविशेषण काफी महत्त्वपूर्ण हैं, जैसे-

कालवाचक - अब, तब, अबहूँ, तबहूँ, कबहूँ, पहिले।

स्थानवाचक - इहाँ, कहाँ, तहाँ, तहँ, इत, उत।

प्रकारवाचक - इमि, जिमि, किमि, जस, कस।

11.8 अवधी की शक्तियाँ और सीमाएँ

शक्तियाँ

1 अवधी गम्भीर, उदात्त तथा मर्यादापूर्ण अभिव्यक्ति के लिए बेहद अनुकूल भाषा है। इसका मुख्य कारण यह है कि यह न तो ब्रजभाषा की तरह अत्यंत कोमल और संगीतात्मक बोली है और न ही खड़ी बोली या हरियाणी की तरह अत्यंत कठोर। अवधी की मूल प्रकृति ही ऐसी है कि इसमें गति की तीव्रता कम है और ठहराव अधिक। इसके अतिरिक्त, यह अयोध्या और उसके निकटवर्ती जिस स्थान पर बोली जाती है वह क्षेत्र राम के मिथक से जुड़ा है। इस क्षेत्र की संस्कृति मर्यादा और लोकरक्षण जैसे मूल्यों को संस्कार के स्तर पर धारण करती है। उस क्षेत्र की बोली होने के कारण अवधी स्वाभाविक रूप से मर्यादा और औदात्य को धारण करती है।

2. लचीलापन अवधी का दूसरा बड़ा गुण है। इसका अर्थ है कि यह अन्य भाषाओं के शब्दों को आसानी से आत्मसात् कर पाती है। रामकाव्यधारा में इसी लचीलेपन के कारण अवधी को संस्कृत शब्दावली का माधुर्य उपलब्ध हो सका। तुलसी ने हज़ारों तत्सम शब्दों को अवधी शब्दों के ध्वनि साम्य के आधार पर इस प्रकार रूपांतरित किया कि वे अवधी के ही शब्द हो गए।

3. अवधी भाषा का एक प्रमुख गुण उसमें निहित ठहराव और बांधने की क्षमता है जिसका परिणाम यह हुआ कि प्रबंध काव्यों के लिए अवधी एक सहज भाषा बन गई। प्रबंध कविता सिर्फ शैल्पिक कौशल से नहीं रची जाती है, उसके लिए ज़रूरी होता है कि रचनाकार की मानसिकता तथा उसके द्वारा चयनित भाषा में भी प्रबंधात्मकता के गुण हों। यह सिर्फ संयोग नहीं है कि भक्तिकाल की चार काव्यधाराओं में से जिन दो (सूफी काव्यधारा तथा रामकाव्यधारा) में प्रबंधकाव्यों की रचना हुई, उन दोनों ने अवधी को ही उसके लिए चुना।

4. अवधी भौगोलिक दृष्टि से विस्तृत क्षेत्र की बोली है। इसका प्रयोक्ता वर्ग भी काफी बड़ा है। इसकी साहित्यिक सफलता में यह भी एक महत्त्वपूर्ण कारण माना जाताहै।

5. अवधी ब्रजभाषा से काफ़ी मिलती-जुलती है जिसके परिणामस्वरूप ब्रजमंडल में भी यह बोधगम्य है। इसे भोजपुरी से अत्यंत निकट होने का भी लाभ मिलता है क्योंकि भोजपुरी हिन्दी में सर्वाधिक जनसंख्या द्वारा प्रयुक्त होने वाली बोली है।

सीमाएँ

1. अवधी में गंभीरता, मर्यादा और औदात्य जैसे भावों की उपस्थिति इतनी अधिक है कि इसमें व्यक्ति की मनोरंजनपरक तथा चंचल मनोवृत्तियाँ पूरे आवेग के साथ व्यक्त नहीं हो पाती हैं। यही कारण है कि अवधी में न तो ब्रजभाषा जैसा शृंगार-काव्य रचा जा सका और न ही वात्सल्य के मनोग्राही चित्र खींचे जा सके।

2. मध्यकाल के मनोविज्ञान को व्यक्त करने में अवधी चाहे सक्षम हो, वह आधुनिक जीवन की तमाम जटिलताओं और प्रतिदिन बदलते हुए समाज की प्रवृत्तियों को चित्रित करने में सक्षम नहीं है। यही कारण है कि 19वीं सदी के उत्तरार्द्ध में जब ब्रजभाषा की साहित्यिक प्रतिष्ठा पर खतरा मंडराने लगा, तब भी समृद्ध विरासत के बावजूद अवधी को महत्त्व नहीं मिला, जबकि तुलनात्मक रूप से कम समृद्ध विरासत के बावजूद खड़ी बोली सफल हो गई।

3. अवधी प्रबंधात्मक रचनाओं के लिए तो अधिक उपयोगी है किन्तु मुक्तक वाली तेज़ी उसमें नहीं है। स्वयं तुलसीदास ने सामान्यत: अपने मुक्तकों के लिए ब्रजभाषा का ही चयन किया। वस्तुत: मुक्तक काव्य में वही भाषा सफल हो सकती है जिसमें चंचलता हो, तीव्रता हो, समाहार क्षमता हो और कलात्मक प्रयोगों की अधिक क्षमता हो। ब्रजभाषा में ये गुण अधिक थे, इसलिए मुक्तक के क्षेत्र में वह अवधी से आगे निकल गई।

4. अवधी में यह लचीलापन तो अवश्य था कि वह संस्कृत और अरबी/फारसी शब्दों का अवधीकरण कर सके किन्तु वह लचीलापन नहीं था कि वह अपने स्थान का अतिक्रमण करके हिन्दी के सभी क्षेत्रों की अपनी भाषा हो जाए। यही कारण है कि रामचरितमानस जैसी विश्व प्रसिद्ध रचना के बावजूद अवधी अखिल भारतीय काव्यभाषा नहीं बन पायी जबकि ब्रजभाषा अखिल भारतीय काव्यभाषा बन गई।

11.9 अवधी (टिप्पणी)

अवधी अर्द्धमागधी अपभ्रंश से विकसित हुई पूर्वी उपभाषा वर्ग की सर्वाधिक प्रसिद्ध बोली है जिसका भौगोलिक क्षेत्र अयोध्या, फैजाबाद तथा उसके आसपास का है। पालि-प्राकृत काल में यह क्षेत्र कोसल नाम से विख्यात था। यहीं की बोली 'कोसली' मध्यकाल में अवधी के विकास का आधार बनी।

यद्यपि अवधी का आरंभिक रूप रोडा कृत 'राउलबेल' तथा दामोदर पंडित कृत 'उक्ति-व्यक्ति प्रकरण' में मिलता है तथापि इसका वास्तविक विकास सूफी काव्यधारा तथा रामकाव्यधारा के माध्यम से हुआ। सूफीकाव्यधारा में जायसी तथा रामकाव्यधारा में तुलसी केन्द्रीय कवि हैं जिन्होंने क्रमशः ठेठ अवधी की मिठास और तत्समी अवधी का औदात्य जनसाधारण के समक्ष प्रस्तुत किया। दोनों की भाषा का एक-एक उदाहरण इस प्रकार है-

"यह तन जारौं छार कै, कहौं कि पवन उड़ाव।
मकु तेहि मारग उड़ि परै, कंत धरै जहँ पाँव।।" (जायसी)

"लोचन जलु रह लोचन कोना।
जैसे परम कृपन कर सोना।।" (तुलसी)

आचार्य शुक्ल ने दोनों महाकवियों द्वारा प्रयुक्त अवधी की प्रशंसा की है। जायसी की ठेठ अवधी की प्रशंसा में वे कहते हैं कि *"जायसी की भाषा बहुत मधुर है पर उसका माधुर्य निराला है। वह भाषा का माधुर्य है, संस्कृत का माधुर्य नहीं। अवधी की खालिस, बेमेल मिठास के लिए पद्मावत का नाम बराबर लिया जाएगा।"* तुलसी की प्रशंसा करते हुए वे कहते हैं- *"जायसी की पहुँच अवध में बहते हुए माधुर्य स्रोत तक ही थी, पर गोस्वामी जी की पहुँच दीर्घ संस्कृत कवि परम्परा द्वारा परिपक्व चाशनी के भाण्डागार तक भी पूरी-पूरी थी।"*

अवधी की भाषायी विशेषताओं में निम्नलिखित महत्त्वपूर्ण हैं-

1. ध्वनिगत विशेषताओं में ण > न (कौण > कौन, बाण > बान), ड़ > र (साड़ी > सारी), व > ब (वचन - बचन), श, ष > स (वर्षा- बरसा) इत्यादि प्रमुख हैं। उकारान्तता (राम कहतु चलु) इसकी साधारण प्रवृत्ति है तथा ऐ और औ इसमें सन्ध्यक्षरों के रूप में प्रयुक्त होते हैं जैसे- पैसा > पइसा, और > अउर।
2. व्याकरणिक विशेषताओं में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है कि इसमें संज्ञा के तीन रूप जैसे- लरिका, लरिकवा, लरिकउना मिलते हैं। 'ए', 'न' प्रत्ययों से बहुवचन बनाए जाते हैं, जैसे- रात > रातें, लरिका > लरिकन। ई, इनी, नी तथा इया प्रत्ययों से पुल्लिंग शब्द स्त्रीलिंग बनते हैं जैसे मोरनी, बुढ़िया आदि। क्रियाओं में वर्तमान के लिए त-रूप (बैठत, देखत), भूतकाल के लिए वा-रूप (आवा, जावा) तथा भविष्य काल के लिए ब-रूप (खाइब) प्रचलित हैं।
3. अवधी की शब्दावली प्रमुखतः संस्कृत के तद्भवीकरण तथा देशज प्रक्रिया से विकसित हुई है।

अवधी की प्रमुख विशेषता उसके लचीलेपन तथा संतुलन में है। यह ब्रज की तरह न तो अति कोमल है, न हरियाणी की तरह कठोर। लोकमंगल के तत्व इसकी आंतरिक संरचना में ही निहित हैं। यही कारण है कि भक्तिकाल के अधिकांश प्रबंध काव्य इसी भाषा में रचे गए हैं। निम्नलिखित पंक्तियों में लोकमंगल का यही भाव दिखता है-

"परहित सरिस धरम नहिं भाई,
परपीड़ा सम नहिं अधमाई।"

अभ्यास हेतु प्रश्न

1. मध्यकाल में काव्यभाषा के रूप में प्रयुक्त अवधी की विशेषताएँ (टिप्पणी) **U.P.S.C. (Mains) 2016**
2. अवधी की व्याकरणिक विशेषताएँ (टिप्पणी) **U.P.S.C. (Mains) 2014**
3. मध्यकाल में काव्य-भाषा के रूप में अवधी का विकास (टिप्पणी) **U.P.S.C. (Mains) 2013**
4. मध्यकाल में काव्यभाषा के रूप में अवधी के विकास को विवेचित कीजिये। **U.P.S.C. (Mains) 2011**
5. मध्यकाल में साहित्यिक भाषा के रूप में अवधी के विकास की विवेचना कीजिये। **U.P.S.C. (Mains) 2007**
6. अवधी भाषा का साहित्यिक योगदान (टिप्पणी) **U.P.S.C. (Mains) 2006**
7. मध्यकाल में काव्यभाषा के रूप में अवधी की शक्ति और सीमा का विवेचन कीजिये। **U.P.S.C. (Mains) 2000**

अध्याय

12 मध्यकाल में ब्रजभाषा का साहित्यिक भाषा के रूप में विकास

12.1 परिचय

हिन्दी परिवार की जिस बोली को हम ब्रजभाषा के नाम से जानते हैं, उसका संबंध ब्रजमंडल या ब्रज प्रदेश से है जिसके अंतर्गत मथुरा, अलीगढ़, आगरा, बदायूँ तथा बरेली सहित आसपास का काफी बड़ा क्षेत्र शामिल हो जाता है। इस भाषा का विकास पुरानी हिन्दी के आसपास से ही किसी न किसी मात्रा और रूप में दिखाई देने लगता है, हालांकि काव्यभाषा के रूप में इसका तीव्र विकास भक्तिकाल के उत्तरार्द्ध में हुआ। ब्रजभाषा के विकास को चार चरणों में विभाजित करके समझा जा सकता है-

(क) सूरपूर्व युग (ख) सूरदास का युग (ग) रीतिकाल (घ) रीतिकाल पश्चात् युग।

12.2 सूरपूर्व युग की ब्रजभाषा

ब्रजभाषा शब्द का उल्लेख यद्यपि 16वीं शताब्दी में पहली बार हुआ तथापि किसी न किसी रूप में इसकी भाषिक प्रवृत्तियाँ पहले भी दिखाई देती हैं। इसके विकास का पहला चरण वह है जिसमें अन्य सभी आधुनिक बोलियों की तरह ब्रजभाषा भी पुरानी हिन्दी से विकसित हो रही थी। ब्रजभाषा का विकास शौरसेनी अपभ्रंश से माना गया है। आरंभिक काल में ब्रजभाषा का मिश्रित रूप 'प्राकृत पैंगलम्' तथा 'उक्ति व्यक्ति प्रकरण' आदि रचनाओं में थोड़ा बहुत दिखता है। पृथ्वीराज रासो के प्रामाणिक अंशों की भाषा भी ब्रजभाषा से मिलती जुलती प्रतीत होती है। ब्रजभाषा का आरंभिक मिश्रित रूप नाथयोगी 'जलंधरनाथ' द्वारा रचित इस पद में देखा जा सकता है-

"जोगी सोई जाणिये जग तैं रहे उदास।
तत निरन्जण पाइयै कहै मछन्दरनाथ।।"

ब्रज भाषा का पहला स्वतंत्र प्रयोग करने का श्रेय आदिकालीन कवि अमीर खुसरो को दिया जा सकता है। यद्यपि उनकी भाषा में फारसी, खड़ी बोली और अवधी तीनों भाषिक परंपराएँ मिलती हैं, पर निश्चित रूप से उनकी रचनाओं में ऐसे कई उदाहरण हैं जो ब्रजभाषा के मधुर रूप का आभास कराते हैं। उदाहरण के लिए खुसरो की निम्नलिखित पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं -

"खुसरो रैन सुहाग की, जागी पी के संग।
तन मेरो मन पीउ को, दोउ भए एक रंग।"

"मेरा मीठे सिंगार करावत, आगे बैठ के मान बढ़ावत।
वासे चिक्कन न कोऊ दीसा,
क्यों सखि, साजन, ना सखि सीसा।"

सूरदास के आगमन से पहले कुछ और कवि ब्रजभाषा का प्रयोग करते हुए दिखाई देते हैं। उदाहरण के लिए सुधीर अग्रवाल ने 1354 ई. में 'प्रद्युम्न चरित्र' की रचना की, महाराष्ट्र के संत नामदेव ने कुछ पदों की रचना की, विष्णुदास ने 'रुक्मिणी मंगल' तथा शेष रचनाओं को प्रस्तुत किया तथा सिखों के पहले गुरु नानकदेव से लेकर पाँचवें गुरु अर्जुनदेव तक सभी ने ब्रजभाषा की अलग-अलग शैलियों का प्रयोग किया। उदाहरण के लिए गुरू अर्जुनदेव की भाषा पंजाबी मिश्रित ब्रजभाषा कही जा सकती है, जिसका एक उदाहरण इस प्रकार है-

"जनम जनम का बिछुड़िया मिलिआ,
साध क्रिया ते सूखा हरिआ।"

12.3 सूरदास का युग

सूरदास के पूर्व ब्रजभाषा कविता में प्रयुक्त तो होने लगी थी किंतु उसे चरमोत्कर्ष पर ले जाने का श्रेय सूरदास को ही है। भाषा वैज्ञानिकों का यह निश्चित मत है कि जिस समय महाप्रभु वल्लभाचार्य ने ब्रज जाकर गोकुल और गोवर्धन को अपना केन्द्र बनाने का निश्चय किया, उसी दिन से ब्रजभाषा का भाग्योदय हुआ। वल्लभाचार्य के पुत्र विट्ठलनाथ ने 'अष्टछाप' की स्थापना की जिसमें सूरदास के अतिरिक्त सात अन्य कवियों को शामिल किया गया। सारा कृष्ण भक्ति काव्य ब्रजभाषा में ही रचा गया।

सूरदास ब्रजभाषा के सफलतम कवि हैं। भाषा वैज्ञानिकों का मानना है कि जिस प्रकार जायसी और तुलसी को पाकर अवधी धन्य हो गई थी उसी प्रकार सूर को पाकर ब्रजभाषा धन्य हो गई। सूर ने ब्रजभाषा में लगभग सवा लाख पदों की रचना की। सूर की भाषा का महत्त्व इस बात में है कि वह कई क्षेत्रों से जुड़ी होकर भी एकदम स्वाभाविक है और काव्यभाषा ब्रजभाषा का आरंभिक उदाहरण होकर भी चरम रूप से सफल भाषा है। इसी स्थिति को देखते हुए आचार्य शुक्ल को कहना पड़ा कि *"चलती हुई ब्रजभाषा में सबसे पहली साहित्यिक कृति इन्हीं की मिलती है, जो अपनी पूर्णता के कारण आश्चर्य में डाल देती है।... सूरसागर किसी पहले से चली आती हुई परम्परा का - चाहे वह मौखिक रही हो - पूर्ण विकास सा जान पड़ता है, चलने वाली परम्परा का मूल रूप नहीं।"*

सूर की भाषा सिर्फ आरंभिकता की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण नहीं है। गुणवत्ता की दृष्टि से भी उनकी भाषा इतनी सफल रही कि आचार्य शुक्ल को कहना पड़ा-

"यह रचना इतनी प्रगल्भ और कलापूर्ण है कि आगे आने वाले कवियों की शृंगार और वात्सल्य की उक्तियाँ सूर की जूठी सी जान पड़ती हैं।"

सूरदास ने ब्रजभाषा के उसी रूप को नहीं लिया जो सामान्य रूप से बोलचाल की थी। भाषा को व्यापकता प्रदान करने के उद्देश्य से उन्होंने 'जेहि', 'तेहि' जैसे अवधी प्रयोग, 'गोड़', 'आपन', 'हमार' जैसे पूर्वी प्रयोग तथा 'मँहगी' (प्यारी) जैसे पंजाबी प्रयोग भी इसमें शामिल किए। सूर की भाषा की सबसे बड़ी विशेषता उनकी चित्र निर्माण की क्षमता में है। हिन्दी के किसी भी अन्य कवि की तुलना में उन्होंने सूक्ष्म से सूक्ष्म बातों को पूरी चित्रात्मकता के साथ व्यक्त करने में सफलता प्राप्त की है। संगीतात्मकता उनकी भाषा का दूसरा प्रमुख गुण है। लय, ताल और तुक आदि पर सूरदास का इतना गहरा अधिकार था कि उनकी सारी कविताएँ बहुत स्वाभाविकता के साथ गेयता को धारण करती हैं। आचार्य शुक्ल के अनुसार सूर ने ब्रजभाषा का प्रयोग तीन शैलियों में किया- (क) तत्समी शैली, (ख) मुहावरों-लोकोक्तियों की शैली, तथा (ग) वाग्विदग्धता की शैली। सभी समीक्षक इस बात पर सहमत हैं कि वाग्विदग्धता की जो शैली सूरदास ने विकसित की, उसने ब्रजभाषा में एक नए तेवर को जन्म दिया। ऐसा एक उदाहरण द्रष्टव्य है -

"निर्गुण कौन देस को बासी।
मधुकर हँसि समुझाय! सौंह दे, बूझति साँच न हाँसि।
को है जनक, जननि को कहियत, कौन नारि को दासि।"

सूरदास की विशेषता नए-नए विषयों पर लिखना नहीं, सीमित विषयों पर नए-नए तरीके से लिखना रही है। इस कारण स्वाभाविक रूप से उनका अप्रस्तुत विधान बहुत महत्त्वपूर्ण हो गया है। उपमा और उत्प्रेक्षा करना उन्हें सबसे अधिक प्रिय है, हालाँकि कभी-कभी ऐसा होता है कि शुक्ल जी के शब्दों में *"सूर को उपमा देने की झक सी चढ़ जाती है और वे उपमा पर उपमा, उत्प्रेक्षा पर उत्प्रेक्षा करते चले जाते हैं।"* इसके बावजूद उपमानों की दृष्टि से सूर की कविता निस्संदेह श्रेष्ठ है। उदाहरण के लिए उनका एक पद देखा जा सकता है-

"निरखत अंक स्यामसुंदर के बार-बार लावति छाती।
लोचन-जल कागद-मसि मिलिकै ह्वै गई स्याम स्याम की पाती।"

सूरदास के साथ 'अष्टछाप' के अन्य कवि भी ब्रजभाषा में कृष्णभक्ति काव्य की रचना कर रहे थे, उनकी चर्चा भी इस संदर्भ में महत्त्वपूर्ण है। सूरदास के साथ परमानंददास, नंददास और कुंभनदास ऐसे तीन कवि हैं जिनकी भाषा अत्यंत

विकसित एवं प्रभावशाली है। **परमानंददास** की भाषा अत्यंत भावप्रवण है। उन्होंने अपनी भाषा में तत्सम शब्दों का ब्रजभाषाकरण किया है और उनकी भाषा ब्रजभाषा की मीठी मिठास से भरे शब्दों जैसे 'मटुकिया', 'लकुटिया', 'अंचरा', आदि शब्दों से भरी है। **नंददास** की भाषा की विशेषता उसका माधुर्य और लोकप्रचलित शब्दों के अधिकाधिक प्रयोग में है। उन्होंने तत्सम शब्दों का बड़ी संख्या में प्रयोग किया है किंतु जिस प्रकार गोस्वामी तुलसीदास ने संस्कृत शब्दों को अवधी के प्रभाव में ढाल लिया था, वैसे ही नंददास ने उन्हें ब्रजभाषा के साँचे में ढाल लिया है, जैसे - योग के लिए जोग, सूक्ष्म के लिए सुच्छम इत्यादि। इन दोनों कवियों की कविताओं का एक-एक उदाहरण द्रष्टव्य है-

"जो उनके गुन नाहीं और गुन भए कहाँ तें।
बीज बिना तरू जमैं मोहि तुम कहो कहाँ तें।"

(नंददास)

"मोहन वह क्यों प्रीति बिसारी।
कहत सुनत समुझत उर अंतर दुख लागत है भारी।।"

(परमानंददास)

जिस समय ब्रज प्रदेश में अष्टछाप के कवि कृष्ण भक्तिकाव्य की रचना कर रहे थे, ठीक उसी समय कुछ अन्य कवि ऐसे भी थे जो 'अष्टछाप' से संबंधित न होते हुए भी कृष्णभक्ति काव्य की रचना में रत थे। इन कवियों में मीरा, रहीम और रसखान का स्थान विशेष रूप से महत्त्वपूर्ण था।

मीरा की भाषा में ब्रजभाषा का राजस्थानी मिश्रित रूप दिखाई पड़ता है जबकि रहीम की भाषा काफी स्वच्छ और प्रवाहमयी ब्रजभाषा है। इन दोनों कवियों की भाषा का एक-एक उद्धरण द्रष्टव्य है -

"पग घुंघरू बाँध मीरा नाची रे
मैं तो अपने नारायण की आपहि हो गई दासी रे।
लोग कहें मीरा भई बावरी, न्यात कहें कुलनासी रे।।"

(मीरा)

"रहिमन पानी राखिए बिन पानी सब सून
पानी बिनु न ऊबरे, मोती, मानुस चून।।"

(रहीम)

सूरदास के समय में कृष्ण भक्ति काव्यधारा के साथ-साथ **रामभक्ति काव्यधारा** में भी कुछ न कुछ मात्रा में ब्रजभाषा के प्रयोग हो रहे थे। यद्यपि रामभक्ति काव्यधारा का मूल संबंध अवधी से रहा है, इसके बावजूद तुलसी जैसे रचनाकारों ने कुछ रचनाएँ ब्रजभाषा में भी की हैं। तुलसी का जितना गहरा अधिकार अवधी पर था, उतना ही ब्रजभाषा पर ही। सूर और तुलसी की ब्रजभाषा की तुलना करें तो हम पाते हैं कि सूर की तुलना में तुलसी की भाषा में तत्समता की मात्रा अधिक है। इसका अभिप्राय यह नहीं है कि उनकी भाषा जनभाषा के माधुर्य से वंचित थी। वास्तविकता यह है कि तुलसी की भाषा में दोनों भाषिक शैलियों की मधुरता संघनित होकर व्यक्त हुई है। कवितावली में संकलित उनके एक पद को इस भाषा के उदाहरण के रूप में देखा जा सकता है-

"राम को रूप निहारति जानकि, कंगन के नग की परछाहीं।
यातें सबै सुधि भूल गई, कर टेकि रही, पल टारति नाहीं।।"

12.4 रीतिकालीन काव्य में ब्रजभाषा का विकास

सूरदास (या भक्तिकाल) के बाद, जबकि अवधी का विकास प्रायः रुकने लगा था और खड़ी बोली के विकास के कोई संकेत नज़र नहीं आ रहे थे, ब्रजभाषा ने अपने विकास के चरमकाल का अनुभव किया। भक्तिकाल के बाद उत्तरमध्यकाल या रीतिकाल में ब्रजभाषा काव्यभाषा के एक विकल्प के रूप में नहीं बल्कि एकमात्र काव्यभाषा के रूप में स्थापित हो गई।

इस बिंदु पर आकर ब्रजभाषा अपने क्षेत्र से बाहर निकल कर व्यापकता धारण करने लगी और देखते-ही देखते संपूर्ण हिन्दी प्रदेश की काव्यभाषा के पद पर आसीन हो गई। इसी बात का संकेत करते हुए कविवर भिखारीदास कहते हैं-

"ब्रजभाषा हेत ब्रजवास ही न अनुमानौ।
ऐसे ऐसे कविन की बानी है सो जानिए।।"

भक्तिकाल में ही ब्रजभाषा का विषयक्षेत्र लगभग निश्चित हो चुका था। शृंगार तथा वात्सल्य जैसे कोमलतम भावों की विशेष संप्रेषण क्षमता इस भाषा में विकसित हो चुकी थी। जिस तरह से अवधी का संबंध नैतिकता और लोकमंगल से हो गया था, उसी प्रकार से ब्रजभाषा मूलतः सौंदर्य और शृंगार जैसे विषयों की प्रतीक बन चुकी थी। चूंकि रीतिकाल में आरंभ से अंत तक शृंगार पक्ष की प्रधानता रही इसलिए यह स्वाभाविक था कि यह काल ब्रजभाषा की केन्द्रीयता का काल बना। इस युग में भक्तिकाल की तुलना में एक और विशेष स्थिति पैदा हुई। भक्तिकाल में कवि मूलतः भक्त थे, गौणतः कवि। इस वजह से वे प्राथमिक रूप से भक्ति के प्रति दायित्व महसूस करते थे, न कि कविता के प्रति। सूरदास के दृष्टिहीन होने के कारण भी यह समस्या रही कि वे चाहकर भी अपने काव्यशिल्प का सजग मूल्यांकन नहीं कर पाते थे। रीतिकाल में शृंगार और सौंदर्य पर पड़ा हुआ भक्ति का आवरण हट गया और काव्य रचना के क्षेत्र में वे लोग आए जो मूलरूप से कवि थे तथा जिनका उद्देश्य कवि के रूप में अपने महत्त्व की स्थापना करना था। इसलिए इस काल में ब्रजभाषा गहरे कलात्मक विवेक से युक्त हुई और नित नए प्रयोगों के माध्यम से अपनी चरम संभावनाओं को उपलब्ध कर सकी। इस बदलते हुए दृष्टिकोण की घोषणा भिखारीदास ने स्पष्ट शब्दों में की-

"आगे के सुकवि रीझिहैं तौ कविताई, न तौ
राधिका कन्हाई को सुमिरन तो बहानौ है।।"

रीतिकाल में ब्रजभाषा के प्रायः दो रूप दिखाई देते हैं। पहला रूप प्रायः रीतिकाव्य और रीतिबद्ध कवियों की भाषा में दिखता है जिसमें आलंकारिकता, सजगता और चमत्कार-प्रियता की प्रवृत्तियाँ बहुत व्यापक रूप में परिलक्षित होती हैं। यह भाषा अति सजग किस्म की भाषा है। इस भाषा शैली के सबसे सफल प्रयोक्ता हैं- कविवर बिहारीलाल। भाषा की समास क्षमता और भावों की समाहार क्षमता का इन्होंने इतना सफल प्रयोग किया कि इनकी ब्रजभाषा के दोहे उर्दू के शेरों को मात देने लगे। इसी शिल्प पर मुग्ध होकर जॉर्ज ग्रियर्सन को कहना पड़ा कि पूरे यूरोप में कोई भी कविता 'बिहारी सतसई' का मुकाबला नहीं कर सकती। बिहारी की इसी चमत्कारिक शैली का एक उदाहरण यहाँ उद्धृत किया जा सकता है-

''कहत, नटत, रीझत, खिजत, मिलत, खिलत, लजियात।
भरे भौन में करत हैं नैननु ही सों बात।।''

रीतिकाल में ब्रजभाषा की दूसरी शैली घनानंद जैसे रीतिमुक्त कवियों के काव्य में दिखती है। ये कवि भी प्रेम मार्ग के कवि हैं किंतु ये अपने प्रेम और कविता की सार्थकता के प्रति गहरी जवाबदेही महसूस करते हैं। इनके यहाँ प्रायः सहज शिल्प है। इनकी भाषा सुनकर व्यक्ति चमत्कृत नहीं होता बल्कि संवेदना के गहरे स्तर पर पहुँच जाता है। संवेदनशीलता की दृष्टि से इनकी भाषा ब्रजभाषा के चरम स्वरूप को व्यक्त करती है। यही कारण है कि इनकी भाषा में अलंकार भी आते हैं तो वे चमत्कृत करने के स्थान पर गहरा प्रभाव छोड़ते हैं। आचार्य शुक्ल ने इनकी ब्रजभाषा की प्रशंसा करते हुए कहा है कि *"इनकी सी विशुद्ध, सरस, शक्तिशाली ब्रजभाषा लिखने में और कोई कवि समर्थ नहीं हुआ। विशुद्धता के साथ प्रौढ़ता तथा माधुर्य भी अपूर्व है।"* घनानंद की भाषा के दो उदाहरण द्रष्टव्य हैं-

1. *"यह कैसो संयोग न सूझि परै,*
   जो वियोग न क्यों हू बिछोहतु है।।"
2. *"अति सूधो सनेह को मारग है,*
   जहाँ नेकु सयानप बाँक नहीं।
   × × × × ×
   तुम कौन धौ पाटी पढ़े हो लला,
   मन लेहु पै देहु छटाँक नहीं।।"

12.5 रीतिकाल के पश्चात् ब्रजभाषा का विकास

कुछ विद्वान रीतिकाल की समाप्ति के साथ ही ब्रजभाषा की समाप्ति को स्वीकार कर लेते हैं जबकि वास्तविकता यह है कि 19वीं शताब्दी के अंत तक काव्य रचना में ब्रजभाषा का ही वर्चस्व बना रहा। 19वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में जब खड़ी बोली ब्रजभाषा से आगे निकलने लगी तब भी प्राय: सभी कवि कविता के लिए ब्रजभाषा को अधिक महत्त्वपूर्ण मानते रहे। स्वयं भारतेन्दु ने एक स्थान पर लिखा है – "मैंने कई बार परीक्षण किया कि खड़ी बोली में कुछ कविता बनाऊँ पर मेरे चित्तानुसार नहीं बनी, इससे यह निश्चित होता है कि ब्रजभाषा में ही कविता करना उत्तम होता है।"

भारतेन्दु के साथ-साथ इस काल के अन्य प्रमुख कवि जैसे प्रतापनारायण मिश्र, चौधरी बदरीनारायण प्रेमघन, अंबिका दत्त व्यास भी ब्रजभाषा को ही कविता के लिए उपयुक्त मानते थे। यहाँ तक कि अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध' और श्रीधर पाठक जैसे खड़ी बोली के समर्थक भी आरंभ में ब्रजभाषा में ही काव्य रचना करते रहे। इस समय के कवि प्राय: गद्य के लिए खड़ी बोली का प्रयोग करते थे जबकि कविता के लिए ब्रजभाषा का। भारतेन्दु द्वारा भारत दुर्दशा नाटक में रचित गीत के उदाहरण से ब्रजभाषा की उपस्थिति को समझा जा सकता है-

"रोवहु सब मिलिकै आवहु भारत भाई।
हा हा! भारत दुर्दशा न देखि जाई।।"

बीसवीं शताब्दी के आरंभ के साथ ही खड़ी बोली ने काव्यभाषा का पद भी ग्रहण कर लिया और ब्रजभाषा को यह पद छोड़ना पड़ा। इसके बावजूद इस शताब्दी के पहले दो दशकों में कई कवि ब्रजभाषा के प्रति अपना आकर्षण छोड़ नहीं सके और उसमें रचनाएँ करते रहे। ऐसे कवियों में जगन्नाथदास रत्नाकर और पंडित सत्यनारायण कविरत्न प्रमुख हैं। रत्नाकर जी की भाषा भक्तिकाल और रीतिकाल के महान कवियों की तरह परिमार्जित और दोषमुक्त है जबकि कविरत्न जी की भाषा बोलचाल की ब्रजभाषा के काफी निकट है।

1918 में हिन्दी साहित्य में छायावाद के आगमन के साथ ही ब्रजभाषा अंतिम रूप से काव्यभाषा के पद से उतर गई। दरअसल छायावाद से पहले खड़ी बोली पर यह आरोप लगता रहा था कि यह भाषा काव्योचित माधुर्य और लालित्य को धारण नहीं करती है लेकिन छायावाद में प्रयुक्त खड़ी बोली ने व्यावहारिक स्तर पर इस तर्क का खंडन कर दिया। इस बिंदु पर आकर खड़ी बोली को सहज रूप में पूरे हिन्दी प्रदेश की स्वीकृति प्राप्त हो गई। 'पल्लव' (1927 ई.) की भूमिका में पंत ने कठोर शब्दों में ब्रजभाषा का विरोध तथा खड़ी बोली का समर्थन इन शब्दों में किया- *"अभिव्यक्ति को अब ब्रज की छींटदार चोली जो कि फट चुकी है, नहीं ढक सकती है। उसे अब क्रांतिकारी के तेवर वाला 'चोला' चाहिए।"*

यद्यपि छायावाद के आरंभ के बाद ब्रजभाषा काव्यभाषा के रूप में प्रचलित नहीं रही तथापि ब्रज क्षेत्र के अनेक कवि ब्रजभाषा में काव्य रचना करते रहे हैं। रमाकर शुक्ल 'रसाल', नारायण चतुर्वेदी एवं वियोगी हरि तो इस दृष्टि से उल्लेखनीय हैं ही, जगदीश गुप्त और सोम ठाकुर जैसे प्रतिष्ठित हिन्दी कवियों ने भी सीमित रूप से ब्रजभाषा काव्य की रचना की है।

12.6 निष्कर्ष

इस प्रकार हम देखते हैं कि ब्रजभाषा अपभ्रंश हिन्दी से अमीर खुसरो के आगमन तक कुछ मिश्रित रूप में दिखाई पड़ती है, अमीर खुसरो से सूरदास के आगमन तक उसकी एक निश्चित किंतु गौण साहित्यिक परंपरा विकसित हुई, भक्तिकाल और रीतिकाल में वह अलग-अलग विषय क्षेत्रों में काव्यभाषा के चरम स्वरूप का दिग्दर्शन कराती रही, 19वीं शताब्दी के अंत में खड़ी बोली गद्य भाषा की तुलना में कविता की भाषा के रूप में अस्तित्व के लिए संघर्ष करती रही, 20वीं शताब्दी के पहले दो दशकों में कुछ विशेष कवियों के यहाँ काव्यभाषा बनी रही, तथा उसके बाद सिमट कर पुन: अपने भौगोलिक क्षेत्र ब्रजमंडल के कुछ कवियों की बोली के रूप में सीमित हो गई। इतने बड़े परिवर्तनों से भरा हुआ इतिहास कम ही भाषाओं का होता है।

12.7 काव्यभाषा के रूप में ब्रजभाषा का स्वरूपगत विकास

1. सूरपूर्वयुगीन ब्रजभाषा की भाषायी विशेषताएँ

(क) ध्वनियों के स्तर पर

(अ) बहुत से शब्दों में इस काल में 'ण' मिलता है जो बाद की ब्रजभाषा में 'न' के रूप में आने लगा, जैसे -"जोगी सोई जाणिये जग तैं रहे उदास।"

(आ) 'ऐ' और 'औ' की बहुतायत है। ऐसे प्रयोग तीन प्रकार के दिखाई देते हैं -

1. अवहट्ट जैसे प्रयोग जिनमें संध्यक्षरों जैसा (चाल्यउ, धरइ) उच्चारण किया जाता है, जैसे - "सुत सुत कहइ वयण **उच्चरइ**" (जाखू मणयार)
2. जिसमें 'ऐ' और 'औ', 'ए' व 'ओ' की तरह प्रयुक्त होते हैं, जैसे - "**माधो** भरम कैसेहु न बिलाई।" (रैदास)
3. कहीं-कहीं 'ऐ' और 'औ' का प्रयोग सामान्य रूप में होता है, जैसे - "**ज्यौं ज्यौं** नर स्वारथ **करै**" (मछंदरनाथ)

(ख) व्याकरण के स्तर पर

(अ) सूर पूर्व ब्रजभाषा में निम्नलिखित **परसर्ग** विशेष रूप में दिखाई देते हैं -

कर्त्ता - 0, ने संबंध - को, के, की

करण - सम, सउँ, ते, तैं अधिकरण - माँझि

सम्प्रदान - लागि

परसर्गों के साथ-साथ कुछ प्रयोग **विभक्ति** पर आधारित मिलते हैं। 'हिं' विभक्ति से कई कारकों का काम लिया जाता है। कुछ प्रयोग ऐसे होते हैं, जिनमें न विभक्ति होती है तथा न ही कोई परसर्ग।

(आ) **सर्वनाम** इस प्रकार हैं -

	एकवचन	**बहुवचन**
उत्तम पुरुष	हउँ, हौं, मै, मउँ, मोहि	हमारो, हमार
मध्यम परुष	तूँ, तुम, तुव	तिहारौ, तुम्हारौ
अन्य पुरुष	सो, वह	वेइ
प्रश्नवाचक	को, कवण, कोउ	
संबंधवाचक	जोउ, जो	

उदाहरण- *"तुम बिनु और न कोउ मेरो"*

(इ) **क्रिया संरचना** में क्रियाओं के मुख्य रूप इस प्रकार चलते हैं-

वर्तमान काल - करत, जात

भूतकाल - कियो, कियौ

भविष्य काल - करहिं, जाहिं (भविष्यकाल का 'ग' रूप अभी मिलना शुरू नहीं हुआ है)

सहायक क्रियाएँ - भयो, भये, भइ, हैं, हैं, है, है,हैं।

2. सूर युगीन ब्रजभाषा की भाषायी विशेषताएँ

(क) ध्वनि संरचना

सूर के समय तक 'ण' का प्रयोग समाप्त हो गया है और प्राय: 'न' का प्रयोग किया जाने लगा है। इसके अतिरिक्त 'ष' का प्रयोग भी व्यावहारिक रूप से समाप्त हो चुका है। उदाहरण के लिए-

"जो उनके गुन नाहीं, और गुन भए कहाँ तें।"

(नंददास)

(ख) शब्दावली

सूरदास के युग में ब्रजभाषा का कुछ विस्तार हुआ। शब्दावली का मूल आधार ब्रज प्रदेश की बोली ही बना रहा किन्तु बाहर से भी कुछ प्रयोग आये, जैसे -

(अ) अवधी के जेहि तेहि जैसे प्रयोग।

(आ) गोड़, आपन, हमार जैसे पूर्वी प्रयोग।

(इ) कुछ पंजाबी प्रयोग, जैसे - 'महंगी' शब्द ('प्यारी' के अर्थ में)।

(ग) व्याकरण

(अ) कारक व्यवस्था

कर्त्ता - नै

कर्म - को, कौ, कौं

करण - तें, तैं, सौं (उदा.- सुनहु मधुप निर्गुण कंटक तैं राजपंथ क्यों रूंधौ)

सम्प्रदान - लौं

अपादान - लागि

सम्बन्ध - धौं, को, के, की (उदा. - अब धौं कहा कियो चाहत हौ, छाँड़हु नीरस ज्ञान)

अधिकरण - में, मांहि, पै, पर (गोकुल में को काको गुसैंया)

(आ) सर्वनाम व्यवस्था : प्रमुख सर्वनाम इस प्रकार हैं -

	एकवचन	बहुवचन
उत्तम पुरुष	हउँ, मैं	हमैं, हमारौ
मध्यम पुरुष	तू, तैं	तुम, तुम्हारौ
अन्य पुरुष	वह, वाकी	वे, वाकौ
प्रश्नवाचक	को, कौन	-
संबंधवाचक	जो, जाके, याकी	-

उदाहरण- 1. *"याकी सीख सुनौ ब्रज को रै"*

2. *"रेख न रूप बरन जाके नहिं ताकौ हमैं बतावत"*

3. *"निरगुन कौन देस को बासी"*

(इ) क्रिया संरचना

(क) वर्तमान के लिए 'त' रूप चलता है, जैसे - करत, करति, इत्यादि।

उदाहरण-

"निसि दिन बरसत नैन हमारे
सदा रहति पावस ऋतु
हमपै जब तैं स्याम सिधारे।"

(ख) भूतकाल के लिए कियौ, चल्यौ जैसी औकारान्त क्रियाएँ प्रयोग में लाने की प्रवृत्ति है।

(ग) भविष्यकाल के लिए 'ग' और 'ह' रूप चलते हैं, जैसे - करिहैं, करैगो।

(घ) सहायक क्रियाओं में है, हैं, है, हौ, हौं (वर्तमान के लिए) तथा हुते, हुतौ (भूतकाल के लिए) प्रमुख हैं।

उदाहरण-

(अ) *"लोचन जल कागद मसि मिलिकै ह्वै गई स्याम स्याम की पाती।"*

(आ) *"ऊधौ, मन न भये दस बीस।*
एक हुतौ सो गयो स्याम संग को अवराधे ईस।।"

(4) वचन संरचना

एकवचन शब्दों को बहुवचन बनाने वाले प्रत्ययों के प्राय: दो रूप मिलते हैं।

(क) अनुनासिक रूप- जिसमें केवल चन्द्र बिन्दु लगाकर बहुवचन बनाया जाता है, जैसे - अखियाँ; बतियाँ आदि।
उदाहरण- *"अखियाँ हरिदरसन की भूखी"*।

(ख) 'न' या 'अन' रूप - सखियन, ब्रजवासिन, ग्वालिन इत्यादि रूप जिनमें 'न', 'इन' या 'अन' प्रत्यय लगाया जाता है।
उदाहरण- *"ब्रजवासिन के नहीं काम की तुम्हरे ही हैठौर"*

3. सूरपरवर्ती ब्रजभाषा की भाषायी विशेषताएँ

(क) कुछ **विभक्तियों के प्रयोग** की परम्परा दिखती हैं जिनमें दो विभक्तियाँ प्रमुख हैं - हिं (कर्मकारक के अन्तर्गत) तथा 'नु' (करण या अपादान कारक के रूप में) -
उदाहरण- 1. *"पवन जलावत आगि को दीपहिं देत बुझाय।"*
2. *"सौंह करे, भौंहनु हँसे, दैन कहे नट जाय।"*

(ख) **परसर्ग** सामान्य रूप से सूरयुगीन काव्यभाषा के ही हैं।

(ग) **सर्वनाम**- सामान्यत: सर्वनामों की व्यवस्था भी पहले जैसी बनी रही। कुछ नये सर्वनाम दिखते हैं, जैसे - 'कैसी' सर्वनाम वर्तमान कालीन 'जैसी' के अर्थ में मिलता है-
उदाहरण - *"सुरजन कैसी सुरजन ही में साहिबी है"*
इसके अतिरिक्त तेते, तेती, जेते, जेती जैसे सर्वनाम भी इस काल में विकसित हुए-
उदाहरण - *"तेते पाँव पसारिये जेति लांबी सौर।"*

(घ) **क्रिया** - क्रियाएँ भी सामान्यत: वैसी ही हैं जैसी सूरकालीन भाषा में दिखती हैं। वर्तमान काल के लिए 'त' रूप प्रचलित है- उदाहरण- *"कहत, नटत, रीझत, खीझत, मिलत, खिलत, लजियात।"*
भूतकाल के लिए- कियौ, चलौ, गयौ, बंध्यौ जैसे प्रयोग काफी प्रचलित हैं, जैसे- *"अली कली ही सौं बंध्यौ, आगे कौन हवाल।"*
सहायक क्रिया के रूप में 'भये' का प्रयोग दिखाई देता है।
उदाहरण- *"चितु पितुमारक जोग गुनि भयो भये सुतसोग।"*

(ङ) **वचन व्यवस्था**

(अ) 'आँ' प्रत्यय का प्रयोग प्राय: बहुवचन बनाने के लिए किया जाता है -
उदाहरण- *"पिय प्यारे तिहारे निहारे बिना*
अखियाँ दुखियाँ नहिं मानती हैं।"

(आ) 'अन' व 'इन' प्रत्ययों का प्रयोग भी बहुवचन के लिए पहले की तरह चलता रहा है -
उदाहरण- *"हम आरत भारतवासिन पै,*
अब दीन दयाल दया करिए।।"

12.8 अखिल भारतीय काव्यभाषा के रूप में ब्रजभाषा

आदिकाल और भक्तिकाल में ब्रजभाषा के साहित्यिक उदाहरण तो मिलते हैं किंतु यह एक स्थान विशेष तक ही सीमित थी। अमीर खुसरो और सूरदास जैसे कवियों के यहाँ ब्रजभाषा काव्य की परम्परा थी। भक्तिकाल के बाद अचानक ऐसा हुआ कि ब्रज क्षेत्रा के बाहर के कई कवि ब्रजभाषा में कविताएँ लिखने लगे। इसी का संकेत करते हुए आचार्य भिखारीदास को कहना पड़ा कि-

"ब्रजभाषा हेत ब्रजवास ही न अनुमानौ,
ऐसे ऐसे कविन की बोली है सो जानिए।"

ब्रजभाषा के अखिल भारतीय भाषा होने का अर्थ सिर्फ इतना है कि पूरे आर्य भाषा क्षेत्रा में ब्रज भाषा का व्यापक प्रचार-प्रसार हुआ। ध्यातव्य है कि यहाँ अखिल भारतीय का अर्थ भारत के पूरे क्षेत्रा से नहीं है।

ब्रजभाषा के अखिल भारतीय विस्तार के कारण

ब्रजभाषा की इस सफलता के प्रमुख कारण इस प्रकार हैं-

(क) इसका मूल कारण यह था कि सूरदास के हाथों में पड़कर ब्रजभाषा शृंगार की विशेषीकृत भाषा बन गई थी। रीतिकाल शृंगार की प्रधानता का युग है। उसमें न तो अवधी का औदात्य स्वाभाविक हो सकता था और न ही खड़ी-बोली की अक्खड़ता उसके लिए सहज थी।

(ख) रीतिकाल में मुक्तक परम्परा का अभूतपूर्व विकास हुआ। मुक्तक काव्य में वही भाषा सफल हो सकती है जिसमें चंचलता व तेजी अधिक हो, न कि गंभीरता और औदात्य। यह केवल संयोग नहीं था कि भक्तिकाल में प्रबंधकाव्य काफी लिखे गए जबकि रीतिकाल के अधिकांश काव्य मुक्तक ही रहे। रीतिकाल में मुक्तक की अधिकता स्वभावत: ब्रजभाषा को ही स्वीकार्य बनाती है।

(ग) तत्कालीन राजनीतिक स्थिति ने भी इसमें भारी योगदान दिया। केन्द्रीय शासन स्थापित होने के कारण दूर-दूर तक ऐसे दरबार अस्तित्व में आए जहाँ शृंगार और कलात्मकता की खोज करना ही साहित्य का प्रयोजन था। इस वजह से राजस्थान, मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र आदि क्षेत्रों तक ब्रजभाषा सफल होती हुई दिखाई पड़ती है।

(घ) भक्तिकाल के साथ भक्ति की काव्यधारा समाप्त नहीं हुई बल्कि सीमित रूप से चलती रही। रीतिकाल के प्रमुख कवियों ने जिस काव्यधारा को अधिक महत्त्व दिया, वह कृष्ण भक्ति काव्यधारा थी जिसका परम्परागत संबंध ब्रजभाषा से ही था।

(ङ) रीतिकाल के माहौल में कलात्मक आनन्द की आवश्यकता जन-सामान्य भी महसूस करने लगा था। तीन सौ साल लंबे भक्तिकाल के बाद जनता की चित्तवृत्ति का बदलना स्वभाविक ही था। अब कविता से लोक जागरण तथा प्रगतिशीलता के तत्वों की कम, आनन्दमूलक तत्वों की अपेक्षा ज्यादा होने लगी थी। ब्रजभाषा में निहित कलात्मक श्रेष्ठता, अद्भुत कोमलता, संगीतात्मकता, लय और प्रवाह को धारण करने की उच्च क्षमता-इन सभी गुणों ने ब्रजभाषा को स्वभावत: इस चित्तवृत्ति के लिए अनुकूल बना दिया।

ब्रजभाषा के अखिल भारतीय भाषा होने के प्रमाण

(क) तुलसीदास का संबंध अवध क्षेत्र से था। वे संस्कृत और अवधी के विद्वान भी थे किन्तु उन्होंने अपनी कई कविताओं को ब्रजभाषा में लिखा। कवितावली व विनयपत्रिका इस दृष्टि से श्रेष्ठ रचनाएँ हैं। उनकी ब्रजभाषा का एक सुन्दर उदाहरण है-

"राम सों बड़ो है कौन, मोसों कौन छोटो,
राम सों खरो है कौन, मोसों कौन खोटो।"

(ख) पंजाब के कुछ कवियों ने भी ब्रजभाषा काव्य की रचना की। गुरु नानक देव के समय से ही गुरु परम्परा पर ब्रजभाषा का प्रभाव दिखाई पड़ता है जो दसवें गुरु गोविन्द सिंह में स्पष्ट रूप से दिखा। इनका समय भी रीतिकाल का है। यह प्रभाव अति स्वाभाविक भी है-

केते मारि डारे और केतक चबाई डारे,
केतक बगाई डारे काली कोपी तबही।"

(गोविंद सिंह)

(ग) राजस्थान तो रीतिकाल में ब्रजभाषा का गढ़ रहा। राजस्थान में इस समय ब्रजभाषा के दो रूप दिखाई पड़ते हैं। पहला रूप उसका प्रतिष्ठित रूप है जो दिनकर जैसे कवियों में दिखता है। दूसरा रूप मीराबाई के काव्य में दिखता है जिसमें ब्रजभाषा राजस्थानी भाषा से मिलकर एक संश्लिष्ट रूप से सामने आती है-

"कहत, नटत, रीझत, खिझत, मिलत, खिलत, लजियात।
भरे भौन में करत हैं, नैननु ही सों बात।"

(बिहारी)

"पग घुंघरू बांध मीरा नाची रे।
मैं तो अपने नारायण की, आपहि हो गई दासी रे।
लोग कहैं मीरा भई बावरी, न्यात कहैं कुलनासी रे।"

(मीरा)

(घ) इस समय मध्य प्रदेश के कई स्थानों पर भी ब्रजभाषा काव्य की रचना होती रही। केशवदास लम्बे समय तक ओरछा के राज्य में दरबारी कवि बनकर रहे। रोचक तथ्य है कि रीतिकाव्य का प्रवर्तन केशवदास ने मध्य प्रदेश में रहते हुए किया जबकि आगे के रीतिकाव्य का मुख्य संबंध राजस्थान से रहा है केशवदास की ब्रजभाषा का एक नमूना द्रष्टव्य है-

"जदपि सुजाति सुलच्छनी, सुबरन सरस सुवृत्त।
भूषण बिनु न बिराजई, कविता, वनिता, मित्त।"

(ङ) रीतिकाल के दौर में ब्रजभाषा महाराष्ट्र भी पहुँची। प्रसिद्ध मराठा योद्धा शिवाजी ने औरंगजेब के साथ जब लड़ाइयाँ लड़ीं तो उनके दरबारी कवि भूषण उनके साथ ही रहे। उन्होंने शिवाजी की प्रशंसा में जो कविताएँ लिखीं, वे मराठी में नहीं ब्रजभाषा में रचीं जिससे सिद्ध होता है कि तत्कालीन महाराष्ट्र तक में ब्रजभाषा काव्यभाषा के रूप में स्वीकृत थी-

"तेज तम अंस पर, कान्ह जिमि कंस पर,
त्यों मलेच्छ बंस पर, सेर सिवराज है।"

(च) ब्रजभाषा का प्रभाव दिल्ली और निकटवर्ती क्षेत्रो में पर्याप्त रूप से दिखाई पड़ता है। रीतिकाल से बहुत पहले ही अमीर खुसरो ने दिल्ली में रहते हुए ब्रजभाषा काव्य के आरंभिक नमूने प्रस्तुत किए। यह भी रोचक तथ्य है कि ब्रजभाषा काव्य की शुरुआत ब्रज क्षेत्र में नहीं, बल्कि दिल्ली और राजस्थान में हुई। अमीर खुसरो की ब्रजभाषा का नमूना इस प्रकार है-

"मेरा मोसे सिंगार करावत, आगे बैठ के मान बढ़ावत।
वासे चिक्कन ना कोऊ दीसा, ऐ सखि साजन!
ना सखि सीसा!!"

(छ) रीतिकाल के अंत तथा भारतेन्दु युग की शुरुआत में दिखाई पड़ता है कि ब्रजभाषा न सिर्फ लखनऊ जैसे अवधी भाषा क्षेत्र में, बल्कि बनारस तक के सम्पूर्ण पूर्वी क्षेत्र में काव्यभाषा के रूप में आसीन हो चुकी थी। न सिर्फ भारतेन्दु (बनारस, बलिया) इस क्षेत्र में ब्रजभाषा काव्य की रचना कर रहे थे बल्कि उनके मण्डल के सभी सदस्य बनारस, कानपुर और लखनऊ में फैले हुए थे-

"रोवहु सब मिलिकै आवहु भारत भाई।
हा हा ! भारत दुर्दशा न देखी जाई।।" *(भारतेन्दु हरिश्चन्द्र)*

(ज) इनके अतिरिक्त, कुछ अन्य क्षेत्रों में भी ब्रजभाषा का काव्यभाषा के रूप में प्रचलन दिखाई पड़ता है। भक्ति काल में ही कुछ ऐसे संकेत दिखने शुरु हो गए थे जो बाद के समय में भी दिखते रहे। उदाहरण के लिए गुजरात के नरसी मेहता के काव्य में ब्रजभाषा का प्रभाव परिलक्षित होता है। इसी प्रकार, जब ब्रजभाषा का प्रभाव बंगाल पहुँचा तब इसकी कोमलता और मधुरता से चैतन्य महाप्रभु अत्यंत प्रभावित हुए। यहाँ ब्रज के प्रभाव से एक नई शैली ही चल पड़ी जिसे 'ब्रजबुलि' कहा गया।

निष्कर्ष

वस्तुत: ब्रजभाषा का यह स्तर आधुनिक काल के आरम्भ से पूर्व तक ही रहा। आधुनिक काल की अपेक्षाओं पर ब्रजभाषा खरी नहीं उतर सकी, अत: उसकी अखिल भारतीय स्वीकृति छीजने लगी। खड़ी बोली आधुनिकता की प्रवृत्तियों को धारण करने के कारण देखते ही देखते उसकी तुलना में अधिक महत्त्वपूर्ण हो गई।

12.9 ब्रजभाषा (टिप्पणी)

ब्रजभाषा पश्चिमी हिन्दी से विकसित हुई सबसे प्रमुख बोली है जिसका भौगोलिक संबंध ब्रजमण्डल या ब्रज प्रदेश से है। इसके आरंभिक संकेत यद्यपि आदिकाल में ही अमीर खुसरो तथा पिंगल भाषा के रूप में दिखने लगे थे, किंतु इसका वास्तविक विकास भक्तिकाल की कृष्णाश्रित काव्यधारा में हुआ। रीतिकाल में बिहारी जैसे कवियों ने इसमें कलात्मक चमत्कार किए तो घनानन्द ने इसे हृदय की गहराइयों से जोड़ा। भारतेन्दु युग भी कविताओं में ब्रजभाषा के मोह से मुक्त नहीं हो पाया हालाँकि छायावाद के दौर तक आते-आते काव्यभाषा के रूप में यह समाप्त हो गई।

ब्रजभाषा की विशेषताओं में निम्नलिखित तत्व महत्त्वपूर्ण हैं-

(अ) ध्वनिगत विशषताओं में ओकारान्तता की प्रवृत्ति (उठो, आयो, गयो), महाप्राण ध्वनियों का अल्पप्राणीकरण (मुख > मुँह), ण > न (बाण > बान), श > स (उपदेश > उपदेस) इत्यादि प्रमुख हैं।

(आ) व्याकरणगत विशेषताओं में महत्त्वपूर्ण इस प्रकार हैं। इसकी क्रिया संरचना में वर्तमान काल हेतु 'त' रूप (करत, बैठत), भविष्यकाल के लिए 'ग' रूप (करौगो) तथा भूतकाल हेतु 'औ' रूप (गयौ) का विशेष प्रचलन है। बहुवचन बनाने के लिए 'ए', 'अन' तथा 'इन' (बातन, सखिन) तथा स्त्रीलिंग बनाने के लिए 'ई', 'इनी' तथा 'आइन' प्रत्ययों का प्रयोग उल्लेखनीय है। कारकीय परसर्गों में कु, कूँ (कर्म), सूँ तथा सौं (करण व अपादान) प्रमुख हैं।

ब्रजभाषा मूल रूप में चाहे ब्रजमण्डल की बोली हो किन्तु काव्यभाषा के रूप में पूरे देश में प्रसिद्ध रही। पंजाब में गुरु गोविन्द सिंह, अवध में तुलसी, मध्य प्रदेश में केशवदास, राजस्थान में मीरा, महाराष्ट्र में भूषण, गुजरात में नरसी मेहता इत्यादि कवि इसका प्रयोग करते रहे हैं। इसी कारण आचार्य भिखारीदास को कहना पड़ा-

"ब्रजभाषा हेत ब्रजवास ही न अनुमानौ,
ऐसे कविन की बोली है सो जानिए।"

ब्रजभाषा की विभेदक विशेषता उसकी कोमलता, मधुरता और मिठास है। इसी कोमलता ने सूर को वात्सल्य और शृंगार का महानतम कवि बना दिया और बिहारी के दोहो में अद्भुत चमत्कार भर दिया। किन्तु, यही चमत्कारिकता आधुनिक काल में ब्रजभाषा की सीमा बन गई और इसका पतन हो गया। अभी भी इसके महत्त्व को खारिज करना संभव नहीं है।

12.10 ब्रजभाषा में निहित गंभीर कलात्मकता के कारण

गंभीर कलात्मकता का अर्थ– कलात्मकता दो तत्वों पर निर्भर होती है– कवि की क्षमता तथा भाषा की क्षमता। ब्रजभाषा की कलात्मक सर्वोच्चता निर्विवाद है। प्रश्न यही है कि यह सिर्फ उसके कवियों की क्षमताओं का परिणाम है कि अन्य कारण भी उत्तरदायी हैं? भाषाविदों में सहमति है कि ब्रजभाषा के साहित्य में विद्यमान कलात्मकता के कई कारण इस भाषा में ही निहित हैं। ऐसे प्रमुख कारण इस प्रकार हैं-

(क) भौगोलिक तथा सांस्कृतिक कारण: ब्रजभाषा ऐसे क्षेत्र की भाषा है जो यमुना का तट है, आर्थिक दृष्टि से वंचन का शिकार नहीं रहा है और कृष्ण मिथक जिसके संस्कारों में बैठे हुए हैं। कृष्ण पूर्ण अवतार माने गए हैं क्योंकि वे सभी गुणों व कलाओं से सम्पन्न हैं। राम का जीवन संघर्ष का जीवन है जबकि कृष्ण का जीवन 'जीवन की कला' है। ऐसा समाज जीवन को सिर्फ आर्थिक या राजनीतिक प्रयासों तक सीमित नहीं करता बल्कि जीवन में आनंद व तन्मयता की खोज करता है। ऐसे समाज की भाषा कलात्मक न हो, यह संभव नहीं है।

(ख) साहित्यिक कारण: ब्रजभाषा में साहित्य की परंपरा सूरदास से आरंभ हुई और वल्लभ के प्रभाव के कारण यहीं से शृंगार व वात्सल्य केन्द्र में आ गए। सूर ने कला के सर्वोच्च स्तर तक इस भाषा को पहुँचाया जिसमें मुख्य भूमिका बिंब, अलंकार, वक्रता जैसे तत्वों की रही। सूर का नेत्रहीन होना और उनकी विभाव योजना का सीमित होना भी कला के विकास में सहायक रहा क्योंकि वस्तुगत विस्तार के अभाव में कलागत श्रेष्ठता ही कविता को महान बना सकती है। आगे चलकर, बिहारी जैसे कवियों ने कविता व कला को बेहद गहराई से जोड़ दिया। इन कवियों ने चित्रकला, संगीतकला आदि के आनंद को भी काव्य में भर दिया। यही कारण है कि इन कवियों के पास आकर ब्रजभाषा कलात्मक चमत्कृति का अद्भुत माध्यम बन गई।

(ग) ऐतिहासिक कारण:

(अ) ब्रजभाषा कृष्ण के मिथक से जुड़ी भाषा है। कृष्ण के मिथक के कलात्मक प्रयोग की संभावना जयदेव, विद्यापति दिखा चुके थे। लोकबद्धता का दबाव न होने से कलात्मकता खुलकर निखर सकी।

(आ) कृष्ण भक्त कवि मंदिर के माहौल में रहते थे और आर्थिक जीवन के संघर्षों से प्राय: अप्रभावित थे। उन्हें तुलसी की तरह गरीबी विचलित नहीं करती थी और न कबीर की तरह वर्णव्यवस्था व साम्प्रदायिकता। तन्मयता के ऐसे माहौल में कलात्मक विकास की संभावना बढ़ जाती है।

(इ) रीतिकाल में युद्धविहीन तथा सुरक्षित राजनीतिक स्थिति के कारण दरबार कलाओं में डूबने लगे और हर कला संवेदना के स्थान पर अभिव्यक्ति सामर्थ्य पर निर्भर हो गई। इसने ब्रजभाषा में निहित कला को ऐसे स्तर पर पहुँचा दिया जो किसी भी भाषा के लिए स्वप्न होता है। लक्षण ग्रंथ परम्परा ने इसमें सहयोग दिया क्योंकि लक्षणों का प्रयोग करते-करते ये कवि भी अपनी कविताएँ काव्यशास्त्र के अनुकूल बनाने लगे।

12.11 ब्रजभाषा की शक्तियाँ और सीमाएँ

शक्तियाँ

ब्रजभाषा की मूल शक्ति इसमें निहित अद्भुत कोमलता व माधुर्य है। किसी भाषा में कोमलता व माधुर्य की उपस्थिति का संबंध मुख्यत: इस बात से है कि भाषा में कौन से स्वरों व व्यंजनों का प्रयोग ज्यादा होता है। यदि 'ट' वर्ग की ध्वनियों का अधिक प्रयोग हो और 'ड़' 'ढ़' जैसी ध्वनियाँ आती रहें तो भाषा में कठोरता व ओजगुण पैदा होते हैं। इसके विपरीत, यदि प, म, न तथा ल जैसी ध्वनियाँ अधिक आवृत्ति के साथ उपस्थित हों तो भाषा माधुर्य गुण से भर उठती है। ब्रजभाषा की मधुरता व कोमलता इन्हीं तत्वों पर टिकी है। इस कोमलता और माधुर्य के कारण ब्रजभाषा वात्सल्य व शृंगार के क्षेत्रों में विशेषीकृत भाषा बन गई। वात्सल्य के लिए जिस कोमलता की आवश्यकता होती है, वह हिन्दी की किसी भी अन्य बोली की अपेक्षा ब्रजभाषा में अधिक है। मैथिली ही इस स्तर पर प्रतिस्पर्द्धी नज़र आती है किन्तु ब्रजभाषा उस पर भी भारी पड़ती है। यही कारण है कि ब्रजभाषा में वात्सल्य वर्णन का जो उच्च स्तर छुआ गया, वह दुनिया की किसी भी अन्य भाषा के साहित्य में नहीं दिखता। उदाहरण के लिए,

"सोभित कर नवनीत लिए।
घुटरुनि चलत रेनु तन मंडित, मुख दधि लेप किये।"

माधुर्य गुण की अत्यधिक उपस्थिति के कारण ब्रजभाषा शृंगार की मार्मिकता का जितना गहरा उद्घाटन कर पाती है, उतना कोई और भाषा नहीं। यही कारण है कि भक्तिकाल में शृंगार का सर्वोच्च रूप हमें कृष्ण काव्यधारा में ही मिलता है, जहाँ ब्रजभाषा एक सहायक कारण के रूप में उपस्थित थी। न सिर्फ संयोग के चित्र बल्कि वियोग की सभी अन्तर्दशाओं का मर्मभेदी अंकन भी ब्रजभाषा में हुआ है, जिसकी सुंदरतम अभिव्यक्तियाँ बिहारी व सूरदास के काव्य में दिखती हैं। उदाहरण के लिए,

संयोग-

"बतरस लालच लाल की, मुरली धरी लुकाइ।
सौंह करे, भौंहनु हँसे, दैन कहे, नट जाइ।"

वियोग-

"निरखति अंक स्यामसुंदर के बार-बार लावति छाती।
लोचन जल कागद मसि मिलिकै ह्वै गई स्याम स्याम की पाती।।"

ब्रजभाषा गति, प्रवाह व चंचलता की दृष्टि से एक बेहतरीन भाषा है। इसमें रचनाकार बहुत तीव्र गति से भावों का उतार-चढ़ाव करते हुए अपनी बात को बेहद कम शब्दों में कह देता है। भावों को उठाने व गिराने की तेजी इसे वह समाहार क्षमता प्रदान करती है जो मुक्तक काव्य की सफलता का निर्धारक तत्व है। पूरा रीतिकाल मुक्तक साहित्य का दौर रहा और प्राय: पूरा मुक्तक साहित्य ब्रजभाषा में ही रचा गया, इससे प्रमाणित होता है कि रीतिकाल के कला-सजग कवि भी अपने

मुक्तकों के लिए ब्रजभाषा को ही श्रेष्ठ मानते थे। निम्नलिखित उदाहरण में समाहार क्षमता का सर्वोच्च स्तर दिखता है, जिसमें एक ही वाक्य में सात क्रियाओं का प्रयोग करके सात वाक्यों का अर्थ भर दिया गया है-

"कहत, नटत, रीझत, खिझत, मिलत, खिलत, लजियात।
भरे भौन में करत हैं, नैननु ही सों बात।''

ब्रजभाषा में एक विशेष गुण भाषायी लचीलेपन का भी है। यह गुण यूँ तो सभी समर्थ बोलियों में होता है, किन्तु ब्रजभाषा में तुलनात्मक रूप से अधिक है। इसका अर्थ है कि कोई बोली अन्य बोलियों के कितने तत्वों को पचा सकती है। जिस बोली में यह क्षमता ज्यादा होगी, वह अपने क्षेत्रा की सीमाओं को लांघने में अधिक समर्थ होगी। यह गुण अवधी में भी काफी अधिक है, किन्तु ब्रजभाषा में इसकी अधिकता का प्रभाव यह हुआ कि रीतिकाल में यह अपने भूगोल का अतिक्रमण करके अखिल भारतीय भाषा बन गई। इसका राजस्थानी मिश्रित रूप मीरा के काव्य में दिखता है तो पंजाबी मिश्रित रूप सिख गुरुओं की वाणी में। स्वयं सूरदास ने भी कुछ अवधी, कुछ पूर्वी तथा कुछ पंजाबी तत्व ब्रजभाषा में शामिल किए। फिर नंददास व परमानंददास ने संस्कृत शब्दों का ब्रजभाषाकरण किया जिससे भाषा और समृद्ध हुई। इसी लचीलेपन ने इसे अखिल भारतीय रूप प्रदान किया जिसके कारण आचार्य भिखारीदास को कहना पड़ा-

"ब्रजभाषा हेत ब्रजवास ही न अनुमानौ,
तेयै ऐसे कविन की बोली है सो जानिए।"

ब्रजभाषा की एक विशेषता यह भी है कि शृंगार व वात्सल्य में विशेषीकृत हो जाने के बावजूद यह अन्य भावों को धारण करने में भी असमर्थ नहीं हुई। इसमें निहित आंतरिक गत्यात्मकता के कारण यह अन्य भावों में भी उतनी ही सहज प्रतीत होती है, जितनी वात्सल्य व शृंगार में। उदाहरण के लिए-

"अपनी पहुँच विचारि कै, करतब करिये दौर।
तेते पाँव पसारिये, जेती लांबी सौर।"

(वृन्द)

"कौन करेजो नहिं कसकत, सुनि बिपति बाल बिधवन की"

(प्रताप नारायण मिश्र)

ब्रजभाषा में संगीतात्मकता और तन्मयता का जो सर्वोच्च स्तर मिलता है, वह किसी भी अन्य बोली में नहीं दिखता। रीतिकाल के कवियों ने ब्रजभाषा के साथ कई संगीतशास्त्रीय प्रयोग किए। सूरदास ने भी अपने अधिकांश पद विभिन्न राग-रागिनियों को आधार बनाकर रचे। संगीत व लय के प्रति भाषा की अनुकूलता का सर्वोच्च स्तर देव के निम्नलिखित उदाहरण में दिखता है-

"भरि रही भनक भनक तार ताननि की,
तनक-तनक तामें झनक चुरीन की।"

सीमाएँ

ब्रजभाषा की मूल सीमा यही है कि यह तीव्र भावुकता का संप्रेषण करने में विशेषीकृत होने के कारण गंभीर वैचारिकता का निर्वाह नहीं कर पाती। सूरदास के समय से भारतेन्दु युग तक इसका प्रयोग वात्सल्य, भक्ति, शृंगार इत्यादि पक्षों में ही होता रहा। लौकिक जीवन की समस्याओं पर विचार करने की प्रक्रिया इसमें नहीं पनप सकी। इसका नुकसान इसे 19वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में हुआ। आधुनिकता के आगमन के बाद लौकिक समस्याएँ साहित्य के केन्द्र में उभरने लगीं और ब्रजभाषा तमाम कोशिशों के बावजूद उन्हें धारण करने में असमर्थ सिद्ध हुई। यही कारण है कि आधुनिकता की वाहिका खड़ी बोली बन सकी क्योंकि उसमें अति भावुकता की प्रवृत्ति नहीं थी।

ब्रजभाषा मूल प्रकृति में चंचल व प्रवाहपूर्ण भाषा है। यह चंचलता मुक्तक काव्यों में बहुत बड़ी शक्ति बन जाती है किन्तु प्रबंध काव्यों में उतनी ही बड़ी सीमा। ऐसा नहीं कि ब्रजभाषा में प्रबंधकाव्य लिखे नहीं गए, किन्तु न सिर्फ इनकी मात्रा कम रही बल्कि ये अवधी की तुलना में कमजोर भी रहे। उदाहरणार्थ, 'रामचन्द्रिका' व 'कवितावली' ब्रजभाषा के प्रबंधकाव्य हैं किन्तु कथा में समान होने के बावजूद ये 'रामचरितमानस' के आसपास भी नहीं हैं।

रीतिकाल के सामंती वातावरण में लगातार प्रयुक्त होते-होते ब्रजभाषा इतनी कलात्मक हो गई कि साधारण जीवन की सहज अभिव्यक्ति करना उसमें कठिन हो गया। कोई भाषा जब काव्यात्मक (पोएटिकल) भाषा हो जाती है तो वह घिस-घिस कर इतनी लोचशील हो जाती है कि उसमें हर बात लय व संगीत से जुड़ने लगती है। यह अति-कलात्मकता भी आधुनिक काल में इसकी सीमा बन गई।

ब्रजभाषा के पतन का एक बड़ा कारण राजनीतिक भी रहा। अंग्रेज़ों के हावी होने के बाद उन्हें उपयोगिता की दृष्टि से या तो फारसी-प्रधान हिन्दी उपयुक्त लगती थी या खड़ी बोली क्योंकि वे ऐसी भाषा की तलाश में थे जो अखिल भारतीय सम्पर्क-भाषा हो, न कि अखिल भारतीय काव्यभाषा। खड़ी बोली को हिन्दी पत्रकारिता, समाज सुधार, प्रशासन आदि से ऐसी मान्यता मिल गई। ऐसी मान्यता मिलने के बाद ब्रजभाषा का पतन निश्चित था।

अभ्यास हेतु प्रश्न

1. मध्यकाल में काव्य-भाषा के रूप में प्रयुक्त ब्रज की विशेषताएँ (टिप्पणी)। **U.P.S.C. (Mains) 2017**
2. मध्यकाल में साहित्यिक भाषा के रूप में ब्रज का विकास (टिप्पणी) **U.P.S.C. (Mains) 2015**
3. भक्तिकालीन हिन्दी के विभिन्न रूप (टिप्पणी) **U.P.S.C. (Mains) 2012**
4. ब्रज और अवधी का व्याकरण - तुलनात्मक विवेचन कीजिये। **U.P.S.C. (Mains) 2010**
5. ब्रजभाषा की व्याकरणिक विशेषताएँ (टिप्पणी) **U.P.S.C. (Mains) 2005**
6. 'मध्यकाल में ब्रजभाषा और अवधी का साहित्यिक भाषा के रूप में विकास' पर प्रकाश डालिए। **U.P.S.C. (Mains) 2003**
7. उत्तर भारत में भक्ति आन्दोलन में सहायक हिन्दी भाषा रूपों पर आलोचनात्मक निबन्ध लिखिए। **U.P.S.C. (Mains) 2001**
8. ब्रजभाषा और अवधी में अंतर (टिप्पणी) **U.P.S.C. (Mains) 2000**

अध्याय
13

खड़ी बोली

13.1 खड़ी बोली का नामकरण

जिस बोली को वर्तमान काल में खड़ी बोली कहा जाता है, उसका असली नाम कौरवी या देहलवी माना जाता है। यह बोली मूलत: कुरू प्रदेश की बोली है जिसके अन्तर्गत दिल्ली, आगरा, मेरठ, पानीपत, अम्बाला आदि के बीच का क्षेत्र शामिल है। यह भाषा पुरानी हिन्दी के बाद से ही इस पूरे क्षेत्र की जनबोली रही है। चूँकि बाहरी देशों से आये आक्रमणकारियों का संबंध मूलत: इसी प्रदेश से रहा, अत: धीरे-धीरे व्यावहारिक कारणों से इस बोली को समझना उनके लिए आवश्यक होता गया। दिल्ली सल्तनत की स्थापना के बाद स्वाभाविक रूप से यह बोली व्यापक होती गयी तथा इस पर कुछ फारसी प्रभाव भी पड़ने लगे। इसी बोली की अलग-अलग शैलियों को हिन्दुई, हिन्दुस्तानी, रेख्ता, उर्दू तथा दक्खिनी हिन्दी के नाम से जाना गया। ये सारी शैलियाँ मूलत: कौरवी के ढाँचे पर ही आधारित हैं, इनमें अन्तर मात्र शब्दों के अनुपात का है।

इसी कौरवी बोली को संभवत: उन्नीसवीं शताब्दी के आरंभ में पहली बार खड़ी बोली नाम से अभिहित किया गया। खड़ी बोली में खड़ी शब्द के संबंध में भाषा वैज्ञानिकों में पर्याप्त विवाद की स्थिति है। विभिन्न भाषा वैज्ञानिकों के प्रमुख मत इस प्रकार हैं-

(क) **डॉक्टर धीरेन्द्र वर्मा** का मानना है कि खड़ी शब्द कठोरता का द्योतक है। इसका प्रयोग इसलिए करना पड़ा कि ब्रजभाषा की कोमल प्रकृति से खड़ी बोली का अन्तर स्पष्टत: दिखाया जा सके।

(ख) **गार्सा द तासी** तथा **डॉ. चंद्रबली पाण्डेय** का मानना है कि खड़ी का संबंध खरी या शुद्ध से है। उनके अनुसार यह नाम इसलिए देना पड़ा कि इसे अरबी-फारसी से प्रभावित रेख्ता या उर्दू शैली से अलग रूप में प्रस्तुत किया जा सके।

(ग) **टी ग्राहम बेली** ने स्पष्ट किया कि खड़ी शब्द अंग्रेजी के स्टैण्डिंग (Standing) शब्द का अनुवाद है। अंग्रेजी में इसका अर्थ होता है मानक तथा परिष्कृत भाषा (Standard language)।

(घ) **सुनीति कुमार चटर्जी** का मानना है कि इस बोली को खड़ी बोली इसलिए कहना पड़ा कि यह अकारान्त या आकारान्त बोली है जबकि ब्रज, कन्नौजी और बुन्देलखण्डी जैसी पश्चिमी उपभाषा की अन्य बोलियाँ प्राय: ओकारान्त या इकारान्त हैं। अत: खड़ी पाई के अधिक प्रयोग के ही कारण यह 'खड़ी बोली' कहलाई।

इन सभी मतों में से यद्यपि किसी एक मत को पूर्णत: स्वीकार करना सम्भव नहीं है तथापि ऐसा लगता है कि खड़ी शब्द का संबंध खरी से हो सकता है। इसके दो कारण हैं। पहला यह कि र का ड़ के रूप में उच्चरित होना इस बोली के अपने स्वभाव के अनुकूल है तथा दूसरा यह कि हिन्दी की प्राय: सभी पूर्ववर्ती भाषाओं का नामकरण किसी न किसी गुणवाचक विशेषण के रूप में हुआ है। जिस तरह 'संस्कृत' का अर्थ 'संस्कारित भाषा' से है, 'पालि' का अर्थ 'पंक्तिबद्ध भाषा' से है, 'प्राकृत' का अर्थ 'जनभाषा' से है, 'अपभ्रंश' का अर्थ 'भ्रष्ट या संस्कारहीन भाषा' से है, उसी तरह खड़ी बोली नामकरण भी किसी गुण पर आधारित होना चाहिए। यह संयोग नहीं है कि लल्लू जी लाल की रचना 'प्रेमसागर' में, जिसमें पहली बार खड़ी बोली शब्द का प्रयोग हुआ है, इसका अर्थ "Pure Hindi" किया गया है।

समग्र रूप में यह कहा जा सकता है कि खड़ी बोली नामकरण का संबंध बोली के खरेपन से है। यह बोली जो कौरवी के नाम से आरंभ से प्रचलित थी, 1800 ईस्वी में फोर्ट विलियम कॉलेज की स्थापना के साथ ही खड़ी बोली के नाम से प्रसिद्ध होने लगी।

13.2 19वीं शताब्दी से पूर्व खड़ी बोली का विकास

वर्तमान समय में जिसे हम मानक हिन्दी के रूप में जानते हैं वह वस्तुत: हिन्दी की एक बोली खड़ी बोली का ही कुछ परिवर्तित रूप है। इस बोली के संबंध में प्राय: यह भ्रम रहा है कि इसका साहित्यिक भाषा के रूप में विकास अवधी

और ब्रजभाषा के बाद उन्नीसवीं शताब्दी में हुआ। वास्तविकता यह है कि पुरानी हिन्दी के बाद जिस समय हिन्दी की अन्य बोलियाँ विकसित हुईं, ठीक उसी समय में खड़ी बोली का विकास भी होने लगा। तत्कालीन साहित्य के कुछ उदाहरण ऐसे हैं जिनमें खड़ी बोली सीधे-सीधे महसूस की जा सकती है। कुछ अन्य उदाहरण ऐसे हैं जिनमें मिश्रित भाषा पद्धति है, तथा उस मिश्रण में खड़ी बोली की भाषिक प्रवृत्तियाँ भी विद्यमान हैं।

1. सिद्ध साहित्य में खड़ी बोली का आरंभिक स्वरूप

सिद्ध साहित्य सिद्ध सम्प्रदाय से सम्बंधित साहित्य है जो बौद्ध परम्परा का हिन्दू परम्परा से प्रभावित एक आन्दोलन है। इस सम्प्रदाय के लोग वाममार्गी बौद्ध कहलाते हैं। तांत्रिक क्रियाओं तथा मन्त्रों द्वारा सिद्धि चाहने के कारण ये लोग सिद्ध कहलाये। सिद्धों की संख्या 84 मानी गयी है जिनमें सरहपा, शबरपा तथा लुइपा प्रमुख हैं।

सिद्धों ने मध्य देश के पूर्वी भाग में आठवीं, नौवीं शताब्दी से लेकर ग्यारहवीं-बारहवीं शताब्दी तक दोहों तथा चर्यापदों के रूप में जनभाषा के माध्यम से साहित्य की रचना की। इस साहित्य में जो भाषा है वह अर्द्धमागधी अपभ्रंश के निकट है तथा आरंभिक खड़ी बोली की प्रवृत्तियों का स्पष्ट असर उस पर दिखायी देता है। उदाहरण के लिए सरहपा की रचनाओं के दो उदाहरण द्रष्टव्य हैं-

(अ) *"घर ही बइसी दीवा जाली। कोणहिं बइसी घंडा चाली।"*

(घर में बैठे-बैठे दीपक जलाते और एक कोने में बैठकर घंटा बजाते हैं)।

(आ) *"पंडिअ सअल सत्य बक्खाणअ।*

देहहिं बुद्ध बसन्त ण जाणअ।"

(पंडित सभी शास्त्रों का बखान करते हैं पर देह में बसने वाले बुद्ध को नहीं जानते)।

उपरोक्त उदाहरणों में खड़ी बोली की कई प्रवृत्तियाँ दिखती हैं- बइसी, दीवा, जाली, चाली आदि शब्द ईकारान्त या आकारान्त हैं। इसी प्रकार ण जाणअ में न के स्थान पर ण का प्रयोग, कोणहिं तथा देहहिं में अनुनासिक का प्रयोग आदि ऐसे संकेत हैं जो प्राकृत और अपभ्रंश के साथ-साथ खड़ी बोली के आरंभिक स्वरूप का एहसास कराते हैं।

2. नाथ साहित्य में खड़ी बोली का आरंभिक स्वरूप

नाथ साहित्य का संबंध सिद्ध सम्प्रदाय से ही विकसित किन्तु उसके विरोधी नाथ सम्प्रदाय से है। इसका प्रवर्तन गोरखनाथ ने किया तथा सिद्धों की भोगप्रधान साधनापद्धति के स्थान पर संयम तथा निवृत्ति पर आधारित साधनापद्धति का सूत्रपात किया। नाथों की संख्या नौ मानी गयी है जिनमें गोरखनाथ के अतिरिक्त चर्पटीनाथ, जलन्धरनाथ तथा भीमनाथ प्रमुख हैं।

नाथों ने अपने सम्प्रदाय की मान्यताओं को प्रचारित करने के लिए मध्यदेश के पश्चिमी भाग में 10वीं, 11वीं शताब्दी से लेकर 13वीं, 14वीं शताब्दी तक जनभाषा में जो रचनायें लिखीं उन्हें ही नाथ साहित्य कहा जाता है। घुमक्कड़ प्रवृत्ति के कारण इनकी भाषा पर तत्कालीन अन्य हिन्दी बोलियों का व्यापक असर दिखायी देता है जिनमें खड़ी बोली भी महत्त्वपूर्ण रूप से विद्यमान है।

नाथ साहित्य के कुछ उदाहरण ऐसे हैं जिनमें खड़ी बोली की कुछ प्रवृत्तियाँ तो दिखती हैं किन्तु यह भी झलक जाता है कि खड़ी बोली का प्रभाव सीमित मात्रा में ही है। उदाहरण के लिए चर्पटीनाथ का यह पद-

"जाणि के अजाणि होय बात तू लें पछाणि।
चेले हो दूआ लाभ होइगा गुरु होइओ आणि।।"

(तू जान के अनजान न बन, पहचान ले कि चेला बनने में लाभ ही लाभ है, गुरु होने में हानि है)।

उपरोक्त उदाहरण में न के स्थान पर ण का प्रयोग वह मूल प्रवृत्ति है जो खड़ी बोली में विशेष रूप से विद्यमान है। नाथ साहित्य में कुछ उदाहरण ऐसे भी हैं जो आश्चर्यजनक रूप से वर्तमानकालीन खड़ी बोली के निकट दिखायी पड़ते हैं। गोरखनाथ लिखते हैं-

नौ लख पातरि आगे नाचें पीछे सहज अखाड़ा
ऐसो मन लै जोगी खेलै तब अंतरि बसै भंडारा।।"

उपरोक्त उदाहरण में आकारान्तता, [illegible]कारान्तता आदि की लगभग सारी प्रवृत्तियाँ स्पष्ट रूप से खड़ी बोली के समान परिलक्षित होती हैं। संख्यावाची विशेषण [illegible] खड़ी बोली के समान हैं, यद्यपि लै, खेलै और बसै जैसे प्रयोग खड़ी बोली से कुछ अलग ब्रजभाषा की प्रकृति के निक[illegible] हैं।

इस प्रकार स्पष्ट है कि नाथ साहित्[illegible] में खड़ी बोली के प्रारंभिक रूप पूरी स्पष्टता के साथ विद्यमान हैं।

3. खुसरो साहित्य में खड़ी बोली [illegible] का आरंभिक स्वरूप

अमीर खुसरो जिनका वास्तविक न[illegible] अबुल हसन था, खड़ी बोली के पहले प्रमुख कवि माने जाते हैं। यह बात आश्चर्यजनक लगती है कि 14वीं शताब्दी [illegible] आरंभ में वे ठीक उस भाषा का प्रयोग कर रहे थे जैसी खड़ी बोली आधुनिक काल में दिखती है। इसका एक बड़ा का[illegible] यह है कि आधुनिक काल में खड़ी बोली का विकास जिस प्रकार हिन्दवी और फारसी की अन्तर्क्रिया से हुआ है, खुसरो [illegible]गभग वैसे ही वातावरण में रहकर काव्य रचना कर रहे थे। इसके बावजूद, 14वीं सदी में लिखित उनकी खड़ी बोली आज [illegible] खड़ी बोली के इतनी अधिक निकट है कि आश्चर्य मे डाल देती है। आचार्य शुक्ल स्वयं इसी विस्मय की स्थिति में पू[illegible] हैं- *"क्या उस समय तक भाषा घिसकर इतनी चिकनी हो गई थी जितनी अमीर खुसरो की पहेलियों में मिलती है?"*

खुसरो साहित्य में एक शैली वह है [illegible] जिसमें खड़ी बोली एकदम आधुनिक तथा शुद्ध रूप में नजर आती है। ऐसे कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं-

"[illegible]क थाल मोती से भरा, सबके सिर औंधा धरा।
चार[illegible] ओर वह थाल फिरे, मोती उससे एक न गिरे।।"

"खीर बनाई जतन से, चरखा दिया चला।
आकर कुत्ता खा गया, बैठी ढोल बजा।।"

खुसरो की कविताओं में खड़ी बोल[illegible] का दूसरा प्रयोग वहाँ दिखता है जहाँ वे खड़ी बोली और ब्रजभाषा के आरंभिक रूपों को मिला देते हैं, जैसे निम्नलिखित [illegible]हरण में 'वाकी' शब्द ब्रजभाषा का है जबकि शेष सारा ढाँचा खड़ी बोली का-

"खुसरो दरिया प्रेम का, उलटी वाकी धार।
जो उतरा सो डूब गया, जो डूबा सो पार।।"

इन शैलियों के अतिरिक्त अमीर खु[illegible] ने ऐसी रचनाएँ भी लिखी हैं जिनमें खड़ी बोली, ब्रजभाषा और फारसी एक ही प्रवाह में शामिल हो गयी हैं। कुल मिला[illegible] यह मानना पड़ता है कि अमीर खुसरो अपने भाषिक प्रयोगों में अपने समय तथा भविष्य की भाषिक प्रवृत्तियों का सुन्दर [illegible]स्य स्थापित कर पा रहे थे।

4. सन्त साहित्य में खड़ी बोली [illegible] आरंभिक स्वरूप

संत साहित्य भक्तिकाल की प्रथम [illegible] मानी जाती है जिसका समय लगभग 14वीं शताब्दी से लेकर सत्रहवीं शताब्दी तक स्वीकार किया जाता है। इस परम्परा [illegible] कबीरदास, सुन्दरदास और मलूकदास जैसे हिन्दी प्रदेश के कवि तो आते ही हैं, गुरुनानक देव (पंजाब), संत नामदेव व [illegible] ज्ञानेश्वर (महाराष्ट्र) तथा शंकरदेव (असम) आदि कवि भी आ जाते हैं।

संत कवियों की भाषा को प्राय: स[illegible]कड़ी या 'पंचमेल खिचड़ी' कहा जाता है। सधुक्कड़ी का अर्थ होता है- साधुओं की भाषा अर्थात् ऐसी भाषा जो कई स्थ[illegible] की भाषाओं के संयोग से निर्मित हुई हो। 'पंचमेल खिचड़ी' का अर्थ है ऐसी भाषा जो कई भाषाओं के मेल से बनी हो [illegible]बीर जैसे संत कवियों ने अपनी मिश्रित भाषा में खड़ी बोली को अत्यंत महत्त्वपूर्ण स्थान दिया है। कहीं-कहीं तो इनकी रच[illegible] मूलत: खड़ी बोली की ही प्रतीत होती हैं। उदाहरण के लिए, कबीर का यह पद देखा जा सकता है-

"जो बिछुड़े हैं पियारे से भटकते दर-बदर फिरते।
हमारा यार है हममें हमन को इन्तज़ारी क्या।।"

उपरोक्त उदाहरण में भाषिक संरचना मूलत: खड़ी बोली पर आधारित है जबकि 'हमन' जैसे प्रयोग इसके पूर्वीपन को तथा 'दर-बदर' जैसे प्रयोग फारसी प्रभाव को स्पष्ट करते हैं।

कबीर संत साहित्य के प्रवर्तक हैं और उन्हीं की रचनाओं से खड़ी बोली की उपस्थिति स्पष्टत: दिखायी देने लगती है। संत साहित्य के उत्तरार्द्ध में खड़ी बोली का प्रभाव और स्पष्ट दिखता है तथा रचनाएँ खड़ी बोली की ही प्रतीत होने लगती हैं। मलूकदास का निम्नलिखित पद 17वीं शताब्दी के सन्त साहित्य की इसी प्रवृत्ति को स्पष्ट करता है-

"अजगर करै न चाकरी, पंछी करै न काम।
दास मलूका कह गये, सबके दाता राम।।"

इसी प्रकार रीतिकालीन काव्य में दरिया साहब, पलटू साहब तथा यारी साहब जैसे संतकवि जिस भाषा में लिख रहे थे, वह खड़ी बोली के ही निकट थी जैसे-

"जात हमारी ब्रह्म है, मात-पिता है राम।
गिरह हमारा सुन्न में, अनहद मे बिसंराम।।"

इस प्रकार स्पष्ट है कि आधुनिक काल में खड़ी बोली जिस रूप में विकसित हुई है, उसके पीछे संत साहित्य की गहरी प्रेरणा विद्यमान रही है।

5. रहीम साहित्य में खड़ी बोली का प्रारंभिक स्वरूप

अब्दुल रहीम खानखाना अकबर के प्रसिद्ध दरबारी सहयोगी तथा सेनापति थे किंतु उनकी प्रसिद्धि का मूल आधार उनका साहित्य है। रहीम हिन्दी भक्तिकाल के कृष्णभक्त कवियों में प्रमुख माने गये हैं। इन्होंने अपनी रचनाओं में मूल रूप से अवधी ('बरवै नायिका भेद' आदि रचनाओं में) तथा ब्रजभाषा ('दोहावली' आदि रचनाओं में) का प्रयोग किया है किन्तु इनकी एक अन्य रचना 'मदनाष्टक' में खड़ी बोली का स्पष्ट प्रयोग दिखाई देता है। यूँ भी, इनके पूरे साहित्य में खड़ी बोली का आभास कराने वाली कुछ अन्य प्रवृत्तियाँ लगातार दिखाई पड़ती हैं।

साधारणत:, रहीम की भाषा में खड़ी बोली प्राय: शब्दों या पदों की प्रयुक्ति के स्तर पर ही है, व्याकरणिक ढाँचे के स्तर पर नहीं। उनके शब्द आधुनिक खड़ी बोली से इतने ज्यादा मिलते-जुलते हैं कि उन्हें समझने में एकदम कठिनाई नहीं होती। इसके बावजूद यह भाषा मूलरूप से ब्रज या अवधी से अधिक प्रभावित होती है। निम्नलिखित उदाहरण में ऐसी ही खड़ी बोली मिश्रित ब्रजभाषा को देखा जा सकता है-

"रहिमन पानी राखिये बिन पानी सब सून।
पानी बिनु न ऊबरे मोती मानुस चून।।"

ऐसा ही एक और उदाहरण द्रष्टव्य है जिसमें तीन शब्दों (नरन, सों तथा दुहूँ) के अतिरिक्त शेष संपूर्ण शब्दावली खड़ी बोली के ही समान प्रतीत होती है-

"रहिमन ओछे नरन सों, बैर भली न प्रीत।
काटे चाटे श्वान के दुहूँ भांति विपरीत।"

खड़ी बोली की परंपरा की दृष्टि से रहीम की कविता 'मदनाष्टक' अत्यन्त महत्त्वपूर्ण मानी गई है क्योंकि उसकी भाषा आज की खड़ी बोली जैसी ही है। व्याकरणिक संरचना तथा शब्दावली दोनों स्तरों पर यह उदाहरण खड़ी बोली का स्पष्ट आभास करा रहा है-

"पकरि परम प्यारे साँवरे को मिलाओ,
असल अमृत प्याला क्यों न मुझको पिलाओ।"

स्पष्ट है कि रहीम ने खड़ी बोली में पर्याप्त प्रयोगधर्मिता का परिचय दिया है। तब भी, औसत रूप से उनकी भाषा का मूल ढाँचा ब्रजभाषा एवं अवधी का है किन्तु शाब्दिक तथा व्यावहारिक स्तर पर यह भाषा खड़ी बोली के अत्यन्त निकट है।

6. दक्खिनी हिन्दी में खड़ी बोली का आरंभिक स्वरूप

तेरहवीं शताब्दी के अन्तिम दशक में सुल्तान अलाउद्दीन के दक्षिण अभियान के कारण कई अधिकारी, कर्मचारी और व्यापारी बीजापुर तथा गोलकुण्डा आदि क्षेत्रों में गये तथा उनके साथ उनकी भाषा भी गयी। यह भाषा दिल्ली के आसपास की की वही भाषा थी जिसे कौरवी कहा जाता है और जिसका नाम आधुनिक काल में खड़ी बोली हुआ। चौदहवीं शताब्दी के आरंभ में मुहम्मद तुगलक के आदेश के कारण बहुत बड़ी संख्या में दिल्ली के लोग देवगिरि या दौलताबाद जाकर बसे जिससे भाषिक संक्रमण की प्रक्रिया और तीव्र हुयी। धीरे-धीरे इन लोगों की भाषा पर उस क्षेत्र की भाषाओं - मराठी, तेलुगू और कन्नड़ आदि का प्रभाव पड़ने लगा। इस सम्पूर्ण प्रक्रिया में एक ऐसी मिश्रित भाषा पैदा हुयी जो अपने व्याकरणिक ढाँचे में खड़ी बोली के समान थी, बाहरी कलेवर (लिपि) में फारसी के समान थी तथा प्रकृति में सामासिक थी। इस भाषा में सूफी फकीरों तथा अन्य अनेक साहित्यकारों ने चौदहवीं शताब्दी से अठारहवीं शताब्दी तक साहित्यिक रचनाएँ कीं। इन्हीं रचनाओं के समग्र रूप को दक्खिनी साहित्य कहते हैं।

दक्खिनी हिन्दी के रचनाकारों में प्रायः किसी न किसी मात्रा में खड़ी बोली से निकटता दिखायी पड़ती है। इनकी कुछ रचनाएँ तो ऐसी हैं जो उत्तर भारत में खड़ी बोली हिन्दी की रचनाओं के रूप में विख्यात हैं। उदाहरण के लिए वली दकनी की यह गज़ल-

"जिसे इश्क का तीर कारी लगे,
उसे ज़िंदगी क्यों न भारी लगे।
x x x x
वली को कहे तूँ अगर एक वचन,
रकीबों के दिल में कटारी लगे।"

इसके अतिरिक्त अन्य कवियों की रचनाएँ भी खड़ी बोली हिन्दी से काफी मिलती-जुलती हैं। ख्वाजा बन्देनवाज़ तथा मुल्ला वजही की रचनाओं से एक-एक पंक्ति के उदाहरण क्रमशः द्रष्टव्य है-

(अ) *"मैं आशिक उस पीव का जिसने मुझे जीव दिया है।"*

(आ) *"सूरज यूं है रंग आसमानी मने,*
कि खिल्या कमल फूल पानी मने।"

दक्खिनी हिन्दी में खड़ी बोली के सभी स्वर तथा सभी व्यंजन तो मिलते ही हैं, अन्य प्रवृत्तियाँ भी मिलती हुई प्रतीत होती हैं। ड़ को ड करने की प्रवृत्ति खड़ी बोली (बड़ा > बड्डा) की तरह दक्खिनी हिन्दी (बड़ा > बडा) में भी है। इसी प्रकार, महाप्राण ध्वनियों के अल्पप्राणीकरण की प्रवृत्ति जिस प्रकार खड़ी बोली में है, वैसे ही दक्खिनी में भी, जैसे- झूठ > झूट, धोखा > धोका।

13.3 19वीं सदी में खड़ी बोली के तीव्र विकास के कारण

खड़ी बोली का आरंभिक स्वरूप यद्यपि पुरानी हिन्दी के बाद से लगातार दिखता है किन्तु यह बात विशेष रूप से ध्यान देने योग्य है कि इसके विकास का अनवरत और सतत् क्रम उपलब्ध नहीं होता है। पन्द्रहवीं शताब्दी के बाद इस भाषा का प्रयोग बहुत सीमित संख्या में दिखता है। दक्खिनी हिन्दी को छोड़ दें तो उत्तरी भारत में यह प्रयोग प्रायः नगण्य ही हैं। इसके बाद उन्नीसवीं शताब्दी में यह बोली अचानक तेजी से महत्त्वपूर्ण होने लगती है तथा देखते ही देखते पूरे हिन्दी प्रदेश की संपर्क भाषा के रूप में स्थापित हो जाती है।

हिन्दी भाषा के इतिहास में जिस गति से उन्नीसवीं शताब्दी में खड़ी बोली का विकास हुआ है, उतनी गति से किसी दूसरी भाषा या बोली के विकास का उदाहरण उपलब्ध नहीं होता। इसलिए यह समझना आवश्यक हो जाता है कि उस काल में ऐसे कौन से प्रेरक तत्व विद्यमान थे जिनके सहयोग से खड़ी बोली का इतना तीव्र विकास हुआ।

यहाँ एक महत्त्वपूर्ण बात ध्यान रखना आवश्यक है। खड़ी बोली का विकास अपने आप में एकआयामी या स्वायत्त घटना न होकर ब्रजभाषा के पतन से भी संबंधित है। अत: इस घटनाक्रम की व्याख्या में मूलत: उन कारणों की खोज करने की आवश्यकता है जिन्होंने एक ओर साहित्यिक भाषा के रूप में स्थापित ब्रजभाषा के पतन को सुनिश्चित किया तथा दूसरी ओर एक कठोर सी लगने वाली, दो-तीन शताब्दियों से साहित्य में प्राय: अप्रचलित सी भाषा खड़ी बोली को अचानक केंद्र में स्थापित कर दिया। इस तीव्र तथा जटिल परिवर्तन के निम्नलिखित कारण महत्त्वपूर्ण हैं-

(क) आधुनिकता का आगमन

खड़ी बोली का उन्नीसवीं शताब्दी में विकास मूलरूप से आधुनिकता की प्रवृत्तियों का ही विकास है। ब्रजभाषा का संबंध प्राय: उन प्रवृत्तियों से था जो मध्यकालीन मानसिकता में पैदा होती हैं तथा जीवन के कुछ सौन्दर्यपूर्ण पक्षों को केन्द्र में रखती हैं। दरअसल किसी भी भाषा के विकास का मूल संबंध इस बात से होता है कि उसकी प्रयुक्ति का क्षेत्र क्या है? ऐसा नहीं है कि ब्रजभाषा में मूल रूप से आधुनिकता को वहन करने की क्षमता नहीं थी, लेकिन उसका विकास सूरदास से लेकर जगन्नाथ दास रत्नाकर तक जिस पद्धति पर हुआ उसमें वह भाषा धीरे-धीरे जीवन के कुछ खास पक्षों की अभिव्यक्ति का एक विशेषीकृत माध्यम बनती गयी। उसमें प्रेम के सभी पक्ष चाहे वह वात्सल्य हो, सख्य हो, दाम्पत्य हो या चाहे भक्ति (ईश्वर के प्रति प्रेम) हो, बड़ी गहराई से व्यक्त होने लगे। इतना ही नहीं प्रेम के संयोग और वियोग, क्रीड़ापरक और पीड़ापरक जितने पक्ष हो सकते हैं, वे सभी अनन्त गहराई और सटीकता के साथ ब्रजभाषा में व्यक्त हुए। इस पूरी प्रक्रिया के दो प्रभाव पड़े - पहला यह कि सौन्दर्य और प्रेम जैसे प्रसंगों के लिए अन्य भाषाओं का प्रयोग प्राय: समाप्त होने लगा, और दूसरा यह कि प्रेम और सौन्दर्य के अतिरिक्त जीवन के अन्य सभी पक्ष ब्रजभाषा काव्य की परिधि से बाहर निकलने लगे। किसी भी भाषा के विशेषीकरण में यही दो स्थितियाँ पनपती हैं कि कुछ पक्षों पर उसका एकाधिकार स्थापित हो जाता है जबकि शेष सारे पक्ष उसकी अधिकार सीमा से ही बाहर चले जाते हैं। ठीक यही स्थिति एक दूसरे रूप में अवधी के सन्दर्भ में देखने को मिलती है। तुलसी के साहित्य, विशेषत: रामचरितमानस ने अवधी को इतनी गहराई से लोकमंगल की भावना से जोड़ दिया कि अवधी नीति और लोकमंगल की भाषा बनकर रह गयी। उसमें प्रेम तक की उक्तियाँ अनैतिक सी प्रतीत होने लगीं जबकि तुलसी से पहले जायसी की अवधी मूल रूप में प्रेम और सौन्दर्य को व्यक्त करने वाली अवधी ही थी।

इस बिन्दु पर यह समझा जा सकता है कि आधुनिकता के आगमन ने खड़ी बोली के विकास को कैसे गति प्रदान की। आधुनिकता का संबंध विवेकशील मानसिकता से है जो जीवन के सभी पक्षों को यथार्थ में देखती है। आधुनिकता की शर्त होती है कि सामाजिक जीवन के सभी पक्षों, चाहे वे राजनीतिक हों, आर्थिक हों, सांस्कृतिक हों या सामाजिक हों, के प्रति तटस्थ, वैज्ञानिक तथा तार्किक चिंतन किया जाए। ब्रजभाषा न तो इन विषयों को धारण कर सकती थी और न ही इन विषयों के प्रति वांछनीय तर्कपूर्ण दृष्टिकोण को। इसलिए यह स्वाभाविक था कि आधुनिकता के आगमन के साथ ही मध्यकालीन प्रवृत्तियों की प्रतीक ब्रजभाषा का पतन हो।

यहाँ एक और प्रश्न पर विचार करना आवश्यक है। क्या खड़ी बोली का विकास केवल इसलिए हुआ कि ब्रजभाषा का पतन निश्चत हो चुका था तथा कोई दूसरा मजबूत विकल्प हिन्दी भाषी जनता के पास नहीं था। यह बात एक हद तक सही है कि खड़ी बोली का विकास मूलत: ब्रजभाषा के पतन में निहित है। इसके बावजूद खड़ी बोली में भी ऐसी कई विशेषताएँ थीं जिन्होंने उसके चयन के आधार को मजबूत किया। पहला कारण यह था कि आरंभ से ही इस्लामी जनसमूह के साथ अन्तर्क्रिया होने के कारण खड़ी बोली अपनी प्रकृति में सामासिकता को धारण करती थी। दूसरा कारण यह था कि इसकी उर्दू शैली में और दक्खिनी हिन्दी में गद्य साहित्य की एक सुदीर्घ परम्परा स्थापित हो चुकी थी और आधुनिक जीवन के लिए उसी भाषा की ज़रूरत थी जो पद्य के प्रवाह को नहीं बल्कि गद्य के ठहराव और विस्तार को धारण करती हो। इसके अतिरिक्त, आदिकाल के सिद्ध-नाथ साहित्य से लेकर भक्तिकाल के संतकाव्य, रहीम व दक्खिनी काव्य में साहित्यिक भाषा के तौर पर इसका पर्याप्त विकास भी हो चुका था। अत: खड़ी बोली की प्रकृति में भी कुछ ऐसे कारण निहित थे जो उसे ब्रजभाषा की तुलना में बेहतर विकल्प के रूप में स्थापित करते थे।

समग्रत: यह कहा जा सकता है कि आधुनिकता का आगमन ही वह प्रस्थान बिन्दु है जिसने ब्रजभाषा के पतन और खड़ी बोली के तीव्र विकास को सुनिश्चित कर दिया।

(ख) राजनीतिक कारण

उन्नीसवीं शताब्दी की राजनीतिक स्थितियाँ तेजी से परिवर्तित हुई थीं। मुगलों के शासन के स्थान पर पहले ईस्ट इंडिया कम्पनी तथा बाद में ब्रिटिश शासन की स्थापना के साथ नयी स्थितियाँ पैदा हुईं। स्वाभाविक रूप से अंग्रेज शासक सामान्य व्यवहार की भाषा खड़ी बोली से परिचित हुए न कि काव्यभाषा ब्रजभाषा या अवधी से। इसी आधार पर उन्होंने खड़ी बोली के प्रचार-प्रसार पर ध्यान दिया।

(ग) फोर्ट विलियम कॉलेज की स्थापना

सन् 1801 में अंग्रेज सरकार ने फोर्ट विलियम कॉलेज की स्थापना की जिसका उद्देश्य ब्रिटेन से आने वाले प्रशासकों को भारतीय भाषाओं का प्रशिक्षण देना था। इस कॉलेज के प्रिंसिपल डॉ. जॉन गिलक्रिस्ट की मान्यता थी कि खड़ी बोली हिन्दी ही सारे भारत में समझी जाने वाली भाषा है। इस बात का ध्यान रखते हुए उन्होंने खड़ी बोली गद्य की कई शैलियों का विकास कराया। इस कार्य में उनका सहयोग करने वालों में लल्लू जी लाल, सदल मिश्र, सदासुखलाल तथा इंशाअल्ला खाँ प्रमुख थे।

(घ) ईसाई मिशनरियों का योगदान

खड़ी बोली के विकास में ईसाई मिशनरियों का भी महत्त्वपूर्ण योगदान माना गया है। अंग्रेजी शासन की स्थापना के साथ ही यूरोप से मिशनरियों का आगमन आरंभ हुआ और उन्होंने ईसाई मत के प्रचार के लिए भारत की सामाजिक आर्थिक स्थितियों को अपने अत्यन्त अनुकूल पाया। आरंभ में उन्होंने यह महसूस किया था कि फारसी प्रधान हिन्दी भारत में सर्वाधिक प्रचलित है। जल्दी ही यह भ्रम दूर हो गया और 1811 ईस्वी में पोप चेम्बरलीन तथा पिकॉप के आगमन के बाद मिशनरियों के समक्ष यह निश्चित हो गया कि भारत में सर्वाधिक प्रचलित भाषा हिन्दवी है। ईसाई प्रचारकों ने बाइबिल के कुछ विशेष अंशों का सरल हिन्दी में अनुवाद कराकर छोटी-छोटी पुस्तकों के रूप में उनका निःशुल्क वितरण कराया। इससे देवनागरी लिपि तथा खड़ी बोली का व्यापक प्रचार-प्रसार होने लगा। इस प्रक्रिया में हेनरी टॉमस कोल ब्रुक ने हिन्दी में बाइबिल का सर्वप्रथम अनुवाद किया। इसके बाद तो हिन्दी में अनुवाद का सिलसिला ही चल पड़ा। विलियम कैरे ने पाँच खंडों में बाइबिल का हिन्दी रूपांतरण 1812 से 1818 ई. के मध्य किया। इसी प्रकार, हेनरी मार्टिन ने न्यू टेस्टामेंट को 1817 ई. में देवनागरी लिपि में प्रकाशित कराया।

(ङ) सामाजिक सुधार आन्दोलन

ईसाई मिशनरियों के प्रचार-प्रसार की एक स्वाभाविक प्रतिक्रिया यह हुई कि कई भारतीय बुद्धिजीवी अपने-अपने धर्म तथा समाज की सुरक्षा के लिए आगे आये। इनके लिए आवश्यक था कि ये ईसाई मिशनरियों के विचारों का खण्डन करें तथा आम आदमी के मन में अपनी संस्कृति, अपने समाज तथा अपने धर्म के प्रति गहरी निष्ठा स्थापित करें। ऐसे नेताओं में महर्षि दयानन्द सरस्वती (आर्यसमाज), राजा राममोहन राय (ब्रह्मसमाज) तथा श्रद्धाराम फिल्लौरी (हिन्दू धर्म सभा) का योगदान अविस्मरणीय है। उन्होंने अपनी विचार सामग्री को सरल और सुबोध खड़ी बोली में प्रस्तुत किया। इससे भी खड़ी बोली का तीव्र विकास हुआ। स्वामी दयानन्द सरस्वती ने खड़ी बोली में सत्यार्थ प्रकाश की रचना की तथा आर्यसमाज के मूल सिद्धान्तों में हिन्दी के प्रति निष्ठा को स्थान दिया। उनकी तर्क-वितर्क शैली के प्रभाव से खड़ी बोली हिन्दी की पहचान एक ऐसी भाषा की बनी जिसमें तर्कपूर्ण विचार व्यक्त किए जा सकते हैं। राजा राममोहन राय ने 1815 ई. में 'वेदांतसूत्र' का हिन्दी में अनुवाद किया। 1829 ई. में उन्होंने 'बंगदूत' नामक अखबार निकाला तथा पत्रकारिता के माध्यम से हिन्दी और देवनागरी के पक्ष में आन्दोलन चलाया। श्रद्धाराम फिल्लौरी ने विश्व प्रसिद्ध आरती 'ओउम् जय जगदीश हरे' की रचना की। उनके गद्य 'सत्यामृतप्रवाह' में बहुत सा और प्रौढ़ खड़ी बोली देखने को मिलती है। इनके अतिरिक्त *"थियोसोफिकल सोसायटी"* ने देश में संपर्क भाषा के तौर पर हिन्दी को बढ़ावा दिया। इस काम में एनी बेसेंट की भूमिका काफी सराहनीय रही।

(च) प्रेस की स्थापना

प्रेस की स्थापना 19वीं शताब्दी की एक ऐसी घटना है जिसने सम्पूर्ण भारतीय समाज को भीतर तक परिवर्तित करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभायी। यद्यपि भारत में 16वीं शताब्दी में ही पहला छापाखाना खुल गया था तथापि इनके प्रयोग की विशेष परम्परा तब पड़ी जब ईसाई मिशनरियों ने अपने साहित्य के प्रकाशन के लिए इस माध्यम का प्रयोग करना आरंभ किया। इससे नागरी लिपि के लिए टाईप ढालने की प्रक्रिया शुरू हुयी। इस परिवर्तन से संप्रेषण की संभावनाएँ कई गुणा बढ़ गयीं। किसी भी रचना को किसी भी समय, कहीं भी पढ़े जाने की सुविधा विकसित हो सकी। 'उदन्त मार्तण्ड' हिन्दी का पहला साप्ताहिक पत्र था जो 1826 ईस्वी में कलकत्ता से निकलना आरंभ हुआ। 1852 ई. में सदासुखलालजी ने आगरा से 'बुद्धि प्रकाश' पत्रिका निकालना आरंभ किया। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने इसकी भाषा की प्रशंसा भी की है। 1854 ईस्वी में हिन्दी का पहला दैनिक पत्र 'समाचार सुधा दर्पण' निकलना आरंभ हुआ। आगे चलकर भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने कई पत्र-पत्रिकायें निकालकर न केवल हिन्दी पत्रकारिता को बल्कि संपूर्ण हिन्दी भाषा को समृद्ध किया। 'कविवचन सुधा' (1867 ई.), 'हरिश्चन्द्र पत्रिका' तथा 'बालाबोधिनी' जैसे पत्रों के माध्यम से उन्होंने व्यापक जन समुदाय को सामाजिक और भाषिक चेतना से सम्पन्न किया। उनके सहयोगी लेखकों में बालकृष्ण भट्ट (हिन्दी प्रदीप), प्रतापनारायण मिश्र (ब्राह्मण), चौधरी बदरीनारायण प्रेमघन (आनन्द कादम्बिनी) आदि ने भी पत्रकारिता तथा खड़ी बोली के विकास में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभायी।

इस प्रकार हम देखते हैं कि 19वीं शताब्दी में खड़ी बोली का तीव्र विकास कई प्रकार के कारणों का संयुक्त परिणाम था। आधुनिकता और नवजागरण की शक्तियों ने ब्रजभाषा के पतन की स्थितियाँ पैदा कीं तथा खड़ी बोली के विकास की। यह ज़रूर कहना होगा कि खड़ी बोली का विकास केवल ऐतिहासिक संयोगों का परिणाम नहीं है, खड़ी बोली का अपना व्यक्तित्व भी एक निश्चित सीमा तक कारण के रूप में विद्यमान है।

13.4 उन्नीसवीं शताब्दी में खड़ी बोली का साहित्यिक स्वरूप

उन्नीसवीं शताब्दी में खड़ी बोली का विकास एक लगातार चलने वाली प्रक्रिया रही है, इसलिए यह संभव नहीं है कि हम 19वीं शताब्दी की खड़ी बोली का एक विशेष स्वरूप निश्चित कर सकें। वस्तुत: इस शताब्दी में अलग-अलग चरणों में खड़ी बोली के अलग-अलग रूप दिखायी देते हैं। अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से इस शताब्दी में खड़ी बोली के विकास को प्राय: दो चरणों में विभाजित किया गया है-

(क) भारतेन्दु पूर्व युग या 19वीं शताब्दी का पूर्वार्द्ध। (ख) भारतेन्दु युग अथवा उन्नीसवीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध।

(क) भारतेन्दु पूर्व युग

भारतेन्दु पूर्व युग में खड़ी बोली के विकास में सबसे महत्त्वपूर्ण भूमिका फोर्ट विलियम कॉलेज की रही। इस कालेज के प्रिंसिपल जॉन गिलक्रिस्ट ने भारतीय भाषाओं का व्यापक अध्ययन किया तथा एक व्याकरण और एक शब्दकोष का निर्माण भी किया। वे इस भाषा को हिन्दुस्तानी कहना ज्यादा पसन्द करते थे। उर्दू के प्रयोगों की बहुलता उनकी भाषा नीति का प्रधान लक्षण था। फोर्ट विलियम कॉलेज में जॉन गिलक्रिस्ट के चार सहायक थे। 19वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में खड़ी बोली के विकास में सबसे प्रमुख भूमिका इन्हीं चारों की रही। इनके नाम हैं- इंशा अल्ला खाँ, लल्लू लाल, सदल मिश्र एवं सदासुखलाल।

इंशा अल्ला खाँ की प्रमुख रचना 'उदयभान चरित' या 'रानी केतकी की कहानी' है। इनका उद्देश्य एक ऐसी भाषा का था जिसमें 'हिन्दी छुट किसी बाहर की बोली का पुट न मिले'। इस उद्देश्य से उन्होंने अपनी भाषा को तीन प्रकार के शब्दों से मुक्त रखने का प्रयास किया -

(अ) बाहर की बोली अर्थात् अरबी, फारसी, तुर्की; (इ) भाखा अर्थात् संस्कृत।

(आ) गँवारी अर्थात् ब्रजभाषा और अवधी;

इंशा अल्ला खाँ उर्दू भाषा के अच्छे विद्वान थे, इसलिए उनकी भाषा में वाक्य विन्यास पर फारसी का स्पष्ट प्रभाव है। उनकी शैली में काव्यात्मकता और लयात्मकता तो है ही, कहीं-कहीं अलंकार, मुहावरे तथा उक्ति चमत्कार के प्रयास भी आवश्यकता से अधिक हैं। विशेष बात यह है कि उन्होंने रचना के काव्यखण्डों में भी खड़ी बोली का प्रयोग किया है। उनकी भाषा में स्त्रीलिंग विशेषणों और क्रियीय पदों का बहुवचन दक्खिनी हिन्दी की शैली में हुआ है जो उनके बाद प्राय: कहीं नहीं मिलता। उदाहरण के लिए 'दो जातियाँ', 'उंगलियाँ नचातियाँ', 'अँगड़ाइयाँ जम्हाइयाँ लेतियाँ' आदि प्रयोग इसी प्रकार के हैं। लयात्मकता का एक उदाहरण इस प्रकार है-

"नैनों की सजावट, पुतलियों की लगावट, पलकों की रुंधावट, हँसी की लगावट .... और इतनी सी बात पर रुकावट।"

लल्लू लाल की कुल चौदह रचनाएँ मानी गयी हैं जिनमें से 'प्रेमसागर' सबसे प्रमुख रचना है। उन्होंने इस रचना में 'जॉन गिलक्रिस्ट' के आदेश से *"यामिनी भाषा छोड़ दिल्ली आगरे की खड़ी बोली"* का प्रयोग किया। यहाँ यामिनी भाषा का अर्थ फारसी से प्रभावित वाक्य गठन शैली से है। उनकी भाषा में भी प्राय: उस काल की सारी विशेषताएँ विद्यमान हैं, जैसे - गद्य में लय और तुक का प्रयोग; दक्खिनी हिन्दी के आतियाँ, जातियाँ जैसे प्रयोग; अलंकारों, लोकोक्तियों और मुहावरों का अत्यधिक प्रयोग। उनकी भाषा में उनकी अपनी बोली ब्रजभाषा के कुछ अधिक प्रयोग हैं जैसे - आन बैठा, दीजै इत्यादि। इनके अतिरिक्त सर्वनामों में उस्ने, किस्नैं, उन्ने आदि विशेष रूप से दिखायी देते हैं।

सदल मिश्र की तीन रचनाएँ हैं- 'नासिकेतोपाख्यान', 'अध्यात्मरामायण' और 'रामचरित्र'। बिहार के निवासी होने के कारण इनकी भाषा में पूर्वी प्रयोग कुछ अधिक हैं जैसे - मोतिन्ह से, नासकरावनहारा इत्यादि। इनकी खड़ी बोली अपने युगीन रचनाकारों की तुलना में काफी साफ-सुथरी है। मुहावरों और चमत्कारों की अधिकता से ये लगातार बचे हैं और अनावश्यक तुकबन्दी इन्होंने कहीं नहीं की है। इनकी भाषा का एक उदाहरण इस प्रकार है-

"एक दिन एक समय राजा जनमेजय गंगा के तीर पर बारह बरस यज्ञ करने को रहे।"

सदासुखलाल ने खड़ी बोली के उस रूप को अपनाया जिसमें पूर्व और पश्चिम की बोलियों का सम्मिश्रण था। इनकी भाषा में प्रवाह काफी अच्छा है, हालाँकि कहीं-कहीं इनकी भाषा ग्रामीण बोलियों से प्रभावित हुई है। इनकी भाषा का एक उदाहरण इस प्रकार है:

"विद्या .... इस हेतु नहीं पढ़ते हैं कि चतुराई की बातें कहके लोगों को बहकाइए, फुसलाइए, और असत्य छिपाइए।"

19वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में फोर्ट विलियम कॉलेज के इन चार लेखकों के अतिरिक्त दो और पक्षों पर चर्चा किये बिना खड़ी बोली के विकास के कारणों की स्पष्ट समझ नहीं बन सकेगी। ये हैं- **ईसाई मिशनरियों** द्वारा बाइबिल के अनुवाद तथा हिन्दी की शुरुआती पत्रकारिता। इस काल में ईसाई मिशनरियों ने कई पाठ्य पुस्तिकाओं का प्रकाशन किया। इन पुस्तकों की भाषा प्राय: अनगढ़ होती थी तथा विराम चिन्हों की अव्यवस्था इनमें लगातार दिखाई देती थी। 'विख्यात रूप से प्रसिद्ध' जैसे पुरानी गद्य शैली के प्रयोग इनकी भाषा में प्राय: दिख जाते हैं।

पत्र-पत्रिकाओं की भूमिका यद्यपि 1850 ई. तक बहुत महत्त्वपूर्ण नहीं थी किन्तु इस काल में हिन्दी पत्रकारिता का तीव्र विकास आरंभ हो गया था। 1826 ई. में हिन्दी का पहला साप्ताहिक पत्र 'उदन्त मार्तण्ड' निकला, 1828 ई. में 'बंगदूत' का प्रकाशन आरंभ हुआ और 1844 ई. में राजा शिवप्रसाद सितारे हिन्द का 'बनारस अखबार' निकलना शुरू हुआ। इस काल के पत्रों में प्राय: संस्कृत प्रधान भाषा का प्रयोग हुआ। ब्रज भाषा और अवधी के प्रयोग किसी न किसी रूप में भाषा में बने रहे। सभी पत्रों ने प्राय: उर्दू शैली से बचने का प्रयास किया। राजा शिव प्रसाद सितारे हिन्दी का 'बनारस अखबार' अकेला ऐसा पत्र था जिसकी भाषा उर्दू प्रधान थी।

(ख) भारतेन्दु युग अथवा 19वीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध

19वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में भारतेन्दु के साहित्य के आगमन से पूर्व खड़ी बोली हिन्दी की दो विशेष शैलियों का विकास हुआ। इन दो शैलियों का संबंध क्रमश: **राजा शिवप्रसाद सितारे हिन्द** और **राजा लक्ष्मणसिंह** से था।

राजा शिवप्रसाद सितारे हिन्द ने कई रचनाएँ लिखीं जिनमें 'मानव धर्मसार', 'राजा भोज का सपना', 'इतिहास तिमिरनाशक' तथा 'भूगोल हस्तामलक' आदि प्रमुख रचनाएँ हैं। आरंभ में इनकी भाषा सरल बोलचाल की थी जिसमें अरबी

फारसी के वही शब्द आते थे जो सामान्य भाषा में घुल मिल चुके हों। मानव धर्मसार आदि रचनाओं की भाषा तो एक हद तक संस्कृतनिष्ठ प्रतीत होती है। कालान्तर में (1860 के बाद) शिक्षा विभाग के अधिकारी बनने के बाद उनकी भाषा में उर्दूपन बढ़ता गया। उनकी रचना 'इतिहास तिमिरनाशक' की भाषा अरबी फारसी शब्दों से भरी हुई है। उनका विशेष योगदान यह है कि फारसी की पाँच ध्वनियों – क़, ख़, ग़, ज़, फ़ के नीचे नुक्ता लगाने की व्यवस्था उन्होंने ही शुरु की जिसे अब पूरी तरह स्वीकार किया जा चुका है। इनकी भाषा व्याकरणिक दृष्टि से सरल और व्यवस्थित है, हालाँकि कहीं-कहीं इसमें वर्तनी की दिरूपता दिखाई देती है जैसे – सकता और सक्ता, उसका और उस्का, उनने और उन्ने इत्यादि। राजा शिवप्रसाद की शैली का ही संतुलित अनुकरण सामाजिक यथार्थवादी लेखकों जैसे प्रेमचन्द, सुदर्शन, यशपाल और अश्क आदि ने किया है तथा पर्याप्त सफलता भी अर्जित की है।

राजा लक्ष्मणसिंह का दृष्टिकोण राजा शिवप्रसाद के दृष्टिकोण का ठीक विरोधी था। ये उर्दू को मुसलमानों की बोली मानते थे और ऐसी भाषा का प्रयोग करना चाहते थे जिसमें उर्दूपन एकदम न हो। रघुवंश नाटक के गद्यानुवाद की भूमिका में उन्होंने लिखा- *"हमारे मत में हिन्दी और उर्दू दो बोली न्यारी-न्यारी हैं। हिन्दी इस देश के हिन्दू बोलते हैं और उर्दू यहाँ के मुसलमानों और फारसी पढ़े हुए हिन्दुओं की बोलचाल है। हिन्दी में संस्कृत के पद बहुत आते हैं, उर्दू में अरबी-फारसी के।"* राजा लक्ष्मण सिंह ने शकुंतला नाटक और मेघदूत के अनुवाद में ऐसी ही भाषा का प्रयोग किया। यह खड़ी बोली की वही शैली है जिसका प्रयोग आगे चलकर स्वामी दयानंद सरस्वती, अंबिकादत्त व्यास, जयशंकर प्रसाद आदि रचनाकारों ने किया है।

19वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में खड़ी बोली के विकास से संबंधित सबसे महत्त्वपूर्ण घटना भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का साहित्य के क्षेत्र में आगमन है। भारतेन्दु ने न केवल स्वयं अनेक रचनाओं का प्रणयन किया बल्कि एक व्यापक साहित्यिक वातावरण भी पैदा किया जिसके परिणामस्वरूप उनके सहयोगी लेखकों का एक पूरा समूह भारतेन्दु मण्डल के नाम से तैयार हुआ। इस मंडल के बालकृष्ण भट्ट, प्रतापनारायण मिश्र और चौधरी बदरीनारायण प्रेमघन आदि विद्वानों ने खड़ी बोली के विकास में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभायी।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने नाटक, आलोचना, कहानी, निबंध और उपन्यास जैसी विधाओं के साथ-साथ पत्रकारिता के क्षेत्र में भी कई साहित्यिक और भाषिक प्रयोग किए। इनकी पद्य की भाषा प्राय: ब्रजभाषा रही जो अन्तिम समय में कहीं-कहीं खड़ी बोली के रूप में सामने आती है, जैसे-

"दुनिया में हाथ पैर हिलाना नहीं अच्छा,
मर जाना पै उठके कहीं जाना नहीं अच्छा।।"

सामान्यत: भारतेंदु पद्यभाषा के तौर पर खड़ी बोली के विरोधी थे। उन्हें शिकायत थी कि खड़ी बोली में वह लालित्य तथा समास-गुण नहीं है जो काव्य-रचना के लिए महत्त्वपूर्ण है। एक स्थान पर वे कहते भी हैं कि *"मैंने कई बार परिश्रम किया कि खड़ी बोली में कुछ कविता बनाऊँ पर मेरे चित्तानुसार नहीं बनीं, इससे यह निश्चय होता है कि ब्रज भाषा में ही कविता करना उत्तम होता है।"* उनकी गद्य की भाषा आरंभ में ब्रजभाषा मिश्रित खड़ी बोली थी जो धीरे-धीरे व्यावहारिक खड़ी बोली बनती गयी। उन्होंने राजा शिवप्रसाद सितारे हिन्द तथा राजा लक्ष्मण सिंह की शैलियों के मध्य संतुलन साधने का प्रयास किया ताकि भाषा सहज और प्रवाहमयी हो सके, उसमें न तो पंडिताउपन हो और न ही मौलवी शैली की दुरुहता। उनके साहित्य में सभी तरह की शैलियाँ किसी न किसी अनुपात में मिल जाती हैं लेकिन उनका मूल उद्देश्य खड़ी बोली को सहज और प्रचलित बोली के रूप में ही स्थापित करना था। इसी भाषा के संबंध में अपनी *"हरिश्चन्द्र मैगज़ीन"* की शुरुआत पर उन्होंने कहा "हिन्दी नये चाल में ढली, 1873 में"। उनकी यह आदर्श भाषा उनके साहित्य के अन्तिम चार-पाँच वर्षों में देखी जा सकती है। इसी भाषा को देखकर आचार्य शुक्ल ने लिखा *"जब भारतेन्दु अपनी मंजी हुयी परिष्कृत भाषा सामने लाये तो हिन्दी बोलने वाली जनता को गद्य के लिए खड़ी बोली का प्राकृत साहित्यिक रूप मिल गया और भाषा के स्वरूप का प्रश्न न रह गया। भाषा का स्वरूप स्थिर हो गया।"*

भारतेन्दु युग के दूसरे प्रमुख रचनाकार **प्रतापनारायण मिश्र** हैं। मिश्र जी की विशेषता यह है कि इनकी वाक्य संरचना चुस्त तथा तीव्र होती है, ये हास्य व्यंग्य का बेहद सफल प्रयोग करते हैं तथा इनकी भाषा में अरबी और फारसी स्वाभाविक मात्रा में विद्यमान रहती हैं। उदाहरण के लिए *"अब तो आप समझ गये न कि आप क्या हैं? कौन हैं? कहाँ के हैं?"*

बालकृष्ण भट्ट भी भारतेन्दु युग के बेहद सफल निबन्धकार माने जाते हैं। इनके मासिक पत्र का नाम *"हिन्दी प्रदीप"* था। इनकी भाषा की विशेषता यह है कि इसमें संस्कृतनिष्ठता की प्रवृत्ति काफी अधिक मात्रा में विद्यमान है। शुद्ध हिन्दी के पक्षधर होने के बावजूद ऐसा नहीं है कि ये अंग्रेजी तथा लोकभाषा से दूर भागते हों। जहाँ जितना आवश्यक हुआ है उन शब्दों का भी इन्होंने प्रयोग किया है। इनकी भाषा का एक उदाहरण इस प्रकार है- *"जो हम काशी पत्रिका के समान उर्दू हिन्दी को एक ही समझें तो हो ही नहीं सकता।"*

भारतेन्दु मण्डल से अलग, पंजाब में इसी समय एक ऐसे साहित्यकार और पत्रकार हुए जिन्होंने खड़ी बोली हिन्दी के विकास में अत्यधिक योगदान दिया। ये हैं **पण्डित श्रद्धाराम फिल्लौरी**। इन्होंने 'ओउम् जय जगदीश हरे' आरती की रचना उस समय की जब खड़ी बोली को काव्य भाषा के रूप में अस्वीकार करने की मुहिम कुछ लोग चला रहे थे। इन्होंने इस आरती के माध्यम से खड़ी बोली को अभूतपूर्व प्रतिष्ठा प्रदान की। यही नहीं इन्होंने गद्य के क्षेत्र में भी खड़ी बोली का बेहतरीन प्रयोग किया। वैचारिक स्पष्टता तथा भाषिक सरलता उनकी रचनाओं की मूल विशेषता मानी गयी है। उदाहरण के लिए अपने उपन्यास 'भाग्यवती' में वे लिखते हैं, *"जब तक पुरुष स्वयं स्त्री की और स्त्री पुरुष की आवश्यकता महसूस न करे, तब तक विवाह करने में उनमें परस्पर प्रेम नहीं हो सकता।"*

उपरोक्त रचनाकारों के अतिरिक्त ईसाई मिशनरियों और पत्रकारों की भूमिका 19वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में भी बनी रही। पत्रकारिता के प्रतिनिधियों के रूप में भारतेन्दु, बालकृष्ण भट्ट और प्रतापनारायण मिश्र आदि विद्वानों के योगदान की चर्चा अभी हमने की है। मिशनरियों की भूमिका लगभग वैसी ही रही जैसी 1850 ईस्वी से पहले थी।

इस प्रकार हम देखते हैं कि 19वीं शताब्दी में खड़ी बोली ने एक सामान्य बोली के रूप में अपनी विकास यात्रा आरंभ की किंतु इस सदी के अंत तक यह सर्वाधिक प्रचलित भाषा के स्तर पर पहुँच गयी। यह अवश्य है कि 19वीं शताब्दी के अन्त तक इसका कोई निश्चित रूप स्थिर नहीं हो सका था और इसमें शब्दों की अनेकरूपता के साथ-साथ व्याकरणिक अनियमिततायें भी काफी मात्रा में बनी रही थीं, जैसे-

(अ) मरजाद, कार्य्य, वायू, परिनाम जैसी वर्तनीगत अनियमिततायें।

(आ) अप्सरों, बुरा वायू, राजों के महल, इनका मृत्यु, इक्कीस तोप की सलामी- जैसे संज्ञा, लिंग तथा वचन संबंधीदोष।

(इ) हमैं, उस्को, इन्के जैसे सर्वनाम।

(ई) काम कर्ता हूँ, सक्ता, लीजै, सुने हैं, मुझे मारने चाहती हैं- जैसे क्रिया संबंधी प्रयोग।

कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि 19वीं शताब्दी में खड़ी बोली ने विकास के बहुआयामी चरण पार किये। जिस गति और तीव्रता के साथ इसका विकास बोली से भाषा के रूप में हुआ, वैसे उदाहरण विश्व की भाषाओं के इतिहास में बहुत सीमित संख्या में हैं। 19वीं शताब्दी के अंत तक इसका परिनिष्ठित रूप व्यवहार में चाहे स्थापित न हुआ हो, सैद्धांतिक रूप से भारतेन्दु साहित्य के अंतिम चरण में स्थापित हो चुका था। आगे चलकर बीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने इसे व्यावहारिक स्तर पर परिनिष्ठितता प्रदान की तथा बाद में, छायावाद के चारों कवियों ने इस भाषा को उन आयामों से परिचित कराया जो विश्व की किसी भी सफल साहित्यिक भाषा के लिए महत्त्वपूर्ण होते हैं।

13.5 20वीं शताब्दी में पद्य की भाषा के रूप में खड़ी बोली का विकास

19वीं शताब्दी के अंत तक खड़ी बोली गद्य की भाषा तो बन गयी थी किंतु कविता की भाषा के रूप में वह सफलता अर्जित नहीं कर सकी थी। स्वयं भारतेन्दु ने लिखा था *"मैंने कई बार परिश्रम किया कि खड़ी बोली में कुछ कविता बनाऊँ पर मेरे चित्तानुसार नहीं बनीं, इससे यह निश्चय होता है कि ब्रज भाषा में ही कविता करना उत्तम होता है।"* भारतेंदु को शिकायत थी कि खड़ी बोली में काव्योचित सरसता तथा समास-गुण का अभाव है। कई अन्य साहित्यकारों, जैसे प्रतापनारायण मिश्र, बालकृष्ण भट्ट आदि ने भी माना कि खड़ी बोली में काव्योचित लालित्य का अभाव है। इसके बावजूद कुछ कवि खड़ी बोली में कविता लिखने का प्रयास करते रहे। स्वयं भारतेंदु ने खड़ी बोली में कुछ कविताएँ लिखीं, जैसे-

"दुनिया में हाथ-पैर हिलाना नहीं अच्छा,
मन लाना पै उठके कहीं जाना नहीं अच्छा।।"

बीसवीं शताब्दी के आरंभ में महावीर प्रसाद द्विवेदी ने सरस्वती पत्रिका का सम्पादन आरंभ किया और वे साहित्य जगत में प्राय: सर्वसम्मति से नेता मान लिये गये। उनके तथा कई अन्य रचनाकारों के अथक प्रयासों से द्विवेदी युग में भाषा का द्वैत समाप्त हुआ अर्थात् पद्य और गद्य दोनों की भाषा के रूप में खड़ी बोली को स्वीकार कर लिया गया। अयोध्याप्रसाद खत्री, पं. गौरीदत्त तथा बाबू श्यामसुंदर दास के साथ-साथ पं. श्रीधर पाठक तथा अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' जैसे कवियों ने खड़ी बोली को काव्यभाषा बनाने के आंदोलन का नेतृत्व किया। हरिऔध ने खड़ी बोली का पहला महाकाव्य 'प्रियप्रवास' रचा और उसकी भूमिका में लिखा- *"यदि उसमें कांतता और मधुरता नहीं आ पाई है तो यह मेरी विद्या, बुद्धि और प्रतिभा का दोष है, खड़ी बोली का नहीं।"* इसी समय आचार्य किशोरीदास वाजपेयी व पं. कामता प्रसाद गुरु ने खड़ी बोली हिन्दी के व्याकरण भी लिखे।

स्पष्ट है कि इस समय हिन्दी की कविता की भाषा बन गई थी, हालांकि इस युग में जो कविताएँ लिखी गईं वे प्राय: इतिवृत्तात्मक होकर रह गईं, अधिक प्रभावपूर्ण और रसात्मक नहीं हो सकीं। उदाहरण के लिए, मैथिलीशरण गुप्त, महावीर प्रसाद द्विवेदी तथा पं. श्रीधर पाठक की निम्नलिखित कविताएँ द्रष्टव्य हैं-

"केवल मनोरंजन न कवि का कर्म होना चाहिए
उसमें उचित उपदेश का भी मर्म होना चाहिए।"

(मैथिलीशरण गुप्त)

"अपने सब सेवक समूह पर स्वामी का आदर सत्कार,
प्राय: घटा-बढ़ा करता है सदा प्रयोजन के अनुसार।"

(महावीर प्रसाद द्विवेदी)

"बीता कातिक मास शरद का अंत है
लगा सकल सुखदायक ऋतु हेमंत है।"

(श्रीधर पाठक)

छायावाद में पहली बार खड़ी बोली काव्यभाषा के उस चरम स्तर पर पहुँची जहाँ भावना, कल्पना, प्रतीकात्मकता, लाक्षणिकता, लयात्मकता और ध्वन्यात्मकता जैसे काव्योचित गुण उसमें पूरी तरह उपलब्ध होने लगे। पन्त, प्रसाद, निराला और महादेवी की रचनाओं में भाषा का यह स्तर कई स्थानों पर उपलब्ध होता है। इन कवियों ने 'समास गुण' का अद्भुत प्रयोग कविताओं में किया जिसकी कमी भारतेंदु को खलती रही थी। निराला की 'राम की शक्ति पूजा' खड़ी बोली में समास-गुण की उपस्थिति का विराट प्रमाण है। अपने आंतरिक, सूक्ष्म कथ्य के अनुरूप इन्होंने अंग्रेज़ी के स्वच्छंदतावादी कवियों के शब्दों का न सिर्फ अनुवाद किया (जैसे- Broken Heart = भग्न हृदय, Golden Light = स्वर्णिम प्रकाश) बल्कि नए शब्द भी गढ़े जैसे स्वर्णिम, स्वप्निल इत्यादि। शब्दों की सांगीतिक योजना का ध्यान रखते हुए काव्य रचना करना इनकी भाषा की एक और अनूठी विशेषता थी, जैसे- 'उठ उठ री लघु-लघु लोल लहर' या 'झर-झर-झर निर्झर गिरि सर से'। यह भाषा अपने मिजाज़ में तत्सम है किंतु प्रभाव की दृष्टि से जानदार है। बिंब, प्रतीक, लक्षणाशक्ति और लय जैसे तत्व इसकी आंतरिक प्रकृति में बसे हुए हैं। उदाहरण के लिए-

"नयनों का नयनों से गोपन प्रिय संभाषण
पलकों का नव-पलकों पर प्रथमोत्थान पतन।।"

प्रगतिवाद के दौर में खड़ी बोली काव्यभाषा पुन: भावना और कल्पना के लोक से उतरकर जटिल यथार्थ की ओर उन्मुख हुई। प्रगतिवादियों के अनुसार भाषा का काम विचारों का स्पष्ट संप्रेषण मात्र है। प्रतीकों का प्रयोग भाषा को असंप्रेषणीय बनाता है। लक्षणा के स्थान पर अभिधा शक्ति ही इनके अनुसार साहित्य की भाषा में प्रमुख होनी चाहिए। इस काव्यधारा की भाषा तेज और ओज से भरी भाषा है जिसमें अन्याय और शोषण से लड़ने का जोश साफ दिखता है। इन प्रगतिशील तथा यथार्थवादी विचारों को सफलतापूर्वक वहन करके खड़ी बोली ने अपनी क्षमताओं का और अधिक विस्तार किया। उदाहरण के लिए केदारनाथ अग्रवाल लिखते हैं-

"मैंने उसको जब जब देखा लोहा देखा
लोहा जैसे तपते देखा, गलते देखा, ढलते देखा
मैंने उसको गोली जैसे चलते देखा।"

प्रयोगवाद में खड़ी बोली काव्य भाषा ने पुनः एक नया रूप धरा। इसकी शब्दावली पुनः कुछ-कुछ छायावाद जैसी हुई किन्तु नये प्रतीकों, उपमानों तथा बिम्बों से युक्त होकर यह शहरी जीवन की जटिल मनःस्थितियों को बारीकी से व्यक्त करने का सफल माध्यम बन गयी। यहाँ लक्षणा शब्दशक्ति पुनः केंद्र में आ गई, प्रतीकों का प्रयोग फिर से लौटने लगा तथा भाषा को जीवन की सहजता से जोड़ने के लिए अंग्रेज़ी के शब्दों को भी खुलेआम शामिल किया गया। भाषायी नवीनता और प्रयोगधर्मिता की कोशिश में लगे इन कवियों को नये उपमानों की खोज व्याकुल कर रही है। अज्ञेय लिखते हैं-

"अगर मैं तुमको
ललाते सांझ के नभ की अकेली तारिका
अब नहीं कहता
तो नहीं कारण कि मेरा हृदय उथला था कि सूना है
या कि मेरा प्यार मैला है
बल्कि केवल यही
ये उपमान मैले हो गए हैं
देवता इन प्रतीकों के कर गए हैं कूच।"

नयी कविता में खड़ी बोली काव्य भाषा कुछ नये रूपों में आयी। जहाँ प्रयोगवाद की भाषा केवल वैयक्तिक और साहित्यिक अनुभवों तक सीमित हो गयी थी, यह भाषा अपनी परिधि से बाहर निकलकर शहर के आम आदमी की आम समस्याओं तक पहुँची। इस वजह से नयी कविता की भाषा शब्दों की दृष्टि से सरल होते हुए भी अभिव्यक्ति की दृष्टि से पूरी जटिलता को धारण करती है। अंग्रेज़ी के शब्दों का यहाँ भी खुल्लमखुल्ला प्रयोग हुआ है (जैसे- *"टिक-टिक-टिक, लेट मी स्पीक"*)। सहज भाषा को ही काव्यभाषा बनाने की मांग कई कवियों ने की, जैसे-

"बिंब और प्रतीक को मारिए गोली,
सीधे साथ बोलिए खड़ी फर्रूखाबादी बोली।"

(सर्वेश्वर)

"जिस तरह हम बोलते हैं उस तरह तू लिख
और उसके बाद भी हमसे बड़ा तू दिख।"

(भवानी प्रसाद मिश्र)

नई कविता की भाषा की मूल विशेषता इसमें विद्यमान बिंब क्षमता है। यहाँ बिंबों का आग्रह इतना प्रबल रहा कि कई कवि तो कविता की परिभाषा बिंबों की शृंखला के रूप में ही करते रहे। सर्वेश्वर का निम्नलिखित उदाहरण नई कविता की बिंबप्रियता के साथ-साथ तत्कालीन काव्य अनुभूति में निहित विसंगति बोध को व्यक्त करता है-

"कैसी विचित्र है यह ज़िंदगी
जिसे मैं जीता हूँ
एक सड़ा कपड़ा जो फटता जाता है
ज्यों-ज्यों सीता हूँ।"

नयी कविता के बाद भी खड़ी बोली काव्यभाषा सन्दर्भों के साथ-साथ अपना स्वरूप बदलती रही है। इसका एक बेहद सुन्दर स्वरूप वह है जो आज़ादी के बाद **हिन्दी ग़ज़ल परम्परा** में उभरा है। इस परम्परा में आकर पहली बार खड़ी बोली हिन्दी ने सादगीपन में निहित वह प्रभावात्मकता हासिल की है जो प्रायः उर्दू ग़ज़लों में ही दिखायी देती रही है। दुष्यन्त कुमार लिखते हैं-

"हो चुकी है पीर पर्वत सी पिघलनी चाहिए
इस हिमालय से कोई गंगा निकलनी चाहिए
सिर्फ़ हंगामा खड़ा करना मेरा मकसद नहीं
मेरी कोशिश है कि ये सूरत बदलनी चाहिए
मेरे सीने में नहीं तो तेरे सीने में सही
हो कहीं भी आग पर अब आग जलनी चाहिए।।"

समकालीन काव्य भाषा के रूप में भी खड़ी बोली पूरी सार्थकता के साथ अपने दायित्वों का निर्वाह कर रही है। समकालीन जीवन की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसमें बहुत से परस्पर स्वतन्त्र और विरोधी रंग हैं, कई आयाम हैं। जटिलता की इस चरम अवस्था में वर्तमान जीवन की विद्रूपताओं को व्यक्त करने के लिए खड़ी बोली में नई शैलियों का विकास हुआ है। एक समकालीन कविता में खड़ी बोली के माध्यम से उपभोक्तावाद पर इस प्रकार चोट की गयी है-

"खुले-खुले बदन पर
साबुन का झाग हो गयी है औरत
पान पराग हो गयी है औरत।"

कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि खड़ी बोली काव्यभाषा के रूप में पिछली एक शताब्दी के प्रत्येक चरण में हिन्दी भाषी जनता की मानसिकता को पूरी प्रामाणिकता के साथ व्यक्त करती रही है और आज भी कर रही है। जैसे-जैसे साहित्य में संवेदना का स्वरूप परिवर्तित होता गया है, खड़ी बोली ने भी स्वयं को बदला है और साबित किया है कि यह अवधी और ब्रजभाषा के स्वर्णिम अतीत का उत्तराधिकार सम्हालने में पूर्णतः सक्षम है।

13.6 गद्य-भाषा के रूप में खड़ी बोली का विकास

यद्यपि खड़ी बोली साहित्यिक भाषा के रूप में 19वीं शताब्दी में ही प्रमुखता से उभरी, किंतु इसमें साहित्य की दीर्घ परंपरा मध्यकाल से ही विद्यमान रही है। गद्य-भाषा के रूप में भी इसका इतिहास 16वीं शताब्दी से शुरु होता है, जब अकबर के समकालीन कवि गंग ने हिन्दी की प्रथम गद्य रचना 'चंद छंद बरनन की महिमा' लिखी। इसके बाद 1710 ई. में सूरति मिश्र ने 'बैताल-पचीसी' की रचना की और 1741 ई. में रामप्रसाद निरंजनी ने 'भाषा योग-वशिष्ठ' की। इसके अतिरिक्त, दक्खिनी हिन्दी में तो साहित्य की शुरुआत ही गद्य से हुई और यह सारा साहित्य खड़ी बोली की ही एक विशेष शैली का प्रतिनिधित्व करता है।

19वीं सदी में खड़ी बोली गद्य-भाषा का विकास

उन्नीसवीं शताब्दी में गद्य-भाषा के रूप में खड़ी बोली का तीव्र विकास हुआ जिसके मूल कारणों में आधुनिकता का आगमन, फोर्ट विलियम कॉलेज की स्थापना, ईसाई मिशनरियों व नवजागरणवादियों द्वारा इसका प्रयोग किया जाना तथा गद्य का साहित्य के केंद्र में आना प्रमुख रहे। इसके तीव्र विकास में उन्नीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में फोर्ट विलियम कॉलेज के चारों अध्यापकों लल्लू लाल, सदल मिश्र, इंशाअल्ला खाँ तथा सदासुखलाल नियाज़ ने महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई तो उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध में राजा लक्ष्मण सिंह और राजा शिवप्रसाद सितारेहिन्द ने। आगे चलकर भारतेंदु और प्रतापनारायण मिश्र ने शिवप्रसाद सितारेहिन्द की परंपरा को आगे बढ़ाया तो बालकृष्ण भट्ट और श्रद्धाराम फिल्लौरी ने लक्ष्मण सिंह जैसी शैली का प्रयोग किया। कुल मिलाकर, 20वीं शताब्दी के आगमन तक खड़ी बोली गद्य में निर्विवाद रूप से स्वीकृत हो चुकी थी और अब 'भाषायी द्वैत' की समाप्ति का समय आ गया था, जिसने उसे 'गद्य-भाषा' के साथ-साथ 'पद्य-भाषा' के रूप में भी स्थापित कर दिया।

20वीं सदी में खड़ी बोली गद्य-भाषा का विकास

बीसवीं शताब्दी की शुरुआत में खड़ी बोली गद्य-भाषा में सबसे महत्त्वपूर्ण विकास यह हुआ कि आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी के नेतृत्व में खड़ी बोली के शुद्ध और मानक रूप की स्थापना होने लगी। उनकी प्रेरणा से पंडित कामताप्रसाद गुरु तथा आचार्य किशोरीदास वाजपेयी ने खड़ी बोली हिन्दी के व्याकरण लिखे, जो उसके परिष्कृत गद्य-भाषा बनने के लिए ज़रूरी थे। इस समय तक खड़ी बोली के माध्यम से हिन्दी नाटक, उपन्यास और निबंध की परंपराएँ मजबूत हो चुकी थीं, खड़ी बोली पत्रकारिता का सफल माध्यम बन चुकी थी; और 1901 ई. में माधवराव सप्रे की कहानी 'एक टोकरी भर मिट्टी' से कहानी विधा की शुरुआत भी हो गई थी। आचार्य शुक्ल 1909 ई. में 'चिंतामणि' का पहला संस्करण प्रस्तुत कर चुके थे। इसके अतिरिक्त, श्याम सुंदर दास, अध्यापक पूर्णसिंह तथा पद्मसिंह शर्मा जैसे लेखक विविध गद्य शैलियों के विकास में जुटे थे।

1915 ई. के बाद हिन्दी गद्य की विभिन्न शैलियाँ तेजी से उभरने लगीं, जो कुछ मायनों में परंपरा का विस्तार थीं और कुछ मामलों में नवोन्मेष। सबसे पहली शैली वह है जिसकी जड़ें शिवप्रसाद सितारेहिन्द और 1873 ई. के बाद के भारतेंदु हरिश्चंद्र में दिखाई देती हैं। यह वह शैली है जिसमें हिन्दी के 'हिन्दुस्तानी' रूप को महत्त्व दिया जाता है। इसमें न तो संस्कृत के प्रति आकर्षण दिखता है और न ही अरबी-फारसी परंपरा से परहेज़। इस परंपरा में सबसे सशक्त लेखन प्रेमचंद, उपेन्द्रनाथ अश्क तथा यशपाल जैसे लेखकों ने किया है। प्रेमचंद इस शैली के प्रतिनिधि हैं। उनकी भाषा एकदम सरल है, लोक जीवन की शब्दावली से भरी है और मुहावरों, लोकोक्तियों के प्रयोग के कारण समाज से गहराई से जुड़ी है। उदाहरण के लिए, *"जब दूसरों की पाँव तले अपनी गर्दन दबी है तो उन पाँवों को सहलाने में ही कुशल है"* तथा *"मुश्किल से पचास कदम चले होंगे कि गर्दन फटने लगी, पाँव थर्राने लगे और आँखों में तितलियाँ उड़ने लगीं"* जैसे वाक्यों में सहज मुहावरेदार भाषा की ताकत साफ़ नज़र आती है।

खड़ी बोली गद्य की दूसरी शैली वह है जो लक्ष्मण सिंह और बालकृष्ण भट्ट की परंपरा का विस्तार है। इस शैली में संस्कृत शब्दावली का मोह दिखता है; समास-गुण व सूत्र-भाषा को प्रशंसा की निगाह से देखा जाता है। इस शैली का प्रयोग 20वीं सदी में मुख्यत: जयशंकर प्रसाद के नाटकों, आचार्य शुक्ल के निबंधों, आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी के उपन्यासों (जैसे 'बाणभट्ट की आत्मकथा') तथा अज्ञेय के 'शेखर : एक जीवनी' जैसे उपन्यासों में दिखता है। आचार्य शुक्ल के निबंध इस शैली का प्रामाणिक प्रतिनिधित्व करते हैं। उदाहरण के लिए-

"काव्य में अर्थग्रहण मात्र से काम नहीं चलता, बिंबग्रहण अपेक्षित होता है। यह बिंबग्रहण निर्दिष्ट, गोचर और मूर्त विषय का ही हो सकता है।" *(तत्समी शैली)*

"कर्ता से बढ़कर कर्म का स्मारक दूसरा नहीं।" *(सूत्र शैली)*

"यदि प्रेम स्वप्न है तो श्रद्धा जागरण है।" *(सूत्र शैली)*

"कविता देवी के मंदिर ऊँचे, खुले, विस्तृत और पुनीत हृदय हैं। सच्चे कवि राजाओं की सवारी, ऐश्वर्य की सामग्री में ही सौंदर्य नहीं ढूंढा करते।" *(प्रतीकात्मकता)*

हिन्दी गद्य की तीसरी शैली वह है जो मनोवैज्ञानिक उपन्यासों और कहानियों में विकसित हुई। ये रचनाएँ बहिर्जीवन पर नहीं, अंतर्जीवन पर केंद्रित होती हैं। इनमें घटनाएँ कम; चिंतन, मनन व विश्लेषण ज्यादा होता है। इसलिए इन रचनाओं की शैली बेहद सूक्ष्म, सारगर्भी तथा प्रतीकात्मक होती है। खड़ी बोली हिन्दी में इसका सबसे बेहतर प्रयोग जैनेन्द्र, इलाचंद्र जोशी तथा अज्ञेय की रचनाओं में दिखाई पड़ता है। उदाहरण के लिए-

"वेदना में एक शक्ति है, जो दृष्टि देती है। जो यातना में है, वह द्रष्टा हो सकता है।" *(सूत्र भाषा)*

"पीड़ा तपस्या है, किन्तु असली तपस्या तो जिज्ञासा है क्योंकि वह सबसे बड़ी पीड़ा है।" *(मितकथन शैली)*

"कब से तुम्हें बहन कहता आया हूँ पर बहन जितनी पास होती है, उतनी पास तुम नहीं हो; इसलिए वह जितनी दूर होती है- उतनी दूर भी तुम नहीं हो।" *(सूक्ष्म चिंतन-मनन की शैली)*

"पतंग को देखो, कितना ऊँचा उड़ती है। प्रमोद, मैं पतंग होना चाहती हूँ।" *(प्रतीकात्मक शैली)*

खड़ी बोली गद्य की एक अत्यंत विशिष्ट शैली आंचलिक उपन्यासों व कहानियों में दिखती है। यूँ तो इसकी सांकेतिक शुरुआत शिवपूजन सहाय के उपन्यास 'देहाती दुनिया' से ही हो गई थी, किंतु इसे परिपक्व रूप प्रदान करने में फणीश्वरनाथ रेणु का सर्वोच्च योगदान रहा है। उनके अतिरिक्त, नागार्जुन, रामदरश मिश्र, सर्वेश्वर दयाल सक्सेना और शानी जैसे लेखकों ने भी इसके विकास में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है। आंचलिक गद्य शैली की विशेषता यह है कि उसमें देशज शब्दों की भरमार होती है, तत्सम व अंग्रेज़ी शब्दों के भ्रष्ट रूप दिखाई पड़ते हैं; लोक-गीत व लोक-संगीत के तत्व उपस्थित रहते हैं। इस शैली की रचनाएँ अन्य क्षेत्रों के पाठकों के लिए दुर्बोध होती हैं, किंतु उस क्षेत्र विशेष के पाठकों के लिए बेहद जीवंत होती हैं। उदाहरण के लिए,

"तंत्रिमाटोली में घमाघम पंचायत हो रही है।" *(देशज शब्दावली)*

"तहसीलदार साहब की बेटी कमली जब गमकौआ साबुन से नहाने लगती है तो सारा गाँव गम-गम करने लगता है।" *(देशज शब्दावली)*

"इसपिताल के सभी घर बनकर तैयार हो गए हैं। सिर्फ मिट्टी साटना बाकी है xxxx भैंसचरमन बाबू जरूर यादव ही होंगे। किसी दूसरी जाति का ऐसा नाम क्यों होगा- भैंसचरमन बाबू।"

खड़ी बोली गद्य की एक प्रसिद्ध शैली वह भी है, जो सामाजिक चिंतकों व टिप्पणीकारों के निबंधों व लेखों में विकसित हुई है। इसे 'तार्किक शैली' कहा जा सकता है। साहित्य के क्षेत्र में यह नामवर सिंह, रामविलास शर्मा और पुरुषोत्तम अग्रवाल के लेखन में दिखती है तो सामाजिक चिंतन के प्रसंग में राजकिशोर, राजेंद्र यादव, योगेंद्र यादव, प्रभाष जोशी, अभय कुमार दुबे तथा प्रियदर्शन आदि के लेखों में। इस शैली में हिन्दुस्तानी भाषा शैली का प्रयोग करते हुए किसी विषय का सूक्ष्म तार्किक विश्लेषण किया जाता है। इसमें विचारों की कसावट और प्रवाहमयी अभिव्यक्ति साफ़ दिखाई पड़ती है। कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं-

"ईसाई मिथकों में ईश्वर का पहला विरोध हौव्वा ने ही किया था जब उसने आदम को ज्ञान का वर्जित फल चखने को प्रेरित किया। क्या इसी की सजा यह थी कि ज्ञान की दुनिया से हौव्वा की बेटियों को देश निकाला दे दिया गया?" *(राजकिशोर)*

"कोई महान नायक आएगा और सभी कुछ ठीक हो जाएगा- इस सपने में अब हमारी आस्था नहीं रह गई है। इस व्यवस्था तंत्र में आप या कोई भी क्या कर लेगा? xxxx अपने को धर्मनिरपेक्ष बता-बताकर कब तक हम दूसरों की धर्मांधताओं, जहालत, रूढ़िवादिता और कठमुल्लेपन को बढ़ावा देते रहेंगे?'" *(राजेंद्र यादव)*

उपरोक्त विश्लेषण से स्पष्ट है कि 20वीं शताब्दी में खड़ी बोली ने गद्य-भाषा के तौर पर विकास के विविध आयाम छुए हैं। उपरोक्त आयामों के अतिरिक्त कई और भी शैलियाँ इसमें विकसित हुई हैं, जैसे- विद्यानिवास मिश्र और कुबेरनाथ राय की 'ललित निबंध शैली', हरिशंकर परसाई आदि की 'व्यंग्य शैली', सुधीश पचौरी जैसे लेखकों की 'मितकथन या सूत्र-शैली', मृणाल पांडेय तथा पुष्पेष पंत की 'रूपक व मुहावरेदार शैली' इत्यादि। यह कहने में कोई अतिशयोक्ति नहीं है कि सिर्फ 150 वर्षों की अल्प-अवधि में खड़ी बोली ने गद्य-भाषा के स्तर पर विपुल संभावनाओं की उपलब्धि की है।

अभ्यास हेतु प्रश्न

1. राजभाषा के रूप में हिंदी के प्रयोग की वर्तमान स्थिति पर प्रकाश डालिये। **U.P.S.C. (Mains) 2017**
2. दक्खिनी हिन्दी का परिचय दीजिये। **U.P.S.C. (Mains) 2017**
3. रहीम की कविता की मार्मिकता पर प्रकाश डालिये। **U.P.S.C. (Mains) 2017**
4. खुसरो की काव्य-भाषा की मुख्य विशेषताएँ (टिप्पणी) **U.P.S.C. (Mains) 2017**
5. दक्खिनी हिन्दी के साहित्यिक विकास के ऐतिहासिक और सामाजिक कारण (टिप्पणी) **U.P.S.C. (Mains) 2016**
6. बहुभाषाविद् खुसरो एवं उनकी कविता (टिप्पणी) **U.P.S.C. (Mains) 2016**

7. सिद्धनाथ साहित्य में प्रयुक्त खड़ी बोली का प्रारंभिक रूप (टिप्पणी) U.P.S.C. (Mains) 2016
8. दक्खिनी हिन्दी की विशेषताओं का संक्षिप्त परिचय दीजिए। U.P.S.C. (Mains) 2015
9. सन्त-साहित्य की विशेषताएँ (टिप्पणी) U.P.S.C. (Mains) 2015
10. दक्खिनी हिन्दी के स्वरूप का परिचय दीजिए। U.P.S.C. (Mains) 2014
11. सन्त-साहित्य के महत्त्व पर प्रकाश डालिए। U.P.S.C. (Mains) 2014
12. रहीम की कविता की मार्मिकता के लिए प्रमुख कारण (टिप्पणी) U.P.S.C. (Mains) 2014
13. खुसरो की काव्य-भाषा (टिप्पणी) U.P.S.C. (Mains) 2014
14. खुसरो की कविता के आधार पर उनकी लोक-चेतना पर संक्षिप्त निबंध लिखिए। U.P.S.C. (Mains) 2013
15. रहीम की कविता के मर्म का उद्घाटन कीजिये एवं उसकी लोकप्रियता के कारणों का निर्देश कीजिये। U.P.S.C. (Mains) 2013
16. दक्खिनी हिन्दी की विशेषताएँ (टिप्पणी) U.P.S.C. (Mains) 2013
17. खुसरो की कविता की विशेषताएँ (टिप्पणी) U.P.S.C. (Mains) 2013
18. खड़ी बोली का आरम्भिक स्वरूप – खुसरो और रहीम का सन्दर्भ (टिप्पणी) U.P.S.C. (Mains) 2012
19. रहीम की काव्य भाषा का स्वरूप और वैशिष्ट्य बताइए। U.P.S.C. (Mains) 2011
20. संत-साहित्य में विद्यमान खड़ी बोली के प्रमाण (टिप्पणी) U.P.S.C. (Mains) 2010
21. सिद्ध-नाथ साहित्य में खड़ी बोली का स्वरूप (टिप्पणी) U.P.S.C. (Mains) 2009
22. दक्खिनी हिन्दी (टिप्पणी) U.P.S.C. (Mains) 2008
23. उन्नीसवीं शताब्दी में खड़ी बोली का विकास (टिप्पणी) U.P.S.C. (Mains) 2007
24. प्रारंभिक खड़ी बोली और अमीर खुसरो (टिप्पणी) U.P.S.C. (Mains) 2007
25. उन्नीसवीं शताब्दी में खड़ी बोली का विकास (टिप्पणी) U.P.S.C. (Mains) 2007
26. खड़ी बोली की व्याकरणिक विशेषताएँ (टिप्पणी) U.P.S.C. (Mains) 2006
27. दाक्खिनी हिन्दी के प्रमुख हस्ताक्षर (टिप्पणी) U.P.S.C. (Mains) 2005
28. सिद्ध-नाथ साहित्य में प्रारंभिक खड़ी बोली (टिप्पणी) U.P.S.C. (Mains) 2005
29. दाक्खिनी हिन्दी के विकास में आदिलशाही शासकों का योगदान (टिप्पणी) U.P.S.C. (Mains) 2004
30. अमीर खुसरो की हिन्दी (टिप्पणी) U.P.S.C. (Mains) 2003
31. खड़ी बोली हिन्दी के विकास की रूप रेखा प्रस्तुत करते हुए उसके मानकीकरण पर प्रकाश डालिए। U.P.S.C. (Mains) 2003
30. दाक्खिनी हिन्दी: क्षेत्र और भाषा स्वरूप (टिप्पणी) U.P.S.C. (Mains) 2001
31. आदिकालीन हिन्दी भाषा का स्वरूप (टिप्पणी) U.P.S.C. (Mains) 2001
32. आधुनिक काल में खड़ी बोली के विकास की एक रूपरेखा प्रस्तुत कीजिये। U.P.S.C. (Mains) 2000

अध्याय
14

भाषा, उपभाषा, काव्यभाषा तथा बोली

14.1 भाषा और बोली में अंतर

वास्तविक रूप में ऐसी कोई भी निश्चयात्मक कसौटी नहीं है जिसके आधार पर भाषा और बोली में अंतर बताया जा सके। कुछ विद्वानों ने यहाँ तक कहा है कि भाषा और बोली का अंतर मूल रूप से 'भाषावैज्ञानिक' नहीं, बल्कि 'समाजभाषावैज्ञानिक' (Sociolinguistic) है। इसका अर्थ यह हुआ कि भाषा और बोली के अंतर वस्तुत: न तो शाब्दिक स्तर पर हैं, और न ही व्याकरणिक स्तर पर, इनका मूल अंतर तो सामाजिक स्थितियों का है। जब कोई बोली कुछ विशेष सामाजिक या राजनीतिक कारणों से अपनी अन्य सहयोगी बोलियों में प्रमुख स्थान प्राप्त कर लेती है, विभिन्न बोलियों के बीच संपर्क सूत्र का दायित्व निभाने लगती है, साहित्य और शासन की मान्य भाषा हो जाती है तो वही बोली 'भाषा' कहलाने लगती है। कभी-कभी यह भी हो सकता है कि कोई बोली कुछ समय तक भाषा के पद पर रहने के बाद अपनी ही किसी सहायक बोली के अधीन हो जाए। उदाहरण के लिए मध्यकाल में अवधी और ब्रजभाषा भाषा के रूप में प्रचलित रहीं किंतु आधुनिक काल में खड़ी बोली के विकास के बाद वे बोली के स्तर पर आ गईं। इसका कारण भी मूलत: उन स्थितियों में था जिनके संयोग के कारण खड़ी बोली को मानक भाषा बनने का अवसर प्राप्त हुआ।

यद्यपि भाषा और बोली के अंतर मूलत: सामाजिक-राजनीतिक स्थितियों के हैं, तब भी भाषा के वैज्ञानिक अध्ययन के लिए आवश्यक हो जाता है कि भाषा और बोली का यथासंभव निश्चित स्वरूप तय किया जाए। इस दृष्टि से भाषा और बोली में निम्नलिखित अंतर माने जा सकते हैं-

(क) भाषा और बोली का सबसे व्यावहारिक अंतर उनकी **बोधगम्यता** का है। यदि दो लोग अपने-अपने क्षेत्रों की बोली बोलें और एक-दूसरे की बात को वे पूरा या अधूरा समझ सकें तो मानना होगा कि वे एक ही भाषा की दो बोलियों का प्रयोग कर रहे हैं। इसके विपरीत यदि वे अलग-अलग भाषाओं का प्रयोग करेंगे तो प्राय: एक-दूसरे की बात नहीं समझ सकेंगे।

(ख) भाषा का **भौगोलिक क्षेत्र** प्राय: विस्तृत होता है जबकि बोली का सीमित। इसका मूल कारण यह है कि आमतौर पर बोली केवल अपने अंचल में प्रयुक्त होती है, जबकि भाषा अपने अंचल विशेष के साथ-साथ विभिन्न अंचलों के बीच संपर्क सेतु का काम भी करती है।

(ग) भाषा **भाषिक विकास** की दृष्टि से बोली की तुलना में अधिक विकसित होती है। मानकता तथा व्यापकता प्राप्त करने के कारण भाषा का विकास तेजी से होने लगता है। वह नए-नए भौगोलिक तथा वैचारिक क्षेत्रों में प्रयुक्त होने लगती है और इस प्रकार विकास का उच्च स्तर प्राप्त करती है। इसके विपरीत बोली भाषिक विकास की दृष्टि से प्रारंभिक अवस्था में होती है जिसका मूल संबंध केवल जन प्रयोग से है।

(घ) भाषा का प्राय: एक **निश्चित व्याकरण** होता है जबकि बोली का व्याकरण निश्चित नहीं होता। इस कारण प्राय: ऐसा देखने में आता है कि भाषा के संबंध में शुद्धता का ध्यान रखा जाता है जबकि बोली में शुद्धता या अशुद्धता की चिंता नहीं की जाती।

(ङ) भाषा आमतौर पर अपने अंचल तथा उससे बाहर भी प्राय: **निश्चित और मानक रूप** में मिलती है जबकि बोली अपने अंचल के भीतर भी अलग-अलग वर्ग तथा क्षेत्र के अनुसार भिन्न-भिन्न रूपों में प्रयुक्त होती है।

(च) भाषा की प्राय: एक **निश्चित लिपि** होती है और इस कारण उसका प्रयोग लिखित भाषा तथा मौखिक भाषा दोनों रूपों में होता है। इसके विपरीत बोली आमतौर पर मौखिक रूप में ही प्रयुक्त होती है।

(छ) भाषा और बोली में एक बड़ा अंतर यह भी है कि भाषा को **शासकीय मान्यता** प्राप्त होती है जबकि बोली को नहीं। कभी-कभी तो बोली के भाषा बनने का एकमात्र कारण भी शासकीय मान्यता की प्राप्ति होता है। उदाहरण के लिए, केवल शासकीय आदेश से उत्तरी चीन की एक बोली मण्डारिन पूरे चीन की भाषा बन गई थी।

(ज) भाषा और बोली का अंतिम महत्त्वपूर्ण अंतर इनके **प्रयोग क्षेत्र की व्यापकता** से संबंधित है। भाषा समाज में शिक्षा, साहित्य, सरकारी कामकाज, कला-संस्कृति, पत्राचार, विज्ञान, राजनीति आदि का सक्षम माध्यम होती है जबकि बोली जीवन के साधारण पक्षों के अतिरिक्त विशेष पक्षों की अभिव्यक्ति में समृद्ध नहीं होती। शिक्षा, विज्ञान आदि का माध्यम वह नहीं बन सकती।

14.2 काव्यभाषा तथा बोली में अंतर्संबंध

काव्यभाषा तथा बोली के पारस्परिक संबंधों को कई कोणों से व्याख्यायित किया जा सकता है-

(क) काव्यभाषा मूलत: किसी बोली से ही बनती है किंतु स्वरूप में उसके समान भी हो सकती है तथा उससे अलग भी। इसका मूल कारण यह है कि बोली एक विशिष्ट भाषिक संरचना होती है जिसे एक सीमित क्षेत्र के लोग ही गहराई के साथ समझ सकते हैं। इसके विपरीत कवि की स्वाभाविक इच्छा यह होती है कि उसकी रचना को विभिन्न क्षेत्रों के पाठक पढ़ें। इस कारण वह या तो कबीर जैसे कवियों की तरह कई बोलियों के मिश्रण से काव्य भाषा का निर्माण करता है या तुलसी जैसे कवियों की तरह एक बोली को आधार रूप में ग्रहण करते हुए भी उसे अन्य भाषिक संरचनाओं यथा संस्कृत की विशेषताओं से संपन्न करता चलता है। ऐसी स्थिति में काव्यभाषा कुछ बोलियों का समन्वित रूप बन जाती है।

(ख) बोली एक सामाजिक संरचना होती है जबकि काव्यभाषा वैयक्तिक। इसका तात्पर्य यह है कि बोली में आने वाले सारे शब्द तथा अन्य भाषिक प्रयोग लोक अनुभव की साझी प्रक्रिया से निर्मित होते हैं। इसके विपरीत जब कोई कवि उसी बोली के माध्यम से रचना करता है तो उसकी भाषा उसकी विशेष शैली के कारण अलग रूप धारण करने लगती है। यह विशेषता शब्दों के चयन के स्तर पर भी हो सकती है तथा वाक्य संयोजन आदि के स्तर पर भी। इसी वजह से कुछ विद्वान यहाँ तक कह देते हैं कि बोली एक स्वाभाविक भाषिक विधान है जबकि काव्य भाषा कृत्रिम। एक ही बोली में काव्यभाषाएँ कैसे अलग हो सकती हैं, इसे हम जयशंकर प्रसाद कृत 'कामायनी' तथा निराला कृत 'कुकुरमुत्ता' के भाषिक अंतरों से समझ सकते हैं।

(ग) कभी-कभी ऐसा भी होता है कि बोली और काव्यभाषा में से किसी एक का अस्तित्व बना रहता है जबकि दूसरे का अस्तित्व समाप्त हो जाता है। ऐसा भी हो सकता है कि बोली लोक प्रचलन से बाहर हो जाए पर काव्यभाषा बनी रहे। उदाहरण के लिये, लोक बोली के रूप में अपभ्रंश का समय दसवीं शताब्दी तक माना जाता है जबकि अपभ्रंश काव्य चौदहवीं शताब्दी तक मिलता है। इसी प्रकार गुप्तकाल में संस्कृत न तो बोली थी और न ही उपभाषा किन्तु साहित्यिक दृष्टि से यह युग संस्कृत का स्वर्ण युग कहलाता है। इस स्थिति के विपरीत यह भी संभव है कि बोली प्रचलन में तो हो किंतु साहित्यिक भाषा के रूप में उसका विशेष विकास न हो सके। हिन्दी की कई बोलियाँ ऐसी स्थिति देख चुकी हैं। उदाहरण के लिए मध्यकाल की काव्यभाषाएँ अवधी और ब्रज भाषा बोलियों के रूप में अभी भी प्रचलित हैं किंतु काव्यभाषा के रूप में उनका विशेष महत्त्व नहीं है।

समग्र रूप में यह कहा जा सकता है कि अलग-अलग संदर्भों में बोली और काव्यभाषा में अलग-अलग प्रकार के अंतर हो सकते हैं। कभी-कभी ये अंतर नहीं के बराबर हो सकते हैं, जैसे सूफी काव्यधारा में जिस अवधी का प्रयोग हुआ है, वह ठीक उसी प्रकार लोक-बोली के रूप में भी प्रचलित थी। इसी प्रकार, कभी-कभी ये अंतर बहुत अधिक भी हो सकते हैं, जैसे जयशंकर प्रसाद की 'कामायनी' में प्रयुक्त काव्यभाषा खड़ी बोली के लोक प्रचलित रूप से काफी अलग है। एक ही बोली से बनने वाली काव्यभाषाएँ रचनाकार के व्यक्तित्व परिवर्तन से कितनी अलग हो सकती हैं, इसे हम निराला की दो कविताओं- 'राम की शक्ति पूजा' तथा 'कुकुरमुत्ता' के निम्नलिखित संदर्भों से समझ सकते हैं -

"ज्योतिर्मय रूप, हस्त दश विविध अस्त्र सज्जित।
मुख स्मित मुख, लख हुई विश्व की श्री लज्जित।"

(राम की शक्ति पूजा)

"अबे सुन बे गुलाब,
भूल मत जो पाई खुशबू रंगोआब,
खून चूसा खाद का तूने अशिष्ट
डाल पर इतराता है कैपिटलिस्ट
x x x x x
रोज पड़ता रहा पानी
तू हरामी खानदानी" *(कुकुरमुत्ता)*

14.3 हिन्दी भाषा का क्षेत्र

हिन्दी भाषा के क्षेत्र से तात्पर्य यह है कि हिन्दी का प्रयोग भौगोलिक विस्तार की दृष्टि से कितने क्षेत्र में होता है। इस संबंध में महत्त्वपूर्ण बात यह है कि अलग-अलग क्षेत्रों में हिन्दी का प्रयोग अलग-अलग रूप में होता है और इन अंतरों को रेखांकित करते हुए ही हिन्दी भाषा के क्षेत्र की सीमाओं का निर्धारण हो सकता है।

हिन्दी भाषा का मूलभूत क्षेत्र वह है जहाँ इसका प्रयोग बोलने, समझने तथा लिखने की भाषा के रूप में होता है। इसी बात को दूसरे शब्दों में कहें तो यह वह क्षेत्र है जहाँ हिन्दी का प्रयोग प्रथम भाषा के रूप में होता है। इस क्षेत्र में मूलत: भारत के दस राज्य आते हैं- दिल्ली, उत्तर प्रदेश, उत्तराखंड, बिहार, झारखंड, मध्यप्रदेश, छत्तीसगढ़, राजस्थान, हरियाणा तथा हिमाचल प्रदेश। यह वही क्षेत्र है जिसे भाषावैज्ञानिक 'हिन्दी प्रदेश' भी कहते हैं तथा जिसका विस्तार पश्चिम में अंबाला (हरियाणा) से लेकर पूर्व में पूर्णिया (बिहार) तक और उत्तर में बद्रीनाथ-केदारनाथ से लेकर दक्षिण में खंडवा (मध्य प्रदेश) तक है।

कुछ क्षेत्र ऐसे हैं जहाँ हिन्दी सामान्य बोलचाल में प्रयुक्त तो नहीं होती किंतु समझी अवश्य जाती है। भाषा विज्ञान की दृष्टि से यह वह क्षेत्र है जहाँ हिन्दी द्वितीयक भाषा के रूप में प्रयुक्त होती है। यह क्षेत्र मूलरूप से उन भाषाओं का क्षेत्र है, जिनका विकास हिन्दी की ही तरह भारतीय आर्यभाषा संस्कृत से हुआ है। उदाहरण के लिये - महाराष्ट्र (मराठी), गुजरात (गुजराती), ओडिशा (उड़िया), पश्चिमी बंगाल (बांग्ला), पंजाब (पंजाबी), असम (असमिया) आदि क्षेत्र मूल परिवार की दृष्टि से हिन्दी परिवार के हैं।

भारत के बाहर भी कुछ ऐसे क्षेत्र हैं जहाँ हिन्दी प्राथमिक या द्वितीयक भाषा के रूप में समाज के बड़े हिस्से में व्याप्त है। इस दृष्टि से नेपाल, मॉरीशस, फिजी, त्रिनिदाद एवं टोबैगो आदि देश महत्त्वपूर्ण हैं।

कुछ ऐसे क्षेत्र हैं जहाँ सामान्य व्यक्ति न तो हिन्दी बोलना जानता है, न ही समझना, किंतु जहाँ हिन्दी भाषा साहित्य या शिक्षा के क्षेत्र में प्रयुक्त होती है। विश्व के 120 से अधिक देशों में हिन्दी का अध्यापन होता है तथा साहित्य लिखा जाता है। जिन देशों में भारतीय मूल के व्यक्ति अधिक संख्या में हैं उनमें यह स्थिति विशेष रूप से दिखाई देती है। ऐसे देशों में अमेरिका, इंग्लैण्ड, जर्मनी, अफ्रीका तथा रूस आदि प्रमुख उदाहरणों के रूप में देखे जा सकते हैं।

सामान्य रूप से इस समूचे क्षेत्र को अलग-अलग संदर्भों में हिन्दी भाषा का क्षेत्र कहा जा सकता है। वर्तमान समय में पूरे विश्व में हिन्दी का प्रयोग करने वालों की संख्या लगभग एक अरब हो चुकी है और प्रचलन की दृष्टि से यह विश्व की सर्वाधिक प्रचलित भाषाओं में से एक है।

14.4 हिन्दी की उपभाषाएँ व बोलियाँ

उपभाषा का अर्थ

भाषावैज्ञानिकों ने भाषा और बोली के बीच एक और वर्ग को स्वीकार किया है जिसे उपभाषा कहते हैं। जिस प्रकार भाषा का संबंध बोलने व लिखने से है, जबकि बोली का संबंध बोलने से है, उस प्रकार उपभाषा का संबंध न बोलने से है और न लिखने से। सामान्य रूप से कहें तो यह एक ऐसा वर्ग है जिसका विश्लेषण तो हो सकता है, पर प्रयोग नहीं हो सकता।

एक भाषा की बहुत सी बोलियाँ होती हैं तथा उन बोलियों के बीच अलग-अलग मात्रा में निकटता और दूरी दिखाई देती है। हिन्दी की बोलियों के आधार पर विश्लेषण करें तो हम पाएंगे कि राजस्थान तथा दिल्ली की बोलियों में जितनी निकटता होगी, उतनी राजस्थान और बिहार की बोलियों में नहीं हो सकती। इसी प्रकार बिहार तथा पूर्वी उत्तर प्रदेश की बोलियों में जो निकटता होगी, वह बिहार और छत्तीसगढ़ की बोलियों में नहीं हो सकती। इसका अर्थ यह हुआ कि निकटवर्ती बोलियाँ परस्पर गहराई से जुड़ी होती हैं, जबकि दूर की बोलियों में उतना आंतरिक तारतम्य नहीं होता। उपभाषा सामान्य रूप से बोलियों के उस वर्ग को कहते हैं जिनमें समान ऐतिहासिक विरासत के कारण गहरे संबंध होते हैं तथा जिनकी भाषिक प्रवृत्तियाँ प्राय: एक सी होती हैं।

उपभाषा काल्पनिक वर्ग नहीं है जिसे मात्र बोलियों की परस्पर समानता के आधार पर निर्मित किया गया हो। बोलियों के निकट संबंध वस्तुत: समान ऐतिहासिक उद्भव पर आधारित होते हैं। हिन्दी की उपभाषाओं की चर्चा करें तो हम पाते हैं कि पाँच प्रकार की प्राकृतों से ही पहले अपभ्रंशों तथा बाद में हिन्दी की उपभाषाओं का विकास हुआ है। विकास की यह प्रक्रिया इस प्रकार है-

(क) राजस्थानी प्राकृत → अपभ्रंश → राजस्थानी हिन्दी (उपभाषा)
(ख) शौरसेनी प्राकृत → शौरसेनी अपभ्रंश → पश्चिमी हिन्दी (उपभाषा)
(ग) अर्धमागधी प्राकृत → अर्धमागधी अपभ्रंश → पूर्वी हिन्दी (उपभाषा)
(घ) मागधी प्राकृत → मागधी अपभ्रंश → बिहारी हिन्दी (उपभाषा)
(ङ) खस प्राकृत → खस अपभ्रंश → पहाड़ी हिन्दी (उपभाषा)

यद्यपि इस विकास प्रक्रिया के संबंध में भाषावैज्ञानिकों में अत्यधिक विवाद है, किंतु सामान्य रूप से यह वर्गीकरण स्वीकार किया जाता है।

हिन्दी की उपभाषाएँ तथा बोलियाँ

हिन्दी भाषा का वर्गीकरण पाँच उपभाषाओं में किया जाता है - राजस्थानी हिन्दी, बिहारी हिन्दी, पहाड़ी हिन्दी, पश्चिमी हिन्दी तथा पूर्वी हिन्दी। इन पाँचों उपभाषाओं तथा इनसे संबंधित बोलियों को एक आरेख के माध्यम से समझा जा सकता है-

हिन्दी भाषा

- **राजस्थानी हिन्दी**
  1. मारवाड़ी
  2. मालवी
  3. मेवाती
  4. जयपुरी/ढूंढाणी
- **बिहारी हिन्दी**
  1. भोजपुरी
  2. मगही
  3. मैथिली
- **पहाड़ी हिन्दी**
  1. कुमाउँनी
  2. गढ़वाली
- **पश्चिमी हिन्दी**
  1. ब्रजभाषा
  2. कौरवी/खड़ी बोली
  3. हरियाणी
  4. कन्नौजी
  5. बुंदेली
  6. दक्खिनी
- **पूर्वी हिन्दी**
  1. अवधी
  2. बघेली
  3. छत्तीसगढ़ी

1. "राजस्थानी हिन्दी" उपभाषा

इस उपभाषा का क्षेत्र संपूर्ण राजस्थान तथा मालवा जनपद के साथ-साथ सिंध के कुछ क्षेत्रों तक फैला हुआ है। इस वर्ग की बोलियाँ बोलने वालों की संख्या ढाई करोड़ से कुछ अधिक है। इस उपभाषा के अंतर्गत चार बोलियाँ आती हैं- मारवाड़ी, मेवाती, मालवी तथा जयपुरी/ढूंढाणी।

राजस्थानी हिन्दी उपभाषा 'ट' वर्ग बहुला उपभाषा है। इन ध्वनियों के साथ मराठी में विशेष रूप से प्रयुक्त होने वाली 'ळ' ध्वनि भी इसमें प्रयुक्त होती है। पुल्लिंग एकवचन शब्द इसमें प्राय: ओकारांत होते हैं, जैसे हुक्को, तारो, इत्यादि। पुल्लिंग और स्त्रीलिंग शब्दों के बहुवचन के अंत में आँ का प्रयोग इस उपवर्ग की एक विशेष प्रवृत्ति है जैसे ताराँ, राताँ इत्यादि। इसके परसर्ग हिन्दी से कुछ अलग हैं। हिन्दी के 'को' उपसर्ग के स्थान पर 'नै' तथा 'से' परसर्ग के स्थान पर 'सूँ' का प्रयोग इसमें किया जाता है।

(i) मारवाड़ी

राजस्थानी हिन्दी की चारों बोलियों में से **मारवाड़ी** प्रमुख बोली है क्योंकि अधिकांश साहित्य इसी बोली में रचा गया है। चूँकि मारवाड़ के लोग भारत के प्राय: सभी नगरों में फैले हुए हैं और संपन्न वर्ग के हैं, इसलिए इस बोली का भौगोलिक और साहित्यिक विकास काफी मात्रा में हुआ है। इस बोली की भाषिक विशेषताओं में महाप्राण ध्वनियों का अल्पप्राणीकरण (हाथ > हात, भूख > भूक), मूर्द्धन्य 'ल' अथवा 'ळ' का प्रयोग (बाल > बाळ, जल > जळ) इत्यादि प्रमुख हैं। 'न' के स्थान पर 'ण' ध्वनि का प्रयोग (गाना > गाणा, चलना > चलणा) तथा ओकारांतता (आतो, देखो, चरणो) इसकी विशेष प्रवृत्तियाँ मानी जाती हैं। सर्वनामों में म्हारी, थारो, कुण, जिण, उण, तूँ तथा ऊ प्रमुख हैं।

(ii) जयपुरी, मेवाती तथा मालवी

इस उपवर्ग की शेष बोलियाँ मारवाड़ी की तुलना में गौण मानी जाती हैं। **जयपुरी या ढूंढाणी** पूर्वी राजस्थान की बोली है जिसमें मारवाड़ी के 'ण' के स्थान पर प्राय: 'न' का प्रयोग दिखाई देता है (मनै, तूने, वाने)। **मेवाती** बोली मेव जाति के निवास स्थान मेवात क्षेत्र की बोली है। अलवर और भरतपुर के साथ-साथ यह हरियाणा के गुड़गाँव क्षेत्र तक बोली जाती है। हरियाणी से इसकी निकटता भाषा वैज्ञानिकों ने प्राय: स्वीकार की है। **मालवी** उज्जैन के आसपास के एक विस्तृत क्षेत्र में बोली जाती है जिसमें मध्यप्रदेश के कई भागों के साथ-साथ राजस्थान के कोटा तथा चित्तौड़गढ़ जैसे क्षेत्र शामिल हो जाते हैं। इसकी सबसे महत्त्वपूर्ण प्रवृत्ति है- शब्द के आदि अक्षर में स्वर का दीर्घीकरण (लकड़ी > लाकड़ी, कपड़ा > कापड़ा)। ऐ और औ के स्थान पर ए और ओ का प्रयोग भी इसकी विशेष प्रवृत्ति है। सर्वनामों में 'के' (कौन), कीने (किसने), तथा के (क्या) प्रमुख रूप हैं। कारकों में कर्म के साथ 'खे' तथा करण के साथ 'ती' का प्रयोग भी उल्लेखनीय है।

2. "बिहारी हिन्दी" उपभाषा

बिहारी हिन्दी बिहार तथा झारखंड के क्षेत्रों में प्रयुक्त होने वाली बोलियों के उपवर्ग का नाम है। इस उपवर्ग में तीन प्रमुख बोलियाँ आती हैं- भोजपुरी, मगही और मैथिली। इस वर्ग की बोलियों में उतने गहरे संबंध नहीं हैं जितने शेष उपभाषाओं की बोलियों में दिखाई देते हैं। इस उपवर्ग की बोलियों का संक्षिप्त वर्णन इस प्रकार है-

(i) भोजपुरी

बिहारी हिन्दी उपवर्ग की सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण बोली भोजपुरी है। इसके क्षेत्र में छपरा, चंपारन तथा राँची के अतिरिक्त उत्तर प्रदेश के कुछ क्षेत्र जैसे गोरखपुर, बनारस तथा बलिया भी शामिल हो जाते हैं। लोकप्रचलन की दृष्टि से यह हिन्दी की सबसे बड़ी बोली है। भारत के बाहर भी मॉरीशस, फिजी आदि देशों में यह अत्यधिक प्रचलित है।

भोजपुरी की भाषिक प्रवृत्तियों में अग्रलिखित तथ्य महत्त्वपूर्ण हैं-

(अ) इनमें 'ण' ध्वनि का प्रयोग नहीं होता है।

(आ) 'ड़' को प्राय: 'र' के रूप में उच्चरित किया जाता है (थोड़ा > थोरा)।

(इ) 'स' तथा 'श' के स्थान पर प्राय: 'ह' का प्रयोग दिखाई देता है, जैसे - निश्चय > निहचय, रास्ते > राहते।

(ई) 'ऐ' तथा 'औ' का उच्चारण सध्यक्षरों यानि 'अइ' तथा 'अउ' के रूप में होता है, जैसे - पइसा, गउना इत्यादि।

(उ) संज्ञा के तीन रूप मिलते हैं, जैसे - घोरा, घोरवा, घोरउआ।

(ऊ) स्त्रीलिंग संज्ञाएँ प्राय: इकारान्त तथा ईकारान्त होती हैं जैसे - राति तथा घरनी।

(ऋ) एकवचन से बहुवचन करने के लिए प्राय: लोगन, जन जैसे शब्दों का प्रयोग किया जाता है।

(ए) सर्वनामों में हमरा, तोहरा, ओकरा, एकर, जौन, किछु, केउ, ई, ऊ तथा ओ प्रमुख हैं।

(ऐ) क्रियाओं में वर्तमान काल प्राय: त-रूप है (उड़त, देखत), भूतकाल प्राय: ल-रूप है (देखल, सूतल) तथा भविष्यकाल प्राय: ब-रूप है (होइब, करब)।

(ii) मगही

मगही बिहारी हिन्दी उपवर्ग की दूसरी बोली है जो पटना, गया, हजारीबाग आदि क्षेत्रों में बोली जाती है। अपनी प्रवृत्तियों में यह भोजपुरी से काफी समानता रखती है। अधिकरण में 'मों' परसर्ग का प्रयोग तथा सर्वनामों में 'आप' का प्रयोग इसकी अतिरिक्त विशेषताएँ हैं।

(iii) मैथिली

बिहारी उपवर्ग की तीसरी बोली है मैथिली। इसका क्षेत्र दरभंगा, मुजफ्फरपुर, पूर्णिया, भागलपुर, मधुबनी, सहरसा आदि तक फैला हुआ है। साहित्यिक दृष्टि से यह बिहारी हिन्दी की सर्वाधिक संपन्न बोली है। साहित्य अकादमी ने इसे लंबे समय से स्वतंत्र भाषा के रूप में मान्यता प्रदान की हुई थी। अब इसे संसदीय प्रस्ताव द्वारा संविधान की आठवीं अनुसूची में भी शामिल कर लिया गया है। मैथिली में 'छ' और 'ल' ध्वनियों का अत्यधिक प्रयोग होता है। सभी शब्द स्वरांत होते हैं। संज्ञा के एकवचन और बहुवचन रूपों में अंतर दिखाने के लिए 'सम', 'सबहि' तथा 'लोकन' जैसे शब्दों का प्रयोग किया जाता है। अहाँ, ओकर, एकर जैसे सर्वनाम मैथिली की अपनी विशेषताएँ हैं। इसकी सहायक क्रियाएँ 'छ'-रूप होती हैं, भूतकालिक क्रियाएँ ल-रूप होती हैं तथा भविष्यकालिक क्रियाएँ 'ब'-रूप होती हैं। एक विशेष बात यह भी है कि इस बोली में क्रियाओं में कोई लिंग भेद नहीं होता।

3. "पहाड़ी हिन्दी" उपभाषा

पहाड़ी हिन्दी उत्तर भारत के पर्वतीय क्षेत्रों मुख्यत: कुमाऊँ तथा गढ़वाल में बोली जाने वाली बोली है। इस उपभाषा के अंतर्गत दो बोलियाँ आती हैं- कुमाउँनी तथा गढ़वाली। पहाड़ी हिन्दी पर आर्यभाषा संस्कृत की परंपरा के साथ-साथ तिब्बती, चीनी तथा खस जाति की अनार्य भाषाओं का भी प्रभाव रहा है। विकास की प्रक्रिया में इन पर आर्यभाषा की विकसित अवस्थाओं जैसे ब्रजभाषा का प्रभाव बढ़ता गया है और अनार्य तत्व क्षीण होते गए हैं। पहाड़ी हिन्दी की कोई विशेष साहित्यिक परंपरा नहीं मिलती है। लोक-प्रचलन की दृष्टि से भी इसके प्रयोक्ता वर्ग की संख्या पचास लाख से अधिक नहीं है।

इस उपवर्ग की बोलियों में सानुनासिक स्वरों की प्रधानता है। इसकी बोलियाँ प्राय: ओकारान्त हैं, जैसे - घोड़ो, कालो, चल्यो इत्यादि। पुल्लिंग एकवचन में ओ का बहुवचन रूप कुमाऊँनी में 'न' तथा गढ़वाली में 'ऊँ' होता है, जैसे - घोड़ो > घोड़न, घोड़ूँ। दोनों बोलियों में भविष्यकाल 'ल-रूप' होता है, जैसे चलला। भूतकालिक रूप ब्रजभाषा की पद्धति पर ही चलते हैं, जैसे - चल्यो, खायो इत्यादि।

(i) कुमाउँनी

कुमाउँनी का क्षेत्र नैनीताल, अल्मोड़ा और पिथौरागढ़ के आसपास तक फैला हुआ है। इस पर राजस्थानी बोलियों का काफी प्रभाव पड़ा है। इसमें राजस्थानी के प्रभाव से ण और ळ ध्वनियाँ शामिल हुई हैं और कौरवी के प्रभाव से अल्पप्राणीकरण की प्रवृत्ति विकसित हुई है। कर्ता के साथ 'ले', कर्म के साथ 'कणि' तथा करण के साथ 'थे' कारक चिन्हों का प्रयोग इस बोली की विशेषता है। सहायक क्रिया 'छ' रूप है।

(ii) गढ़वाली

गढ़वाली टिहरी तथा पौड़ी गढ़वाल जिलों के आसपास के क्षेत्र में बोली जाने वाली बोली है। इस पर पंजाबी और राजस्थानी का काफी प्रभाव दिखाई देता है। स्वरों के अनुनासिकीकरण की प्रवृत्ति इसमें अत्यधिक मात्रा में दिखाई देती है,

जैसे- छायाँ, दैंत, पैंसा इत्यादि। कर्ता के साथ न, ल, कर्म के साथ कूँ, कुणी, तथा करण के साथ 'सें' व 'तीं' परसर्गों का प्रयोग भी इसकी विशेषताओं में शामिल है।

4. "पूर्वी हिन्दी" उपभाषा

पूर्वी हिन्दी का क्षेत्र पूर्वी उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश तथा छत्तीसगढ़ तक विस्तृत है। प्राचीन काल में जिस क्षेत्र को उत्तरी कोसल तथा दक्षिणी कोसल कहा जाता था, वही क्षेत्र पूर्वी हिन्दी का क्षेत्र है। इस क्षेत्र की सीमाओं का निर्धारण कानपुर से मिर्जापुर तथा लखीमपुर से बस्तर तक किया जाता है। पूर्वी हिन्दी हिन्दी की सर्वाधिक प्रमुख उपभाषाओं में से एक है। इसके अंतर्गत तीन बोलियाँ शामिल की जाती हैं - अवधी, बघेली, छत्तीसगढ़ी। इन तीनों बोलियों में जितना घनिष्ठ संबंध है, उतना सामान्यत: शेष उपभाषाओं की बोलियों में नहीं दिखाई देता। इन बोलियों का संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है-

(i) अवधी

अवधी अवध की बोली है। अवध शब्द अयोध्या का तद्भवीकृत रूप है। इस बोली के लिए 'कोसली' तथा 'बैसवाड़ी' शब्दों के प्रयोग का प्रचलन भी है। इस बोली का क्षेत्र लखनऊ, फैजाबाद, सीतापुर, सुल्तानपुर, रायबरेली तक फैला हुआ है। इसके अतिरिक्त अवधी का प्रयोग करने वालों में बड़ी संख्या ऐसे लोगों की भी है जो आजीविका की खोज में फिजी, मॉरीशस, त्रिनिदाद-टोबैगो, सूरीनाम तथा दक्षिण अफ्रीका गए थे तथा वहीं बस गए हैं। इस बोली का साहित्य अत्यन्त सम्पन्न है। भक्तिकाव्य की दो प्रमुख धाराएँ - सूफी काव्यधारा तथा रामभक्ति काव्यधारा इसी बोली में रचित हैं। तुलसी और जायसी जैसे महान कवियों का संबंध इसी बोली से रहा है।

अवधी बोली की भाषा संबंधी विशेषताएँ इस प्रकार हैं-

(अ) अवधी में हिन्दी की प्राय: सारी ध्वनियाँ मिलती हैं किंतु कुछ अंतर भी हैं। इसमें 'ण' का प्रयोग 'न', 'ड़' का प्रयोग 'र', 'व' का प्रयोग 'ब' तथा 'श', 'ष' का प्रयोग 'स' के रूप में होता है -

कौण > कौन साड़ी > सारी वदन > बदन वर्षा > बरसा

बाण > बान लड़का > लरिका विचार > बिचार शुक्ल > सुकुल

(आ) 'ऐ' तथा 'औ' का उच्चारण संध्यक्षरों के रूप में 'अइ' तथा 'अउ' के रूप में किया जाता है-

ऐसा > अइसा औरत > अउरत

(इ) अवधी में प्राय: 'उकारान्तता' की प्रवृत्ति दिखाई देती है, जैसे रामु, दिनु इत्यादि।

(ई) अवधी में संज्ञा के तीन रूप मिलते हैं, यथा नदी, नदिय, नदीवा अथवा लरिका, लरिकवा, लरिकउना। विदेशी शब्दों को भी इसी प्रवाह में ढालने के लिए 'इया' तथा 'इवा' प्रत्यय लगाने की प्रवृत्ति स्पष्ट दिखाई देती है -

किताब > कितबिया स्कूल > स्कूलवा

(उ) पुल्लिंग से स्त्रीलिंग के निर्माण के लिए शब्द के अंत में ई, इनि, इनी, आनी, नी तथा इया जैसे प्रत्यय लगाए जाते हैं-

ई > बकरी, घोड़ी आनी > नौकरानी, महारानी इनि > बाघिनि, मालिनि

नी > मोरनी, चोरनी इनी > साधिनी, लरिकिनी इया > बुढ़िया, बछिया

(ऊ) एकवचन से बहुवचन के निर्माण के लिए दो पद्धतियाँ प्रचलित हैं। पहली पद्धति में 'अ' का 'एँ' हो जाता है जबकि दूसरी पद्धति में 'न', 'अन' या 'न्ह' प्रत्यय जुड़ जाता है। इसके अतिरिक्त कुछ शब्द बहुवचन में भी एकवचन की भांति चलते हैं, जैसे -

बात > बातें सखी > सखियन रात > रातें लरिका > लरिकन

(ऋ) अवधी के प्रमुख परसर्ग इस प्रकार हैं -

कर्ता - x

संबंध - का, की, के, कर, केर

कर्म, सम्प्रदान - का, के, कूँ, कः
अधिकरण - में, मांझ, माह
करण, अपादान - से, ते, सों, सेंति

(ए) अवधी में प्रयुक्त होने वाले प्रमुख सर्वनामों की सूची इस प्रकार है -
उत्तम पुरुष एकवचन - में, मह, मों, मोसे, मोहि
मध्यम पुरुष एकवचन - तू, तूँ, तोसे, तोहि, तोर
उत्तम पुरुष बहुवचन -हम, हमलोग, हमहि, हमका, हमार
मध्यम पुरुष बहुवचन - तुम, तुम्ह, तुम्हार, तुहार
अन्य पुरुष एकवचन - वह, उ, ओ, ओकर
अन्य पुरुष बहुवचन - वेइ, तेइ, ओनकर, ओनका

(ऐ) अवधी के प्राचीन साहित्य में सहायक क्रिया का प्रयोग कम हुआ है। उसकी सहायक क्रियाओं में वर्तमान काल के लिए 'ह'-रूप (हऔं, आहि), भूतकाल के लिए 'भ'-रूप (भएउ, भए, भइल) तथा भविष्यकाल के लिए 'ब'-रूप (होब, होबऊ) प्रमुख रूप से मिलते हैं।

(ii) बघेली

बघेली बघेलखंड में बोली जाने वाली बोली है। इसका केन्द्र रीवा है तथा उसके अतिरिक्त यह जबलपुर, मंडला तथा बालाघाट आदि जिलों में बोली जाती है। अवधी और बघेली में इतनी अधिक समानताएँ हैं कि कुछ विद्वान उसे अवधी की उपबोली ही मानते हैं, किन्तु डॉ. जॉर्ज ग्रियर्सन तथा अन्य कुछ विद्वानों ने बघेली को एक अलग बोली के रूप में मान्यता प्रदान की है। बघेली की भाषिक विशेषताएँ इस प्रकार हैं-

(अ) अवधी में 'व' के स्थान पर 'ब' का प्रयोग कहीं-कहीं होता है, जबकि बघेली में लगभग सभी शब्दों में ऐसा दिखाई देता है-
आवा > आबा

(आ) 'ए' और 'ओ' ध्वनियों का उच्चारण करते हुए बघेली में 'य' और 'व' ध्वनियों का मिश्रण करने की प्रवृत्ति दिखाई देती है-
घोड़ > घ्वाड़ खेत > ख्यात

(इ) बघेली में अवधी की तुलना में कुछ सर्वनाम भी अलग मिलते हैं - म्वाँ, मोहि, त्वा, तोही, बहि तथा यहि।

(ई) कर्म और सम्प्रदान के लिए 'कः' तथा करण व अपादान के लिए 'कार' परसर्गों का प्रयोग बघेली की विशेषताहै।

(iii) छत्तीसगढ़ी

छत्तीसगढ़ी बोली वर्तमान छत्तीसगढ़ राज्य की बोली है जिसे इतिहास में दक्षिण कोसल भी कहा गया है। चेदि राजाओं के कारण इस क्षेत्र का नाम चेदीसगढ़ पड़ा और उसी से बदलकर छत्तीसगढ़ हो गया। इसके क्षेत्र के अंतर्गत सरगुजा, बिलासपुर, रायपुर, रायगढ़, दुर्ग तथा नंदगाँव आदि जिले आते हैं। यह क्षेत्र भोजपुरी, मगही, बघेली, मराठी और उड़िया भाषी क्षेत्रों से घिरा है तथा इन सभी का प्रभाव स्पष्ट रूप से छत्तीसगढ़ी पर दिखता है। यह बोली भी आमतौर पर अवधी के समान ही है। इसकी विशेष प्रवृत्तियाँ इस प्रकार हैं-

(अ) उच्चारण में महाप्राणीकरण इसकी अद्भुत विशेषता है-
दौड़ > धौड़ कचहरी > कछेरी जन > झन

(आ) 'स' के स्थान पर 'छ', 'ल' के स्थान पर 'र' तथा 'ब' या 'व' के स्थान पर 'ज' करने की प्रवृत्ति मिलतीहै-
सीता > छीता बालक > बारक

(इ) ष तथा श को स के रूप में बोला जाता है -
भाषा > भासा दोष > दोस

(ई) एकवचन से बहुवचन बनाने के लिए प्राय: 'मन' प्रत्यय जोड़ा जाता जैसे - 'हममन' (हम लोग)।

(उ) बहुवचन के लिए 'न' का प्रयोग भी किया जाता है जैसे- 'लरिकन'।

(ऊ) क्रिया के साथ आने वाले 'त' और 'ह' को जोड़कर 'थ' बनाने की प्रवृत्ति भी मिलती है-

करते हैं > करतथन

(ए) कर्म, सम्प्रदान के लिए 'ल' परसर्ग तथा करण, अपादान के लिए 'ले' परसर्ग का प्रयोग विशिष्ट है।

(ऐ) पुल्लिंग को स्त्रीलिंग करने के लिए इन, आनि, इया आदि प्रत्यय विशेष रूप से प्रचलित हैं, जैसे - जेठानी, बुढ़िया, नतनिन आदि।

5. "पश्चिमी हिन्दी" उपभाषा

पश्चिमी हिन्दी, हिन्दी भाषा का सबसे बड़ा उपवर्ग है जिसका क्षेत्र अंबाला से लेकर कानपुर तक तथा देहरादून से लेकर महाराष्ट्र के आरंभ तक विस्तृत है। इतना ही नहीं, दक्षिण में महाराष्ट्र, आंध्रप्रदेश आदि राज्यों के मुस्लिम समाज में भी पश्चिमी हिन्दी का ही एक रूप दक्खिनी हिन्दी प्रचलित है। इस उपभाषा की बोलियों को बोलने वालों की संख्या छ: करोड़ से अधिक है। अमीर खुसरो के समय से लेकर वर्तमान काल तक सैकड़ों महान रचनाकार इस उपभाषा की बोलियों में रचना कर चुके हैं। पश्चिमी हिन्दी के अंतर्गत आने वाली बोलियाँ हैं - ब्रजभाषा, खड़ी बोली, बुंदेली, कन्नौजी, हरियाणी तथा दक्खिनी। इन बोलियों का संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है-

(i) ब्रजभाषा

ब्रजभाषा पश्चिमी हिन्दी की प्रधान बोली है। इसका विकास शौरसेनी अपभ्रंश से माना गया है। इसका क्षेत्र मथुरा, आगरा तथा उसके आसपास काफी दूर-दूर तक फैला हुआ है। साहित्यिक दृष्टि से यह अत्यन्त सम्पन्न बोली है। भक्तिकाल की कृष्ण भक्ति काव्यधारा के अतिरिक्त संपूर्ण रीतिकालीन काव्य इसी बोली में रचा गया है। सूरदास, नंददास, बिहारी तथा देव इसके प्रमुख रचनाकार हैं। इस बोली का ही आरंभिक रूप आदिकालीन साहित्य में 'पिंगल' तथा मध्यकाल में 'भाखा' नाम से मिलता है।

ब्रजभाषा की भाषिक विशेषताएँ इस प्रकार हैं-

1. 'ऐ' तथा 'औ' का सही रूप में उच्चारण ब्रजभाषा की खास विशेषता है। खड़ी बोली में जहाँ भी 'ए' तथा 'ओ' पाया जाता है, वहाँ ब्रजभाषा में 'ऐ' तथा 'औ' उच्चारण मिलता है।
2. ब्रजभाषा में 'ओकारांतता' की प्रवृत्ति स्पष्ट दिखाई देती है, जैसे-
   आया > आयो चढ़ैगा > चढ़ैगो होता > होतो जाऊंगा > जाऊंगो
3. ब्रजभाषा में 'र' का 'ड़' तथा 'ण' का 'न' हो जाता है, जैसे-
   परे > पड़े बाण > बान जुरतो > जुड़तो
4. महाप्राण ध्वनियों का अल्पप्राणीकरण करने की प्रवृत्ति भी ब्रजभाषा में स्पष्टत: दिखाई देती है, जैसे -
   साहूकार > साउकार मुझ > मुज
5. अवधी की तरह पुल्लिंग एकवचन के अंत में 'उ' तथा स्त्रीलिंग एकवचन के अंत में 'इ' ध्वनियों का प्रयोग ब्रजभाषा में मिलता है, जैसे - मालु, कालि, दूरि आदि।
6. ब्रजभाषा में परसर्गों का प्रयोग सामान्यत: अन्य भारतीय आर्यभाषाओं के समान ही मिलता है। निम्न उदाहरण उल्लेखनीय हैं-

कर्ता	- ने, नै
संबंध	- को, कौ, कि, की, के
कर्म	- कु, कूं, को, ए, इ
अधिकरण	- में, मैं, महं, माहीं, माहि, प, पै, पें
करण-अपादान	- ते, तैं, सू, सूं, सो, सौं, तें

7. एकवचन से बहुवचन बनाने के लिए एँ, अन तथा इन जैसे प्रत्ययों का प्रयोग किया जाता है, जैसे-
   किताब > किताबें रोटी > रोटिन
   किताब > किताबन
8. स्त्रीलिंग शब्दों के लिए ई, इनी, आइन तथा आनी प्रत्ययों का प्रयोग उल्लेखनीय है, जैसे- गोरी, शेरनी, देवरानी, ललाइन आदि।
9. ब्रजभाषा में प्रयुक्त होने वाले प्रमुख सर्वनाम इस प्रकार हैं-
   उत्तम पुरुष - मैं, हौं, मोहि, मेरो, हम, हमन्, हमहिं, हमारो।
   मध्यम परुष - तू, तूं, तैं, तोहि, तेरो, तुम, तुम्हैं, तुम्हारो, तिहारो।
   अन्य पुरुष - वौ, वह, वाहि, वे, वै, उन, यह, या, याहि, वे, ताहि, तिन्हें।
10. ब्रजभाषा की क्रिया संरचना में वर्तमान काल के लिए 'त'-रूप, जैसे- काढ़त, काढ़ति, काढ़तु तथा भूतकाल के लिए 'औ' या 'यौ' वाले रूप जैसे - चलौ, गयौ आदि काफी प्रचलित हैं।
11. सहायक क्रिया के संबंध में ब्रजभाषा में वर्तमान काल में 'ह' रूप (हौं, हैं), भविष्यकाल में 'ग-रूप' (होंगे, होवैगो) तथा भूतकाल में 'त-रूप' (हुतौ, हुती) का विशेष रूप से प्रचलन दिखाई देता है।
12. ब्रजभाषा में कभी-कभी नपुंसक लिंग भी मिलता है, जैसे-
   सोना (पुल्लिंग) > सौनौं/सोनो (नपुंसक लिंग)
13. इसके विशेषण प्राय: खड़ी बोली की भांति ही होते हैं, किन्तु आकारान्त पुल्लिंग शब्द इसमें औकारान्त हो जाते हैं, जैसे-
   काला > कालौ गोरा > गोरौ

(ii) खड़ी बोली

खड़ी बोली दिल्ली, मेरठ तथा आसपास के क्षेत्र में बोली जाने वाली बोली है। इसका नाम खड़ी बोली कैसे पड़ा, इस विषय पर भाषावैज्ञानिकों में विवाद है। खड़ी का अर्थ **सुनीति कुमार चटर्जी** ने 'सीधी', **कामता प्रसाद गुरु** ने 'कर्कश', **गिलक्राइस्ट** ने 'गँवारू', **किशोरीदास वाजपेयी** ने 'खड़ी पाई से संबंधित' तथा कुछ **अन्य भाषावैज्ञानिकों** ने 'खरी' या 'शुद्ध' माना है। इनमें से कौन-सा मत किसका सही है, यह कहना कठिन है। इसी बोली का दूसरा नाम 'कौरवी' है, जिसका प्रयोग **'राहुल सांकृत्यायन'** ने किया है।

खड़ी बोली का उद्भव शौरसेनी अपभ्रंश के उत्तरी रूप से हुआ है। इसका क्षेत्र देहरादून से मेरठ, दिल्ली तक फैला है। अम्बाला के पूर्वी भाग और हिमाचल के कलसिया में मिश्रित खड़ी बोली का प्रचलन माना गया है।

वर्तमान हिन्दी, उर्दू, हिन्दुस्तानी तथा दक्खिनी एक सीमा तक खड़ी बोली पर ही आधारित हैं।

खड़ी बोली की मुख्य भाषिक विशेषताएँ इस प्रकार हैं-

1. खड़ी बोली प्राय: एक आकारांत बोली है, अर्थात् इसमें चढ़ता, बड़ा, घोड़ा जैसे शब्द मिलते हैं।
2. खड़ी बोली में ऐ/औ का उच्चारण क्रमश: ए/ओ की तरह होता है, जैसे- औरत > ओरत
3. इसमें कभी-कभी प्रारम्भ के स्वर लुप्त हो जाते हैं,जैसे-
   इकट्ठा > कट्ठा ज्यादा > यादा
4. अनेक स्थानों पर महाप्राण ध्वनियों का अल्पप्राणीकरण हो जाता है, जैसे -
   धोखा > धोका झूठ > झूट
5. इसमें 'न' के स्थान पर 'ण' तथा 'ल' के स्थान पर 'ळ' मिलता है, जैसे -
   मानस > माणस बालक > बाळक लेन-देन > लेण-देण
6. इसमें र, ल, ड़ ध्वनियाँ आपस में बदल जाती हैं, जैसे-
   चपरासी > चपड़ासी

7. खड़ी बोली में कहीं-कहीं दो शब्दों को मिलाकर उच्चारण लाघव का प्रयास किया जाता है तो कहीं-कहीं व्यंजन का द्वित्वीकरण दिखाई देता है जिससे उच्चारण का प्रयत्न बढ़ जाता है, जैसे -
   छिप गया > छिप्पा बापू > बाप्पू कर रहा > कर्रा छोटा > छोट्टा
8. खड़ी बोली के क्रिया-रूप प्रायः साहित्यिक हिन्दी के समान हैं। भविष्यकाल में गा, गे, गी का प्रयोग इसमें भी होता है किंतु द्वित्वीकरण इसकी अपनी विशेषता है (जाऊंगा > जाऊंग्गा)। भूतकाल का या-रूप इसमें विशेषत: प्रचलित है (चल्या, कर्‌या)। वर्तमान काल में साहित्यिक हिन्दी के 'त-रूप' के स्थान पर 'ऊ-रूप' तथा 'व-रूप' इसकी एक प्रमुख विशेषता मानी गई है, जैसे-
   मैं जाता हूँ > में जाऊं हूँ कौन जाता है > कूण जावै है
9. इसमें बलाघात हिन्दी की अन्य बोलियों की तुलना में अधिक होता है। इससे आदि स्वर प्राय: लुप्त हो जाता है, जैसे-
   सियाना > स्याणा रियायत > र्‌यायत
10. सामान्य हिन्दी में स्त्रीलिंग के लिए प्रयुक्त होने वाला प्रत्यय 'इन' खड़ी बोली में 'अन' हो जाता है; जैसे -
   मालिन > मालन नागिन > नागन
11. सर्वनाम के मुख्य रूप हैं - मैं, में, मुझ, म्हारा, हमारा, तम, थारा, जिस्का, जिन्का, कोण, कूण, किस्का, किणका आदि।

(iii) बुन्देली

बुंदेली बुंदेलखंड की बोली है जिसके अंतर्गत मध्य प्रदेश के टीकमगढ़, ग्वालियर, बालाघाट आदि जिले, उत्तर प्रदेश के झाँसी, आगरा और मैनपुरी जैसे जिले तथा महाराष्ट्र के नागपुर जैसे जिले सम्मिलित हैं। भू-भाग के विस्तार की दृष्टि से बुंदेली पश्चिमी हिन्दी की सर्वाधिक व्यापक बोली है। इसकी प्रमुख भाषिक विशेषताएँ इस प्रकार हैं -

1. ऐ, औ का उच्चारण मूल स्वर तथा संयुक्त स्वर दोनों रूपों में मिलता है।
2. इसके उच्चारण में अल्पप्राणीकरण की प्रवृत्ति मिलती है, जैसे-
   आधा > आदा दूध > दूद
3. बुंदेली में 'ड़' का 'र', 'स' का 'छ', 'ब' का 'म', 'क' का 'घ', 'च' का 'स' और 'उ' का 'इ' होने की प्रवृत्ति मिलती है, जैसे -
   झगड़ा > झगरो बबूल > बमूरा सीढ़ियाँ > छिड़ियाँ सौच > शौंस
4. इसमें बीच में स्वतंत्र रूप से आने वाली 'ह' ध्वनि का लोप हो जाता है, जैसे -
   चाहत > चाउत रहिके > रइके
5. बुंदेली के प्रमुख परसर्ग हैं - के लाने/के काजे (के लिए), खों (को) तथा खो (का)।
6. बुंदेली में सहायक क्रिया के संबंध में एक विशेष बात यह है कि इसमें 'ह' ध्वनि का प्रयोग नहीं किया जाता है। इस वजह से निम्नलिखित परिवर्तन बुंदेली में दिखाई देते हैं-
   हूँ > औं हो > आव हैं > आय
   भविष्यकाल में 'ह', 'ग' तथा 'नै' रूप चलते हैं, जैसे- होगे, हुहौ तथा होनै। भूतकाल में ता, ते, ती रूप प्रचलितहैं।
7. हिन्दी की अन्य बोलियों की तरह बुंदेली में भी स्त्रीलिंग बनाने के लिए 'इन' तथा 'नी' प्रत्यय लगते हैं, जैसे-
   लड़का > लड़किन हरिन > हरिनी

(iv) कन्नौजी

यद्यपि कुछ विद्वान कन्नौजी को ब्रजभाषा का ही रूप मानते हैं, किन्तु जॉर्ज ग्रियर्सन ने इसे एक अलग बोली माना है। यह प्राचीन कान्यकुब्ज (कन्नौज) प्रदेश की भाषा है। इस भाषा का केन्द्र है - कन्नौज (फर्रुखाबाद जिला)। यह बोली प्राय: इटावा, फर्रुखाबाद, कानपुर, हरदोई और पीलीभीत जिलों में प्रचलित है। कन्नौजी की भाषिक विशेषताएँ निम्नलिखित हैं-

1. कन्नौजी में पुल्लिंग शब्द सामान्यत: उकारांत रूप में उच्चरित किये जाते हैं, जैसे- रामु, कानु, घरु, किसानु, पेटु आदि।
2. इसमें ड, ड़ और ढ, ढ़ में भेद स्पष्ट है।
3. इस बोली में मध्यम 'ह' का लोप हो जाता है, जैसे- जाहि > जाइ।
4. इसमें हिन्दी के अकारांत शब्द प्राय: ओकारांत रूप में बोले जाते हैं, जैसे - 'छोटा' > 'छोटो'। इसी प्रकार हिन्दी का आरंभिक 'अ' भी यहाँ 'औ' में बदल जाता है, जैसे- बकरा > बौकरा।
5. हिन्दी की अंतिम महाप्राण ध्वनि का यहाँ अल्पप्राणीकरण हो जाता है, जैसे- हाथ > हाँत।
6. कन्नौजी में अनुनासिकीकरण की प्रवृत्ति अत्यधिक मात्रा में मिलती है, जैसे- बात > बाँत।
7. इस बोली में व्यंजनों में संयोग उल्लेखनीय है, जैसे - बादशाह > बास्साह, थक गया > थग्गयो, लोभ मत करो > लोभ्मति करो इत्यादि।
8. स्त्रीलिंग बनाने के लिए आइन, इयाँ तथा इ प्रत्यय जोड़े जाते हैं। ये प्रत्यय हिन्दी की प्राय: सभी बोलियों में प्रयुक्त होते हैं।
9. संज्ञा-सर्वनामों में कुछ अतिरिक्त परसर्ग भी मिलते हैं, जैसे- कर्म के लिए का, कौ, संबंध के लिए 'कर' तथा अधिकरण के लिए मां आदि।
10. इसमें वर्तमान काल के लिए हू, हो, हैगो, भूतकाल के लिए थी, थे, हते, हती तथा भविष्यकाल के लिए ह और ग वाले रूप अधिक प्रचलित हैं।

(v) हरियाणी

हरियाणी का मूल सम्बन्ध हरियाणा राज्य से है। इसका एक और नाम 'बांगरू' भी है, जो इसे जॉर्ज ग्रियर्सन ने दिया है। करनाल के आसपास का क्षेत्र बांगर कहलाता है। इसलिए ग्रियर्सन ने इसे बांगरू कहा। इस बोली का क्षेत्र दिल्ली, करनाल, जीन्द, हिसार तथा पटियाला के कुछ क्षेत्रों तक विस्तृत है। हरियाणी की भाषिक विशेषताएँ इस प्रकार हैं -

1. हरियाणी में अ का उ, ए, ऐ तथा औ में परिवर्तन हो जाता है, जैसे-
   कहाऊं > कोहाऊं बहुत > बोहत जवाब > जुवाब
2. इसमें 'न' के स्थान पर 'ण' बोला जाता है, जैसे- अपना > अपणा, पानी > पाणी। इसी प्रकार ड़ का ड हो जाता है, जैसे - बड़ा > बडा।
3. कुछ शब्दों, विशेषकर क्रियाओं में महाप्राणीकृत व्यंजनों का प्रयोग होता है, जैसे- चाल्लया, लाग्गे आदि।
4. इसमें 'नै' परसर्ग कर्त्ता-कर्म-सम्प्रदान तीनों में प्रयुक्त होता है। इसके अतिरिक्त करण और सम्प्रदान कारक के लिए 'नइ' तथा संबंध कारक के लिए 'कइ' एवं 'के' का प्रयोग होता है।
5. इसमें वर्तमान काल के लिए सूं, है, सैं, सै तथा भूतकाल के लिए सहायक क्रिया 'था' का प्रयोग किया जाता है।

(vi) दक्खिनी

यह बोली चौदहवीं-पंद्रहवीं शताब्दी में उत्तर भारत से जनता के व्यापक स्तर पर दक्षिण भारतीय स्थानों हैदराबाद, देवगिरि तथा गुलबर्गा जाने पर विकसित हुई। वास्तविक रूप में दक्खिनी उत्तर भारत में प्रचलित कौरवी या खड़ी बोली का ही फारसी से प्रभावित रूपांतरण है। इसकी मूल प्रवृत्तियाँ लगभग वही हैं जो खड़ी बोली की हैं, जैसे - महाप्राण शब्दों के अल्पप्राणीकरण की प्रवृत्ति (मुझको > मुजको), कहीं-कहीं व्यंजनों का संयोग करने से महाप्राणीकरण (पहचानते > पछानते), 'नें', 'के', 'कूँ' जैसे परसर्गों का प्रयोग आदि। सत्रहवीं-अठारहवीं शताब्दी के बाद दक्खिनी हिन्दी धीरे-धीरे उर्दूपन की ओर बढ़ती गई है।

14.5 दक्खिनी हिन्दी

परिचय

दक्खिनी हिन्दी पश्चिमी हिन्दी उपभाषा की एक प्रमुख बोली है, जो कुछ ऐतिहासिक संयोगों के कारण भौगोलिक दृष्टि से पश्चिमी हिन्दी के मूल क्षेत्र से अलग है। 13वीं शताब्दी के अंत में अलाउद्दीन का दक्षिण अभियान हुआ तथा उसके

साथ कई अधिकारी व व्यापारी दक्षिण गए। 14वीं शताब्दी में मुहम्मद तुगलक ने देवगिरि या दौलताबाद को अपनी राजधानी बनाया और दिल्ली व आसपास के लोग बड़ी संख्या में जाकर वहाँ बसे। 15वीं शताब्दी में भी मुगल फौज व कई लोग दक्षिण गए जिनमें दिल्ली, मेरठ व हरियाणा अर्थात् खड़ी बोली क्षेत्र के सैनिक सर्वाधिक संख्या में थे। इसी समय कुछ सूफी संत भी अपने सिद्धांतों के प्रचार-प्रसार हेतु दक्षिण भारत गए तथा उनका प्रभाव भी वहाँ पड़ा। खड़ी बोली क्षेत्र से गए लोगों ने दक्षिण की प्रचलित भाषाओं का प्रयोग करने के स्थान पर अपनी भाषा अर्थात् अरबी, फारसी मिश्रित खड़ी बोली को ही अपनाए रखा। यही विशिष्ट शैली दक्खिनी हिन्दी के रूप में विकसित हुई। धीरे-धीरे तेलुगू, कन्नड़ व मराठी भाषाओं का प्रभाव इस पर पड़ता गया और यह एक विकसित भाषिक परंपरा बन गई।

दक्खिनी हिन्दी का प्रयोग अहमदनगर, बीजापुर, गोलकुंडा, बीदर, बरार व मुंबई तक फैला हुआ है। हैदराबाद में भी इसका एक विशिष्ट रूप प्रचलित है, जिसे हैदराबादी हिन्दी कहा जाता है। दक्खिनी हिन्दी के कई अन्य नाम भी प्रचलित हैं–दकनी, देहलवी, हिन्दवी तथा गूजरी। गूजरी इसका वह रूप है जो गुजरात के कुछ कवियों के साहित्य में प्रयुक्त हुआ है जैसे मुहम्मद शाह कादरी के काव्य में। सीमित रूप से दक्खिनी हिन्दी का प्रयोग तमिलनाडु व केरल में भी होता रहा है हालांकि इसका प्रमुख स्थान आंध्र प्रदेश, कर्नाटक व महाराष्ट्र ही है।

दक्खिनी के विकास में राजनीतिक तत्वों की भूमिका

दक्खिनी हिन्दी के संबंध में विशेष बात यह है कि इसके विकास में सांस्कृतिक से अधिक राजनीतिक कारक उत्तरदायी रहे। ये राजनीतिक तत्व तीन प्रकार के हैं–

1. यदि उत्तर भारत के राजा दक्षिण भारत का अभियान या राजधानी परिवर्तन न करते तो दक्खिनी का विस्तार संभव ही न होता।
2. 15वीं से 18वीं शताब्दी तक दक्खिनी को बहमनी वंश तथा अन्य राजाओं का आश्रय निरंतर प्राप्त होता रहा, जिससे इसके विकास में पर्याप्त सहायता मिली।
3. कुछ शासक ऐसे हुए जो स्वयं भी दक्खिनी में साहित्य की रचना करते रहे। उदाहरण के लिए इब्राहिम आदिल शाह द्वितीय, जो बीजापुर के सुल्तान थे तथा मुहम्मद अली कुतुब शाह जो गोलकुंडा के सुल्तान थे- इन दोनों ने दक्खिनी साहित्य के विकास में पर्याप्त योगदान दिया।

'दक्खिनी' हिन्दी की बोली है या उर्दू की

दक्खिनी हिन्दी के भाषिक स्वरूप को लेकर एक प्रसिद्ध विवाद है कि जहाँ हिन्दी के समर्थक इसे हिन्दी की बोली मानते हैं, वहीं उर्दू के समर्थक इसे उर्दू भाषा से जोड़ते हैं। वस्तुतः यह हिन्दी की ही एक बोली है। इस संबंध में दो प्रमाण प्रमुखतः दिए जाते हैं– (i) कालिक दृष्टि से उर्दू का विकास इसके बाद हुआ है। (ii) उर्दू साहित्य का विकास दक्खिनी साहित्यकारों के अंतिम दौर से ही आरंभ हो पाया। दक्खिनी के अंतिम कवि वली औरंगाबादी उर्दू के पहले कवि माने जाते हैं। इन तथ्यों के बावजूद यह मुद्दा ज़ोर-शोर से उठाया जाता है कि दक्खिनी उर्दू की शैली है क्योंकि यह फारसी में लिखी जाती है; इसमें अरबी, फारसी शब्दों की काफी मात्रा है; तथा इसका प्रयोग करने वाले अधिकांश लोग मुसलमान हैं। वास्तविक बात यह है कि दक्खिनी का विकास उर्दू के जन्म के काफी पहले ही हो चुका था और अपने आरंभिक काल में यह खड़ी बोली से ज्यादा प्रभावित रही, फारसी से कम।

वली दकनी के पश्चात् दक्खिनी का फारसीकरण तेजी से हुआ लेकिन उनसे पहले के साहित्यकार तो जान-बूझकर फारसी की तुलना में दक्खिनी को अधिक महत्त्व दे रहे हैं। ऐसे तीन रचनाकारों के प्रसिद्ध कथन इस प्रकार हैं–

1. जुनूनी मौलाना–

"मैं इसको दर हिन्दी जुबाँ इस वास्ते कहने लगा,
जो फारसी समजे नहीं, समजे इसे खुश होकर।"

2. सतनती–

"जिसे फारसी का न कुछ ग्यान है,
सो दक्खिनी जबाँ उसको आसान है।"

3. ख्वाज़ा बंदानवाज गेसूदराज–

"हम लोग फारसी की जगह हिन्दी इसलिए अपनाते हैं क्योंकि यह ज्यादा नरम तथा रसीली है तथा इसमें बात खुलकर की जा सकती है। इसमें लय भी इसी की तरह रसीली होती है जिससे कि बड़ा रोना आता है। सूफी को यह चीज बहुत पसंद आती है।"

दक्खिनी भाषा का साहित्य

दक्खिनी साहित्य में कई प्रसिद्ध साहित्यकार शामिल हैं, जिनमें पहला नाम ख्वाज़ा बंदा नवाज गेसूदराज का आता है। इनकी प्रसिद्ध रचना 'मिराजुल आशिकीन' दक्खिनी गद्य की पहली रचना है। ध्यातव्य है कि दक्खिनी में गद्य का विकास पद्य से पहले हुआ। अन्य प्रमुख साहित्यकारों में मुल्ला वजही, वली दकनी, निज़ामी, शाह मीराजी तथा गुलाम अली हैं। इनके अतिरिक्त, इब्राहिम आदिल शाह II तथा मुहम्मद अली कुतुबशाह जैसे शासकों ने भी इस भाषा में कविताएँ लिखी हैं। इनकी रचनाओं के कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं–

"जिसे इश्क का तीर कारी लगे,
उसे ज़िन्दगी क्यों न भारी लगे,
x x x
नारी को कहे तूँ अगर एकवचन,
नैनों के दिल में कटारी लगे।" (वली दकनी)

"मैं आशिक उस पीव का जिसने मुझे जीव दिया है"
(बंदानवाज़ गेसूदराज)

"सूरज यूँ है रंग आसमानी मने,
खिल्या कमल फूल पानी मने।" ('सबरस')
(मुल्ला वजही)

दक्खिनी हिन्दी का भाषा वैज्ञानिक परिचय

I. ध्वनि संबंधी विशेषताएँ

1. खड़ी बोली के सभी स्वर दक्खिनी हिन्दी में मिलते हैं।
2. खड़ी बोली के सभी व्यंजन भी दक्खिनी हिन्दी में मिलते हैं। इनके अतिरिक्त, 'ग़' तथा 'फ़' जैसी ध्वनियाँ अत्यधिक मात्रा में दिखाई देती हैं।
3. ड़ के स्थान पर ड प्रयोग करने की प्रवृत्ति मिलती है, जैसे- पड़ा > पडा।
4. महाप्राण ध्वनियों का अल्पप्राणीकरण काफी ध्वनियों में दिखाई देता है, जैसे- मूरख > मूरक, मुझे > मुजे, धोखा > धोका।
5. कहीं-कहीं अल्पप्राण ध्वनियों का महाप्राणीकरण भी होता है। उदाहरण के लिए, पलक > पलख, पहचान > पछान।
6. एक शब्द की विभिन्न ध्वनियों के व्यत्यय की प्रवृत्ति दक्खिनी की एक प्रमुख विशेषता है। उदाहरण के लिए- लखनऊ > नखलऊ, कीचड़ > कीकड़, मतलब > मतबल।
7. कहीं-कहीं सघोष व्यंजनों का अघोषीकरण भी दिखता है, जैसे- खूबसूरत > खपसूरत।
8. 'म्ब' के स्थान पर 'म्म' की प्रवृत्ति दिखती है, जैसे- गुम्बद > गुम्मज, कम्बल > कम्मल।

9. 'न्द' तथा 'न्ध' को 'न' करने की प्रवृत्ति दिखाई देती है, जैसे- चान्दनी > चानी, बांधना > बानना।
10. अनेक शब्दों में दीर्घ स्वर का ह्रस्वीकरण हो जाता है, जैसे- आदमी > अदमी, सफाई > सफई।

II. व्याकरणिक विशेषताएँ

(i) एकवचन से बहुवचन का निर्माण करने के लिए निम्नलिखित प्रत्ययों का प्रयोग किया जाता है–
'आँ' प्रत्यय-बात > बाताँ, चिराग > चिरागाँ, दोस्त > दोस्ताँ।
'अन' प्रत्यय- जन > जनन।
'ए' प्रत्यय- राज > राजे।

(ii) दक्खिनी के प्रमुख कारकीय परसर्ग इस प्रकार हैं–
कर्ता– 0, ने, नै (जैसे-बादशाह शराब पिया)
कर्म– कू, कूँ, कों
करण– सों, सेती, ते, तें, थें
सम्प्रदान– तईं, वास्ते, खातिर
अपादान– ते, तें, सूँ
सम्बन्ध– का, के, केर
अधिकरण– पे, पै, में, मांझ
सम्बोधन– भई, अरे, ए, भई, अबे

(iii) सर्वनाम व्यवस्था इस प्रकार हैं-
उत्तम पुरुष– मेरेकूँ, हमन, मंज, मुज
मध्यम पुरुष– तुज, तुमें, आपहिं
अन्य पुरुष– उनन, उनने
अन्य सर्वनाम– जित्ता, जित्ती, उत्ता, उत्ती।

(iv) विशेषण व्यवस्था की प्रमुख विशेषताएँ इस प्रकार हैं-
(क) प्रमुख संख्यावाचक विशेष इस प्रकार हैं– उन्नीस > वन्नीस, छह > छे, आठ > आट।
(ख) स्त्रीलिंग के विशेषण विशेष्य के अनुसार पूर्णतः विकारी हैं जो खड़ी बोली से अलग विशेषता है, जैसे- जम्हाई लेती लड़की > जम्हाइयाँ लेतियाँ लड़कियाँ।

(v) क्रिया व्यवस्था के प्रमुख प्रयोग इस प्रकार हैं-
वर्तमानकाल– अहै, है, हैं, हूँ, हैगा
भूतकाल– कह्या, बोल्या, था, थ्या
भविष्यकाल– होगा, होंगे, होंगी, चलसीं, चलसूँ।
भूतकाल की क्रियाओं में 'यकर' प्रत्यय का प्रयोग भी काफी मात्रा में होता है, जैसे आकर > आयकर, रोकर > रोयकर।

III. शब्दावली संबंधी विशेषताएँ

दक्खिनी हिंदी में आरंभिक काल में खड़ी बोली की शब्दावली ही सर्वाधिक प्रचलित रही। वली दकनी के बाद इसमें फारसीकरण की प्रवृत्ति बढ़ती गई। इसके अतिरिक्त, मराठी, तेलुगू और कन्नड़ के स्थानीय शब्द भी सीमित मात्रा में शामिल होते गए।

निज़ामशाही, बरीदशाही, आदिलशाही व कुतुबशाही शासन में 'दक्खिनी हिन्दी' का विकास

*(***दक्खिनी हिन्दी की तैयारी करते हुए खड़ी बोली के ऐतिहासिक विकास वाले टॉपिक को भी ध्यान से देखें।)*

निज़ामशाही शासन

इस वंश के एक सुल्तान बुरहान निज़ाम शाह (1501-1553) बहुत ही सुसंस्कृत और साहित्यिक अभिरुचि के युवक थे। इनके शासन में संस्कृत और दक्खिनी भाषा को भी पूर्ण प्रश्रय प्राप्त था। इस काल का सर्वाधिक उल्लेखनीय कवि 'शाह-अशरफ' था। 'अशरफ' अपनी प्रसिद्ध रचना 'नौसरहार' के कारण दक्खिनी हिन्दी साहित्य में अपना महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। 'नौसरहार' दक्खिनी हिन्दी की एक प्राचीन मसनवी है जो 1504 ई. में कर्बला की घटनाओं को लेकर लिखी गई थी। इनके काव्य में सरलता और सुस्पष्टता सर्वत्र दृष्टिगोचर होती है-

"ऐसा कादिर एक खुदा, पैदा कीते शाह व गदा
कोई अयाने कोई फकीर, कोई अजादे कोई अखीर।
आपों छिप्या खेले छन्द, तुर्कन हिंदू न लाया दंद।"

बरीदशाही शासन (1487-1619 ई.)

साहित्य की दृष्टि से इस शासनकाल में कोई उल्लेखनीय प्रगति नहीं हुई थी। कुछ कवियों ने इस काल में अपनी रचनाएँ अवश्य आरंभ कीं, किंतु उनका काव्यकाल अधिकांशतः निजामशाही और आदिलशाही शासनकाल के अंतर्गत रहा। इनमें विशेष रूप से 'कुरेशी', 'फीरोज' और 'निजामी' आदि का उल्लेख किया जा सकता है।

आदिल शाही शासन

बीजापुर के आदिलशाही वंश में नौ सुल्तान हुए थे। इस वंश के अधिकांश सुल्तान सुसंस्कृत, विद्या व्यसनी और कला प्रेमी थे। इस वंश के चौथे शासक इब्राहीम आदिलशाह (1534-1550 ई.) ने शिया धर्म को छोड़कर सुन्नी धर्म ग्रहण कर लिया, जिसका परोक्ष प्रभाव दक्खिनी हिन्दी साहित्य की अभिवृद्धि के रूप में हुआ। इससे ईरानियों का प्रभाव कम हो गया और देशी भाषा और संस्कृत को विकास का अवसर मिला। 'दक्खिनी' को राज्य की सरकारी भाषा बना दिया गया। इससे इस भाषा की जड़ें इतनी सुदृढ़ हो गई थीं कि इनके उत्तराधिकारी अली आदिलशाह के भरसक प्रयत्नों के बावजूद भी फारसी का चलन न हो सका। आदिलशाह भी विद्वानों का आदर करता था। उसके शासनकाल में भी दक्खिनी हिन्दी साहित्य की निरंतर अभिवृद्धि होती रही। शाहबुरहानुद्दीन 'जानम' जैसे उच्च कोटि के कवि इसी काल की देन हैं। इसके बाद इब्राहीम आदिलशाह द्वितीय (1580-1627 ई.) के शासनकाल में तो साहित्य का अभूतपूर्व विकास हुआ। इब्राहीम आदिलशाह स्वयं भी एक उच्च कोटि का कवि था और कवियों और संगीतज्ञों का आश्रयदाता भी था। इस वंश का एक सुल्तान अली आदिलशाह भी 'शाही' उपनाम से दक्खिनी हिन्दी में काव्य रचना किया करता था। उसके शासन काल में भी दक्खिनी के साहित्य को विकास का पूर्ण अवसर प्राप्त हुआ। इस प्रकार आदिलशाही शासन काल दक्खिनी हिन्दी के विकास का सर्वोत्तम काल रहा है। इस युग में दक्खिनी हिन्दी की आदिलशाही साहित्य धारा में सर्वप्रथम सूफी संत कवि आते हैं। इनमें शाह मीरांजी शमशुलइश्शाक, बुरहानुद्दीन 'जानम' और अमीनुद्दीन आला अधिक प्रसिद्ध हैं।

बुरहानुद्दीन 'जानम'

इनके नाम से अनेक ग्रंथ प्रसिद्ध हैं। 'इर्शादनामा' सबसे लंबी काव्य रचना है जिसमें 258 के अलगभ बैत हैं। इसमें वे अपने पिता शाह मीरांजी की प्रशंसा में लिखते हैं-

"सिफत करूं कुछ अपना पीर
जिस से रोशन हुए ज़मीर
दहौं जग में मुंज मीत वही
सुमरूं ले मन नीत वही"

'जानम' के काव्य की एक विशेषता यह है कि वह अरबी और फारसी शब्दों का प्रयोग करते हुए भी उनके जनसाधारण में उच्चारित (तद्भव) प्रयोग पर ही बल देते हैं और भाषा को दुरूह होने से बचा लेते हैं। इस प्रकार वे विदेशी शब्दों का हिन्दीकरण करते हुए प्रतीत होते हैं। वे गेसूदराज़ की दुरूह भाषा को धरती पर उतार कर जनसुलभ बनाने का प्रयत्न करते दीख पड़ते हैं। फलत: दक्खिनी हिंदी के विकास में उनका बहुत योगदान है।

उन्होंने अनेक ऐसे प्रयोग भी किए हैं जिनमें 'हारा' प्रत्यय लगाकर कर्ता कारक बनाया गया जैसे- करनहारा, बूझनहारा, समझनहारा, चेतनहारा आदि।

इब्राहीम आदिलशाह द्वितीय (1580-1626 ई.)

यह आदिलशाही राजवंश का छठा सुल्तान था जिसे संगीत और साहित्य में अत्यधिक रुचि थी। उनकी प्रसिद्ध रचना का नाम भी 'नवरस' था। यह संगीत से संबंधित एक संक्षिप्त रचना है। इसकी भाषा पर ब्रज का प्रभाव अधिक है। नायिका का सुन्दर चित्रण दृष्टव्य है-

'लिखन बैठ जाकी शबी गहि गाह गरब गरूर
भये न केते जगत के चतुर चितेरे कूर'

अब्दुल

इब्राहिम आदिलशाह के शासन काल का एक महान कवि था, जिसने एक मसनवी 'इब्राहीमनामा' के नाम से लिखी थी। यह दक्खिनी हिन्दी की एक प्रतिनिधि रचना है।

मुकीमी, रुस्तमी, शाही, नुस्रती, बहरी, सय्यद मीरान हाशमी व शाह अबुलहसन कादरी आदि आदिलशाही शासन के महत्त्वपूर्ण रचनाकार हैं।

आदिलशाही काल में गद्य और पद्य दोनों में ही रचनाएँ हुई थीं। अनेक कवियों ने मर्सिये (शोक गीत) भी लिखे हैं, जिनमें प्रसिद्ध मर्सियाकार हैं- अली आदिलशाह नदीम, मिर्जा, नुस्रती, मलिक खुशनूद, हाशमी, बहरी आदि। गद्य लेखकों में अमीनउद्दीन अली, मौज्ज़म आदि सर्वाधिक प्रसिद्ध हैं।

कुतुबशाही शासन (1508-1687 ई.)

इनके राज्य में भी दक्खिनी ही राजभाषा थी। इस काल के दक्खिनी हिन्दी साहित्य को तीन भागों में विभक्त किया जा सकता है।

1. प्रारंभिक प्रयत्न - जो 1508 से 1580 तक हुए।
2. विकास काल - 1580 से 1672 तक
3. अवनत काल - 1672 से 1687 तक

प्रारंभिक प्रयत्न

गोलकुंडा के प्रथम चार सुल्तान अधिकतर युद्ध और संघर्ष में व्यस्त रहे। इब्राहीम कुली यद्यपि स्वयं कवि नहीं था किन्तु कवियों और विद्वानों का आदर करता था। कवियों में फीरोज़ एक उल्लेखनीय कवि था। इस काल में दक्खिनी हिन्दी की रचनाओं की भाषागत विशेषताएँ मुख्यतया निम्न प्रकार थीं:

1. दीर्घ स्वर का ह्रस्वीकरण जैसे - ढूंढना के लिए ढुंढना
2. घोष ध्वनि के लिए अघोष जैसे- तुझे के लिए तुजे
3. क्रियाओं में हरियाणी का प्रभाव विशेष रूप से था।

विकासकाल (1580-1671 ई.)

इस काल में दक्खिनी हिन्दी साहित्य का पूर्ण विकास हुआ था और राज्य की ओर से भी इसे पूर्ण संरक्षण प्राप्त था। इसी युग में कुतुबशाह, ग़वासी और 'वजही' जैसे लब्ध प्रतिष्ठ कवि हुए थे।

मुहम्मद कुली कुतुबशाह

सन् 1580 ई. में गद्दी पर बैठा था। दक्खिनी हिन्दी के वे पहले कवि हैं जिन्होंने भारतीय जीवन में गहरे पैठकर अपनी कविताएँ लिखी थीं। इनके काव्य में व्यापक जन-जीवन का चित्रण है।

मुल्ला वजही

'वजही' कुतुबशाही काल का सबसे महान कवि था। उसने 1600 ई. में 'कुतुबमुश्तरी' नाम से एक मसनवी लिखी थी। इसमें फारसी, अरबी और संस्कृत के शब्दों को 'दक्खिनी हिन्दी' में ढाल कर प्रस्तुत किया गया है। उदाहरण के लिए-

"छिपी रात उजाला हुआ दीख चा
लग्या जग करन सेव परमेस का।"

'कुतुबमुश्तरी' दक्खिनी का पहला प्रेमाख्यानक काव्य है।

ग़वासी

ग़वासी इस युग के एक अन्य महाकवि हैं। उनकी प्रमुख रचनाएँ निम्नलिखित हैं-

1. सैफुलमुलक
2. तूतीनामा
3. मैना सतवन्ती

इब्नेनिशाती

इब्नेनिशाती, अब्दुला कुतुबशाह का दरबारी कवि था। 'फूलबन' नामक एक रचना इनके नाम से प्रसिद्ध है, जो एक प्रेमाख्यानक काव्य है।

अवनत काल (1672-1687 ई.)

कुतुबशाही शासन का यह काल बड़ा ही अनिश्चितता का काल था। इस काल के विशेष रूप से उल्लेखनीय कवि तबई, शाहराजू हुसैनी, तानाशाह आदि हैं।

14.6 पूर्वी हिन्दी और पश्चिमी हिन्दी का अन्तर

पूर्वी हिन्दी और पश्चिमी हिन्दी हिन्दी भाषा की दो सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण उपभाषाएँ हैं तथा हिन्दी भाषा और साहित्य के विकास में इनका योगदान अवर्णनीय है। भौगोलिक दृष्टि से इनके क्षेत्रों में पर्याप्त निकटता होने के कारण इनकी सीमा स्थित बोलियाँ आपस में एक सी हैं तो शेष में पर्याप्त अंतर दिखाई पड़ते हैं। उदाहरण के लिए 'ब्रजभाषा' 'पश्चिमी हिन्दी' के अन्तर्गत होते हुए भी भाषिक प्रकृति और संरचना के स्तर पर 'पूर्वी हिन्दी' की 'अवधी' से काफी समानता रखती है। इस दृष्टि से, जब हम 'पूर्वी हिन्दी' और 'पश्चिमी हिन्दी' के पारस्परिक अंतरों की बात करते हैं तो हमें पूर्वी हिन्दी के रूप में मुख्यत: अवधी (कहीं-कहीं भोजपुरी भी) और 'पश्चिमी हिन्दी' के प्रतीक के तौर पर प्रधानत: खड़ी बोली (कहीं-कहीं हरियाणी भी) को ध्यान में रखना होगा। 'पश्चिमी हिन्दी' की चर्चा करते समय, हमारे लिए यह आवश्यक होगा कि हम ब्रजभाषा को अपवाद मानें क्योंकि उसकी भाषिक प्रकृति 'खड़ी बोली' की अपेक्षा 'अवधी' के अधिक निकट है।

'पूर्वी हिन्दी' और 'पश्चिमी हिन्दी' के प्रमुख अंतर निम्नलिखित हैं -

1. पूर्वी हिन्दी की व्युत्पत्ति अर्धमागधी प्राकृत-अपभ्रंश से हुई है जबकि पश्चिमी हिन्दी की व्युत्पत्ति शौरसेनी प्राकृत-अपभ्रंश से मानी गयी है।
2. पूर्वी हिन्दी प्राय: उकारान्त उपभाषा है जबकि पश्चिमी हिन्दी (ब्रजभाषा के अतिरिक्त) प्राय: आकारान्त है।
3. 'इ' तथा 'उ' ध्वनियों का पूर्वी हिन्दी में अति ह्रस्वीकरण हो जाता है जबकि पश्चिमी हिन्दी में प्राय: इनके दीर्घीकरण के उदाहरण दिखाई देते हैं, जैसे-

पूर्वी हिन्दी	पश्चिमी हिन्दी
मति > मत	मति > मती
पद्धति > पद्धत	पद्धति > पद्धती

4. पूर्वी हिन्दी में संयुक्त स्वर संध्यक्षरों के रूप में प्रयुक्त होते हैं जबकि पश्चिमी हिन्दी में सरल रूप में, जैसे-

पूर्वी हिन्दी	पश्चिमी हिन्दी
बैल > बइल	बैल > बैल
कौन > कउन	कौन > कोन

5. पूर्वी हिन्दी में ड़ ध्वनि प्राय: र के रूप में उच्चरित होती है (लड़ाई > लराई), जबकि पश्चिमी हिन्दी में अपने सामान्य रूप में (लड़ाई, उड़ना आदि)।
6. पूर्वी हिन्दी में ढ़ का उच्चारण प्राय: 'रह' के रूप में होता है (चढ़ा > चरहा), जबकि पश्चिमी हिन्दी में सामान्य रूप में (बढ़ा, चढ़ा, गढ़ा)।
7. पूर्वी हिन्दी में 'ण' का 'न' हो जाता है जबकि पश्चिमी हिन्दी में 'न' का 'ण', जैसे -

पूर्वी हिन्दी	पश्चिमी हिन्दी
ऋण > ऋन	पानी > पाणी
चरण > चरन	थाना > थाणा

8. पूर्वी हिन्दी में कहीं-कहीं य और व क्रमश: इ और उ के रूप में उच्चरित होते हैं (यहाँ > इहाँ, वहाँ > उहाँ) जबकि पश्चिमी हिन्दी में ऐसा नहीं होता।
9. पूर्वी हिन्दी में ऋ का उच्चारण प्राय: 'रि' के रूप में होता है (ऋतु > रितु, कृपा > क्रिपा), जबकि पश्चिमी हिन्दी में ऋ का उच्चारण र की भांति होता है। (कृपा > क्रपा, दृष्टि > द्रष्टि)।
10. पूर्वी हिन्दी में 'श' का उच्चारण केवल 'स' के रूप में होता है (शीश > सीस, शहर > सहर) जबकि पश्चिमी हिन्दी में 'श' का उच्चारण 'स' और 'श' दोनों रूपों में मिलता है (शहर, सरबत, सिर, शिक्षा)।
11. 'ष' का उच्चारण पूर्वी हिन्दी में 'ख' की तरह होता है (वर्षा > बरखा) जबकि पश्चिमी हिन्दी में कहीं 'स' और कहीं 'ख' के रूप में (भाषण > भासन, षटकोण > खटकोण)।
12. पूर्वी हिन्दी में शब्दों के मध्य आने वाला ल प्राय: र के रूप में उच्चरित होता है (बालक > बारक, फल > फर) जबकि पश्चिमी हिन्दी में 'ल' सामान्य रूप के अतिरिक्त मराठी के समान मूर्द्धन्य (ळ) रूप में भी मिलता है (बालक > बाळक, नाला > नाळा)।
13. पूर्वी हिन्दी में संज्ञा के प्राय: तीन रूप मिलते हैं (1) सामान्य रूप > घोड़ा (2) वा-सहित > घोड़वा (3) वना-सहित > घोड़वना। इसकी तुलना में, पश्चिमी हिन्दी में प्राय: एक ही रूप प्रचलित है - घोड़ा।
14. पूर्वी हिन्दी में आकारान्त पुल्लिंग एकवचन शब्द बहुवचन में भी प्राय: यथावत रहते हैं (ऊ लरका, ते लरका), जबकि पश्चिमी हिन्दी में आकारान्त पुल्लिंग संज्ञा शब्द बहुवचन में एकारान्त हो जाते हैं (लड़का > लड़के, बेटा > बेटे)।
15. पूर्वी हिन्दी में कर्त्ता प्राय: निर्विभक्तिक व परसर्ग रहित होते हैं, जबकि पश्चिमी हिन्दी में भूतकालिक सकर्मक क्रिया के कर्त्ता के साथ 'ने' परसर्ग लगाने की प्रवृत्ति मिलती है, जैसे-

पूर्वी हिन्दी	पश्चिमी हिन्दी
मैं खाना खा लिया हूँ	मैंने खाना खा लिया है

16. पूर्वी हिन्दी और पश्चिमी हिन्दी में परसर्गों की दृष्टि से भी काफी अंतर दिखाई देते हैं। प्रमुख अंतर इस प्रकार हैं-

कारक	पूर्वी हिन्दी	पश्चिमी हिन्दी
करण-अपादान	सू, सौं, सों, सन	सू, सौं, स, के द्वारा
सम्प्रदान	कूँ, कौ, लागि	को, के लिए, के वास्ते
संबंध	कं, को, कौ, केर	का, के, की, रा, रे, री

17. पूर्वी हिन्दी के अन्तर्गत संज्ञार्थ क्रियाओं या क्रियार्थ संज्ञाओं के साथ प्राय: 'इबो' परसर्ग जुड़ता है (जाइबो, दैबो, लैबो) जबकि पश्चिमी हिन्दी में 'ना' परसर्ग (जाना, देना, लेना)।
18. पूर्वी हिन्दी और पश्चिमी हिन्दी के क्रिया रूप भी प्राय: अलग हैं। इन्हें एक संक्षिप्त तालिका के माध्यम से समझा जा सकता है-

काल	पूर्वी हिन्दी	पश्चिमी हिन्दी
वर्तमान काल	अहइ, हइ, आहे	है, हैं
भूतकाल	रहे	था, थी, थे
भविष्य काल	है, हइ	गा, गी, गे

ब्रजभाषा और अवधी में तुलना

तुलना का आधार	ब्रजभाषा	अवधी
1. उपभाषा, ऐतिहासिक विकास तथा साहित्यिक विकास	ब्रजभाषा 'पश्चिमी हिन्दी' वर्ग की बोली है। इसका विकास शौरसेनी अपभ्रंश से हुआ है। भक्तिकाल की कृष्णकाव्यधारा तथा रीतिकाल में यह काव्यभाषा रही।	अवधी पूर्वी हिन्दी वर्ग की बोली है। इसका विकास अर्धमागधी अपभ्रंश से हुआ है। सूफी तथा रामभक्ति काव्यधाराओं में इसका चरम साहित्यिक विकास दिखाई देता है।
2. भौगोलिक क्षेत्र	ब्रजभाषा मूलत: ब्रजमंडल की बोली है यद्यपि साहित्यिक दृष्टि से इसका पर्याप्त भौगोलिक विस्तार हुआ है।	अवधी लोक प्रयोग और साहित्य दोनों दृष्टियों से अवध क्षेत्र के आसपास तक सीमित रही है।
3. उच्चारण पद्धति	'ओकारांतता' ब्रजभाषा की उच्चारण पद्धति की केंद्रीय विशेषता है।	'उकारांतता' अवधी में प्राय: देखने को मिलती है।
4. ऐ, औ का उच्चारण	ऐ, औ का उच्चारण सामान्य रूप में होता है, जैसे- आवै, गयौ।	ऐ, औ का उच्चारण संध्यक्षरों के रूप में होता है, जैसे आवइ, गयउ, बइठ, चउड़ा।
5. शब्दों के आरंभ में आने वाले य, व व्यंजन	ब्रजभाषा में ये व्यंजन सामान्य रूप में आते हैं, जैसे द्वार या प्यार।	अवधी में ये व्यंजन 'उ' या 'इ' में परिवर्तित हो जाते हैं, जैसे दुआर या पियार इत्यादि।
6. संज्ञा-रूप	ब्रजभाषा में संज्ञा का एक ही रूप चलता है, जैसे- लरिका।	अवधी में संज्ञा के तीन रूप चलते हैं, जैसे- लरिका, लरिकवा, लरिकउना।
7. लिंग व्यवस्था	ब्रजभाषा में स्त्रीलिंग बनाने के लिए प्राय: 'ई' प्रत्यय का प्रयोग होता है, जैसे - सखी। कहीं-कहीं 'इयाँ' परसर्ग भी दिखाई देता है, जैसे- बतिया, बिटियाँ।	अवधी में स्त्रीलिंग बनाने के लिए प्राय: 'इया' परसर्ग लगता है, जैसे - बिटिया, बहनिया आदि।
8. वचन व्यवस्था	ब्रजभाषा में बहुवचन निर्माण हेतु या तो अनुनासिकीकरण होता है (बिटिया > बिटियाँ) या 'न' तथा 'अन' प्रत्ययों का प्रयोग (ग्वाला > ग्वालन)।	अवधी में बहुवचन निर्माण हेतु या तो 'अ' का 'एँ' (बात > बातें) किया जाता है; या फिर 'न', 'अन' या 'न्ह' जोड़ दिया जाता है (सखी > सखिन्ह, लरिका > लरिकन)।

9. विशेषण व्यवस्था	ब्रजभाषा के विशेषण विशेष्य के लिंग वचन के अनुरूप परिवर्तित होते रहते हैं, जैसे - कालो छोरो > काली छोरी, काले छोरे इत्यादि।	अवधी में प्राय: अकारान्त विशेषण प्रयुक्त होते हैं तथा वे हमेशा एक से बने रहते हैं, जैसे - छोट लरकवा, छोट बिटिया इत्यादि।
10. कारक व्यवस्था		
(i) कर्त्ता	भूतकालिक सकर्मक क्रिया में कर्त्ता के साथ 'नै' परसर्ग जुड़ने की प्रवृत्ति मिलती है।	अवधी में कर्ता कारक प्राय: विभक्ति और परसर्ग से रहित होता है।
(ii) संबंध	ब्रज में का, के, की का प्रयोग अत्यधिक मात्रा में होता है, यद्यपि कहीं-कहीं केर, केरा का प्रयोग भी दिखाई देता है।	केर, केरा, केरे, केरी परसर्ग मिलते हैं, यद्यपि कहीं-कहीं का, के, की का प्रयोग भी होता है।
(iii) निर्विभक्तिक प्रयोग	ब्रजभाषा में निर्विभक्तिक प्रयोग लगभग नहीं के बराबर है।	निर्विभक्तिक व परसर्ग रहित प्रयोग कुछ मात्रा में दिखाई देते हैं, जैसे- "राम दरस मिटि गई कलुसाई।" (संबंधकारक तथा करणकारक का अभाव)
11. क्रिया रचना		
(i) संज्ञार्थ क्रियाएँ	ब्रजभाषा में संज्ञार्थ क्रियाओं में प्राय: 'न' परसर्ग का प्रयोग होता है, जैसे - खेलन, चलन इत्यादि।	संज्ञार्थ क्रियाओं में 'बो' या 'इबो' परसर्ग का प्रयोग सामान्यत: होता है, जैसे - जाइबो, जैबो इत्यादि।
(ii) भविष्यकालीन क्रियाएँ	ब्रजभाषा में भविष्यकाल का निर्माण प्राय: 'ग' रूप में होता है, जैसे - जायगो, उतरैगो इत्यादि।	अवधी में भविष्यकाल की क्रियाओं में प्राय: 'ब' परसर्ग लगाने की प्रवृत्ति दिखाई देती है जैसे - चलब, देखब, उठब इत्यादि।
(iii) भूतकालिक क्रियाएँ	ब्रजभाषा में 'न', 'ना' या 'नी' परसर्ग दिखाई देते हैं, जैसे - लीन, लीना, दीनी।	अवधी की भूतकालिक क्रियाओं में प्राय: न्हा, न्ही, न्ह परसर्ग होते हैं, जैसे - लीन्ह, लीन्हा, लीन्ही इत्यादि।

संक्षेप में, उपरोक्त अन्तर ब्रजभाषा और अवधी की भाषिक प्रकृति की विभिन्नता को स्पष्ट करते हैं। इन बिन्दुओं के माध्यम से हम यह समझ सकते हैं कि यद्यपि ये दोनों बोलियाँ हिन्दी के अलग-अलग वर्ग में शामिल की जाती हैं किन्तु उसके बावजूद संरचना के स्तर पर इनमें अत्यधिक समानता है। जो अन्तर हैं, उन्होंने भाषा की कलात्मकता और गम्भीरता जैसी प्रवृत्तियों को विकसित किया है। इन्हीं अंतरों का परिणाम है कि ब्रजभाषा का प्रयोग प्राय: कलात्मक,शृंगारिक तथा लोकरंजनपरक साहित्य में हुआ जबकि अवधी का प्रयोग प्राय: लोकबद्ध और गम्भीर साहित्य में।

14.7 हिन्दी के विकास में प्रमुख बोलियों का योगदान

पृष्ठभूमि

हिन्दी के विकास की प्रक्रिया संस्कृत जैसी संयोगात्मक भाषा के वियोगात्मक भाषा बनने की प्रक्रिया है। ऐसी प्रक्रिया स्वाभाविक रूप से देश और काल सापेक्ष रही है, जिसके कारण हिन्दी के मध्यकालीन विकास में भाषिक वैविध्य अत्यधिक

मात्रा में दिखाई देता है। आधुनिक काल में आधुनिकता, ब्रिटिश एकीकृत शासन, स्वाधीनता संग्राम, प्रिंटिंग प्रेस के आविष्कार तथा पत्रकारिता के उदय आदि स्थितियों ने एक मानकीकृत और सुनिश्चित भाषिक विकास की आवश्यकता को जन्म दिया तथा इस प्रक्रिया में पिछले 100 वर्षों में हिन्दी की कई बोलियों के समन्वय से वह भाषिक संरचना विकसित हुई जिसे मानक हिन्दी कहा जाता है। वर्तमान समय में जिसे हम हिन्दी कहते हैं, उसके विकास में यद्यपि सभी बोलियों का कुछ न कुछ योगदान रहा है किन्तु मुख्य रूप से खड़ी बोली, अवधी तथा ब्रजभाषा का योगदान महत्त्वपूर्ण है।

1. ध्वनि संरचना में योगदान

आधुनिक हिन्दी ने मूल रूप से खड़ी बोली की ध्वनि व्यवस्था को स्वीकार किया है किन्तु ब्रजभाषा और अवधी के माध्यम से कई बिन्दुओं पर उसका संस्कार भी किया है।

1. खड़ी बोली में संयुक्त स्वर 'ऐ' और 'औ' का प्रयोग सामान्य स्वरों (ए, ओ) के रूप में होता है जबकि अवधी में इनका प्रयोग संध्यक्षर के रूप में होता है। ब्रजभाषा का प्रयोग संतुलित है। आधुनिक हिन्दी ने ब्रजभाषा के प्रयोग को स्वीकार किया है। उदाहरण-

खड़ी बोली	**अवधी**	**ब्रज**	**आधुनिक हिन्दी**
एस्सा	अइसा	ऐसा	ऐसा
ओरत	अउरत	औरत	औरत

2. खड़ी बोली में आदि अक्षरों के लोप की विशेषता अक्सर दिखाई देती है। अवधी और ब्रजभाषा में किसी न किसी रूप में आदि अक्षर बना रहता है। आधुनिक हिन्दी में आरम्भिक अक्षर का लोप नहीं होता है। यह प्रभाव ब्रजभाषा और अवधी दोनों से लिया गया है। उदाहरण-

खड़ी बोली	**अवधी**	**ब्रज**	**आधुनिक हिन्दी**
कट्ठा	एकट्ठा	इकट्ठा	इकट्ठा
मठाई	मिठाइ	मिठाई	मिठाई

3. खड़ी बोली के कुछ शब्दों में परवर्ती व्यंजन का द्वित्व दिखाई देता है। यह प्रवृत्ति अवधी और ब्रजभाषा में नहीं है। उनमें यह सरल व्यंजन के रूप में आता है। आधुनिक हिन्दी में ब्रजभाषा और अवधी के प्रभाव को स्वीकार किया गया है। उदाहरण के लिए-

खड़ी बोली	**अवधी**	**ब्रज**	**आधुनिक हिन्दी**
चाच्चा	चाचा	चाचा	चाचा
बेट्टी	बेटी	बेटी	बेटी

4. खड़ी बोली में बहुत से शब्दों में ड और ढ का प्रयोग होता है जबकि मानक हिन्दी में ड़ और ढ़ दिखाई देता है। इस विशेषता का सीधा सम्बन्ध अवधी, ब्रजभाषा से जोड़ना कठिन है यद्यपि ब्रजभाषा में ये ध्वनियाँ सीमित मात्रा में अवश्य दिखाई देती हैं। आधुनिक हिन्दी में ड़ तथा ढ़ को स्वीकार किया गया है। उदाहरण-

खड़ी बोली	**आधुनिक हिन्दी**
गाड्डी	गाड़ी
पढना	पढ़ना

5. खड़ी बोली में 'ण' ध्वनि का प्रयोग अत्यधिक मात्रा में होता है जबकि ब्रजभाषा और अवधी में 'ण' को 'न' कर देने की प्रवृत्ति है। आधुनिक हिन्दी में काफी हद तक अवधी और ब्रजभाषा की इस विशेषता को स्वीकार किया गया है-

खड़ी बोली	**आधुनिक हिन्दी**
कोण	कौन
पाणी	पानी

6. खड़ी बोली में 'ल' और 'ड़' के बीच की एक ध्वनि 'ळ' का प्रयोग किया जाता है जिसे मूर्धन्य 'ल' कहा जाता है तथा जो मराठी की भी एक प्रमुख ध्वनि है। आधुनिक हिन्दी में खड़ी बोली की इस ध्वनि को प्राय: छोड़ दिया गया है एवं सामान्य 'ल' के रूप में इसका प्रयोग होता है। यह ब्रजभाषा एवं अवधी दोनों की देन है-

खड़ी बोली	आधुनिक हिन्दी
बाळक	बालक
जंगळ	जंगल

7. खड़ी बोली में महाप्राण ध्वनियों को अल्पप्राण ध्वनियों के रूप में प्रयुक्त करने की परम्परा दिखाई देती है। आधुनिक हिन्दी में इस विशेषता को स्वीकार नहीं किया गया है। खड़ी बोली की यह विशेषता ब्रजभाषा में भी दिखती है, किन्तु अवधी में अल्पप्राण व महाप्राण ध्वनियों का अन्तर स्पष्ट रूप में दिखाई देता है। आधुनिक हिन्दी में यह प्रभाव अवधी से स्वीकार किया गया है-

खड़ी बोली	आधुनिक हिन्दी
धोका	धोखा
दूद	दूध

8. खड़ी बोली में कई सन्दर्भों में 'न' का 'ल' करने की प्रवृत्ति दिखाई देती है जिसे आधुनिक हिन्दी में स्वीकार नहीं किया गया है। यह विशेषता ब्रजभाषा एवं अवधी के साथ-साथ उर्दू के प्रभाव के कारण विकसित हुई है-

खड़ी बोली	आधुनिक हिन्दी
मिलट	मिनट
लील	नील
लिकड	निकल

2. व्याकरणिक संरचना के स्तर पर योगदान

1. लिंग व्यवस्था

खड़ी बोली में पुल्लिंग से स्त्रीलिंग बनाने के लिए 'आनी' 'ई' और 'अन' प्रत्ययों का प्रयोग किया जाता है। इनके स्थान पर अवधी में प्राय: 'इन' प्रत्यय का प्रयोग होता है। मानक हिन्दी में अवधी के प्रभाव से 'इन' प्रत्यय के प्रभाव को स्वीकार किया गया है।

पुल्लिंग रूप	खड़ी बोली	मानक हिन्दी
सुनार	सुनारी	सुनारिन
धोबी	धोबन	धोबिन
पंडित	पंडितानी	पंडिताइन

शब्दों के लिंग निर्धारण में भी मानक हिन्दी में अवधी का प्रभाव स्पष्टत: देखा जा सकता है। उदाहरण के लिए नाक और कान जैसे शब्द खड़ी बोली में पुल्लिंग हैं किन्तु अवधी में स्त्रीलिंग होने के कारण इन्हें स्त्रीलिंग माना गया है। इसी प्रकार दही खड़ी बोली में स्त्रीलिंग है और अवधी में पुल्लिंग, इसीलिए इसे भी मानक हिन्दी में पुल्लिंग माना गया है।

2. वचन व्यवस्था

खड़ी बोली में पुल्लिंग एकवचन और बहुवचन के जो नियम हैं, प्राय: वे ही मानक हिन्दी में स्वीकार किये गये हैं। बहुवचन के लिए ब्रजभाषा में 'न' और अवधी में 'न', 'न्ह' जैसे प्रत्यय प्रयुक्त होते हैं जो मानक हिन्दी में मान्य नहीं हैं। खड़ी बोली से अन्तर यह है कि खड़ी बोली में तिर्यक् बहुवचन के लिए 'आँ' तथा 'ऊँ' प्रत्ययों का प्रयोग होता है जबकि मानक हिन्दी में 'ओं' प्रत्यय का प्रयोग होता है-

एकवचन शब्द	खड़ी बोली	ब्रजभाषा/अवधी	मानक हिन्दी
घोड़ा	घोड़ाँ, घोड़ूँ	घोड़न	घोड़ों

स्त्रीलिंग शब्दों में सामान्य बहुवचन में खड़ी बोली में आँ रूप मिलता है तथा तिर्यक बहुवचन में 'ओं' रूप मिलता है। मानक हिन्दी में स्त्रीलिंग शब्दों के सामान्य बहुवचन में 'एँ' रूप स्वीकार किया है जबकि तिर्यक बहुवचन में 'ओं' रूप ही मान्य है-

	एकवचन शब्द	खड़ी बोली	अवधी/ब्रज	मानक हिन्दी
सामान्य	बात	बाताँ	बातन	बातें
तिर्यक	बात	बातों	बातन	बातों

3. कारकीय परसर्ग

1. खड़ी बोली में कर्त्ता और कर्म दोनों कारकों के साथ 'ने' का प्रयोग होता है, जबकि ब्रजभाषा में 'ने' का प्रयोग केवल कर्त्ता कारक में होता है। मानक हिन्दी में ब्रजभाषा का प्रभाव स्पष्ट दिखता है, क्योंकि 'ने' का प्रयोग केवल 'कर्त्ता' के साथ दिखता है।
2. कर्म के लिए 'को' परसर्ग तथा संबंध के लिए 'का, के, की' और अधिकरण के लिए 'में' परसर्ग खड़ी बोली के ही हैं, किसी बाहरी प्रभाव से नहीं हैं।
3. करण और अपादान के लिए खड़ी बोली और ब्रजभाषा में कई परसर्ग चलते हैं किन्तु अवधी में आधुनिक काल तक आते-आते केवल 'से' परसर्ग मान्य रह पाया है। मानक हिन्दी में अवधी के प्रभाव स्वरूप करण, अपादान के लिए केवल 'से' परसर्ग का प्रयोग होता है।
4. अधिकरण कारक में खड़ी बोली में 'पे' तथा ब्रज में 'पै' परसर्गों का प्रयोग चलता है किन्तु अवधी में 'पर' परसर्ग का प्रयोग होता है। आधुनिक हिन्दी में अवधी के प्रभाव से 'पर' तथा खड़ी बोली के प्रभाव से 'पे' को मान्यता मिली है।

4. सर्वनाम

आधुनिक हिन्दी में सर्वनाम सामान्य रूप से खड़ी बोली से ही लिये गये हैं। मुख्यत: तीन सर्वनाम अलग हैं - ये, वे, कौन। ये तीनों ही सर्वनाम ब्रजभाषा के प्रभाव से आए हैं।

5. विशेषण

विशेषणों की रचना में सामान्य रूप से न ब्रजभाषा का प्रभाव है और न ही अवधी का। खड़ी बोली के सभी नियम प्राय: स्वीकार किए गए हैं। इसमें केवल एक अन्तर है। खड़ी बोली के विशेषणों में स्त्रीलिंग बहुवचन के लिए अच्छियाँ (लड़कियाँ), अँधेरिया (राताँ) आदि रूप प्रचलित हैं। ब्रजभाषा के प्रभाव से यह व्यवस्था समाप्त हो गई है और एकवचन के विशेषण ही बहुवचन के लिए प्रयुक्त होने लगे हैं, जैसे- अच्छी लड़की > अच्छी लड़कियाँ।

6. क्रिया संरचना

1. भविष्य काल की क्रियाओं में मानक हिन्दी का 'ग' रूप (गा, गे, गी) खड़ी बोली से आया है, किन्तु वर्तमान काल व भूतकाल की क्रियाओं में बाहरी प्रभाव दिखतेहैं।
2. वर्तमान काल के क्रिया रूपों पर ब्रजभाषा का स्पष्ट प्रभाव दिखाई देता है। खड़ी बोली और अवधी में क्रियाओं का लिंग भेद नहीं होता किन्तु ब्रजभाषा में होता है। उसी प्रभाव से वर्तमानकालीन क्रियाएँ स्वीकार की गई हैं-

	खड़ी बोली	अवधी	ब्रज	मानक हिन्दी
पुल्लिंग	चलूँ हूँ	चलत हूँ	चलता हूँ	चलता हूँ
स्त्रीलिंग	चलूँ हूँ	चलत हूँ	चलती हूँ	चलती हूँ

3. भूतकालीन एकवचन क्रिया रूप मानक हिन्दी में अवधी से प्रभावित दिखते हैं तथा बहुवचन के रूप खड़ी बोली से ही लिये गये हैं। इसका मूल कारण यह है कि आधुनिक हिन्दी की भूतकालीन पुल्लिंग एकवचन क्रियाएँ आकारान्त होती हैं तथा बहुवचन क्रियाएँ एकारान्त होती हैं। एकवचन में आकारान्त वाली प्रवृत्ति अवधी में ही दिखाई देती है जैसे-

	खड़ी बोली	अवधी	ब्रज	मानक हिन्दी
एकवचन	चल्या	चला	चल्यौ	चला
बहुवचन	चले	-	-	चले

7. अव्यय

अव्यय या अविकारी पद वे हैं जो लिंग, वचन आदि के साथ नहीं बदलते। आमतौर पर हिन्दी के अव्यय खड़ी बोली से ही लिये गये हैं किन्तु कुछ परिवर्तन भी दिखते हैं -

1. अब, जब, तक और कब जैसे कालवाचक क्रियाविशेषण खड़ी बोली के इब, जद, कद, तद से अलग हैं।

खड़ी बोली	मानक हिन्दी	खड़ी बोली	मानक हिन्दी
इब	अब	जद	जब
कद	कब	तद	तब

2. रीतिवाचक क्रियाविशेषणों यथा - ऐसे, वैसे, कैसे, जैसे पर ब्रजभाषा का प्रभाव स्पष्ट दिखता है-

खड़ी बोली	अवधी	ब्रज	मानक हिन्दी
इकर	अस, अइसन	ऐसौ	ऐसे
विकुर	तस, ओसन	वैसो	वैसे
किकर	कस, कइसन	कैसो	कैसे
जुकर	जस, जइसन	जैसो	जैसे

3. स्थानवाचक क्रियाविशेषणों जैसे - यहाँ, वहाँ, जहाँ, कहाँ में 'ह' जुड़ने की घटना अवधी से प्रभावित प्रतीत होती है क्योंकि खड़ी बोली और ब्रजभाषा में इनके लिए याँ, वाँ, जाँ, ताँ मिलते हैं।

3. शब्दकोशीय प्रवृत्तियों के स्तर पर योगदान

मानक हिन्दी में मूल शब्दावली चार प्रकार की है - तत्सम, तद्भव, देशज तथा विदेशज। तत्सम शब्द संस्कृत के हैं, अत: इनमें किसी भी बोली का कोई योगदान नहीं है। विदेशज शब्द बाहर से आये हैं। इनमें बोलियों का योगदान मात्र इतना है कि कुछ बोलियों ने विदेशज शब्दों को सहजता से स्वीकारा है और कुछ ने नहीं। अवधी और ब्रज बोलियों में विदेशज शब्दों की स्वीकृति ज्यादा है।

देशज शब्द प्रत्येक बोली में अलग-अलग हैं तथा मानक हिन्दी में उनकी मात्रा काफी कम है। जितनी मात्रा है, उनमें अवधी, ब्रजभाषा का अधिक योगदान है क्योंकि मध्यकाल में साहित्यिक भाषा होने के नाते इनके देशज शब्दों का अधिक विस्तार हुआ।

हिन्दी का शब्द भंडार मूलत: तद्भव शब्दों की प्रचुरता पर आधारित है। तद्भवीकरण की प्रक्रिया सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण रूप में अवधी की रामभक्ति परम्परा में तथा ब्रजभाषा में दिखाई देती है। पालि प्राकृत से बोलियों तक का सारा विकास सरलीकरण व तद्भवीकरण की ही प्रक्रिया है, किंतु इसमें अवधी तथा ब्रज का अधिक योगदान निश्चित रूप में है।

14.8 हिन्दी और उसकी बोलियों का संबंध

हिन्दी की सभी बोलियों का संबंध ऐतिहासिक दृष्टि से देखा जा सकता है क्योंकि वे सभी बोलियाँ संस्कृत से पालि, प्राकृत, अपभ्रंश और पुरानी हिन्दी परम्परा में विकसित हुई हैं। उदाहरण के लिए अवधी का विकास अर्द्धमागधी अपभ्रंश से

जबकि ब्रजभाषा और खड़ी बोली का शौरसेनी अपभ्रंश से हुआ हैं। समान ऐतिहासिक विरासत के कारण हिन्दी और उसकी बोलियों में माँ-बेटी का नहीं बल्कि बहनों वाला संबंध है।

1. ध्वनि व्यवस्था के स्तर पर संबंधों की प्रकृति

1. हिन्दी की सभी बोलियों में **स्वर प्रायः समान** हैं। अन्तर मात्र इतना है कि ऋ का प्रयोग प्रायः 'रि' के रूप में होता है, जैसे अवधी में 'रिसि बिस्वामित्र', जबकि कहीं-कहीं यह अ, इ, उ या ए के रूप में उच्चरित होता है, जैसे- मृत्यु > मीचु, गृह > गेह।
2. एक अन्तर यह भी है कि **ऐ तथा औ** स्वर किसी बोली में संध्यक्षर के रूप में दिखते हैं (जैसे अवधी में), तो किसी बोली में सामान्य स्वर के रूप में दिखते हैं (जैसे खड़ी बोली में)। इसी प्रकार, कहीं-कहीं 'य' और 'व' अर्द्धस्वर 'इ' और 'उ' की श्रुति देते हैं, जैसे अवधी में द्वार > दुआर, प्यार > पियार जबकि कहीं-कहीं ये शुद्ध रूप में प्रयुक्त होते हैं, जैसे - ब्रजभाषा में।
3. हिन्दी की सभी बोलियों में **स्वरों का सानुनासिक रूप** प्रयुक्त होता है। इसी प्रकार **पंचमाक्षर के स्थान पर अनुस्वार** का प्रयोग भी सभी बोलियों की एक सामान्य पद्धति है।
4. अपभ्रंश में विकसित हुई **'ड़' और 'ढ़' ध्वनियाँ** प्रायः सभी बोलियों में स्वीकार की गई हैं हालाँकि अवधी और ब्रजभाषा में इनका प्रयोग कम होता है।
5. कुछ व्यंजनों में हिन्दी की सभी बोलियों में **उच्चारण का द्वैत** बना हुआ है, जो कम या अधिक मात्रा में दिखाई देता है, जैसे - न - ण/ व - ब/ श, ष - स/ य - ज।
6. हिन्दी की सभी बोलियों में शब्द के आरम्भ में आने वाले **संयुक्त व्यंजन के सरलीकरण की प्रवृत्ति** दिखाई देती है। इसके लिए या तो **स्वरभक्ति** का सहारा लिया जाता है या **व्यंजन का लोप** कर दिया जाता है, जैसे -प्रदेश > परदेस (स्वरभक्ति), क्रिया > किरिया (स्वरभक्ति), प्रिय > पिय (व्यंजन लोप)।
7. **क्षतिपूरक दीर्घीकरण** की प्रवृत्ति हिन्दी की प्रायः सभी बोलियों में दिखाई देती है। इसी प्रक्रिया से संस्कृत के जटिल शब्दों का तद्भवीकरण हिन्दी में हुआ है। उदाहरण के लिए - धम्म > धाम, कर्म > काम, चक्क > चाक।

2. व्याकरण के स्तर पर संबंधों की प्रकृति

1. *लिंग संरचना*

हिन्दी की सभी बोलियों में लिंग सम्बन्धी रूप रचना एक जैसे प्रत्ययों पर आधारित है। सभी बोलियों के सभी पुल्लिंग शब्द ई, इन, नी, आनी प्रत्ययों से स्त्रीलिंग हो जाते हैं, जैसे-

लड़का > लड़की	ऊँट > ऊँटनी
लुहार > लुहारिन	ठाकुर > ठकुरानी

2. *सर्वनाम संरचना*

सर्वनामों की रूप रचना भी प्रायः सभी बोलियों में समान है। **उत्तम पुरूष** एकवचन सर्वनाम में 'ह' तथा 'म' तत्व प्रत्येक बोली में दिखता है, जैसे - हौं, मैं इत्यादि। उत्तम पुरूष बहुवचन में सभी बोलियों में **'ह'** तत्व मिलता है जैसे - हम। इसी प्रकार **मध्यम पुरुष** सर्वनाम में 'त' तत्व प्रत्येक बोली में दिखता है, जैसे - तू, तैं, तुम (एकवचन), तुम्ह (बहुवचन)। **अन्य पुरुष** वाचक सर्वनामों में 'व' तत्व की प्रधानता प्रत्येक बोली में दिखती है, जैसे- वह, वो, वे इत्यादि। इसी प्रकार **संबंधवाचक सर्वनामों** में 'ज', 'स' मिलता है, जैसे - जो, सो, जिस, तिस इत्यादि, तथा **अनिश्चयवाचक सर्वनाम** में 'क' तत्व का महत्त्व (कोउ, कोई आदि) भी सभी बोलियों में स्पष्ट दिखता है।

3. *कारकीय रूप रचना*

इसके अन्तर्गत सभी बोलियों में निम्न समानताएँ दिखती हैं-

1. **कर्ता कारक** के लिए प्राय: किसी भी बोली में **परसर्ग का प्रयोग नहीं** होता। भूतकालिक सकर्मक क्रिया के साथ जहाँ यह प्रयोग होता है, वहाँ प्राय: सभी बोलियों में 'ने' या 'नैं' का प्रयोग स्पष्ट दिखता है।
2. **कर्म, सम्प्रदान तथा संबंध** कारकों के परसर्ग में **'क' तत्व** की अद्भुत समानता दिखाई देती है। कर्म तथा सम्प्रदान के लिए अधिकांश बोलियों में क, कूँ परसर्गों का प्रयोग होता है तथा संबंध कारक के लिए का, के, की का प्रयोग स्पष्ट दिखता है।
3. इसी प्रकार **करण तथा अपादान** कारकों में **'स' तत्व** की प्रधानता स्पष्ट दिखाई देती है, जैसे - से, सूँ, सन, सेतीं इत्यादि।
4. **अधिकरण कारक में 'म' तथा 'प' तत्व** की प्रधानता सभी बोलियों में स्पष्टत: दिखाई देती है जैसे - में, महँ, माँहि तथा पे, पै, पर इत्यादि।
5. इनके अतिरिक्त प्राय: सभी बोलियों में **कर्म, सम्प्रदान तथा अधिकरण** कारक के लिए **'हि' अथवा 'हिं' विभक्ति** का प्रयोग भी होता है, जैसे - मोहि, मोहिं, तोहि, तोहिं इत्यादि।

4. क्रिया संरचना

हिन्दी की प्राय: सभी बोलियों में क्रियाओं की रचना से संबंधित नियम भी प्राय: एक जैसे हैं। इनकी समानता के कुछ बिन्दु इस प्रकार हैं-

(i) **पूर्वकालिक क्रिया** रूपों में अन्त में **'इ' परसर्ग** का प्रयोग प्राय: सभी बोलियों में होता है, जैसे - लिखि, पढ़ि, बोलि इत्यादि।

(ii) हिन्दी की सभी बोलियों में **संज्ञार्थ क्रियाओं** या क्रियार्थ संज्ञाओं में **'न' परसर्ग** का प्रयोग प्राय: किया जाता है, जैसे- चलन, कहन, लिखन आदि।

(iii) इसी प्रकार क्रियाओं के मध्यवर्ती व्यंजनों का हलन्त रूप में उच्चारण होना भी हिन्दी की सभी बोलियों में प्राय: दिखाई देता है जैसे - चल्या, रह्या, गिर्‌यौ आदि।

3. शब्दकोश सम्पदा के स्तर पर संबंधों की प्रकृति

हिन्दी की सभी बोलियों की शब्द सम्पदा भी काफी समान है क्योंकि अर्द्धतत्सम और तद्भव शब्द अत्यधिक मात्रा में सभी बोलियों में विद्यमान हैं। विदेशज शब्द प्राय: सभी बोलियों में आए हैं। देशज शब्द कुछ अलग हैं पर सामान्यत: समान सांस्कृतिक-भौगोलिक पृष्ठभूमि के कारण सभी बोलियों में समझे जा सकते हैं, जैसे- मोजा, बावळा इत्यादि।

14.9 हिन्दी की बोलियों को भाषा का दर्जा दिए जाने का मुद्दा

वस्तुत: किसी भी बोली को भाषा बनने से कई लाभ प्राप्त होते हैं और यही लाभ हर मांग के मूल में होते हैं। ये लाभ हैं-

1. जब कोई भाषा संविधान की 8वीं अनुसूची में आती है तो नौकरी प्राप्त करने का माध्यम बन जाती है। किसी अभ्यर्थी द्वारा यू.पी.एस.सी. आदि की परीक्षाओं में उसे माध्यम बनाया जा सकता है।
2. विश्वविद्यालयों में उसका अध्ययन-अध्यापन शुरू होता है तथा उस भाषा के ज्ञाताओं को रोजगार मिलता है।
3. विश्वविद्यालयों में उसका अध्ययन आरंभ होने से बहुत-सी पुस्तकों की आवश्यकता पड़ती है जिससे प्रकाशन व्यवसाय को गति मिलती है। भाषा के साहित्यिक तथा सामान्य विकास हेतु अकादमियों की स्थापना की जाती है तथा भारी अनुदान मिलना शुरू होता है।
4. उस भाषा से अन्य भाषाओं में तथा अन्य भाषाओं से उस भाषा में अनुवाद कार्य तेजी से होने लगता है। उस भाषा में रचित साहित्य को विभिन्न साहित्यिक पुरस्कारों हेतु स्वीकार किया जाता है जिससे साहित्य तथा साहित्यकारों का सम्मान तो बढ़ता ही है, क्षेत्रगत विस्तार भी होता है।

5. मानक भाषा बनते ही वैज्ञानिक-तकनीकी तथा अनुसंधानपरक क्षेत्रों में भाषा का प्रयोग तेजी से होने लगता है जिसके परिणामस्वरूप वह भाषा ज्ञान-विज्ञान के क्षेत्रों में भी विकसित होती है।

वस्तुत: जब भी किसी बोली को भाषा बनाने की मांग की जाती है तो उसके मूल में यही उद्देश्य छिपे होते हैं। जैसे-जैसे मांग प्रबल होती है, जन-साधारण को महसूस कराया जाता है कि यह उनकी सांस्कृतिक अस्मिता का प्रश्न है। यह भाव पैदा होते ही आंदोलन जन-आंदोलन में परिवर्तित हो जाता है और कभी-कभी हिंसक भी होने लगता है। कभी-कभी यह तर्क भी दिया जाता है कि एक भाषा की सभी बोलियाँ विकास की समान प्रक्रिया में बनी हैं तो उनमें से किसी एक को भाषा का दर्जा दे देना अनुचित तो है ही, एक विशेष अर्थ में भाषायी साम्राज्यवाद का नमूना भी है। इन तर्कों के साथ कुछ प्रचलित तर्क और भी हैं। उदाहरण के लिए, किसी बोली में रचे गए साहित्य की मात्रा अधिक है, या किसी बोली के प्रयोक्ताओं की संख्या अधिक है, या किसी बोली का प्रयोग विश्व के कई देशों में होता है इत्यादि।

प्रश्न है कि क्या इन तर्कों को स्वीकार किया जा सकता है? वस्तुत: सांस्कृतिक तर्क महत्त्वपूर्ण नहीं है क्योंकि जहाँ तक एक भाषा की अस्मिता का सवाल है, वह समाज और सामान्य व्यवहारों से जुड़ा प्रश्न है, न कि राजकीय संरक्षण से। यदि यह कहा जाए कि विभिन्न बोलियों में समानता का संबंध होना चाहिए तो यह तर्क भी अनुचित है क्योंकि पारस्परिक सम्पर्क तथा अन्य व्यावहारिक ज़रूरतों के लिए किसी न किसी बोली को महत्त्वपूर्ण दर्जा देना ही पड़ता है। सवाल यह नहीं है कि यह दर्जा खड़ी बोली को मिले या ब्रजभाषा को; सवाल यह है कि किसी भी बोली को अधिक महत्त्व दिए बिना भाषा का समग्र विकास हो पाएगा या नहीं? इसे भाषायी साम्राज्यवाद भी नहीं कह सकते क्योंकि न तो यहाँ बाहर की किसी बोली को महत्त्व दिया गया है और न ही महत्त्व-निर्धारण का फैसला शक्ति के आधार पर हुआ है। यह फैसला तो इतिहास की सामाजिक-आर्थिक स्थितियों के माध्यम से हुआ है जिन्हें झुठलाया नहीं जा सकता।

विभिन्न बोलियों के दावे

हिन्दी की अठारह में से चार-पाँच बोलियों ने भाषा होने के दावे प्रस्तुत किए हैं। ये इस प्रकार हैं-

1. पहला दावा मैथिलीभाषियों का है। उनके अनुसार 'मैथिली' भाषा है क्योंकि उसमें विद्यापति जैसे महान कवि हुए हैं, वर्तमान समय तक कई साहित्यकार जैसे अमरनाथ झा इत्यादि लिखते रहे हैं, उसका प्रयोक्ता वर्ग काफी बड़ा है, उसकी एक पृथक् लिपि भी है जिसे तिरहुत लिपि या कैथी लिपि कहते हैं इत्यादि।
2. एक दावा भोजपुरी का है। इसका मूल आधार जनसंख्या है। भोजपुरी का प्रयोग न सिर्फ भारत में किसी भी अन्य बोली के प्रयोक्ताओं से अधिक लोग करते हैं बल्कि भारत के बाहर भी फिजी, ट्रिनिडाड एवं टोबैगो और सूरीनाम जैसे देशों में हिन्दी का भोजपुरी रूप सर्वाधिक प्रसिद्ध है। भोजपुरी में साहित्य, विशेषत: लोक साहित्य की मात्रा भी काफी अधिक है।
3. तीसरा दावा राजस्थानी उपभाषा की ओर से किया गया है। यह दावा यूँ तो लम्बे समय से प्रचलित है किंतु दो-तीन वर्षों पहले अचानक पुन: उभरा है। इसमें राजस्थानी को भाषा बनाने की मांग की गई है। किन्तु, समस्या यह है कि राजस्थानी कोई विशेष बोली नहीं है। वस्तुत: यह मांग 'राजस्थानी' के उस रूप को स्थापित करने की है जो मुख्यत: मारवाड़ी तथा जयपुरी बोलियों का मिश्रण है। इसके लिए प्रमुखत: दो तर्क दिए गए हैं। पहला यह कि इसमें साहित्य की प्रचुरता है, तथा दूसरा यह कि यह हिन्दी से काफी भिन्न है।
4. चौथी माँग जो कि कभी-कभी सुनाई देती है, अवधी और ब्रजभाषा की ओर से है। इन दोनों का मुख्य तर्क ऐतिहासिक गौरव से प्रेरित है। मध्यकाल में दोनों बोलियों ने हिन्दी साहित्य को ऊँची प्रतिष्ठा प्रदान की। अवधी ने जायसी व तुलसी जैसे कवि दिए और पद्मावत और मानस जैसे महान साहित्यिक ग्रंथ। इसी प्रकार ब्रजभाषा ने सूर, बिहारी और घनानन्द जैसे महान कवि ही नहीं दिए बल्कि पूरे आर्यभाषा क्षेत्र में प्रचलित होकर देश की सांस्कृतिक एकता को भाषायी आधार भी दिया। आज भी दोनों बोलियाँ बड़ी संख्या में लोगों द्वारा प्रयुक्त होती हैं तथा मानक हिन्दी के निर्माण में दोनों से पर्याप्त प्रभाव भी स्वीकारा गया है।

इन दावों को स्वीकार करना चाहिए या नहीं

वस्तुत: इनमें से कोई भी दावा ऐसा नहीं है जिसे स्वीकार करने के पर्याप्त कारण हों। ऐसा कोई भी निर्णय यदि राजनीतिक हितों के आधार पर किया जाए तो यह न केवल तुष्टीकरण की राजनीति को जन्म देता है बल्कि अन्य बोलियों के प्रयोक्ताओं में तुलनात्मक वंचन की भावना भी पैदा करता है। ऐसे निर्णय का मूल आधार भाषावैज्ञानिक दृष्टिकोण होना चाहिए। भाषा विज्ञान की दृष्टि से हिन्दी की किसी भी बोली को भाषा का दर्जा दिए जाने की आवश्यकता महसूस नहीं होती। यह भी ध्यान रखना होगा कि सांस्कृतिक मांगों का राजनीतिक तुष्टीकरण किया जाए तो इससे कभी न खत्म होने वाली शृंखला-अभिक्रिया शुरु होगी। भाषायी राज्यों के गठन के समय हम इस समस्या को झेल चुके हैं। यदि आज किसी बोली को भाषा का दर्जा देते हैं तो बाकी बोलियों को भाषा का दर्जा क्यों न दिया जाए- यह प्रश्न उठेगा। यदि सभी बोलियों को यह दर्जा दे दिया जाए तो अगला प्रश्न उठेगा कि उपबोलियों को बोली का दर्जा क्यों न दिया जाए? अत: सामाजिक और राजनीतिक स्थिरता के लिए बेहतर है कि किसी बोली को भाषा का दर्जा देने से बचा जाए।

दोनों स्थितियों के बीच एक और समाधान है। यह है- बोली को साहित्यिक भाषा का दर्जा देना, न कि 8वीं अनुसूची में शामिल करना। मैथिली को लगभग 25 वर्षों से यह दर्जा प्राप्त था। केन्द्रीय साहित्य अकादमी जब सभी भाषाओं के लिए पुरस्कार घोषित करती थी तो मैथिली साहित्य के लिए अलग पुरस्कार रखती थी। इसी प्रकार मैथिली का पठन-पाठन भी विश्वविद्यालयों में होता था। जिन भाषाओं में साहित्य काफी मात्रा में लिखा गया हो, उन्हें यह दर्जा देने में कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिए।

भाषा का दर्जा दिए जाने हेतु उपयुक्त कसौटियाँ

यदि किसी बोली को भाषा का दर्जा दिया जाना हो तो उसे निम्नलिखित कसौटियों पर कसकर देखा जाना चाहिए-

1. साधारणत: उसकी एक विशिष्ट लिपि हो। विशिष्ट लिपि न हो तो भी किसी लिपि में उसे लिखे जाने की दीर्घ परंपरा हो।
2. उस भाषा की व्याकरणिक संरचना अन्य बोलियों से काफी भिन्न हो।
3. उसके प्रयोक्ताओं की संख्या काफी अधिक हो।
4. उसमें साहित्य की अत्यंत विकसित परम्परा हो।
5. मोटे तौर पर उस बोली का एक मानक रूप विकसित हो चुका हो अर्थात् उसकी विभिन्न उपबोलियों में से एक रूप सामान्यत: स्वीकार कर लिया गया हो।
6. बोली का स्वरूप ऐसा हो कि उसमें वैज्ञानिक-तकनीकी विकास के लिए अनुसंधान कार्य हो सके तथा पारिभाषिक शब्दावली बनाई जा सके।
7. इस बात का स्पष्ट परीक्षण होना चाहिए कि किसी बोली को भाषा का दर्जा राजनीतिक दबावों में न दिया जाए। इसका सीधा समाधान है- स्थायी 'संवैधानिक भाषा आयोग' की स्थापना। इसके सदस्य प्रख्यात भाषाविद् तथा संस्कृतिकर्मी हों तथा उनकी अनुशंसाओं के आधार पर ही सरकार को बोली का दर्जा बदलने का अधिकार मिलता हो।

खड़ी बोली, ब्रजभाषा तथा अवधी की तुलना

संख्या	अंतर का आधार	खड़ी बोली	ब्रजभाषा	अवधी
1.	उद्भव	शौरसेनी अपभ्रंश के उत्तरी रूप से।	शौरसेनी अपभ्रंश से।	अर्धमागधी अपभ्रंश से।
2.	उपभाषा वर्ग	पश्चिमी हिन्दी का प्रतिनिधि रूप।	पश्चिमी हिन्दी से संबद्ध; पर अवधी से अत्यन्त निकटता।	पूर्वी हिन्दी उपभाषा का प्रतिनिधि रूप।
3.	भौगोलिक विस्तार	मेरठ = केंद्र; दिल्ली से देहरादून तक का तथा अम्बाला से हिमाचल के आरंभ तक का संपूर्ण क्षेत्र।	ब्रजमंडल का संपूर्ण क्षेत्र। मूलत: मथुरा, वृंदावन,आगरा में प्रयुक्त। हरियाणा का भी कुछ भाग, जैसे- पलवल, होडल इत्यादि।	लखनऊ, फैजाबाद, अयोध्या, सीतापुर सुल्तानपुर, रायबरेली तथा आसपास का क्षेत्र। विदेशों में भी प्रयुक्त- फिजी, त्रिनिदाद आदि में।

4.	साहित्यिक विकास	19वीं सदी से पूर्व विशेष नहीं- सिद्ध, नाथ, खुसरो, रहीम, संत काव्य, दक्खिनी हिन्दी में आरंभिक रूप; 19वीं सदी से तीव्र आरंभ- अब कोई प्रतिस्पर्धा नहीं। मानक हिन्दी का मूल आधार।	आदिकाल में 'पिंगल' की परंपरा में उपस्थित- प्राकृत पैंगलम, उक्तिव्यक्तिप्रकरण, पृथ्वीराज रासो में आरंभिक रूप; नाथ साहित्य व खुसरो की कविताओं में भी द्रष्टव्य। सूरदास → रीतिकाल → अखिल भारतीय साहित्यिक भाषा → सबसे लंबा इतिहास।	राउलवेल, उक्तिव्यक्तिप्रकरण में आरंभिक रूप → पुन: सूफियों के बाद ही → सूफी काव्यधारा → रामकाव्यधारा → हिंदू प्रेमाख्यानकार → अभी भी कुछ कवि → बलभद्र प्रसाद दीक्षित आदि।
5.	**ध्वनि व्यवस्था**			
	(i) उच्चारण की प्रवृत्ति	आकारांतता (चला, गया)	ओकारांतता (चलो, गयो)	उकारांतता (चलु, कहतु)
	(ii) ऐ, औ का उच्चारण	ए, ओ की तरह (औरत > ओरत)	सामान्य रूप में (आवै, जावौ)	संध्यक्षरों के रूप में (चउड़ा, आवइ)
	(iii) प्रारंभिक स्वर	लुप्त होते हैं (इकट्ठा > कट्ठा), (सियाना > स्याणा)	सामान्य रूप में	सामान्य रूप में-
	(iv) ध्वनियों का परिवर्तन	न > ण (मानस > माणस) ल > ळ (बालक > बाळक) र > ड़ (चपरासी > चपड़ासी) श > स (शमशेर > समसेर)	र > ड़ (परे > पड़े) ण > न (बाण > बान)	ण > न (कौण > कौन) (बाण > बान) ड़ > र (सड़क > सरक) ष > स (ऋषि > रिसि) व > ब (विश्व > बिस्व)
	(v) अल्पप्राण - महाप्राण	अल्पप्राणीकरण की प्रवृत्ति (धोखा > धोका), (झूठ > जूट)	अल्पप्राणीकरण की प्रवृत्ति (मुझ > मुज)	– – – – –
6.	**व्याकरण**			
	(i) संज्ञा	संज्ञा का एक रूप (प्राय: आकारान्त)।	संज्ञा का एक ही रूप।	संज्ञा के तीन रूप मिलते हैं, जैसे- लरिका-लरिकवा-लरिकउना, नदी-नदिय-नदीवा
		एकवचन **बहुवचन**	**एकवचन** **बहुवचन**	**एकवचन** **बहुवचन**
	(ii) सर्वनाम उत्तम पुरुष मध्यम पुरुष अन्य पुरुष अनिश्चयवाचक	मैं, मुज, में म्हारा, हमारा तू, तैं, तम तम, थारा, तारा वो, वू, उस्का वे, उन्का, उन्की कोण, कूण, किस्का	मैं, हौं, मोहिं, मेरौ हम, हमन, हमारौ तू, तूँ, तोहि, तेरौ तुम, तुम्हैं, तुम्हारौ, तिहारौ वौ, वह, वाकौ, ताहि वे, वै, उन, उनकौ कैसो, कौन	में, मह, मो हम, हमहिं, हमार तू, तूँ, तोर तुम, तुम्ह, तुम्हार, तुहार वह, ऊ, ओकर वेह, ओनकर, ओनका कवन, कउन, कइसो

	(iii) **लिंग व्यवस्था**	स्त्रीलिंग के लिए ई, अन, नी प्रत्यय प्रमुख- शेर > शेरनी, माली > मालन, जाट > जाटनी, अहीर > अहीरन	स्त्रीलिंग के लिए ई, इया, आइन तथा आनी प्रत्यय- गोरी, ललाइन, देवरानी, अखियाँ/बिटिया। कहीं-कहीं नपुंसकलिंग का प्रयोग भी, जैसे- सोना > सोनो।	प्राय: इया परसर्ग (बिटिया) ई, इनि, इनी, अनी, नी परसर्ग भी (बकरी, बाघिनि, साधिनी, महारानी, चोरनी)
	(iv) **वचन व्यवस्था**	पुल्लिग ब.व. में 'ए' प्रत्यय - बेटा > बेटे स्त्रीलिंग ब.व. में 'याँ', 'एँ' प्रत्यय→ रोटी > रोटियाँ, किताब > किताबें	एँ, अन, इन प्रत्ययों का प्रयोग किताब > किताबें, किताबन, रोटी > रोटिन	एँ, न तथा न्हि प्रत्ययों का प्रयोग (i) एँ→बात > बातें, (ii) न→लरिका > लरिकन,
				(iii) न्ह, न्हि- सबन्हि, जुवतिन्ह
	(v) **क्रिया व्यवस्था**			
	वर्तमानकाल	'ऊ' रूप → जाऊँ हूँ; 'व' रूप → जावै है!	त रूप → करत, उठत, जात	त रूप → करत, बैठत
	भूतकाल	'या' रूप → चल्या, गया, कर्‌या	औ रूप → कियौ, उठौ; न रूप→लीना, दीनी	स रूप → कीन्हेसि व रूप - आवा, जावा
	भविष्यकाल	'गा' रूप (द्वित्वीकृत) → 'जाऊंगा'	ग रूप → करैगो; ह रूप → करिहैं, मरिहैं	ब रूप → जाब, चलब; ह रूप → करहिं, चलहिं
	सहायक क्रियाएँ	वर्तमान → ह, स → है, सै भूत → या → होया भविष्य → गा → होवगा	वर्तमान- ह रूप (हैं/हौं); भूतकाल - त रूप (हुतौ, हुती) भविष्य- 'ग' (होवैगो)	वर्तमान → ह - हओं, आहि भूतकाल → भ → भएउ, भए, भइल भविष्य → ब - होब, होबउ
	संज्ञार्थ क्रियाएँ	ण रूप - जाण, करण	न रूप - चलन, खेलन	बो, इबो - जाइबो
	(vi) **कारक व्यवस्था**			
	निर्विभक्तिक प्रयोग	नहीं के बराबर	नहीं के बराबर	कहीं-कहीं दिखते हैं, जैसे- "राम दरस मिटि गई कलुषाई"
	कर्ता	ने, नै, णे	केवल भूतकालिक सकर्मक क्रिया में 'ने', नै	कोई परसर्ग/विभक्ति नहीं
	कर्म	को, ने	कु, कूँ, को	का, के, कूँ, क:
	करण	ऐती, तैं	ते, तैं, सू, सूँ, सौं	से, तें, सों, सेंति
	सम्प्रदान	खातर		का, को, कूँ, क: (कर्म के समान ही)
	अपादान	सेती, तैं	करण के समान ही- सू, सूँ, तैं	करण के समान ही- से, तें, सेंति
	संबंध	का, के, की, रा, रे, री	प्राय: का, के, की, कभी-कभी केर, केरा	केर, केरा, केरे अत्यधिक प्रयुक्त: कहीं-कहीं का, के, की
	अधिकरण	में, पै	में, मैं, पे, पै, माहीं, माहिं	में, मांझ, माह, पर

	(vii) **विशेषण व्यवस्था**	• आकारांत विशेषण विकारी हैं (छोटा > छोटी, छोटे) • अन्य विशेषण अविकारी बने रहते हैं, विशेषत: स्त्रीलिंग बहुवचन में पूर्णत: अविकारी रहते हैं, जैसे- मोटी लड़की > मोटी लड़कियाँ (मोटियाँ लड़कियाँ नहीं)	विशेषण विशेष्यानुसार विकारी होते हैं, जैसे- कालो छोरो > काली छोरी, काले छोरे	विशेषण प्राय: अविकारी बने रहते हैं, जैसे- छोट लरकवा, छोट बिटिया

अभ्यास हेतु प्रश्न

1. रहीम की कविता की मार्मिकता पर प्रकाश डालिये। **U.P.S.C. (Mains) 2017**
2. पश्चिमी हिन्दी की किन्हीं दो बोलियों का विवेचन कीजिये। **U.P.S.C. (Mains) 2015**
3. पूर्वी हिन्दी की किन्हीं दो बोलियों की शब्दशास्त्रीय विशेषताएँ बताइए। **U.P.S.C. (Mains) 2016**
4. अवधी की व्याकरणिक विशेषताएँ (टिप्पणी) **U.P.S.C. (Mains) 2014**
5. हिन्दी की समृद्धि में उसकी बोलियों के योगदान का आकलन कीजिये। **U.P.S.C. (Mains) 2014**
6. पूर्वी हिन्दी की किन्हीं दो बोलियों का विवेचन कीजिये। **U.P.S.C. (Mains) 2013**
7. पूर्वी हिन्दी की बोलियों का अंतर्संबंध (टिप्पणी) **U.P.S.C. (Mains) 2012**
8. हिन्दी के विकास में उसकी प्रमुख बोलियों का योगदान निरूपित कीजिये। **U.P.S.C. (Mains) 2011**
9. भोजपुरी, मौथली और मगही का विवेचन निम्नलिखित आधारों पर कीजिये: **U.P.S.C. (Mains) 2010**
   (क) क्षेत्र (ख) व्याकरण (ग) साहित्य
10. पूर्वी हिन्दी की बोलियों का परिचय एवं उनके अंतर्संबंध (टिप्पणी) **U.P.S.C. (Mains) 2007**
11. पूर्वी हिन्दी और पश्चिमी हिन्दी की भेदक रेखाएँ निर्धारित कीजिये। **U.P.S.C. (Mains) 2005**
12. ब्रज, अवधी और खड़ी बोली में साम्य और वैषम्य पर प्रकाश डालिए। **U.P.S.C. (Mains) 2004**
13. विभाषा, बोली और भाषा के संबंधों को सोदाहरण स्पष्ट करते हुए हिन्दी की प्रमुख बोलियों का परिचय दीजिए। **U.P.S.C. (Mains) 2003**
14. पूर्वी और पश्चिमी हिन्दी (टिप्पणी) **U.P.S.C. (Mains) 2003**
15. हिन्दी की उपभाषाओं का वर्गीकरण करते हुए किन्हीं दो प्रमुख उपभाषाओं का परिचय दीजिए। **U.P.S.C. (Mains) 2002**
16. भोजपुरी और अवधी में अंतर (टिप्पणी) **U.P.S.C. (Mains) 2002**
17. हिन्दी की प्रमुख बोलियों का संक्षिप्त परिचय (टिप्पणी) **U.P.S.C. (Mains) 2000**

अध्याय
15

राजभाषा, राष्ट्रभाषा एवं संपर्क भाषा

15.1 राजभाषा का तात्पर्य

भारत की स्वाधीनता प्राप्ति से पहले हिन्दी में 'राजभाषा' शब्द का प्रयोग प्राय: नहीं मिलता। सबसे पहले सन् 1949 ई0 में भारत के महान नेता श्री राजगोपालाचारी ने भारतीय संविधान सभा में 'नैशनल लैंग्वेज' (National Language) के समानान्तर 'स्टेट लैंग्वेज' (State Language) शब्द का प्रयोग इस उद्देश्य से किया कि 'राष्ट्रभाषा (National Language) और 'राजभाषा' (State Language) में अंतर रहे और दोनों के स्वरूप को अलगाने वाली विभेदक रेखा को समझा जा सके। संविधान सभा की कार्यवाही के हिन्दी-प्रारूप में 'स्टेट लैंग्वेज' (State Language) का हिन्दी-अनुवाद 'राजभाषा' किया गया और इस प्रकार पहली बार यह शब्द प्रयोग में आया। बाद में, संविधान का प्रारूप तैयार करते समय, 'स्टेट लैंग्वेज' (State Language) के स्थान पर 'ऑफिशियल लैंग्वेज' (Official Language) शब्द का प्रयोग अधिक उपयुक्त समझा गया और 'ऑफिशियल लैंग्वेज' का हिन्दी-अनुवाद 'राजभाषा' ही किया गया ('सरकारी' या 'कार्यालयी' भाषा नहीं)। इस परिप्रेक्ष्य में, 'राजभाषा' शब्द का तात्पर्य है - राजा (शासक) अथवा राज्य (सरकार) द्वारा प्राधिकृत भाषा। भारतीय लोकतंत्र में शासन या सरकार का गठन संविधान की प्रक्रिया के अंतर्गत होता है, अत: दूसरे शब्दों में 'राजभाषा' का तात्पर्य है - **संविधान द्वारा सरकारी कामकाज, प्रशासन, संसद और विधान-मंडलों तथा न्यायिक कार्यकलापों के लिए स्वीकृत भाषा।**

15.2 राष्ट्रभाषा

राष्ट्रभाषा से तात्पर्य किसी देश की उस भाषा से है जिसे वहाँ के अधिकांश लोग बोलते हैं तथा जिसके साथ उनका सांस्कृतिक तथा भावनात्मक जुड़ाव होता है। उदाहरण के लिए, जर्मनी की राष्ट्रभाषा जर्मन है, इंग्लैंड की इंग्लिश तथा फ्राँस की फ्रेंच।

भारत जैसे बहुभाषी राष्ट्रों के सामने संकट यह है कि वे किस भाषा को राष्ट्रभाषा कहें? यदि वे किसी एक भाषा को राष्ट्रभाषा का दर्जा देते हैं तो शेष भाषाओं के प्रयोक्ताओं को भेद-भाव महसूस होता है और अगर किसी भाषा को यह दर्जा नहीं दिया जाता है तो राष्ट्र की एकता की संभावनाएँ कमज़ोर हो जाती हैं।

स्वाधीनता संग्राम के दौरान लगभग सभी नेताओं ने आपसी सहमति से तय किया था कि हिन्दी भारत की राष्ट्रभाषा है और उसी में स्वाधीनता संग्राम चलाया जाना चाहिए। स्वाधीनता प्राप्ति के बाद इस विषय पर विवाद हुआ और तय किया गया कि किसी एक भाषा को राष्ट्रभाषा का दर्जा देने की बजाय भारत की सभी प्रमुख भाषाओं को राष्ट्रीय भाषाओं का दर्जा दिया जाना चाहिए। हिन्दी को भारत की संपर्क भाषा के तौर पर सम्मान दिया जाना चाहिए, न कि राष्ट्रभाषा कहकर विवादों को आमंत्रित किया जाना चाहिए।

15.3 संपर्क भाषा

स्वाधीनता प्राप्ति के बाद राजभाषा और राष्ट्रभाषा के अतिरिक्त एक अन्य शब्द 'संपर्क भाषा' का प्रयोग हिन्दी के संबंध में अक्सर होने लगा है। ऐतिहासिक परिस्थितियों का विश्लेषण करते हुए इसे समझना बेहतर होगा।

संपर्क भाषा का अर्थ होता है - ऐसी भाषा जो दो विभिन्न भाषिक क्षेत्रों के बीच संपर्क सूत्र का कार्य करे। स्वाभाविक रूप से हिन्दी सारे देश में संपर्क भाषा का कार्य करती रही है। यह भारत की एकमात्र भाषा है जिसे 40% से अधिक भारतीय प्रथम भाषा के रूप में तथा 30% से अधिक भारतीय द्वितीय भाषा के रूप में प्रयुक्त करते हैं। इस कारण हिन्दी भारत के जनसाधारण की संपर्क भाषा मानी जाती है। स्वाधीनता संग्राम में देश के हर कोने में हिन्दी के राष्ट्रभाषा बनाने की मांग इसीलिए उठाई गई थी कि हिन्दी संपर्क भाषा के रूप में जन सामान्य द्वारा स्वीकृत थी।

संपर्क भाषा एवं राष्ट्रभाषा में अंतर है। जिन देशों में भाषिक वैविध्य कम होता है, वहाँ संपर्क भाषा की आवश्यकता कम होती है तथा राष्ट्रभाषा ही संपर्क भाषा का कार्य करती है। भारत जैसे बहुभाषी देश में संपर्क भाषा और राष्ट्रभाषा में अलग संबंध बनते हैं। स्वाधीनता संग्राम में पूरे भारत में हिन्दी को राष्ट्रभाषा का दर्जा दिया गया था किंतु स्वाधीनता प्राप्ति के बाद अहिन्दी भाषियों में इस शब्द पर आपत्ति प्रकट की। उनका तर्क यह था कि यदि हिन्दी राष्ट्रभाषा है तो क्या बांग्ला, तमिल, कन्नड़ और मराठी आदि भाषाएँ राष्ट्रेतर या राष्ट्र विरोधी भाषाएँ हैं? उन्होंने मांग की कि भारत की सभी भाषाओं को राष्ट्रभाषा का दर्जा दिया जाए। हिन्दी को जो विशेष दर्जा दिए जाने की आवश्यकता है, वह राष्ट्रभाषा का नहीं अपितु संपर्क भाषा का है।

वर्तमान समय में प्राय: राजनीतिक आधार पर यह विचार स्वीकार किया जा चुका है कि हिन्दी भारत की संपर्क भाषा है। वह भारत की राष्ट्रभाषा भी है, किंतु उसके साथ-साथ संविधान की आठवीं सूची में शामिल सभी भाषाएँ राष्ट्रभाषाएँ अथवा राष्ट्र की भाषाएँ हैं। जहाँ तक राजभाषा का प्रश्न है, वह संवैधानिक रूप से केन्द्र स्तर पर हिन्दी है तथा राज्यों के स्तर पर राज्यों की अपनी भाषाएँ हैं।

15.4 राष्ट्रभाषा व राजभाषा में अंतर

राष्ट्रभाषा और राजभाषा प्रयुक्ति की दृष्टि से दो भाषा की महत्त्वपूर्ण अवधारणाएँ हैं। सामान्यत: किसी भी देश में एक ही भाषा राष्ट्रभाषा तथा राजभाषा होती है, जैसे इंग्लैंड में अंग्रेज़ी तथा पाकिस्तान में उर्दू। सामान्य दृष्टि से कहा जा सकता है कि राष्ट्रभाषा वह भाषा है जिसे किसी राष्ट्र के निवासी जीवन के सभी संदर्भों में स्वाभाविक रूप से प्रयोग करते हैं जबकि राजभाषा वह भाषा है जिसका प्रयोग सरकारी कामकाज के लिए किया जाता है। इन दोनों में प्रमुख अंतर इस प्रकार हैं-

(क) राष्ट्रभाषा जनसामान्य द्वारा प्रयुक्त होने वाली साधारण भाषा है जिसका प्रयोग सभी व्यक्ति आपसी बातचीत, विचार-विमर्श तथा लोकव्यवहार में करते हैं। इसके विपरीत राजभाषा का संदर्भ सीमित है। वह सरकारी कर्मचारियों व अधिकारियों द्वारा सिर्फ कार्यालयी कामकाज में प्रयुक्त होती है।

(ख) राष्ट्रभाषा का शब्द भंडार अनौपचारिक, गैर पारिभाषिक तथा अनिश्चित होता है। भिन्न-भिन्न स्थानों के लोग एक ही वस्तु के लिए भिन्न शब्दों का प्रयोग कर सकते हैं, एक ही शब्द का अपनी संस्कृति के अनुरूप उच्चारण परिवर्तन कर सकते हैं। इसके विपरीत, राजभाषा का शब्द भंडार पारिभाषिक, औपचारिक तथा निश्चयात्मक होता है। निश्चित अवधारणाओं के लिए उसमें निश्चित शब्दों का प्रयोग किया जाता है।

(ग) किसी देश का सांस्कृतिक जीवन राष्ट्रभाषा में ही व्यक्त होता है, न कि राजभाषा में। उदाहरण के लिए, धार्मिक स्थलों, त्यौहारों, सामाजिक उत्सवों तथा हाट-बाज़ारों में जहाँ देश की आत्मा बोलती है, राष्ट्रभाषा का ही प्रयोग किया जाता है।

(घ) राष्ट्रभाषा का प्रयोग साहित्यिक भाषा या काव्यभाषा के रूप में भी होता है जबकि राजभाषा का नहीं। राष्ट्रभाषा के प्रयोग में आत्मनिष्ठता (Subjectivity) की संभावनाएँ हमेशा बनी रहती हैं क्योंकि उसका प्रयोग करने वाला व्यक्ति परिस्थिति या उद्देश्य की भिन्नता के आधार पर बलाघात, अनुतान या विराम का प्रयोग करके अर्थ परिवर्तन कर सकता है। इसके विपरीत, राजभाषा अपनी प्रकृति में वस्तुनिष्ठ (Objective) होती है जिसकी शब्दावली या ध्वनि संरचना में व्यक्तिगत तत्वों की भूमिका नगण्य होती है।

(ङ) किसी देश की राजभाषा कोई विदेशी भाषा हो सकती है। उदाहरण के लिए, अंग्रेज़ी शासन के दौरान भारतीय शासन की भाषा अंग्रेज़ी थी। इसके विपरीत, राष्ट्रभाषा कभी भी विदेशी भाषा नहीं हो सकती, वह राष्ट्र की अपनी भाषा ही होती है। अतिविशिष्ट स्थितियों में यह हो सकता है कि सांस्कृतिक परिस्थितियों के कारण बहुत लंबे समय में किसी देश की भाषा बदल जाए और राष्ट्रभाषा परिवर्तित हो जाए। ऐसी स्थिति में भी वह भाषा राष्ट्रभाषा तभी बनेगी जब पूरा देश या समूह उसी का प्रयोग सहजतापूर्वक करने लगेगा।

(च) राष्ट्रभाषा में परिवर्तन स्वाभाविक रूप से होता है अर्थात् समय के साथ राष्ट्रभाषा धीरे-धीरे बदलती है। इसके विपरीत, राजभाषा में कोई भी परिवर्तन ऊपर से थोपा जा सकता है, जैसे कुछ शब्दों को जोड़ना, कुछ शब्दों को खारिज कर देना इत्यादि। सिर्फ इतना ही नहीं, सिर्फ एक सरकारी आदेश से राजभाषा बदली भी जा सकती है लेकिन राष्ट्रभाषा को नहीं बदला जा सकता है।

अभ्यास हेतु प्रश्न

1. राजभाषा और राष्ट्रभाषा का तात्त्विक भेद (टिप्पणी) **U.P.S.C. (Mains) 2005**
2. राजभाषा, राष्ट्रभाषा व सम्पर्क भाषा (टिप्पणी) **U.P.S.C. (Mains) 2003**

अध्याय
16

राजभाषा हिन्दी

16.1 'राजभाषा' हिन्दी की संवैधानिक स्थिति

भारतीय संविधान के भाग 5,6 और 17 में राजभाषा-संबंधी उपबंध हैं। भाग 17 का शीर्षक 'राजभाषा' है। इस भाग में चार अध्याय हैं जो क्रमश: संघ की भाषा, प्रादेशिक भाषाओं, उच्चतम न्यायालय एवं उच्च न्यायालयों आदि की भाषा तथा विशेष निर्देशों से संबंधित हैं। ये चारों अध्याय अनुच्छेद 343 से 351 के अंतर्गत समाहित हैं। इनके अतिरिक्त, अनुच्छेद 120 तथा 210 में संसद एवं विधानमंडलों की भाषा के संबध में विवरण दिया गया है। राजभाषा संबंधी प्रावधान इस प्रकार हैं-

(क) संविधान के **अनुच्छेद 120 (1)** में कहा गया है- "संसद में कार्य हिन्दी में या अंग्रेजी में किया जाएगा।" आगे कहा गया है- *"यदि कोई व्यक्ति हिन्दी में या अंग्रेजी में विचार प्रकट करने में असमर्थ है तो लोकसभा का अध्यक्ष या राज्यसभा का सभापति उसे अपनी मातृभाषा में बोलने की अनुमति दे सकता है।"*-इसी प्रकार, अनुच्छेद 120 (2) में उपबन्ध है कि *"जब तक संसद विधि द्वारा कोई उपबन्ध न करे, तब तक संविधान के आरम्भ से पंद्रह वर्ष की अवधि समाप्त होने के पश्चात् 'या अंग्रेज़ी में' वाला अंश नहीं रहेगा।"* (अर्थात् 26 जनवरी, 1965 से संसद का कार्य केवल हिन्दी में होगा।)

(ख) संविधान के **अनुच्छेद 210** में कहा गया है - राज्य के विधान-मंडल में कार्य राज्य की राजभाषा या राजभाषाओं में या हिन्दी में या अंग्रेज़ी में किया जाएगा।" आगे कहा गया है कि विधानसभा का अध्यक्ष या विधान-परिषद का सभापति ऐसे किसी सदस्य को अपनी मातृभाषा में बोलने की अनुमति दे सकता है जो उपर्युक्त भाषाओं में से किसी में भी विचार प्रकट नहीं कर सकता।

(ग) संविधान के **अनुच्छेद 343** में कहा गया है- *"संघ की राजभाषा हिन्दी और लिपि देवनागरी होगी।"* इसके अतिरिक्त *"संघ के शासकीय प्रयोजनों के लिए प्रयोग होने वाले भारतीय अंकों का अंतर्राष्ट्रीय रूप होगा।"* इसी अनुच्छेद में यह भी संकेत किया गया है कि शासकीय प्रयोजनों के लिए अंग्रेजी भाषा का प्रयोग 15 वर्षों तक होता रहेगा।

(घ) संविधान के **अनुच्छेद 344** के अंतर्गत व्यवस्था की गई है कि संविधान के आरंभ के पाँच वर्ष बाद राष्ट्रपति एक आयोग गठित करेगा जो हिन्दी के प्रयोग के विस्तार पर सुझाव देगा, जैसे-किन कार्यों के लिए हिन्दी का प्रयोग किया जा सकता है, न्यायालयों में हिन्दी का प्रयोग कैसे बढ़ाया जा सकता है, अंग्रेज़ी का प्रयोग कहाँ व किस प्रकार सीमित किया जा सकता है आदि। इसी प्रकार का आयोग संविधान के आरंभ से 10 वर्षों के बाद भी गठित किया जाएगा। ये आयोग भारत की उन्नति की प्रक्रिया तथा अहिन्दी भाषी वर्गों के हितों को ध्यान में रखते हुए अनुशंसा करेंगे। आयोग की सिफारिशों पर संसद की एक विशेष समिति राष्ट्रपति को राय देगी। राष्ट्रपति पूरी रिपोर्ट या उसके कुछ अंशों को लागू करने के लिए निर्देश जारी कर सकेगा।

(ङ) **अनुच्छेद 345** के अनुसार किसी राज्य का विधान मंडल, विधि द्वारा, उस राज्य में प्रयुक्त होने वाली या किन्हीं अन्य भाषाओं को या हिन्दी को शासकीय प्रयोजनों के लिए स्वीकार कर सकेगा। यदि किसी राज्य का विधानमण्डल ऐसा नहीं कर पाएगा तो अंग्रेज़ी भाषा का प्रयोग यथावत किया जाता रहेगा।

(च) **अनुच्छेद 346** के अनुसार संघ द्वारा निर्धारित भाषा एक राज्य और दूसरे राज्य के बीच में तथा किसी राज्य और संघ की सरकार के बीच पत्र आदि की राजभाषा होगी। यदि दो या अधिक राज्य परस्पर हिन्दी भाषा को स्वीकार करना चाहें तो उसका प्रयोग किया जा सकेगा।

(छ) **अनुछेद 347** के अनुसार यदि किसी राज्य की जनसंख्या का पर्याप्त भाग यह चाहता हो कि उसके द्वारा बोली जानेवाली भाषा को उस राज्य में (दूसरी भाषा के रूप में) मान्यता दी जाए और इसके लिए लोकप्रिय मांग की जाए, तो राष्ट्रपति यह निर्देश दे सकेगा कि ऐसी भाषा को भी उस राज्य में सर्वत्र या उसके किसी भाग में ऐसे प्रयोजन के लिए जो वह विनिर्दिष्ट करे, शासकीय मान्यता दी जाए।

(ज) **अनुच्छेद 348** में कहा गया है कि जब तक संसद विधि द्वारा कोई और उपबंध न करे, तब तक उच्चतम न्यायालय तथा उच्च न्यायालयों की सभी कार्यवाहियाँ अंग्रेज़ी में ही होंगी। इसके अतिरिक्त, निम्नलिखित विषयों के प्राधिकृत पाठ अंग्रेज़ी में होंगे-

(अ) संसद के प्रत्येक सदन या किसी राज्य के विधानमण्डल के प्रत्येक सदन में प्रस्तुत किये जाने वाले सभी विधेयक या उनके प्रस्तावित संशोधन,

(आ) संसद या किसी राज्य के विधानमण्डल द्वारा पारित सभी अधिनियम और राष्ट्रपति या किसी राज्य के राज्यपाल द्वारा जारी किये गये अध्यादेश;

(इ) संविधान के अधीन अथवा संसद या किसी राज्य के विधानमण्डल द्वारा बनायी गयी किसी विधि के अधीन जारी किये गए सभी आदेश, नियम, विनियम और उपविधियाँ।

इसी अनुच्छेद में यह भी स्पष्ट किया गया है कि किसी राज्य का राज्यपाल राष्ट्रपति की पूर्व अनुमति से उच्च न्यायालय की कार्यवाही के लिए हिन्दी भाषा या उस राज्य में मान्य भाषा का प्रयोग प्राधिकृत कर सकेगा, पर यह बात उस न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णय, डिक्री या आदेश पर लागू नहीं होगी।

(झ) **अनुच्छेद 349** के अनुसार संसद यदि राजभाषा से संबंधित कोई विधेयक या संशोधन प्रस्तावित करना चाहे तो राष्ट्रपति की पूर्व मंजूरी लेनी पड़ेगी और राष्ट्रपति आयोग की सिफारिशों पर और उन सिफारिशों पर गठित रिपोर्ट पर विचार करने के पश्चात् ही अपनी मंजूरी देगा, अन्यथा नहीं।

(ञ) **अनुच्छेद 350** के अंतर्गत उन वर्गों पर विशेष ध्यान दिया गया है जो भाषायी आधार पर अल्पसंख्यक वर्ग में आते हैं। इस अनुच्छेद के अनुसार राष्ट्रपति एक विशेष अधिकारी की नियुक्ति करेगा जो इन वर्गों से संबंधित विषयों पर रक्षा के उपाय करेगा। इसके साथ ही, अल्पसंख्यक बच्चों की प्राथमिक शिक्षा उनकी मातृभाषा में दिये जाने की पर्याप्त सुविधा सुनिश्चित की जाएगी।

(ट) **अनुच्छेद 351** में कहा गया है - "संघ का यह कर्त्तव्य होगा कि वह हिन्दी भाषा का प्रसार बढ़ाए, उसका विकास करे ताकि वह भारत की सामासिक संस्कृति के सभी तत्वों की अभिव्यक्ति का माध्यम बन सके और उसकी प्रकृति में हस्तक्षेप किये बिना हिन्दुस्तानी के और आठवीं अनुसूची में बतायी गयी अन्य भाषाओं के प्रयुक्त रूप, शैली और पदों को आत्मसात् करते हुए, और जहाँ आवश्यक या वांछनीय हो, वहाँ उसके शब्द-भंडार के लिए मुख्यत: संस्कृत से और गौणत: अन्य भाषाओं से शब्द ग्रहण करते हुए उसकी समृद्धि सुनिश्चित करे।

संविधान के अनुच्छेद 344 (1) और अनुच्छेद 351 में आठवीं अनुसूची में विनिर्दिष्ट भारतीय भाषाओं का संदर्भ आया है, जो संख्या में बाईस हैं - (1) असमिया (2) उड़िया (3) उर्दू (4) कश्मीरी (5) कन्नड़ (6) कोंकणी (7) गुजराती (8) तमिल (9) तेलुगू (10) नेपाली (11) पंजाबी (12) बंगला (13) मणिपुरी (14) मराठी (15) मलयालम (16) संस्कृत (17) सिंधी (18) हिन्दी, (19) बोडो, (20) मैथिली, (21) डोगरी, तथा (22) संथाली।

16.2 राजभाषा हिन्दी के प्रयोग की प्रगति

संविधान के लागू होने के बाद राजभाषा के प्रयोग के संबंध में जो प्रमुख घटनाएँ घटीं, वे इस प्रकार हैं -

(क) **राष्ट्रपति का आदेश:** 1955 में यह आदेश जारी किया गया कि जहाँ तक संभव हो, जनता के साथ पत्र-व्यवहार में तथा प्रशासनिक कार्यों में हिन्दी के पयोग को अंग्रेज़ी के साथ बढ़ावा दिया जाए, पर साथ ही यह बात भी लिख दी जाए कि अंग्रेजी पाठ ही प्रामाणिक माना जाएगा।

(ख) **राजभाषा आयोग:** 1955 में राष्ट्रपति ने संविधान के प्रावधानों के अनुसार एक आयोग की स्थापना की। इस आयोग ने राजभाषा के प्रयोग के बारे में जो सुझाव दिए, उनमें से प्रमुख इस प्रकार हैं-

(अ) पारिभाषिक शब्दावली निर्माण की गति तीव्र होनी चाहिए। अन्तर्राष्ट्रीय शब्दावली को थोड़े हेर-फेर के साथ स्वीकार कर लेना चाहिए।

(आ) हिन्दी क्षेत्र के विद्यार्थियों को एक और भाषा, विशेषत: दक्षिण भारत की भाषा, अवश्य सीखनी चाहिए।

(इ) चौदह वर्ष की आयु तक प्रत्येक विद्यार्थी को हिन्दी का ज्ञान करा दिया जाना चाहिए।

(ई) प्रशासनिक कर्मचारियों को निश्चित अवधि के अंदर हिन्दी का कार्यसाधक ज्ञान प्राप्त होना चाहिए। इसके लिए पुरस्कार और दंड की व्यवस्था की जानी चाहिए।

(उ) प्रतियोगी परीक्षाओं में हिन्दी का एक अनिवार्य प्रश्न-पत्र रखा जाना चाहिए।

(ऊ) देवनागरी लिपि को अखिल भारतीय लिपि के रूप में विकसित किया जाना चाहिए।

(ऋ) हिन्दी के विकास का दायित्व सरकार की एक प्रशासकीय इकाई पर डालना चाहिए।

(ए) भारत की भाषाओं में निकटता लाने के प्रयास करने चाहिए।

(ऐ) उच्च न्यायालयों में क्षेत्रीय भाषाओं का प्रयोग होना चाहिए।

इन सुझावों का परीक्षण करने का दायित्व संसद की 'राजभाषा समिति' को सौंपा गया। समिति ने 1959 ई. में जो सुझाव दिए, वे इस प्रकार हैं -

(अ) जब तक कर्मचारी और अधिकारी हिन्दी का कार्यसाधक ज्ञान प्राप्त न कर लें, तब तक वे अंग्रेजी में कार्य करते रहें।

(आ) पैंतालीस वर्ष के ऊपर की उम्र वाले सरकारी कर्मचारियों को हिन्दी के प्रशिक्षण से छूट दे देनी चाहिए।

(इ) उच्च न्यायालयों के निर्णयों, आदेशों आदि को अंग्रेजी में ही रहना चाहिए।

(ई) केंद्रीय सेवाओं में परीक्षाओं के माध्यम के रूप में अंग्रेजी को ही बने रहने देना चाहिए।

(उ) 1965 के बाद हिन्दी प्रधान भाषा हो जाए।

राजभाषा आयोग तथा संसदीय समिति की सिफारिशों पर विचार करने के उपरांत राष्ट्रपति ने जो आदेश जारी किया, उसके प्रमुख बिंदु इस प्रकार हैं-

(अ) पैंतालीस वर्ष से कम उम्र वाले कर्मचारियों के लिए हिन्दी का प्रशिक्षण अनिवार्य कर दिया जाए।

(आ) अखिल भारतीय सेवाओं में भर्ती के लिए परीक्षा का माध्यम अंग्रेजी बना रहे। धीरे-धीरे हिन्दी और अन्य क्षेत्रीय भाषाओं को माध्यम बनाने की व्यवस्था की जाए।

(इ) हिन्दी में वैज्ञानिक और तकनीकी शब्दावली के विकास के लिए एक स्थायी आयोग का निर्माण किया जाए।

(ई) 'विधायी आयोग' की स्थापना की जाए जो विधिकोश का निर्माण करे ताकि विधि संबंधी शब्द हिन्दी में अनूदित हो सकें।

(उ) शिक्षा मंत्रालय हिन्दी के प्रचार की व्यवस्था करे। इस कार्य में गैर-सरकारी संस्थाओं की भी मदद ली जा सकती है।

(ऊ) राजकाज में हिन्दी के प्रगामी प्रयोग के लिए गृह मंत्रालय योजना तैयार करे।

इस आदेश के तहत दो आयोगों की स्थापना कर दी गई- (क) वैज्ञानिक व तकनीकी शब्दावली आयोग, (ख) विधायी आयोग। प्रशासनिक तथा विधि-साहित्य का अनुवाद होने लगा तथा कर्मचारियों के प्रशिक्षण की व्यवस्था भी होनी आरंभ हो गई।

(ग) राजभाषा अधिनियम, 1963 (1967 में यथासंशोधित): संविधान के उपबंधों के अनुसार 1965 में हिन्दी को भारत की एकमात्र राजभाषा बनना था, पर इससे ठीक पहले अहिन्दी क्षेत्रों, विशेषत: पश्चिमी बंगाल तथा तमिलनाडु में हिन्दी विरोधी आंदोलन प्रारंभ हो गए। ऐसी स्थिति में पंडित नेहरू ने अहिन्दी भाषी क्षेत्रों को आश्वासन दिया कि हिन्दी को एकमात्र राजभाषा स्वीकार करने से पहले अहिन्दी क्षेत्रों की सहमति प्राप्त की जाएगी। इसी आश्वासन की पूर्ति के लिए यह अधिनियम बनाया गया जिसके प्रमुख प्रावधान इस प्रकार हैं-

(अ) 26, जनवरी, 1965 के बाद भी हिन्दी के अतिरिक्त अंग्रेजी भाषा का प्रयोग यथावत् चलता रहेगा।

(आ) उच्च न्यायालयों के निर्णयों में हिन्दी या किसी राज्यस्तरीय राजभाषा का प्रयोग किया जा सकेगा।

(इ) संघ के संकल्पों, अधिसूचनाओं, विज्ञापनों आदि दस्तावेजों को हिन्दी और अंग्रेजी दोनों भाषाओं में जारी करना अनिवार्य होगा।

(ई) जब तक अहिन्दी भाषी राज्य अंग्रेजी को समाप्त करने का संकल्प नहीं ले लेंगे, तब तक अंग्रेजी का प्रयोग चलता रहेगा।

(घ) संकल्प 1968: 1967 के संशोधन के बाद अहिन्दीभाषी राज्यों की चिंता तो समाप्त हो गई, किंतु उन लोगों की चिंता बढ़ने लगी जो देश की एकता के लिए हिन्दी को एकमात्र राजभाषा के रूप में स्वीकार करना चाहते थे। ऐसी जटिल स्थिति में संसद के दोनों सदनों में एक संकल्प पारित किया गया जो इस प्रकार है -

(अ) सरकार हिन्दी के तीव्र विकास और प्रयोग के लिए एक व्यापक कार्यक्रम तैयार करेगी जिसकी प्रगति की रिपोर्ट प्रति वर्ष संसद में प्रस्तुत की जायेगी।

(आ) भारत सरकार राज्यों के सहयोग से त्रिभाषा सूत्र लागू करेगी। इसके अन्तर्गत हिन्दीभाषी क्षेत्रों में हिन्दी और अंग्रेजी के अतिरिक्त एक अन्य भारतीय भाषा (विशेषत: दक्षिण भारतीय भाषा) का अध्ययन अनिवार्य होगा तथा अहिन्दी भाषी क्षेत्रों में प्रादेशिक भाषा और अंग्रेजी के अतिरिक्त हिन्दी का अध्ययन अनिवार्य होगा।

(इ) केन्द्रीय सेवा में भर्ती के लिए हिन्दी अथवा दोनों भाषाओं का ज्ञान आवश्यक होगा।

(ई) सरकार आठवीं अनुसूची में उल्लिखित सभी भाषाओं के समन्वित विकास के लिए कार्यक्रम तैयार करेगी।

(ड.) राजभाषा नियम, 1976: भारत सरकार ने राजभाषा अधिनियम के उपबंधों को कार्यान्वित करने का दायित्व गृह मंत्रालय को सौंपा। इसके लिए गृह मंत्रालय के अधीन एक राजभाषा अनुभाग की स्थापना हुयी जो बाद में स्वतंत्र राजभाषा विभाग हो गया। राजभाषा विभाग ने सरकारी कामकाज में हिन्दी के प्रयोग को सुनिश्चित करने के लिए 12 नियम निर्धारित किये जिनमें से प्रमुख इस प्रकार हैं-

(अ) देश भर के केन्द्रीय सरकार के कार्यालयों को तीन वर्गों में बाँटा गया - क वर्ग, ख वर्ग, ग वर्ग। **क वर्ग** में वे राज्य आते हैं जिनकी पहली भाषा हिन्दी है। ये राज्य हैं - उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, राजस्थान, बिहार, हिमाचल प्रदेश, हरियाणा और दिल्ली। **ख वर्ग** में प्राय: वे राज्य आते हैं जिनमें हिन्दी समझी जाती है किन्तु पहली भाषा के रूप में प्रयुक्त नहीं होती। इनमें प्रमुख हैं- पंजाब, गुजरात, महाराष्ट्र और केन्द्रशासित प्रदेशों में चंडीगढ़ और अण्डमान-निकोबार। **ग वर्ग** में शेष सब राज्य आते हैं। इन राज्यों में प्राय: हिन्दी नहीं समझी जाती है। ये राज्य हैं- पश्चिमी बंगाल, उड़ीसा, उत्तर-पूर्वी क्षेत्र के सभी राज्य तथा दक्षिण भारत के चारों राज्य।

(आ) क क्षेत्र के पत्रों आदि के लिए निश्चित किया गया कि उनमें हिन्दी का प्रयोग हो। अगर अंग्रेजी का प्रयोग किया जाये तो साथ में हिन्दी अनुवाद भी भेजा जाये। ख क्षेत्र के साथ पत्राचार समान्यत: हिन्दी में हो तथा ग क्षेत्र के साथ पत्राचार अंग्रेजी में ही होता रहे।

(इ) हिन्दी में कहीं से प्राप्त पत्र का उत्तर हिन्दी में ही देना होगा।

(ई) सभी दस्तावेज हिन्दी व अंग्रेजी दोनों भाषाओं में साथ-साथ निकाले जायेंगे। इसका उत्तरदायित्व दस्तावेज पर हस्ताक्षर करने वाले अधिकारी का होगा।

(उ) केन्द्र सरकार के सभी फॉर्म, नामपट्ट, सूचनापट्ट, पत्रशीर्ष, मुहरें आदि हिन्दी व अंग्रेजी दोनों भाषाओं में होंगी।

(ऊ) प्रत्येक कार्यालय के प्रधान का यह दायित्व होगा कि वह भाषा संबंधी नियमों और आदेशों का अनुपालन कराये और जाँच-पड़ताल करता रहे।

(च) 1976 के बाद राजभाषा की प्रगति: 1976 से अब तक राजभाषा की प्रगति का विश्लेषण विभिन्न मंत्रालयों के अनुसार किया जा सकता है। भारत सरकार के तीन मंत्रालय राजभाषा संबंधी कार्यों में संलग्न हैं- गृह मंत्रालय (राजभाषा विभाग), विधि मंत्रालय तथा शिक्षा मंत्रालय।

(अ) गृह मंत्रालय का राजभाषा विभाग:

(अ) राजभाषा विभाग प्रत्येक वर्ष अपने उद्देश्य तय करता है तथा सभी मंत्रालयों पर उद्देश्य पूरे करने के लिए दबाव बनाता है। वर्ष के कार्यक्रमों में कई बातों पर ध्यान दिया जाता है, जैसे -कितने प्रतिशत कर्मचारी

हिन्दी में काम करने लगे, कितने टंकक और आशुलिपिक अपने तकनीकी ज्ञान का हिन्दी में प्रयोग करने लगे, हिन्दी के लिए काम करने वाली स्वैच्छिक संस्थाओं ने कितने कार्य संपन्न किये आदि।

(ब) यह विभाग हिन्दी नहीं जानने वाले अधिकारियों के लिए प्रशिक्षण कार्यक्रम भी चलाता है, जिसके लिए इस विभाग के अन्तर्गत **'केन्द्रीय हिन्दी प्रशिक्षण संस्थान'** की स्थापना की गयी है। कर्मचारियों के प्रशिक्षण के लिए तीन पाठ्यक्रम-प्रबोध, प्रवीण और प्राज्ञ बनाये गये हैं।

(स) इसी विभाग के अन्तर्गत **केन्द्रीय अनुवाद ब्यूरो** की स्थापना भी की गयी है जिसका कार्य प्रशासनिक प्रकार के प्रत्येक साहित्य का अनुवाद करना है। ब्यूरो सरकारी सामग्री के अतिरिक्त सार्वजनिक उपकरणों, प्रतिष्ठानों तथा बैंकों की सामग्री का अनुवाद भी करता है। इनके अतिरिक्त अनुवादकों को प्रशिक्षित करने का कार्य भी इसी को सौंपा गया है।

(द) राजभाषा विभाग का सबसे महत्त्वपूर्ण कार्य यह है कि वह **केन्द्रीय हिन्दी समिति** और मंत्रालयों की हिन्दी समितियों की बैठकों का आयोजन करके उनमें तालमेल बैठाता है, नगर राजभाषा कार्यान्वयन समितियों के कामकाज को निर्धारित करता है। इसके अतिरिक्त जो अन्य मंत्रालय राजभाषा के क्षेत्र में काम कर रह हैं उनके साथ सम्पर्क बनाये रखकर राजभाषा के विकास में आने वाली सभी बाधाओं को दूर करता है।

(आ) विधि मंत्रालय: विधि मंत्रालय का विधायी विभाग मूलत: विधि साहित्य के अनुवाद से संबंधित कार्य करता है। यह विभाग लगभग सारे विधि साहित्य का अनुवाद कर चुका है। इसके अतिरिक्त संसद में आने वाले सभी विधेयक पहले से हिन्दी अनुवाद तैयार करके पेश किये जाते हैं। अपनी एक और योजना के तहत अब यह विभाग समस्त विधि-अनुवाद को इंटरनेट या 'निकनेट' के माध्यम से पूरे भारत में उपलब्ध कराने में सक्षम हो गया है।

(इ) शिक्षा मंत्रालय: शिक्षा मंत्रालय और इसके अन्तर्गत स्थापित **केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय** मुख्य रूप से शिक्षा के क्षेत्र में राजभाषा हिन्दी की संभावनाओं को तलाशने और तराशने में जुटा है। उच्च शिक्षा में प्रयुक्त होने वाली पुस्तकों का हिन्दी में अनुवाद, स्तरीय पुस्तकों का हिन्दी में प्रकाशन, द्विभाषी व त्रिभाषी कोशों का निर्माण आदि तो इसके कार्य हैं ही, वैज्ञानिक एवं तकनीकी शब्दावली का निर्माण भी इसका एक प्रमुख कार्य है। कुछ वर्ष पूर्व इसकी पहल पर सरकार ने हिन्दी विश्वविद्यालय, वर्धा की स्थापना की है जो उच्च शिक्षा के प्रत्येक क्षेत्र में हिन्दी में विकास तथा शोध कार्य पर बल देगा।

16.3 राजभाषा हिन्दी की प्रगति की समीक्षा

संविधान लागू होने के बाद के सत्तावन वर्षों (1950-2007) का तटस्थ विश्लेषण किया जाये तो ऐसा प्रतीत होता है कि यद्यपि राजभाषा की स्थिति में प्रगति हुई है किन्तु यह प्रगति मात्रात्मक (Quantitative) ज्यादा है, गुणात्मक (Qualitative) कम। ऐसा लगता है कि सरकार आधे-अधूरे मन से हिन्दी के विकास के प्रयास कर रही है या ऐसा आभास पैदा करती रहती है कि हिन्दी के विकास में बड़ी मंज़िलें प्रत्येक वर्ष प्राप्त होती हैं। इसके बावजूद केन्द्रीय सरकार के कार्यालयों में हिन्दी के प्रति आमतौर पर न केवल उदासीनता की स्थिति है बल्कि विरोध की स्थिति भी लगातार बनी हुई है। ऐसा होने का मूल कारण यह है कि हमारे राजनेताओं में न तो दृढ़ इच्छाशक्ति है और न ही यह मानसिकता कि किसी भी स्वतन्त्र राष्ट्र में विदेशी भाषा को राजभाषा नहीं होना चाहिए।

ऐसा नहीं है कि भाषिक संक्रमण की यह स्थिति केवल भारत में पैदा हुयी हो। दुनिया में कई ऐसे देश हैं जहाँ स्थितियाँ लगभग ऐसी ही थीं। अंतर यह है कि दृढ़ राजनीतिक इच्छा की वजह से वे देश भाषिक द्वैत को समाप्त कर सके किन्तु अपनी कमज़ोरियों की वजह से हम ऐसा नहीं कर सके। 1815 ई0 में जब जर्मनी स्वतन्त्र हुआ तो बिस्मार्क के आदेश पर

जर्मन एक वर्ष के भीतर राजभाषा बन गयी। 1917 में जब रूस की क्रान्ति हुई तो वहाँ भी जर्मन के स्थान पर रूसी भाषा को राजभाषा का दर्जा दिया गया। इज़राइल की हिब्रू भाषा जो दो हजार साल से प्रयोग में नहीं थी, देखते ही देखते स्वतंत्र इज़राइल की राजभाषा बन गयी। यही नहीं, 1947 में हमसे अलग होकर बने स्वतंत्र देश पाकिस्तान ने भी उर्दू को राजभाषा बनाया। 1971 में स्वतंत्र होने वाले बांग्लादेश ने भी अपनी भाषा को ही राजभाषा का दर्जा दिया। आखिर ऐसा क्या कारण है कि भारत में हिन्दी जैसी प्रगतिशील भाषा, जिसे स्वाधीनता आंदोलन के दौरान पूरे देश के नेताओं ने एक स्वर में राष्ट्रभाषा बनाया था, आज़ादी मिलने के उपरान्त अचानक पिछड़ी हुई, अविकसित या बेकार हो गयी?

हिन्दी के राजभाषा नहीं बन पाने के जो कारण सरकार या अन्य व्यक्तियों या संस्थाओं द्वारा गिनाये गये हैं, उनमें दो सबसे प्रमुख हैं -

(अ) भारत एक बहुभाषीय देश है। ऐसे देश में किसी एक भाषा को सर्वोच्च कैसे माना जा सकता है?

(आ) हिन्दी एक पिछड़ी हुई भाषा है जबकि अंग्रेज़ी एक उन्नत और प्रगतिशील भाषा है।

इन दोनों तर्कों पर थोड़ा सा विश्लेषण करना वांछनीय होगा।

पहले तर्क के अनुसार भारत एक बहुभाषीय देश है, इसलिए हिन्दी राजभाषा नहीं बन सकती। वस्तुतः, यह तर्क पूर्णतः भ्रामक है। सच यह है कि कोई देश चाहे कितना भी बहुभाषिक हो, उसे राजकाज चलाने के लिए एक भाषा का चयन तो करना ही पड़ता है। इसलिए यहाँ मूल प्रश्न यह नहीं है कि बहुभाषी देश में कोई एक भाषा राजभाषा हो या नहीं, प्रश्न तो यह है कि राजकीय संपर्क भाषा के रूप में हम हिन्दी को चुनें या अंग्रेजी को। एक लोकतांत्रिक देश में चयन का आधार भी लोकतांत्रिक होना चाहिए। इस आधार पर देखें तो हिन्दी भारत के 42 प्रतिशत लोगों की पहली भाषा है तथा लगभग 30 प्रतिशत लोगों की दूसरी भाषा है। इसकी तुलना में अंग्रेज़ी लगभग 1.5 प्रतिशत लोगों की पहली भाषा है और इसे जानने वाले कुल लोग 10 प्रतिशत भी नहीं हैं। जहाँ तक पश्चिम बंगाल के या तमिलनाडु के आम आदमी का सवाल है, उसके लिए अंग्रेजी और हिन्दी में से हिन्दी ज्यादा सरल है क्योंकि हजारों सालों के इतिहास में इन क्षेत्रों में जितने आपसी संवाद हुए हैं, उनसे भाषाओं में पर्याप्त आदान-प्रदान हुआ है। मूल समस्या यह है कि जो राजनीति और नौकरशाह वर्ग है, वह आम आदमी से कटा हुआ है और अंग्रेजी के प्रयोग से खुद को गौरवान्वित तथा सहज महसूस करता है। इसलिए भाषा के नाम पर विरोध की जो मानसिकता बनायी जा रही है, उसका आम आदमी से कम संबंध है, आम आदमी को प्रभावित करने वाले राजनीतिक अभिजन वर्ग से अधिक लोग हैं। इसके अतिरिक्त जहाँ तक भाषायी विरोध का सवाल है, उसके लिए त्रिभाषा फॉर्मूला सुझाया ही गया है। इस संबंध में हिन्दी भाषी जनता का ज्यादा बड़ा दायित्व है। उन्हें तीसरी भाषा सीखने की शुरूआत करके यह संदेश भेजना चाहिए कि भाषा समाज को तोड़ने की नहीं, जोड़ने की व्यवस्था है।

दूसरा तर्क यह है कि हिन्दी एक पिछड़ी हुई भाषा है जबकि अंग्रेज़ी एक उन्नत भाषा है। किसी भाषा के उन्नत होने की परीक्षा दो आधारों पर की जा सकती है - पहला, भाषा के नियम कितने वैज्ञानिक हैं तथा दूसरा, भाषा जीवन के कितने व्यापक क्षेत्र को समेटती है। जहाँ तक भाषा के वैज्ञानिक होने का संबंध है, यह निर्विवाद है कि ध्वनि व्यवस्था से लेकर लिपि व्यवस्था तक हिन्दी अंग्रेज़ी की तुलना में कहीं भी अवैज्ञानिक नहीं है। जहाँ तक प्रचलन या व्यापकता का सवाल है, निश्चित रूप से अंग्रेज़ी अत्यधिक विकसित भाषा है किन्तु व्यापक होने का संबंध केवल इस बात से है कि भाषा का कितना प्रयोग होता है। कठिन शब्द अंग्रेज़ी में भी होते हैं हिन्दी में भी; तथा दोनों ही भाषाओं में सरल शब्द भी होते हैं। अंग्रेजी के व्यापक होने का मूल कारण इतना ही है कि वह उपनिवेशवाद और साम्राज्यवाद के दौर में उस शक्ति से जुड़ी हुई थी जिसने दुनिया भर को जीता तथा ज्ञान-विज्ञान के क्षेत्र में विकास किया। हिन्दी के व्यापक नहीं होने का कारण यह रहा कि एक तो ज्ञान-विज्ञान में हमने अधिक उन्नति नहीं की और दूसरे, हमारा देश उपनिवेश बना रहा। किन्तु, इस सीमा को दूर किया जा सकता है और उसका एक ही उपाय है कि भाषा का अधिकाधिक प्रयोग किया जाये। आज की दुनिया के वैज्ञानिक-तकनीकी विकास को व्यक्त करने के लिए जो शब्द हिन्दी में नहीं हैं उनका हिन्दी की प्रकृति के अनुकूल अनुवाद भी किया जा सकता है और अगर अनुवाद अटपटा लगे तो उन्हें हिन्दी में वैसे का वैसा भी प्रयुक्त किया जा सकता है। अभी भी अनुवाद कार्य और नये शब्दों के निर्माण का कार्य बहुत तेजी से चल रहा है किन्तु प्रचलन में नहीं आने के कारण वे शब्द भाषा को और दुरुह बनाते जा रहे हैं। अतः हिन्दी के विकास में कोई तकनीकी बाधा नहीं है जो विकास की संभावनाओं को नष्ट करती हो। बाधा केवल इच्छाशक्ति की कमी है।

इच्छाशक्ति की इस कमी ने लगातार ऐसी स्थितियाँ बनाये रखी हैं जिनसे राजभाषा के रूप में हिन्दी व्यावहारिक रूप से प्रतिष्ठित नहीं हो सकी। इस मानसिकता की कुछ बानगियाँ हम देख सकते हैं-

(क) हिन्दी की प्रगति को सुनिश्चित करने के लिए सर्वोच्च संस्था **'केन्द्रीय हिन्दी समिति'** है जिसके अध्यक्ष प्रधानमंत्री हैं। इस समिति का हाल यह है कि दस-दस साल तक इसकी कोई बैठक ही नहीं होती है।

(ख) संविधान के अनुच्छेद 344 में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि 1950 के बाद हर पाँच वर्ष पर एक आयोग का गठन किया जाता रहेगा, जो राजभाषा के संबंध में समीक्षा करेगा और भविष्य के संबंध में सुझाव देगा। 1955 में पहला आयोग स्थापित किया गया किन्तु उसकी उन्हीं सिफारिशों को माना गया जो राजभाषा की स्थिति में कोई गुणात्मक परिवर्तन पैदा नहीं करती थीं। इसके 5 वर्ष बाद आयोग की स्थापना ही नहीं की गयी। संविधान के अनुदेश का इतना बड़ा उल्लंघन यह स्पष्ट करता है कि सरकार कितनी जागरूक और प्रतिबद्ध है।

(ग) राजकीय कर्मचारियों के हिन्दी प्रशिक्षण के लिए सरकार ने समुचित व्यवस्था की है। हिन्दी सीखने पर कर्मचारियों को पुरस्कार व भत्ते भी दिये जाते हैं, उनकी वेतन वृद्धि भी होती है, किंतु हिन्दी सीखने के बाद वे पुन: अंग्रेजी में काम करने लगते हैं। इस संबंध में राष्ट्रपति का आदेश है कि हिन्दी में काम नहीं करने से किसी कर्मचारी का अहित नहीं होगा। आदेश यह होना चाहिए था कि प्रशिक्षण के बाद हिन्दी में काम करना अनिवार्य होगा और कोई कर्मचारी यदि प्रशिक्षण के बाद भी हिन्दी में काम नहीं करेगा तो उसे दंडित किया जायेगा।

(घ) जब अहिन्दी भाषी राज्यों में राजभाषा के रूप में हिन्दी का विरोध किया गया तो सरकार समय सीमा को कुछ और बढ़ाकर सहमति का माहौल बना सकती थी। इसके विपरीत सरकार दो कदम और आगे बढ़ गयी तथा राज्यों के विरोध के नाम पर एक ऐसा उपबन्ध कर दिया जिससे हिन्दी कभी राजभाषा न बन सके। इसके विपरीत सरकार यह भी कर सकती थी कि हिन्दी भारत की राजभाषा तो होगी किन्तु जो राज्य इस व्यवस्था से बाहर रहना चाहते हैं वे कुछ समय तक बाहर रह सकते हैं। ऐसी स्थिति में विरोध करने वाले कुछ राज्यों को छोड़कर शेष भारत में हिन्दी राजभाषा के रूप में स्थापित हो सकती थी।

(ङ) राजभाषा विभाग, जो केन्द्र सरकार के सभी कार्यालयों के राजभाषा संबंधी विकास की जाँच करता है, को कोई शक्ति नहीं दी गयी है। इस विभाग की स्थिति वैसे साँप की है जिसके पास विष नहीं है। यह प्रत्येक वर्ष वार्षिक कार्यक्रम का निर्माण करता है तथा बार-बार सुझाव और सलाह भेजता है किन्तु बाध्यता नहीं होने के कारण कोई भी मंत्रालय या विभाग इन सलाहों-सुझावों पर ध्यान नहीं देता।

(च) संविधान के अनुच्छेद 351 के अनुसार सरकार का कर्त्तव्य है कि वह हिन्दी की प्रकृति को अक्षुण्ण रखते हुए अन्य भाषाओं से आवश्यक शब्द ग्रहण करते हुए उसका ऐसा विकास करे कि वह भारत की सामासिक संस्कृति को अभिव्यक्त करने का माध्यम बन सके। इस संबंध में वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग, विधायी आयोग तथा अनुवाद ब्यूरो लगातार काम कर रहे हैं किंतु काम की प्रगति असंतोषजनक है। जो अनुवाद हुए हैं वे प्राय: इतने जटिल और दुरूह हैं कि उन्हें पढ़कर एक नई ही भाषा पढ़ने का आभास होता है। इसके अतिरिक्त विकास की दर इतनी धीमी है कि अनुमानत: वैज्ञानिक और तकनीकी शब्दावली आयोग द्वारा सम्पादित एक-एक शब्द की कीमत लगभग 5000 रुपए पड़ती है। इससे स्पष्ट होता है कि जो काम हो भी रहे हैं, केवल संख्यात्मक रूप में हो रहे हैं, गुणात्मक रूप में नहीं।

(छ) यह बात अक्सर कही गयी है कि भारत की भाषा की समस्या का हल त्रिभाषा सूत्र द्वारा संभव है। यह सूत्र निश्चित रूप से बेहद प्रासंगिक है किन्तु समस्या यह है कि इसके सक्रिय पालन के लिए घोषणाएँ करने के अतिरिक्त सरकार ने कोई कदम नहीं उठाए हैं। यदि यह सूत्र सचमुच लागू किया जाए तो हिन्दी के साथ-साथ सभी भारतीय भाषाओं की वास्तविक प्रगति हो सकेगी।

16.4 राजभाषा के रूप में हिन्दी के विकास के सुझाव

1. सबसे पहला सुझाव है त्रिभाषा सूत्र को दृढ़ इच्छाशक्ति के साथ लागू करना। प्रत्येक बच्चे को अपनी प्रारंभिक शिक्षा मातृभाषा में दी जाए, दूसरी भाषा के तौर पर उसे हिन्दी (हिन्दी भाषी बच्चे को दक्षिण या पूर्वोत्तर भारत की भाषा)

सीखनी चाहिए। माध्यमिक कक्षाओं के स्तर पर अंतर्राष्ट्रीय भाषा के रूप में अंग्रेज़ी का ज्ञान कराया जाना चाहिए। यह भी ध्यान रखना चाहिए कि त्रिभाषा सूत्र की सफलता के लिए पहला प्रयास उत्तर भारत की ओर से होना चाहिए ताकि दक्षिण और पूर्वोत्तर भारत के निवासियों की शंकाएँ खत्म हो सकें।

2. जो सरकारी कर्मचारी केन्द्रीय हिन्दी प्रशिक्षण संस्थान से हिन्दी भाषा का कार्यसाधक ज्ञान प्राप्त कर चुके हैं और उस आधार पर वेतन वृद्धि आदि सुविधाएँ भी ले रहे हैं, उनके लिए अनिवार्य होना चाहिए कि वे हिन्दी में ही काम करें। इस संबंध में प्रशिक्षण की प्रक्रिया को बेहतर तथा रुचिकर बनाए जाने की ज़रूरत भी है।
3. मूल समस्या यह है कि राजभाषा के नाम पर जिस तरह की भाषा का प्रयोग किया जा रहा है, वह बेहद यांत्रिक और प्राणविहीन है। इसका मूल कारण है-प्रयोग की कमी। राजभाषा विभाग को पारिभाषिक शब्दावली के स्तर पर ऐसे प्रयास करने चाहिएँ कि वे सहजता के स्तर पर बोधगम्य हो सकें। अंग्रेज़ी के मूल शब्दों में हिन्दी के उपसर्ग या प्रत्यय जोड़कर भी यह कार्य बखूबी किया जा सकता है।
4. संघ लोक सेवा आयोग के स्तर पर विभिन्न भाषाओं के साथ समानता का व्यवहार किया जाना चाहिए। सिविल सेवा तथा अन्य परीक्षाओं में अंग्रेज़ी अनिवार्य भाषा है। होना यह चाहिए कि या तो दोनों भाषाएँ अनिवार्य हों या दोनों को ही प्रशिक्षण के स्तर पर अनिवार्यतः सिखाया जाए।
5. हिन्दी भाषा के वैज्ञानिक-तकनीकी विकास के माध्यम से उसकी राजभाषा के रूप में सफल होने की संभावनाएँ प्रबल हो सकती हैं। अंग्रेज़ी में कई ऐसी सुविधाएँ हैं जिनसे कार्यालय का काम बेहद आसान हो जाता है, जैस ध्वनि पहचान सॉफ्टवेयर (Speech Recognition Software), लेखन-पैड की सुविधा, स्कैन फाइल (Scan file) को टेक्स्ट फाइल (Text file) में रूपांतरित करने की सुविधा, वर्तनी की स्वतः जाँच करने की सुविधा इत्यादि। यदि ये सभी सुविधाएँ हिन्दी में भी आ जाएँ तो उसकी सफलता की व्यावहारिक संभावनाएँ अत्यधिक बढ़ जाती हैं।
6. राजभाषा विभाग की स्थिति अभी ऐसे अधिकारी की है जिसके पास कोई अधिकार नहीं है। यदि उसे इतना अधिकार दिया जाए कि वह प्रत्येक कर्मचारी का मूल्यांकन राजभाषा का प्रयोग करने के आधार पर कर सके तथा उस मूल्यांकन को पदोन्नति और वेतन वृद्धि जैसी प्रक्रियाओं में महत्त्वपूर्ण आधार बना दिया जाए तो बेहतर संभावनाएँ उभर सकती हैं।

दरअसल मूल समस्या सिर्फ राजनीतिक इच्छाशक्ति की कमी है। हमें ध्यान रखना चाहिए कि यह अंग्रेज़ी और हिन्दी की नहीं, आभिजात्य और सामान्य वर्गों की लड़ाई है। लोकतंत्र में निर्णय जनता के हितों से तय होते हैं, न कि नौकरशाही के हितों से। जो लोग कहते हैं कि हिन्दी में राजभाषा बनने के लायक समृद्धि नहीं है, उन्हें ध्यान रखना चाहिए कि अभी भी दस राज्यों में हिन्दी पूरी तरह राजभाषा का कार्य कर रही है, जैसे उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश इत्यादि।

अभ्यास हेतु प्रश्न

1. राजभाषा के रूप में हिन्दी के प्रयोग की वर्तमान स्थिति पर प्रकाश डालिये। **U.P.S.C. (Mains) 2017**
2. राजभाषा हिन्दी के मार्ग की कठिनाइयाँ बताइए और समाधान सुझाइए। **U.P.S.C. (Mains) 2016**
3. "राजभाषा के रूप में हिन्दी का विरोध राजनीतिक कारणों से है" - इस कथन का विवेचन कीजिये। **U.P.S.C. (Mains) 2015**
4. "हिन्दी दिवस (14 सितम्बर) मात्र एक कर्मकाण्ड बनकर रह गया है।" इस कथन का तार्किक उत्तर दीजिए। **U.P.S.C. (Mains) 2014**
5. राजभाषा हिन्दी के विकास और उन्नति में आने वाली बाधाओं का वर्णन कीजिये। **U.P.S.C. (Mains) 2014**
6. राजभाषा हिन्दी के विभिन्न प्रकार्य (टिप्पणी) **U.P.S.C. (Mains) 2012**
7. राजभाषा के रूप में हिन्दी की अद्यतन स्थिति की समीक्षा कीजिये। **U.P.S.C. (Mains) 2008**
8. राजभाषा के रूप में हिन्दी का स्वरूप (टिप्पणी) **U.P.S.C. (Mains) 2004**
9. स्वतंत्र्योत्तर भारत में राजभाषा के रूप में हिन्दी का विकास कहाँ तक सफल हुआ है? चर्चा कीजिये। **U.P.S.C. (Mains) 2002**
10. संघ की भाषा के रूप में हिन्दी के विकास के सूत्र (टिप्पणी) **U.P.S.C. (Mains) 2001**

अध्याय
17

राष्ट्रभाषा हिन्दी

17.1 राष्ट्रभाषा की कसौटियाँ

हिन्दी के राष्ट्रभाषा होने का प्रश्न मूलत: इस बात पर टिका है कि हम किसी भाषा के राष्ट्रभाषा होने के लिए कौन सी कसौटियाँ स्वीकारते हैं। विभिन्न भाषाविदों के विचारों को संश्लेषण करें तो किसी भाषा के राष्ट्रभाषा होने की निम्नलिखित कसौटियाँ मानी जा सकती हैं-

(क) वह भाषा देश के सभी या अधिकतम व्यक्तियों द्वारा बोली जा सकती हो।

(ख) उसे बोलने वाले देश के किसी एक हिस्से में नहीं बल्कि विभिन्न हिस्सों में हों ताकि वह भाषा पूरे देश में सम्पर्क सूत्र स्थापित करने में सक्षम हो सके।

(ग) वह भाषा राष्ट्र की सांस्कृतिक विरासत को धारण करने में सक्षम हो अर्थात् देश के विभिन्न सांस्कृतिक पक्षों की अभिव्यक्ति उसमें हो पाती हो।

(घ) उसका शब्द भंडार इतना व्यापक हो कि देश के विभिन्न हिस्सों में प्रचलित शब्दावली उसमें शामिल हो सके। उसमें यह प्रवृत्ति भी होनी चाहिए कि देश की भाषाओं के अन्य शब्दों को वह सहजतापूर्वक शामिल करे, न कि उनसे परहेज करे।

(ङ) उस भाषा का व्याकरण सरल होना चाहिए ताकि देश के अन्य हिस्सों के निवासी यदि उसे सीखना चाहें तो सीखने की प्रक्रिया कठिन न हो।

(च) उसकी ध्वनि संरचना व्यापक तथा लचीली होनी चाहिए। यदि अन्य भाषाओं की कुछ ध्वनियाँ उसमें प्रयुक्त न होती हों तो उन्हें स्वीकारने की क्षमता उसमें होनी चाहिए।

(छ) उसकी लिपि भी राष्ट्रीय लिपि होनी चाहिए अर्थात् ऐसी लिपि जिसमें देश की सभी भाषाओं में प्रयुक्त होने वाले ध्वनि संकेत लिखे जा सकते हों।

(ज) उस भाषा में साहित्य की रचना व्यापक तौर पर हुई हो तथा साहित्य देश के विभिन्न क्षेत्रों में रचा गया हो।

(झ) उस भाषा ने राष्ट्र के प्रमुख आंदोलनों में सक्रिय सहभागिता की हो अर्थात् सामाजिक विकास की प्रक्रिया में सक्रिय भूमिका निभाई हो।

17.2 हिन्दी के राष्ट्रभाषा होने के तर्क

अब प्रश्न है कि क्या हिन्दी इस कसौटियों पर खरी उतरती है? ध्यानपूर्वक देखें तो प्राय: सभी कसौटियों पर हिन्दी की स्थिति मज़बूत है। हिन्दी के राष्ट्रभाषा होने के पक्ष में निम्नलिखित तर्क दिए जा सकते हैं-

(क) सबसे पहला तर्क लोकतांत्रिक तर्क है। हिन्दी भारत में सर्वाधिक जनसंख्या द्वारा प्रयुक्त होने वाली भाषा है। यह दस राज्यों में प्रथम भाषा है जो लगभग 42% जनसंख्या का प्रतिनिधित्व करते हैं। कुछ ऐसे राज्य हैं जहाँ अन्य आर्य भाषाएँ प्रचलित हैं जैसे बंगाल, महाराष्ट्र, उड़ीसा, पंजाब, गुजरात इत्यादि। इन राज्यों की भाषाएँ हिन्दी की तरह संस्कृत से ही व्युत्पन्न हुई हैं इसलिए इन राज्यों के निवासी हिन्दी समझने में समस्या महसूस नहीं करते हैं। ऐसे लोगों की संख्या भारत की जनसंख्या में लगभग 30% है। इन 70-72% व्यक्तियों के अतिरिक्त शेष भारत में भी टूटी-फूटी हिन्दी बोली और समझी जाती है। उदाहरण के लिए कर्नाटक, आंध्र प्रदेश और केरल जैसे राज्यों में हिन्दी कम से कम कामचलाऊ भाषा के तौर पर सहजता से प्रयुक्त होती है। भारत की कोई भी अन्य भाषा इस दृष्टि से हिन्दी से काफी पीछे है। बांग्ला और तेलुगू के प्रयोक्ताओं की संख्या हिन्दी के तुरंत बाद सर्वाधिक है, पर दोनों में से किसी के प्रयोक्ता (प्रथम भाषा के तौर पर) भारत की जनसंख्या में 10% भी नहीं हैं। इनका क्षेत्रगत विस्तार भी सीमित ही है। स्पष्ट है कि संख्या और क्षेत्रगत व्यापकता दोनों दृष्टियों से हिन्दी को ही राष्ट्रभाषा का दर्जा मिल सकता है।

(ख) हिन्दी आरम्भ से ही देश की राष्ट्रभाषा रही है। इसका मूल कारण यह है कि देश की लगभग सभी प्रमुख भाषाएँ या तो आर्यभाषा संस्कृत से विकसित हुई हैं या व्याकरण अथवा शब्दावली के स्तर पर संस्कृत से अत्यधिक प्रभावित हैं। विकास की इस प्रक्रिया में हिन्दी उस स्थान पर बोली गई जो हमेशा से भारतीय इतिहास के राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक परिवर्तनों का केन्द्र बिन्दु रहा। चाहे पाटलिपुत्र हो, दिल्ली हो या आगरा- ये प्रमुख स्थान हिन्दी भाषी क्षेत्र ही रहे। इतना ही नहीं, जब दक्षिण की ओर राजनीतिक अभियान होने लगे तो हिन्दी भाषा भी दक्खिनी हिन्दी बनकर दक्षिण भारत में पहुँच गई। 20वीं सदी में हिन्दी फिल्मों तथा हिन्दी साहित्य ने पूरे देश में भाषा का जबर्दस्त प्रचार-प्रसार किया, 20वीं शताब्दी के आरम्भ में देवकीनन्दन खत्री के उपन्यास 'चन्द्रकांता' और मैथिलीशरण गुप्त की रचना 'भारत भारती' ने पूरे देश में हिन्दी का डंका बजाया तो आज़ादी के बाद के दौर में हिन्दी फिल्मों ने दक्षिण भारत को अपनी गिरफ्त में ले लिया। अत: आरम्भ से लेकर आज तक हिन्दी देश की सम्पर्क भाषा रही है।

(ग) हमारे देश के सबसे बड़े दो सामाजिक आंदोलन- 'भक्ति आंदोलन' तथा 'स्वतंत्रता आंदोलन' हिन्दी भाषा के दम पर ही सफल हो सके। भक्ति की परम्परा उत्पन्न चाहे दक्षिण में हुई हो और महाराष्ट्र, गुजरात होते हुए उत्तर भारत पहुँची हो, किंतु भक्ति ने आंदोलन का रूप उत्तर भारत में ही लिया जिसमें भाषा की भी महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है। संत नामदेव और तुकाराम ने महाराष्ट्र में; नरसी मेहता ने गुजरात में, चैतन्य महाप्रभु ने बंगाल में, गुरुनानक तथा अन्य गुरुओं ने पंजाब में और मीराबाई ने राजस्थान में भक्ति की जो धारा बहाई, वह अपने स्वरूप में हिन्दी को राष्ट्रभाषा ही साबित करती थी। स्वाधीनता संग्राम में तो औपचारिक रूप से हिन्दी को राष्ट्रभाषा कहा गया। केशवचन्द्र सेन और बंकिमचन्द्र चटर्जी ने नवजागरण आंदोलन में भी कहा कि "देश की एकता हिन्दी भाषा के माध्यम से ही सम्भव है"। आगे चलकर 1918 ई. में महात्मा गांधी ने घोषणा की कि "हिन्दी ही हिन्दुस्तान की राष्ट्रभाषा हो सकती है और होनी चाहिए *xxxx* हिन्दी का प्रश्न स्वराज्य का प्रश्न है।" इसके बाद सम्पूर्ण नवजागरण तथा स्वाधीनता आंदोलन में गैर हिन्दी भाषी राज्यों के नेताओं ने हिन्दी के प्रचार-प्रसार को एक नीति ही बना लिया। पंजाब में लाला लाजपतराय और यशपाल जैसे क्रांतिकारियों ने; महाराष्ट्र में सावरकर, तिलक व कालेलकर ने; गुजरात में दयानन्द सरस्वती, गांधी तथा पटेल ने; बंगाल में केशवचन्द्र सेन, राजेन्द्र लाल मित्र, बंकिम चन्द्र चटर्जी, सुभाष चन्द्र बोस तथा क्षितिमोहन सेन ने; और दक्षिण भारत में चक्रवर्ती राजगोपालाचारी, मोटूरि सत्यनारायण तथा टी. विजय राघवाचार्य जैसे नेताओं ने हिन्दी के पक्ष में खुलकर अपनी राय व्यक्त की।

(घ) हिन्दी के राष्ट्रभाषा होने का एक अन्य आधार है- उसमें रचित साहित्य की क्षेत्रगत व्यापकता। प्राचीन काल से हिन्दीतर प्रदेशों में कई रचनाकारों ने हिन्दी साहित्य की रचना की। पंजाब में गुरु नानक, गुरु अर्जुनदेव, गुरु गोविंद सिंह, श्रद्धाराम फिल्लौरी तथा यशपाल जैसे रचनाकार हुए; महाराष्ट्र में प्रभाकर माचवे तथा गजानन माधव मुक्तिबोध ने रचनाएँ कीं; तमिलनाडु में वी. राजू जैसे साहित्यकार हुए; बिहार-बंगाल के क्षेत्र में विद्यापति ने लिखा; आंध्र प्रदेश में मोटूरि सत्यनारायण का हिन्दी साहित्य अत्यंत प्रसिद्ध हुआ; असम में शंकरदेव तथा केरल में श्रीराम वर्मा तथा शाह जी महाराज जैसे कवियों ने हिन्दी में ही लिखा। स्पष्ट है कि देश के लगभग सभी क्षेत्रों में हिन्दी साहित्य की रचना हर काल में होती रही है जो उसके राष्ट्रभाषा होने का एक प्रमुख आधार बनता है।

(ङ) जहाँ तक राष्ट्रभाषा की अन्य कसौटियों का प्रश्न है उन पर भी हिन्दी भाषा खरी उतरती है। सबसे पहली बात यह है कि इसका व्याकरण पूर्णत: वैज्ञानिक है जिसे अनुभव से तो सीखा ही जा सकता है, वैज्ञानिक पद्धति से भी सीखने में समस्या नहीं होती। इसकी ध्वनि संरचना में वे सभी ध्वनियाँ शामिल कर ली गई हैं जो भारत की अन्य भाषाओं में प्रयुक्त होती हैं ताकि यह राष्ट्र के सभी व्यक्तियों के व्यवहारों के लिए पर्याप्त भाषा बन सके। ऐसी प्रमुख ध्वनियाँ हैं- ळ (मराठी से); क़ ख़ ग़ ज़ फ़ (फारसी से)। इतना ही नहीं, संस्कृत और अपभ्रंश में जो ध्वनियाँ मिलती थीं तथा जिनका प्रयोग आज होता है, वे भी इसमें समाहित हैं, जैसे ऋ, विसर्ग (संस्कृत से); ड़ और ढ़ (अपभ्रंश से)। वर्तमान भूमंडलीकृत समय में अंग्रेज़ी के शब्दों की संख्या तथा महत्त्व बढ़ने के कारण कुछ अंग्रेज़ी ध्वनियाँ जैसे 'ऑ' ध्वनि भी इसमें शामिल कर ली गई है जिसका प्रयोग डॉक्टर, हॉस्पिटल इत्यादि शब्दों में होता है।

(च) हिन्दी की लिपि देवनागरी भी समानांतर रूप से राष्ट्र लिपि के रूप में परिवर्द्धित होती रही है। वे सभी संकेत जो भारतीय भाषाओं की ध्वनियों के लिए चाहिएँ किंतु इसमें नहीं थे, अब स्वीकार किए जा चुके हैं।

दरअसल, हिन्दी को राष्ट्रभाषा मानने का अर्थ यह नहीं है कि देश की अन्य भाषाएँ राष्ट्रेतर, अराष्ट्रीय या राष्ट्र-विरोधी भाषाएँ हैं। जिस तरह हिन्दी इस राष्ट्र की भाषा है, वैसे ही वे भी राष्ट्रीय भाषाएँ हैं। हिन्दी पूरे देश की सम्पर्क भाषा रही है-इसी आधार पर उसे राष्ट्रभाषा का दर्जा मिलना चाहिए। यह दर्जा सिर्फ एक प्रतीकात्मक दर्जा है। जिस प्रकार 'हॉकी' राष्ट्रीय खेल है और 'जन गण मन' राष्ट्रीय गान है, किंतु इसका अर्थ यह नहीं कि शेष खेल और गीत अराष्ट्रीय या राष्ट्रविरोधी हैं; उसी प्रकार हिन्दी के राष्ट्रभाषा होने को बाकी भाषाओं के विरोध में नहीं देखा जाना चाहिए। होना तो यह चाहिए कि त्रिभाषा सूत्र का क्रियान्वयन पूरी ईमानदारी तथा प्रतिबद्धता से हो ताकि सभी भाषाओं का विकास संतुलित व समन्वित तरीके से हो सके तथा भाषा के आधार पर कोई भी क्षेत्र तुलनात्मक वंचन महसूस न करे।

17.3 राष्ट्रभाषा के रूप में हिन्दी की ऐतिहासिक विकास-यात्रा

(क) ऐतिहासिक रूप से अपभ्रंश, अवहट्ट के समय से ही हिन्दी राष्ट्रभाषा के रूप में प्रचलित रही क्योंकि यह संस्कृत से परिवर्तन के समय से ही उस स्थान की भाषा रही जो पूरे देश का सम्पर्क सूत्र बना रहा। आर्य भाषाओं से तो इसका गहरा संबंध था ही, द्रविड़ भाषाओं से भी शब्दावली के आदान-प्रदान के कारण संस्कृत का गहरा संबंध बना था जिसका लाभ इसे मिला।

(ख) आदिकाल, भक्तिकाल का साहित्य सिर्फ हिन्दी प्रदेश में ही नहीं रचा गया अपितु हिन्दीतर प्रदेशों में भी रचागया।

(ग) हमारे देश के सामाजिक विकास में दो आंदोलनों की सबसे बड़ी भूमिका रही है- भक्ति आंदोलन व स्वतंत्रता आंदोलन। इन दोनों आंदोलनों में हिन्दी राष्ट्रभाषा के रूप में स्थापित हुई। उसी ने इन आंदोलनों को भाषायी आधार मुहैया कराया जिसके बिना कोई भी सामाजिक आंदोलन सफल नहीं हो सकता।

(घ) स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भाषायी संबंध नाटकीय तरीके से बदले। स्वतंत्रता से पहले सभी नेताओं की सहमति थी कि हिन्दी ही राजभाषा व राष्ट्रभाषा बनेगी। किन्तु, स्वतंत्रता के बाद क्षेत्रवादी प्रवृत्तियाँ उभरने लगीं और विभिन्न भाषा-भाषियों में संघर्ष होने लगा। परिणाम यह हुआ कि भाषा देश को जोड़ने के स्थान पर देश को तोड़ने का माध्यम बनने लगी। 1956 ई. में भाषा के आधार पर राज्यों का पुनर्गठन हुआ। 1963 ई. में पश्चिम बंगाल और तमिलनाडु जैसे राज्यों में हिन्दी विरोधी आंदोलन बहुत तीव्रता से उभरा। इसके बाद किसी भी सरकार को इतना साहस नहीं हुआ कि वह राजनीतिक दृष्टि से संवेदनशील इस मुद्दे पर कोई ठोस पहल कर सके। 1967 ई. के बाद गठबंधन सरकारों का दौर आने लगा। केंद्र में पहली बार कांग्रेस की सरकार को मार्क्सवादियों का समर्थन लेना पड़ा जिनकी राजनीति मुख्यत: पश्चिम बंगाल व केरल में केंद्रित थी। इसका स्वाभाविक परिणाम था कि राष्ट्रभाषा के मुद्दे को ठंडे बस्ते में डाल दिया गया। 80 के दशक के अंत में एकदलीय सरकार की धारणा लगभग खत्म होने लगी और साझा या गठबंधन सरकारों का दौर केन्द्रीय राजनीति में स्थापित हो गया। इस दौर में केन्द्र सरकार का अस्तित्व राज्यस्तरीय अथवा क्षेत्रीय दलों की इच्छा पर ही टिका रहा। राष्ट्रभाषा का मुद्दा ऐसा है कि किसी भी गठबंधन के दलों की सहमति इसके पक्ष में नहीं बन पाती। हमारे भूतपूर्व प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी, जो संयुक्त राष्ट्रसंघ में हिन्दी में भाषण देने के कारण अत्यधिक चर्चित रहे; साझा सरकारों की आंतरिक, राजनीतिक जटिलताओं के परिप्रेक्ष्य में उनका यह कथन बेहद प्रासंगिक है कि "भारत के बाहर हिन्दी बोलना आसान है, भारत में नहीं।"

स्पष्ट है कि 1953 ई. से आज तक राजनीतिक हालात लगातार ऐसे बनते रहे कि राष्ट्रभाषा का मुद्दा कभी प्रभावी रूप से उठ नहीं सका। लोकतंत्र पर आधारित राजनीति का नुकसान होता है कि इसमें मुद्दों का निर्धारण संख्या बल से होता है, न कि तात्विक महत्त्व की दृष्टि से। इसके बाद भी पिछले कुछ समय में ऐसे कुछ विकास हुए हैं जो राष्ट्रभाषा हिन्दी के पक्ष में जाते दिखते हैं-

(क) संचार माध्यमों के तीव्र विकास ने हिन्दी को विकसित करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है। हिन्दी की फिल्मों ने दक्षिण भारत में (और आजकल विदेशों में भी) हिन्दी का जितना प्रचार-प्रसार किया है, उतना तो संभवत: बाकी कारणों ने मिलकर भी नहीं किया। संगीत के क्षेत्र में भी उत्तर और दक्षिण को समन्वित करने के निरंतर प्रयास हो रहे हैं जिससे भाषा को बल मिलता है।

(ख) राजनीतिक प्रक्रिया का विकेन्द्रीकरण चाहे जितना भी हुआ हो, इसमें हिन्दी भाषा की प्रवृत्तियाँ बढ़ती ही गई हैं। क्षेत्रीय दलों में ऐसे राजनेता उभर रहे हैं जो शिक्षा की दृष्टि से आभिजात्य वर्ग के नहीं हैं। देश भर के ऐसे नेताओं से राजनीति की तस्वीर तय होती है। इन चर्चाओं का माध्यम स्वाभाविक रूप से हिन्दी भाषा ही हो सकती है, अंग्रेज़ी नहीं।

(ग) हिन्दी क्षेत्र की जनसंख्या अधिक होना भी इसके पक्ष में गया है। आज के मुक्त बाज़ार को विज्ञापन हेतु वह भाषा चाहिए जिसे मध्य वर्ग के सामान्य लोग समझते हों, न कि आभिजात्य वर्ग के अल्पसंख्यक लोग। हिन्दी एकमात्र भाषा है जो किसी व्यावसायिक प्रतिष्ठान का संदेश लगभग पूरे देश तक एक साथ पहुँचा सकती है।

(घ) वर्तमान समय में पर्यटन आदि सुविधाओं का तीव्र विकास भी हिन्दी के पक्ष में गया है। दक्षिण भारत या पूर्वोत्तर भारत का कोई भी व्यक्ति यदि देश का भ्रमण करना चाहे तो उसे अन्ततः हिन्दी का ही सहारा लेना पड़ता है।

(ङ) पिछले कुछ समय में सरकार की कुछ नीतियाँ भी सहायक रही हैं। भारत के प्रायः सभी राज्यों में दसवीं कक्षा तक प्रत्येक बच्चे को हिन्दी का प्राथमिक ज्ञान दिया जाता है। कर्नाटक, केरल और आंध्र प्रदेश के शिक्षित व्यक्ति इसी कारण हिन्दी आसानी से समझते हैं। तमिलनाडु में इस नीति का विरोध किया गया था, अतः वहाँ की स्थिति अन्य दक्षिणी राज्यों से कुछ भिन्न है। तमिलनाडु को छोड़कर शेष पूरे भारत में दूरदर्शन से हिन्दी समाचार प्रसारित किए जाते थे, इन्होंने भी हिन्दी का प्रसार करने में भारी योगदान दिया।

17.4 स्वतंत्रता आन्दोलन के दौरान राष्ट्रभाषा के रूप में हिन्दी का विकास (संक्षिप्त चर्चा)

राष्ट्रभाषा की आवश्यकता किसी भी राष्ट्र की सांस्कृतिक एवं राजनीतिक एकता की जागृति एवं अक्षुण्णता के लिए होती है। जिस देश के लोग एक भाषा के सूत्र में बंधे होते हैं, उनके भावों और विचारों में एकरूपता रहती है। भाषा की विभिन्नता राष्ट्र की राजनीतिक अथवा सांस्कृतिक एकता की जागृति में बाधा पहुँचाती है। अतः प्रत्येक समुन्नत, स्वतंत्र एवं स्वाभिमानी देश की अपनी राष्ट्रभाषा है। इंग्लैंड, अमेरिका, फ्राँस, रूस, चीन, जापान आदि सभी देशों में वहाँ की व्यापक बहुप्रचलित भाषा राष्ट्रभाषा के रूप में प्रयुक्त होती है। अतः राष्ट्रभाषा की आवश्यकता असंदिग्ध है।

भारत में आरंभ से ही मध्यदेश की भाषाएँ-संस्कृत, पालि, प्राकृत, अपभ्रंश अपने-अपने काल में राष्ट्रभाषाएँ रहीं। अतः मध्यदेश की प्रमुख भाषा होने के कारण हिन्दी इनकी सहज उत्तराधिकारिणी हुई। वह आरंभ से ही सारे देश की सामान्य भाषा रही। सारे राष्ट्र में वह थोड़ी बहुत बोली और समझी जाती रही। हमारे देश में अकबर के समय से लेकर लगभग तीन शताब्दी तक फारसी राजभाषा रही और सन् 1833 के बाद से निचले स्तर पर उर्दू और उच्च स्तर पर अंग्रेजी राजभाषा रही है; परन्तु सारे देश की संपर्क भाषा हिन्दी ही रही है। सैकड़ों वर्षों से जिस किसी को भी जन संपर्क करने की आवश्यकता हुई, चाहे वह शासक हो, धार्मिक या सामाजिक नेता हो, चाहे लेखक हो, उसने हिन्दी का उपयोग किया।

19वीं शताब्दी में ईसाई मिशनरियों, फोर्ट विलियम कॉलेज एवं सामाजिक-धार्मिक नवजागरण ने राष्ट्रभाषा के रूप में हिन्दी को विकसित करने में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। नवजागरण के नेताओं ने राष्ट्रीय एकता के लिए हिन्दी के प्रयोग पर बल दिया। इनमें राजा राममोहन राय, केशवचन्द्र सेन, एनी बेसेन्ट, महर्षि दयानन्द सरस्वती आदि का नाम महत्त्वपूर्ण है। महर्षि दयानन्द यद्यपि गुजराती एवं संस्कृत के अच्छे जानकार थे तथापि उन्होंने अपना सारा धार्मिक साहित्य हिन्दी में लिखा। केशवचंद्र सेन ने 'भारतीय एकता कैसे हो' इस विषय पर लिखा, "उपाय यह है कि भारत में एक ही भाषा का व्यवहार हो। इस समय जितनी भाषाएँ भारत में प्रचलित हैं उनमें हिन्दी भाषा सारी जगह प्रचलित है। इस हिन्दी भाषा को अगर भारतवर्ष की एकमात्र भाषा बनाया जाये, तो यह काम सहज ही और शीघ्र सम्पन्न हो सकता है।"

राष्ट्रभाषा के रूप में हिन्दी के विकास में राष्ट्रीय स्वाधीनता आन्दोलन ने सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। सबसे प्रमुख राजनीतिक संगठन **'अखिल भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस'** के सभी बड़े नेताओं ने राष्ट्रीय चेतना के जागरण हेतु एक भाषा की आवश्यकता पर बल देते हुए इसके लिए हिन्दी को उपयुक्त बताया। जैसे-जैसे राष्ट्रीय स्वाधीनता आन्दोलन तीव्र होता गया, हिन्दी का महत्त्व भी बढ़ता गया। कांग्रेस के 1925 के कानपुर अधिवेशन में यह प्रस्ताव स्वीकृत हुआ कि कांग्रेस

अपने सभी कार्यों में प्रादेशिक भाषाओं और हिन्दी का प्रयोग करे। कांग्रेस अधिवेशनों के साथ राष्ट्रभाषा सम्मेलन होने लगे। शीघ्र ही सभी प्रमुख नेताओं के द्वारा स्वाधीनता की आकांक्षा को राष्ट्रीय स्तर पर विकसित करने के लिए भाषा के स्तर पर हिन्दी को दिए गए समर्थन के कारण वह नाना भाषा-भाषियों के बीच संयोग-सूत्र बन गई। महाराष्ट्र, बंगाल, गुजरात, तमिलनाडु, कर्नाटक, केरल इत्यादि अहिन्दी भाषी क्षेत्रों में हिन्दी को राष्ट्रभाषा के रूप में व्यापक स्वीकृति मिली।

महाराष्ट्र में बाल गंगाधर तिलक, एन.सी. केलकर, डॉ. भण्डारकर, दामोदर सावरकर, गोपालकृष्ण गोखले, काका कालेलकर आदि नेताओं ने हिन्दी को भारतवर्ष की सामान्य भाषा बनाने की बात कही।

बंगाल के नेताओं ने भी हिन्दी को अखिल भारतीय एकता की दृष्टि से देखा। डॉ. राजेन्द्र लाल मित्र, राजनारायण बोस, भूदेव मुखर्जी और नवीनचन्द्र राय ने राष्ट्रीय एकता के लिए हिन्दी की अनिवार्यता पर बल दिया। बंकिमचंद्र चटर्जी ने लिखा- ''हिन्दी भाषा की सहायता से भारतवर्ष के विभिन्न प्रदेशों के मध्य में जो ऐक्य-बन्धन संस्थापन करने में समर्थ होंगे वही सच्चे भारत बन्धु पुकारे जाने योग्य हैं।'' महायोगी श्री अरविन्द, नेताजी सुभाषचन्द्र बोस, रवीन्द्रनाथ टैगोर, सरोजिनी नायडू आदि विद्वानों एवं नेताओं ने भी हिन्दी का पक्ष लिया। नेहरू रिपोर्ट में भी इसकी सिफारिश की गई - ''यदि हम लोगों ने तन-मन-धन से प्रयत्न किया तो वह दिन दूर नहीं है जब भारत स्वाधीन होगा और उसकी राष्ट्रभाषा होगी हिन्दी।''

गुजरात में राष्ट्रभाषा प्रचार के कार्य को स्वतंत्रता आन्दोलन के साथ **महात्मा गांधी** ने अग्रसर किया। 1918 ई0 में कांग्रेस के इन्दौर अधिवेशन में उन्होंने अपना स्पष्ट मत व्यक्त किया है- *"हिन्दी ही हिन्दुस्तान की राष्ट्रभाषा हो सकती है और होनी चाहिए।"* वे मानते थे कि *"हिन्दी का प्रश्न स्वराज्य का प्रश्न है।"*

महात्मा गांधी ने सैद्धांतिक स्तर पर भी हिन्दी को राष्ट्रभाषा के रूप में प्रतिष्ठित किया। उन्होंने सैद्धातिक दृष्टि से राष्ट्रभाषा की व्याख्या करते हुए कहा कि राष्ट्रभाषा होने के लिए निम्नलिखित आवश्यकताएँ पूरी होनी चाहिएँ -

(क) वह भाषा राष्ट्र के बहुसंख्यक लोग जानते और बोलते हों।

(ख) जो सीखने में सुगम हो।

(ग) जिसके द्वारा भारत वर्ष के धार्मिक, आर्थिक तथा राजनीतिक व्यवहार निभ सकें।

(घ) जो क्षणिक या अल्पस्थायी स्थिति पर निर्भर न हो।

गांधी जी के अनुसार राष्ट्रभाषा के ये सारे गुण भारत की भाषाओं में केवल हिन्दी में मिलते हैं। उन्होंने कहा- *"अगर स्वराज्य अंग्रेजी बोलनेवाले भारतीयों का और उन्हीं के लिए होने वाला हो तो निस्सन्देह अंग्रेजी ही राष्ट्रभाषा होगी"*। उन्होंने स्पष्ट किया कि स्वराज्य करोड़ों भूखों मरने वालों, निरक्षरों और दलितों तथा अन्त्यजों का है, और उनकी भाषा हिन्दी ही हो सकती है।

महात्मा गांधी की प्रेरणा से ही वर्धा और मद्रास में **राष्ट्रभाषा प्रचार सभाएँ** स्थापित हुईं जिनके हज़ारों प्रचारकों ने अहिन्दी प्रदेशों में हजारो-लाखों लोगों को हिन्दी सिखाई। दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा, मद्रास की स्थापना गांधी जी ने ही की। इसकी शाखाएँ केरल, कर्नाटक और आन्ध्रप्रदेश में भी खुलीं। काका साहब कालेलकर और मोटूरि सत्यनारायण जैसे महान विद्वान और नेता हिन्दी प्रचारक बनकर दक्षिण भारत में हिन्दी का प्रचार करते रहे।

दक्षिण भारत में ही नहीं, अन्य अहिन्दी प्रान्तों में भी राष्ट्रभाषा हिन्दी का प्रचार करने के लिए उन्हीं प्रांतों के लोगों में से कुछ कई वर्षों तक सेवा करते रहे। **असम** में 'असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति', 'हिन्दी असमिया साहित्य परिषद्' ने हिन्दी का जोरदार आन्दोलन चलाया। **उड़ीसा** में जगह-जगह 'हिन्दी शिक्षण मन्दिर' स्थापित हुए। 'राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धा', 'हिन्दुस्तानी प्रचार सभा, वर्धा', 'हिन्दी विद्यापीठ, बम्बई', 'गुजरात विद्यापीठ', 'महाराष्ट्र राष्ट्रभाषा सभा, पुणे' और 'हिन्दी प्रचार सभा, हैदराबाद' आदि प्रचार सभाओं ने अपने-अपने प्रदेश में उल्लेखनीय कार्य किया। आज तक ये संस्थाएँ सक्रिय हैं।

इस प्रकार महात्मा गांधी के प्रयत्नों से पूरे देश में राष्ट्रभाषा हिन्दी का प्रचार-प्रसार हुआ और भाषा की एकता के साथ गांधी जी ने देश को एक करने में भारी सफलता प्राप्त की। राष्ट्रप्रेम और राष्ट्रभाषा पर्यायवाची हो गये।

दक्षिण भारत में भाषाएँ द्रविड़ परिवार की हैं, किन्तु युग-युगान्तर से दक्षिण भारतीय भाषाओं तमिल, मलयालम, कन्नड़ और तेलुगू पर संस्कृत का इतना अधिक प्रभाव पड़ता रहा है कि दक्षिण भारत और उत्तरी भारत का सांस्कृतिक शब्द भंडार सामान्य हो गया है। दक्षिण के तीर्थ स्थानों में हिन्दी का व्यवहार बराबर होता आया है। अखिल भारतीय सेवाओं, व्यापार,

यातायात, शिक्षा आदि के कारण लाखों दक्षिणात्य परिवार हिन्दी से परिचित हैं। एक समय में मद्रास के युवकों ने ही गांधी जी से मांग की थी कि हमारे प्रान्त में हिन्दी प्रचारक भेजे जाएँ। वहाँ पर विद्यालयों में हिन्दी की शिक्षा अनिवार्य रही है और यह अनिवार्य शिक्षा सी. राजगोपालाचारी आदि नेताओं के प्रयत्नों से वर्षों दी जाती रही है। 1929 ई. में ही राजाजी ने दक्षिणवालों को हिन्दी सीखने की सीख दी थी। उनका कहना था कि "हिन्दी भारत की राष्ट्रभाषा तो है ही, यही जनतन्त्रात्मक भारत में राजभाषा भी होगी।" उन्होंने 1937 ई. में मद्रास में सम्पन्न हुए हिन्दी साहित्य सम्मेलन में यह प्रस्ताव रखा था कि कांग्रेस की सारी कार्यवाही हिन्दी में हो। यह प्रस्ताव सर्वसम्मति से पारित किया गया था। सर टी. विजयराघवाचार्य ने कहा- "चाहे व्यावहारिक दृष्टि, सैद्धांतिक दृष्टि या राष्ट्रीय दृष्टि से देखा जाए, हिन्दी का कोई दूसरा प्रतिद्वन्द्वी संभव नहीं है।..... .किसी दक्षिण भारतीय ऐसे व्यक्ति को शिक्षित नहीं मानना चाहिए जिसने हिन्दी में कोई लिखित या मौखिक परीक्षा पास न की हो।" सर सी.पी. रामस्वामी अय्यर, जस्टिस कृष्णस्वामी अय्यर, महामहिम अनन्त शयनम आयंगर, एस. निजलिंगप्पा, टी. आर. वेंकटराम शास्त्री, एन. सुन्दरैय्या आदि नेताओं ने भी हिन्दी को राष्ट्रभाषा बनांने का पक्ष लिया।

राजर्षि पुरुषोत्तम दास टण्डन को 'हिन्दी का प्रहरी' कहा गया है। उनके प्रयत्नों से 'हिन्दी साहित्य सम्मेलन' की स्थापना हुई जिसकी परीक्षाओं में लाखों विद्यार्थी बैठ चुके हैं। सम्मेलन ने अपने अधिवेशनों में हिन्दी प्रचार की दिशा में महत्त्वपूर्ण कार्य किया। 'काशी नागरी प्रचारिणी सभा' की उपलब्धियाँ भी महत्त्वपूर्ण हैं। पंजाब केसरी लाला लाजपतराय ने 'राष्ट्रीय शिक्षण विद्यालय' के द्वारा बहुत से बलिदानी प्रचारक तैयार किये जो राष्ट्रीय आन्दोलन और समाज सुधार के साथ हिन्दी प्रचार का भी काम करते थे। स्वतंत्र भारत के प्रथम राष्ट्रपति डॉ. राजेन्द्र प्रसाद हिन्दी के प्रचार को राष्ट्रीयता का मुख्य अंग मानते थे।

राष्ट्रीयता की धारणा का संबंध भौगोलिक एकता से नहीं है। 'देश' भौगोलिक इकाई को व्यक्त करता है जबकि 'राष्ट्र' भावनात्मक इकाई को। भारत जैसे बहुसांस्कृतिक देश में एकता की भावना स्वाभाविक रूप से पैदा नहीं हो सकती थी। यूरोप के देशों में राष्ट्रीयता का आधार कोई न कोई नृजातीय विशेषता मानी जाती है, जिसमें भाषा सबसे महत्त्वपूर्ण है। भारत के लोग एक-दूसरे को जब तक जानते ही नहीं, राष्ट्रीय आंदोलन के नेताओं की बातों को समझते ही नहीं, तब तक भारत में राष्ट्रीय एकता की स्थापना संभव नहीं थी। भारत को एक वैचारिक सूत्र में बांधने के लिए आवश्यक था कि एक भाषा ऐसी हो, जो सारे देश के बीच संपर्क-सूत्र का कार्य कर सके। राष्ट्रीय आंदोलन की सफलता की इस आधारभूत आवश्यकता की पूर्ति हिन्दी ने की। इस दृष्टि से आज़ाद हिंदुस्तान हिन्दी का ऋणी है।

17.5 राष्ट्रभाषा हिन्दी के विकास में विभिन्न नेताओं का योगदान

सेठ गोविन्ददास

हिन्दी के प्रसार के साथ इसे राजभाषा के प्रतिष्ठित पद पर सुशोभित करवाने में सेठ गोविन्ददास की अविस्मरणीय भूमिका रही। सन् 1916 में बीस वर्ष की अवस्था में उन्होंने जबलपुर में 'शारदा भवन' नामक पुस्तकालय स्थापित कर हिन्दी-आंदोलन में भाग लेना शुरू किया था। उन्होंने जबलपुर से 'शारदा', 'लोकमत' तथा 'जयहिन्द' पत्रों की शुरूआत कर जन-मन में हिन्दी के प्रति प्रेम जगाने और साहित्यिक परिवेश बनाने का अनुप्रेरक प्रयास किया। उन्होंने सवतंत्रता आन्दोलन में बढ़-चढ़कर भाग लिया और हिन्दी के प्रचार-प्रसार लिए सतत संघर्ष किया। सन् 1927 में उन्होंने कौंसिल ऑफ स्टेट में सर्वप्रथम हिन्दी भाषा के प्रश्न को उठाया उसके पहले केंद्रीय व्यवस्थापिका सभा अथवा प्रांतीय विधानसभाओं में यह प्रश्न उठा ही न था। भारतीय संविधान सभा में हिन्दी और हिन्दुस्तानी को लेकर उठे विवाद को शांत करने में सेठ गोविन्ददास का विशेष महत्त्व रहा है। हिन्दी को भारत की राष्ट्र भाषा बनाने के स्वप्न दृष्टाओं में सेठ गोविन्ददास अनन्य इसलिए हैं कि उन्होंने संसद में हिन्दी के पक्ष में मतदान करने के लिये अपने राजनैतिक दल कांग्रेस के व्हिप का उल्लंघन करने के लिये केन्द्रीय नेतृत्व से अनुमति ली तथा कांग्रेस पार्टी के समस्त अंतर्विरोधों को झेला और हिन्दी के पक्ष में निर्भीकता के साथ मतदान किया। राष्ट्रभाषा हिन्दी को सम्मानजनक स्थान दिलाने के लिए 1968 में देशव्यापी आन्दोलन चल रहा था। इसी क्रम में सेठ गोविन्द दास जी ने 1968 में भारत भ्रमण भी किया तथा लोगों से हिन्दी के प्रयोग को बढ़ावा देने के लिए आग्रह किया। हिन्दी तथा देवनागरी लिपि के सन्दर्भ में उनके विचार अनुकरणीय हैं- *"जब हम अपना जीवन जननी हिन्दी, मातृभाषा हिन्दी के लिये समर्पण कर दें तब हम हिन्दी के प्रेमी कहे जा सकते हैं।"* xxxxx *"हमारी देवनागरी इस देश की ही नहीं समस्त संसार की लिपियों में सबसे अधिक वैज्ञानिक है।"*

लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक

"स्वराज हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है" का नारा देने वाले तिलक 'स्वदेशी' के प्रबल समर्थक थे। उनका मानना था यदि आप किसी राष्ट्र के लोगों को एक-दूसरे के निकट लाना चाहते हैं तो सबके लिए समान भाषा से बढ़कर तथा सशक्त अन्य कोई बल नहीं है।उनकी मान्यता थी कि हिन्दी ही एकमात्र ऐसी भाषा है, जो राष्ट्रभाषा की पदाधिकारी है। लोकमान्य तिलक देवनागरी को 'राष्ट्रलिपि' और हिन्दी को 'राष्ट्रभाषा' मानते थे। उन्होंने जनसामान्य तक अपने विचार पहुँचाने के लिए 'हिन्दी केसरी' साप्ताहिक पत्र का प्रकाशन किया। हिन्दी का यह पत्र पर्याप्त लोकप्रिय हुआ। लोकमान्य तिलक जीवन भर हिंन्दी के प्रचार-प्रसार में लगे रहे। उन्होने हिन्दी को राष्ट्रभाषा के रूप में अपनाने के लिए भारतीय लोगों से बार-बार आग्रह किया।

लाला लाजपतराय

पंजाब में हिन्दी प्रचार-प्रसार में लाला लाजपतराय की बलवती भूमिका थी। उन्होंने सन् 1911 में पंजाब शिक्षा संघ की स्थापना की। शिक्षा में हिन्दी को समुचित स्थान दिलाने का सराहनीय प्रयास किया। सन् 1886 में लाहौर में दयानन्द ऐंग्लो-वैदिक कॉलेज की स्थापना की गई। इससे हिन्दी प्रसार का सुदृढ़ आधार मिला। इस कॉलेज में सभी विद्यार्थियों को हिन्दी पढ़ने की अनिवार्यता थी। लाला लाजपतराय के प्रयास से पंजाब विश्वविद्यालय में हिन्दी को सम्मानीय स्थान मिला। उन्हीं का प्रयास था कि पंजाब विश्वविद्यालय में रत्न और प्रभाकर के माध्यम से हिन्दी को पाठ्यक्रम में स्थान मिला। हरियाणा के विभिन्न विश्वविद्यालयों में इन परिक्षाओं का सूत्रपात भी वहीं से हुआ। वे हिन्दी भाषा के माध्यम से भारत को एक सूत्र में बाँधना चाहते थे।

पं॰ मदन मोहन मालवीय

मालवीय जी महान् राष्ट्रीय नेता थे। वे अपने क्रियाकलापों में हिन्दी का प्रयोग करते हुए औरों में भी हिन्दी-प्रेम जगाते रहे हैं। सन् 1886 के अधिवेशन में मालवीय जी के व्याख्यान से प्रभावित होकर काला कांकर के राजा ने इन्हें 'हिन्दुस्तान' दैनिक पत्र का संपादक बनाया था। यहीं से उनकी हिन्दी-सेवा का अनुप्रेरक रूप सामने आया है। उन्होंने 1907 ई॰ में साप्ताहिक हिन्दी 'अभ्युदय' का प्रारम्भ किया। यह पत्र सन् 1915 में दैनिक समाचार-पत्र बना। मालवीय जी ने हिन्दी प्रचार-प्रसार को गति देने के लिए सन् 1910 में प्रयाग (इलाहाबाद) से 'मर्यादा' हिन्दी मासिक पत्रिका और 20 जुलाई, 1933 'सनातन धर्म' हिन्दी पत्र का प्रकाशन शुरू किया है। मालवीय जी हिन्दी के महान् प्रेमी थे। इनकी प्रेरणा से 'भारत', 'हिन्दुस्तान' और 'विश्वबन्धु' जैसे चर्चित पत्रों का प्रकाशन शुरू हुआ है। मालवीय जी के मन में हिन्दी के लिए विशेष आदर भाव था, इसलिए उन्होंने शिक्षा में हिन्दी की अनिवार्यता पर बल दिया। सन् 1917 में बनारस हिंदु विश्वविद्यालय की स्थापना की दृष्टि से हुई है। यहाँ के सभी विद्यार्थियों के लिए हिन्दी शिक्षा अनिवार्य थी। नागरी प्रचारिणी सभा, काशी की स्थापना सन् 1893 में हुई। इसकी स्थापना में मालवीय जी की विशेष भूमिका रही है। उनकी प्रेरणा से देश में हिन्दी के प्रति प्रबल अनुराग और राष्ट्रीयता का भाव जगा।

महात्मा गाँधी

दक्षिण अफ्रीका से लौटने के बाद गाँधी जी हिन्दी और हिन्दुस्तान को जगाने में लग गये। महात्मा गाँधी ने सन् 1918 में हिन्दी साहित्य सम्मेलन के इन्दौर के अधिवेशन में हिन्दी-प्रेम प्रकट करते हुए आह्नान किया था: *"आप हिन्दी को भारत का राष्ट्रभाषा बनाने का गौरव प्रदान करें। हिन्दी सब समझते हैं। इसे राष्ट्रभाषा बनाकर हमें अपना कर्तव्य-पालन करना चाहिए।"* गाँधी जी का मानना थे कि हिन्दी ही भारत की संपर्क भाषा के रूप में आदर्श भूमिका निभा सकती है। उन्होंने विभिन्न व्यक्तियों, पत्र-पत्रिकाओं और संस्थाओं को हिन्दी-प्रयोग की अनूठी प्रेरणा दी है। वे हिन्दी को राष्ट्रीय एकता, स्वाधीनता की प्राप्ति और सांस्कृतिक उत्कर्ष का माध्यम मानते थे। उन्होंने हिन्दी को साधन और साध्य दोनों रूपों में अपनाया था। महात्मा गाँधी के हिन्दी-प्रेम और प्रचार-प्रसार के विषय में डॉ॰ रामविलास शर्मा का कथन विशेष रूप में उल्लेखनीय है- *"दक्षिण भारत में गाँधी जी और उनके अनुयायियों-सहयोगियों ने जितना हिन्दी प्रचार किया, उतना और किसी नेता, राजनीतिक पार्टी या सांस्कृतिक संस्था ने नहीं किया।"* गाँधी जी हिन्दी और भारतीय भाषाओं के प्रबल समर्थक थे। उन्होंने

हिन्दी प्रचार-प्रसार को गति देने के लिए विभिन्न संस्थाओं का विशेष सहयोग लिया था। गाँधी सेवा संघ, चर्खा संघ, हरिजन सेवक संघर्ष आदि का सारा कामकाज हिन्दी में होता रहा है। महात्मा गांधी की प्रेरणा से ही वर्धा और मद्रास में राष्ट्रभाषा प्रचार सभाएँ स्थापित हुई। गांधी जी ने ही दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा मद्रास की स्थापना की। इसकी शाखाएँ केरल, कर्नाटक, आंध्रप्रदेश में भी खुलीं।

राजर्षि पुरुषोत्तमदास टंडन

राष्ट्रभाषा हिंदी को संघ की राजभाषा बनाने का जो प्रयास राजर्षि पुरुषोत्तमदास टंडन ने किया है, वह सदा याद किया जाता रहेगा। पं॰ मदनमोहन मालवीय के दर्शाये गए मार्ग पर चल कर इन्होंने हिन्दी की अद्वितीय सेवा की।टण्डन जी हिन्दी साहित्य सम्मेलन के संस्थापकों में से थे। इन्हीं की प्रेरणा से महात्मा गाँधी जी भी हिन्दी साहित्य सम्मेलन से जुड़े। ये लाला लाजपतराय के साथ मिलकर भी हिन्दी के प्रसार में लगे रहे। लाला जी की मृत्यु के पश्चात् टण्डन जी 'लोकसेवा मण्डल' के सभापति बन कर हिन्दी प्रसार में लगे रहे। इसका कार्यालय लाहौर में था इसलिए टण्डन जी ने वहाँ की संस्थाओं के माध्यम से हिन्दी का प्रचार- प्रसार किया। हिन्दी के संदर्भ में उनका यह विचार अनुकरणीय है- *"मैं हिन्दी के प्रचार, राष्ट्रभाषा के प्रचार को राष्ट्रीयता का मुख्य अंग मानता हूँ। मैं चाहता हूँ कि यह भाषा ऐसी हो, जिसमें हमारे विचार आसानी से साफ-साफ स्पष्टतापूर्वक व्यक्त हो सकें। राष्ट्रभाषा ऐसी होनी चाहिए, जिस केवल एक जगह के ही लोग न समझें, बल्कि उसे देश के सभी प्रान्तों में सुगमता से पहुंचा सकें।"*

डॉ॰ राजेन्द्र प्रसाद

डॉ॰ राजेन्द्र प्रसाद पर महात्मा गाँधी का विशेष प्रभाव था। हिन्दी के प्रचार-प्रसार में इनकी भूमिका विशेष रूप से उल्लेखनीय रही है। उन्होंने भारतीय भाषाओं को महत्त्व देते हुए कहा- *"मेरा दृढ़ मत है कि कोई भी शख्स अपनी मातृभाषा के द्वारा ही तरक्की कर सकता है।..... देश भर को बाँधने के लिए, भारत के भिन्न-भिन्न हिस्से एक-दूसरे से संबंधित रहें, इसके लिए हिन्दी की जरूरत है।"* भारतीय संविधान सभा के अध्यक्ष के रूप में हिन्दी को सम्मानीय स्थान दिलाने का श्रेय डॉ॰ राजेन्द्र प्रसाद को है। उन्होंने राष्ट्रपति के रूप में हिन्दी और भारतीय भाषाओं को सम्मानजनक स्थान दिलाने का सराहनीय प्रयास किया।

काका कालेलकर

हिन्दी के प्रचार-प्रसार में अहिन्दी भाषियों का नाम गौरव से लिया जाता है। ऐसे हिन्दी-प्रेमियों में काका कालेलकर का नाम विशेष श्रद्धा से लिया जाता है। राष्ट्रभाषा की समस्या पर उन्होंने जितनी गंभीरता से विचार किया, शायद ही किसी ने किया है। हिन्दी साहित्य को अति तुच्छ बताकर हिन्दी को राष्ट्रभाषा बनाने पर आपत्ति करने वालों को उन्होंने कड़ा जवाब देकर यह साबित करने का प्रयत्न किया कि हिन्दी का साहित्य दुनिया की किसी भी भाषा से कमतर नहीं है। इन्होंने राष्ट्रभाषा प्रचार समिति से जुड़कर और गुजरात में रहकर हिन्दी-प्रसार को नई दिशा प्रदान की है। यह निर्विवाद सत्य है कि काका कालेलकर 'हिन्दुस्तानी' के समर्थक थे। उस समय हिन्दुस्तानी का अर्थ था- हिन्दी और उर्दू का मिश्रित रूप। अंग्रेजों के शासन और अंग्रेजी के शासन और अंग्रेजी के प्रभाव में 'हिन्दुस्तानी' के प्रसार से हिन्दी को ही लाभ हुआ है। इससे जन सामान्य में हिन्दी के प्रति अनुराग विकसित हुआ है। गाँधी जी के अनुयायी काका कालेलकर का नाम हिन्दी-आंदोलन के संदर्भ में सदा याद किया जाएगा।

चकवर्ती राजगोपालाचारी

राजगोपालाचारी जी के प्रयत्नों से दक्षिण भारत में हिन्दी का प्रचार-प्रसार हुआ। दक्षिण भारत के विद्यालयों में हिन्दी की शिक्षा दी जाने लगी तथा उन्होंने दक्षिण भारतीयों को हिन्दी सीखने की सलाह दी। इसके अतिरिक्त चक्रवर्ती राजगोपालाचारी ने 1937 में मद्रास में संपन्न हुए हिन्दी साहित्य सम्मेलन में यह प्रस्ताव रखा कि कांग्रेस की सारी कार्यवाही हिन्दी में हो। यह प्रस्ताव सर्व सम्मति से पारित किया गया था।

केशवचन्द्र सेन

केशवचन्द्र सेन ने भारत की एकता के लिए संपूर्ण भारत में एक ही भाषा के प्रयोग को आवश्यक बताया। उन्होंने कहा कि भारत में जितनी भी भाषाएँ प्रचलित हैं, उन सब में हिन्दी भाषा ही सारी जगह प्रचलित हैं तथा हिन्दी भाषा को ही भारत वर्ष की एक मात्र भाषा बनाया जाना चाहिए।

महर्षि दयानंद

महर्षि दयानंद गुजराती ब्राह्मण थे तथा गुजराती और संस्कृत के अच्छे ज्ञाता थे फिर भी उन्होंने अपना संपूर्ण धार्मिक साहित्य हिन्दी में लिखा। उन्होंने हिन्दी के प्रयोग को राष्ट्रीय स्वरूप प्रदान किया। वे हिन्दी को देश की उन्नति का मुख्य आधार मानते थे।

बंकिम चन्द्र चटर्जी

बंकिम चन्द्र चटर्जी ने 'बंगदर्शन' में लिखा था- *"हिन्दी भाषा की सहायता से भारत वर्ष के विभिन्न प्रदेशों के मध्य में जो ऐक्य-बंधन संस्थापन करने में समर्थ होंगे वहीं सच्चे भारत बंधु पुकारे जाने योग्य हैं।"* उन्होंने विश्वास के साथ भविष्यवाणी की थी कि हिन्दी एक दिन भारत की राष्ट्रभाषा होकर रहेगी।

कन्हैया लाल माणिकलाल मुंशी

इन्होंने हिन्दी के महत्त्व को रेखांकित करते हुए कहा कि भारत के भविष्य का निर्माण राष्ट्र भाषा हिन्दी के उद्भव और विकास के साथ सम्बद्ध है, क्योंकि हिन्दी ही हमारे एकीकरण का सबसे शक्तिशाली और प्रधान माध्यम है। यह किसी प्रदेश या क्षेत्र की भाषा नहीं है, बल्कि समस्त भारत में भारती के रूप में ग्रहण की जानी चाहिए।

इन सबके अतिरिक्त भी, बंगाली नेता डॉ. राजेन्द्र लाल मित्र ने देशप्रेम के लिए हिन्दी का प्रबल समथ्रन किया। बंगाल में ही राजनारायण बोस, भूदेव मुखर्जी और नवीनचन्द्र राय ने राष्ट्रीय एकता के लिए हिन्दी की अनिवार्यता पर बल दिया। अरविन्द घोष ने हिन्दी को पूरे देश में सामान्य भाषा के रूप में अपनाने की वकालत की। सुभाव चंद्रबोस ने 1929 में कहा था कि प्रान्तीय-ईर्ष्या द्वेष को दूर करने में जितनी सहायता हिन्दी प्रचार से मिलेगी उतनी दूसरी किसी चीज से नहीं। मोटूरि सत्यनारायण जैसे महान विद्वान और नेता हिन्दी प्रचारक बनकर दक्षिण भारत में हिन्दी का प्रचार करते रहे।

17.6 राष्ट्रभाषा हिन्दी के विकास में प्रमुख संस्थाओं का योगदान

भारतवर्ष में स्वाधीनता संग्राम के साथ हिन्दी का आन्दोलन भी चल रहा था। स्वतंत्रता आन्दोलन के समय हिन्दी या हिन्दुस्तानी ही देश की संपर्क भाषा थी। हिन्दी-प्रसार आंदोलन में धर्मगुरुओं, महात्माओं, राजनेताओं और हिन्दी-प्रेमियों के साथ अनेक संस्थाओं की भी सराहनीय भूमिका रही है। हिन्दी-प्रसार आन्दोलन में साहित्यिक संस्थाओं के साथ धार्मिक-सामाजिक संस्थाओं का विशेष योगदान रहा है।

धार्मिक एवं सामाजिक संस्थाएँ

ब्रह्म समाज

ब्रह्म समाज के संस्थापक राजा राममोहन राय ने युगीन संदर्भ में आधुनिक विचार-चिन्तन को स्वीकार किया। उनके व्यक्तित्त्व में पूर्व और पश्चिम का अनुपम समन्वय था। वे अंग्रेजी को एक महत्त्वपूर्ण भाषा के रूप में सम्मान देते थे, किन्तु राष्ट्रीय संदर्भ में हिन्दी के सबल समर्थक थे। उन्होंने स्पष्ट रूप से कहा था कि भारतवर्ष में राष्ट्रीयता के भाव से सम्पन्न अखिल भारतीय भाषा बनने की क्षमता मात्र हिन्दी में है। वे स्वयं हिन्दी में लिखते तथा हिन्दी में लिखने के लिए दूसरों को भी प्रोत्साहित करते रहते थे। अहिन्दी भाषा क्षेत्र बंगाल में 'ब्रह्म समाज' की भूमिका विशेष सराहनीय रही है। समाज-सुधार और हिन्दी-प्रचार में अनेक विद्वान नेता-तन-मन से लग गए थे। इस संदर्भ में महर्षि देवेन्द्र नाथ, केशव चन्द्र सेन, ईश्वर

चन्द्र विद्यासागर और नवीन चन्द्र राय के नाम श्रद्धा से लिए जा सकते हैं। इस समाज द्वारा अधिकांश पुस्तक हिन्दी में प्रकाशित की गई। इस संस्था के सभी सदस्यों से हिन्दी को राष्ट्रभाषा के रूप में अपनाने का आह्नान किया गया। नवीन चन्द्र राय ने पंजाब पहुँचकर 1867 में 'ज्ञानप्रदायिनी' पत्रिका निकाल कर हिन्दी-आन्दोलन को गति दी। भूदेव मुखर्जी ने बिहार की शिक्षा में हिन्दी को प्रतिष्ठित किया और वहाँ के न्यायालयों में हिन्दी और नागरी लिपि के प्रयोग का मार्ग खोला। उन्होंने अपनी पुस्तक 'आचार-प्रबन्ध' में हिन्दी को सर्व उपयोगी गुणसम्पन्न देश की संपर्क भाषा के रूप में अपनाने का आह्नान किया।केशव चन्द्र सेन की प्रेरणा से स्वामी दयानन्द ने हिन्दी में व्याख्यान देना शुरू किया। उन्होंने 'सत्यार्थ प्रकाश' की रचना हिन्दी में की। सेन की मान्यता थी कि हिन्दी देश की सर्वाधिक प्रचलित भाषा है, इसलिए यह भाषा ही राष्ट्रीय एकता का आधार बन सकती है। हिन्दी-प्रसार में 'ब्रह्म समाज' की भूमिका सर्वोपरि है।

आर्य समाज

आर्य समाज द्वारा पूरे देश में स्वराज, धर्म और हिन्दी भाषा के लिए आन्दोलन चलाया गया। आर्य समाज के आन्दोलनकारी हिन्दी को 'आर्यभाषा' नाम से संबोधित कर अपना सारा कार्य इसमें ही करते थे। आर्य समाज के 28 नियमों में पाँचवां नियम हिन्दी पढ़ना था। आर्य समाज का सत्संग और सम्मेलन हिन्दी में ही होता था। इसलिए हिन्दी-प्रसार को सुदृढ़ आधार मिला। आर्य समाज द्वारा गुरूकुलों, कन्या-पाठशालाओं और महिला-विद्यालयों की स्थापना की, जिनमें हिन्दी की अनिवार्य शिक्षा की व्यवस्था थी। गुरूकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय में सर्वप्रथम विज्ञान की शिक्षा हिन्दी में देने की सफल व्यवस्था की गई। आर्य समाज के द्वारा सामाजिक और सांस्कृतिक उत्कर्ष के लिए हिन्दी में अनेक साप्ताहिक और मासिक पत्रिकाएँ प्रकाशित की गई। भारत की जनता स्वामी दयानन्द के विचार पढ़ना चाहती थी। इन पत्र-पत्रिकाओं में ऐसे विचार प्रकाशन से हिन्दी पर्याप्त लोकप्रिय बनी।

सनातन धर्म सभा

सनातन धर्म सभा की हजारों शाखाएँ भारत वर्ष के विभिन्न प्रान्तों में खुलीं। इस सभा के माध्यम से देश के विभिन्न प्रदेशों में शिक्षण संस्थाएँ शुरू हो गई। इनमें हिन्दी को महत्त्वपूर्ण स्थान दिया गया। उत्तर भारत में इस सभा को आशातीत सफलता मिली। पं. मदन मोहन मालवीय के प्रिय शिष्य गोस्वामी गणेश दत्त ने सर्वप्रथम लायलपुर में एक गुरूकुल की स्थापना की। इसमें संस्कृत-हिन्दी के अध्ययन-अध्यापन की व्यवस्था थी। इसके पश्चात् सैंकड़ों ऐसी संस्थाएँ खुली। इससे पंजाब में हिन्दी का व्यापक प्रचार हुआ। गोस्वामी जी ने सन् 1940 में 'विश्वबन्धु' दैनिक समाचार-पत्र का श्रीगणेश किया। सन् 1947 में दिल्ली में 'अमर भारत' हिन्दी दैनिक का प्रकाशन किया। गोस्वामी गणेश दत्त के साथ हिन्दी-प्रसार में योगदान देने वालों में श्रद्धाराम फिल्लौरी का नाम विशेष आदर से लिया जाता है। सनातन धर्म सभा के सतत प्रयास से भारत में मुख्यत: उत्तर भारत में हिन्दी जन-मानस की भाषा बनी।

प्रार्थना समाज

इस संस्था द्वारा समाज में व्याप्त जाति-पाँति, अछूत और नारी-समस्याओं को दूर करने का सतत् प्रयास किया गया। इस समाज का अधिकांश कार्य हिन्दी में किया जाता था। साप्ताहिक प्रवचनों में हिन्दी-प्रयोग से महाराष्ट्र में हिन्दी का प्रेरक परिवेश बना है। इस समाज के सक्रिय नेताओं में न्यायाधीश महादेव गोविंद रानाडे और आर. जी. भण्डारकर के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। गोविंद रानाडे ने हिन्दी और नागरी लिपि के प्रयोग और प्रसार का सतत् प्रयास किया है।

थियोसोफिकल सोसाइटी

सन् 1893 में श्रीमति एनी बेसेंट ने इस संस्था का नेतृत्व अपने हाथों में लिया। उन्होंने सन् 1898 में काशी में सेंट्रल हिंदू कॉलेज और हिंदू कन्या विद्यालय की स्थापना की। इसके साथ ही देश के विभिन्न प्रांतों में शिक्षण संस्थाएँ खोलीं। इन विद्यालयों और महाविद्यालयों में भारतीय संस्कृति की शिक्षा हिन्दी और अन्य भारतीय भाषाओं में दी जाती थी। इस सोसाइटी पर अंग्रेजी का भी प्रभाव दिखाई देता है, किन्तु इनकी जो भी प्रचारादि सामग्री छपती, वह अंग्रेजी के साथ हिन्दी में भी होती थी। इस प्रकार हिन्दी-प्रसार को सुअवसर मिला। स्वाधीनता संग्राम के प्रति विशेष लगाव होने के कारण सन् 1918 से

सन् 1921 तक इन्होंने दक्षिणी भारत में घूम-घूमकर हिन्दी का प्रचार किया था। श्रीमती एनी बेसेंट ने सन् 1928 में मद्रास (चेन्नई) में हुए हिन्दी साहित्य सम्मेलन के अधिवेशन में हिन्दी-संदर्भ में प्रेरक वक्तव्य दिया था- *"मेरा विश्वास है कि हिन्दी भारतवर्ष की मुख्य (संपर्क) भाषा होगी। मेरा विचार है कि भारतवर्ष की शिक्षा में हिन्दी अनिवार्य होनी चाहिए।"*

साहित्यिक एवं भाषा संस्थाएँ

हिन्दी के प्रचार-प्रसार हेतु समय-समय पर अनेक साहित्यिक संस्थाओं की स्थापना होती रहती है। राष्ट्रीय भाव जगाने और हिन्दी के प्रचार-प्रसार में इन संस्थाओं का विशेष योगदान रहा है। इनमें कुछ संस्थाओं का उल्लेख किया जा रहा है।

भारतेन्दु मण्डल

आधुनिक हिन्दी साहित्य के जन्मदाता भारतेन्दु हरिशचंद्र ने साहित्यकारों का एक मण्डल बनाया था। यह मण्डल हिन्दी साहित्य के माध्यम से सामाजिक, धार्मिक और राजनीतिक क्षेत्र में क्रांतिकारी परिवर्तन का अभिलाषी था। मण्डल के सदस्यों द्वारा विभिन्न क्षेत्रों में क्रांतिकारी परिवर्तन के लिए हिन्दी साहित्य की विविध विधाओं पर महत्त्वपूर्ण कृतियों की रचना की, पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन किया। भारतेन्दु हरीशचन्द्र ने हिन्दी पर व्याख्यान देते हुए कहा था- निज भाषा उन्नति अहै, सब उन्नति को मूल। भारतेन्दु मण्डल की गतिविधियों से सामाजिक क्षेत्र में जागरण का परिवेश बना, तो स्वदेशी आंदोलन को प्रभावी आधार मिला है। हिन्दी-प्रेम के कारण जन-सामान्य में हिन्दी लोकप्रिय हुई। भारतेन्दु हरीशचन्द्र के साथ इस मंडल के सक्रिय सदस्य थे- पं. प्रताप नारायण मिश्र, पं. बालकृष्ण भट्ट, बदरी नारायण चौधरी, श्रीनिवास दास, बालमुकुंद गुप्त, रमाशंकर व्यास और तोताराम आदि।

नागरी प्रचारिणी सभा, काशी

इस संस्था को संरक्षक के रूप में बाबू श्यामसुन्दर दास, श्री गोपाल प्रसाद खत्री और पं. राम नारायण मिश्र आदि का आशीर्वाद मिला। इस संस्था से अन्य जुड़ने वाले गणमान्य विद्वानों में महामना मदन मोहन मालवीय, श्रीधर पाठक, श्री अम्बिका दत्त व्यास, श्री राधाचरण गोस्वामी और बदरी नारायण चौधरी आदि प्रमुख हैं। कोश-रचना, हिन्दी साहित्य के इतिहास-लेखन, हस्तलिखित ग्रंथों की खोज और संगोष्ठी आयोजन में यह संस्था देश में शीर्ष स्थान पर है। इस संस्था ने नागरी लिपि के सुधार, आशुलिपि (शार्टहैंड) और टंकण (टाइप) संदर्भ में अनुकरणीय पहल की है। नागरी प्रचारणी सभा का लगभग सौ वर्षों का इतिहास हिन्दी प्रचार-प्रसार के श्रेष्ठ और प्रेरक संदर्भ को प्रस्तुत करता है। यह सभा आज भी हिन्दी के प्रचार-प्रसार के साथ हिन्दी साहित्य को समृद्ध करने में लगी है।

हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग

हिन्दी साहित्य सम्मेलन हिन्दी प्रचार-प्रसार की सर्वप्रमुख साहित्यिक संस्था है। सन् 1910 में नागरी प्रचारिणी सभा के तत्वाधान में इसकी स्थापना हुई। सन् 1910 में सम्मेलन का प्रथम अधिवेशन महामना मदनमोहन मालवीय की अध्यक्षता में हुआ। राजर्षि पुरुषोत्तमदास टण्डन ने इसी समय न्यायालय में हिन्दी और देवनागरी प्रयोग पर बल दिया। सम्मेलन द्वारा हिन्दी प्रचार-प्रसार और हिन्दी-विकास के लिए नियम बनाए गए। इनमें प्रमुख थे- राष्ट्रभाषा हिन्दी और राष्ट्रलिपि देवनागरी का प्रचार, हिन्दी भाषी प्रदेशों की शिक्षण संस्थाओं के साथ न्यायालयों में हिन्दी का प्रयोग, देवनागरी में छपाई की समुचित व्यवस्था, हिन्दी साहित्य की विविध विधाओं का विकास, हिन्दी विद्वानों और साहित्यकारों का सम्मान और हिन्दी प्रचार-प्रसार हेतु हिन्दी की उच्च परीक्षाओं का आयोजन। सम्मेलन की त्रैमासिक 'सम्मेलन पत्रिका' शोधपरक और गन्वेषणात्मक आलेखों के आधार पर सतत् प्रकाशित होती रही है। 'राष्ट्रभाषा संदेश' पत्र भी हिन्दी प्रचार-प्रसार की आकर्षक भूमिका में है। हिन्दी का चर्चित शब्दकोश 'मानक हिन्दीकरण' पाँच खण्डों में प्रकाशित करना गरिमा का विषय है। सन् 1963 में भारत सरकार के द्वारा लोक सभा में एक विशेष स्वीकृति कर 'हिन्दी साहित्य सम्मेलन' को राष्ट्रीय महत्त्व की संस्था के रूप में मान्यता दी गई है।

दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा, मद्रास

महात्मा गाँधी ने हिन्दी सम्मेलन के सन् 1918 के इन्दौर अधिवेशन में दक्षिण में हिन्दी प्रचार की योजना बनाई। उनके पुत्र श्री देवदास गाँधी दक्षिण भारत में प्रथम हिन्दी प्रचारक के रूप में गए। दक्षिण भारत में हिन्दी के प्रचारार्थ श्री सत्यदेव परिव्राजक आदि वहाँ पहुँचे। वहाँ प्रारंभ में हिन्दी साहित्य सम्मेलन के माध्यम से प्रचार हुआ। सन् 1927 में इसे दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा, मद्रास नाम दिया गया। इसके संस्थापकों में चक्रवर्ती राजगोपालचारी का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। सभा के द्वारा दक्षिण के प्रांतों में हिन्दी का प्रेरक प्रचार किया गया। यहाँ से मासिक 'हिन्दी प्रचार समाचार' और 'दक्षिण भारत' द्विमासिक पत्रिका का प्रकाशन होता है। सभा के द्वारा योग्य हिन्दी अध्यापकों और प्रचारकों को तैयार करने के लिए हिन्दी प्रचार विद्यालय नामक प्रशिक्षण विद्यालय तथा प्रवीण विद्यालय चलाए जाते है। कई परीक्षाओं का संचालन किया जाता है। केन्द्र सरकार ने सभा को श्रेष्ठ हिन्दी प्रचारक मानकर राष्ट्रीय महत्त्व प्रदान किया है।

राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धा

हिन्दी साहित्य सम्मेलन का 25वाँ अधिवेशन सन् 1936 में नागपुर में हुआ। डॉ. राजेन्द्र प्रसाद सम्मेलन के अध्यक्ष थे। श्री पुरुषोत्तमदास टण्डन के प्रस्तावानुसार दक्षिण में हिन्दी प्रचारार्थ 'हिन्दी प्रचार समिति' का गठन किया गया। इसका प्रथम अधिवेशन सन् 1936 में वर्धा में हुआ। काका कालेलकर के सुझाव पर इसका नाम बदल कर 'राष्ट्रभाषा प्रचार समिति' रखा गया। इस समिति का मुख्य उद्देश्य हिन्दी-प्रचार था और इसी आधार पर समिति मानती थी 'एक हृदय हो भारत जननी'। समिति ने हिन्दी प्रचार-प्रसार के लिए सन् 1938 से अपनी परीक्षाओं का संचालन शुरू किया। समिति ने जुलाई 1943 से 'राष्ट्रभाषा' मासिक पत्रिका का प्रकाशन शुरू किया। इसके पश्चात् 'राष्ट्रभारती' पत्रिका का प्रकाशन किया गया। इस समिति के केन्द्र देश से बाहर श्री लंका, सुमात्रा, मॉरिशस, इंग्लैंड आदि देशों में हैं। समिति सम्मान और पुरस्कार से भी हिन्दी प्रचार-प्रसार को दिशा प्रदान करती है। इस समिति की गतिविधियों से हिन्दी को विशेष बल मिला है।

इनके अतिरिक्त **हिन्दुस्तानी प्रचार सभा, वर्धा; गुजरात विद्यापीठ, अहमदाबाद; हिन्दी विद्यापीठ, मुम्बई; महाराष्ट्र राष्ट्रभाषा सभा, पूना और बिहार राष्ट्रभाषा, पटना** आदि की हिन्दी प्रचार-प्रसार में उल्लेखनीय भूमिका है।

17.7 राष्ट्रभाषा हिन्दी के विकास में दक्षिण भारतीय राज्यों का योगदान

आन्ध्र प्रदेश

आन्ध्रप्रदेश में हिन्दी भाषा का आरंभिक प्रचार नाट्याचार्य लक्ष्मण स्वामी ने किया। विशेषकर अपने हिन्दी नाटकों के माध्यम से उन्होंने यह कार्य संपन्न किया। सन् 1918-19 से हिन्दी प्रचार-सभा, मद्रास की ओर से आन्ध्रप्रदेश में हिन्दी का प्रचार संगठित रूप से आरंभ हुआ। आन्ध्र के कुछ नवयुवक हिन्दी पढ़ने के लिए उत्तर भारत भी गए और वापस आकर हिन्दी के प्रचार-कार्य में जुट गए। इनमें जंध्याल शिवन्न शास्त्री, वेंकट सुब्बराव, मोडिचर्ल वेंकटेश्वर राव आदि के नाम प्रमुख हैं। इनके कार्यों के संचालन तथा संगठन के लिए सन् 1920 ई. में दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा की आन्ध्र-शाखा नेल्लूर में खोली गई। नेल्लूर, मछलीपटम, काकिनाड़ा आदि हिन्दी-प्रचार के प्रमुख केन्द्र बने। सन् 1923 के कांग्रेस के काकिनाड़ा अधिवेशन का स्वागत भाषण हिन्दी में दिया गया।

सन् 1924 से आंध्रप्रदेश में हिन्दी का प्रचार और भी विस्तृत और संगठित रूप में होने लगा। कांग्रेसी नेताओं के प्रयास से कई शहरों के म्यूनिसिपल हाईस्कूलों में हिन्दी की पढ़ाई की व्यवस्था हुई। धीरे-धीरे जिला-बोर्डों के स्कूलों में भी हिन्दी का प्रवेश होने लगा। आन्ध्र के राजमहेन्द्रवरम शहर में हिन्दी शिक्षकों को तैयार करने के लिए एक हिन्दी-प्रचारक विद्यालय खोला गया था जो बहुत ही सफल रहा।

सन् 1918 से 1930 के बीच आन्ध्र के सैकड़ों केन्द्रों में हिन्दी का प्रचार कार्य जोर-शोर से होने लगा था। आगे इस प्रचार कार्य में और वृद्धि हुई। कोंडा वेंकटापय्या, पट्टाभि सीताभिरमैय्या आदि नेताओं ने इसमें महत्त्वपूर्ण भूमिका निभायी।

आन्ध्र के अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हिन्दी प्रचारकों में जंध्याल शिवन्न शास्त्री, वेंकट सुब्बराव, ओरुगँटि वेंकटेश्वर राव आदि का नाम अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। शास्त्रीजी ने हिन्दी-व्याकरण, हिन्दी तेलुगू कोश तथा तेलगु हिन्दी कोश की रचना भी की।

वस्तुतः दक्षिण में राष्ट्रभाषा हिन्दी के प्रचार में आन्ध्रप्रदेश का स्थान सर्वप्रथम है। अन्य प्रान्तों के लिए इस कार्य में वह एक आदर्श है।

तमिलनाडु

सन् 1918 में संपन्न हिन्दी साहित्य सम्मेलन के अधिवेशन के बाद हिन्दी प्रचार हेतु महात्मा गांधी ने अपने सुपुत्र श्री देवदास गांधी को मद्रास भेजा। स्वामी सत्यदेव भी दो महीने बाद उनकी सहायता हेतु पहुंच गए। 1918 में ही मद्रास में 'हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रचार कार्यालय' के रूप में 'हिन्दी प्रचार सभा' की स्थापना हुई। तमिलनाडु में राष्ट्रभाषा हिन्दी के प्रचार का कार्य सन् 1918-19 में आरंभ हुआ। तिरुचिरापल्ली हिन्दी प्रचार का प्रमुख केन्द्र बना। प्रतापनारायण वाजपेयी ने वहाँ सबसे पहले हिन्दी का प्रचार प्रारंभ किया। ईरोड़ और मदुरा हिन्दी प्रचार के अन्य महत्त्वपूर्ण केन्द्र बने। ई.वी. रामास्वामी, नायिक्कर, नरसिंह अय्यर, वैद्यनाथ अय्यर आदि ने हिन्दी प्रचार में उल्लेखनीय भूमिका निभायी। सन् 1922 तक हिन्दी प्रचार का क्षेत्र इतना विस्तृत हो गया कि प्रेस भी खोलना पड़ा। सन् 1927 ई. में स्वतंत्र रूप से दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा की स्थापना हुई। 1932 में हिन्दी प्रेमी मंडल की स्थापना हुई। इस मंडल के हिन्दी प्रचार के लिए विभिन्न तरह के कार्य किए। सन् 1932 से शहरों और गाँवों में हिन्दी प्रचार कार्य के अतिरिक्त जिला बोर्डों और नगरपालिकाओं के अधीनस्थ हाईस्कूलों में हिन्दी को स्थान दिलाने की दिशा में भी प्रयत्न शुरू हुए। इसके फलस्वरूप कई स्कूलों में हिन्दी का प्रवेश हो सका।

इस प्रकार तमिलनाडु के नेताओं देश के दूसरे भागों से गए नेताओं एवं हिन्दी प्रचारकों एवं शिक्षाविदों के प्रयास से वहाँ कि जनता में राष्ट्रभाषा हिन्दी के प्रति रुचि एवं स्नेह जाग्रत हुआ तथा उन्होंने हिन्दी सीखकर राष्ट्रभाषा हिन्दी के प्रसार एवं विकास में योगदान दिया। कुल मिलाकर हम कह सकते हैं कि राष्ट्रभाषा हिन्दी के विकास में तमिलनाडु का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा।

केरल

केरल में राष्ट्रभाषा के रूप में हिन्दी का सार्वजनिक प्रचार सन् 1922 में आरंभ हुआ। दामोदरन उण्णिजी केरल के सर्वप्रथम हिन्दी प्रचारक माने जाते हैं। उन्होंने केरल में दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा के अधीन यह कार्य प्रारंभ किया। केरल के ट्रिच्चूर में उन्होंने सैकड़ों लोगों को हिन्दी सीखा दी। केरल के सुप्रसिद्ध कांग्रेसी नेता कुरुर नीलकंठन नंपूतिरिपाद ने भी उन्हें काफी सहयोग दिया। बाद में कई अन्य केन्द्रों में भी उण्णिजी ने हिन्दी की जड़ जमाने में सफलता पाई।

उण्णिजी के बाद हिन्दी प्रचार में उतरने वाले दूसरे महत्त्वपूर्ण प्रचारक के. केशवन नायर है। आरंभ में ट्रिवेंड्रम तथा बाद में कई अन्य केन्द्रों पर भी हिन्दी प्रचार का कार्य उन्होंने किया। इनके अतिरिक्त शंकरानंद, के.वी. नायर आदि का नाम भी केरल के आरंभिक हिन्दी प्रचारकों में उल्लेखनीय है।

सन् 1927 के बाद केरल में हिन्दी प्रचार-आन्दोलन में तीव्रता आई। सैकड़ों नए केन्द्र खुले। प्रचारकों और विद्यार्थियों की संख्या काफी बढ़ी। सन् 1933 में केरल- प्रान्तीय- हिन्दी- प्रचार-सभा की स्थापना की गई। प्रचार-कार्य करने वाले महत्त्वपूर्ण व्यक्तियों में ए. चन्द्रहासन, इग्नेशियस, सी. मत्ताई आदि शामिल हैं।

कर्नाटक

सन् 1923 के काकिनाड़ा कांग्रेस सम्मेलन के सिलसिले में हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग का अधिवेशन भी बुलाया गया था जिसमें कर्नाटक के तत्कालीन नेताओं गंगाधर राव देशपांडे, डॉ. ना.सु. हर्डीकर आदि ने भी भाग लिया था। वहाँ प्रभावित होकर उनकी भी यह इच्छा हुई कि कर्नाटक में हिन्दी का प्रचार सुसंगठित एवं व्यापक रूप में किया जाए। इस तरह कर्नाटक में हिन्दी प्रचार का आरंभ हुआ। सन् 1924 के बेलगाँव के कांग्रेस महाअधिवेशन में कर्नाटक के नेताओं ने हिन्दुस्तानी सेवादल के शिविरों में हिन्दी पढ़ाने का प्रबंध किया। मंगलूर, हुबली, बेंगलूर, मैसूर, बेलगाँव आदि हिन्दी प्रचार के प्रमुख केन्द्र बने।

सन् 1930 तक कर्नाटक के विभिन्न केन्द्रों में हिन्दी की जड़ जम चुकी थी। 1935 में कर्नाटक 'मैसूर रियासत हिन्दी समिति' भी बनी। कर्नाटक में राष्ट्रभाषा हिन्दी आन्दोलन में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाने वाले अन्य नेताओं में आर.आर. दिवाकर, सी.पी. रामराव कपूर, कार्नाड सदाशिव राव आदि के नाम महत्त्वपूर्ण हैं।

17.8 राष्ट्रभाषा हिन्दी के विकास हेतु सुझाव

(क) शेष भारतीय भाषाओं के सांस्कृतिक शब्दों को स्वीकार किया जाना चाहिए।

(ख) उत्तर-पूर्व के क्षेत्र से हिन्दी की अंतर्क्रिया कुछ कम रही है। उसे पर्यटन और मीडिया के माध्यम से बढ़ाया जाना चाहिए।

(ग) ऐसी फिल्मों तथा अन्य मीडिया उत्पादों को सरकार से सहायता मिलनी चाहिए जो पूरे देश में भाषिक समन्वय करने में सहायक हों।

(घ) त्रिभाषा सूत्र इस समस्या का वास्तविक समाधान है किन्तु इसे आरम्भ में हिन्दी भाषी क्षेत्र में लागू किया जाना चाहिए। तीसरी भाषा के रूप में संस्कृत का नहीं बल्कि दक्षिण या पूर्वोत्तर की एक भाषा को लिया जाना चाहिए।

(ङ) हिन्दी भाषा को सीखने की प्रक्रिया अधिक से अधिक सरल कैसे बनायी जा सकती है-इस पर निरंतर अनुसंधान होना चाहिए।

17.9 भूमंडलीकरण के दौर में राष्ट्रभाषा की धारणा की प्रासंगिकता

भूमंडलीकरण के दौर में राष्ट्रभाषा की धारणा के कमज़ोर पड़ने की भविष्यवाणियाँ कई चिंतक करते रहे हैं। किंतु, सच यह है कि भूमंडलीकरण के दौर में भी राष्ट्रभाषा की धारणा प्रासंगिक बनी रही है। इसके कुछ पक्ष इस प्रकार हैं-

(क) भूमंडलीकरण के संबंध में ऐसी कल्पना की जा रही थी कि इससे राष्ट्र राज्य की धारणा खंडित हो जाएगी किन्तु पिछले कुछ वर्षों के अनुभव से साबित हो रहा है कि राष्ट्र राज्य का अस्तित्व न खत्म हुआ है, न ही निकट भविष्य में खत्म होने की संभावना है। यदि राष्ट्र राज्य जीवित है तो राष्ट्रभाषा का अस्तित्व मिटना कठिन है।

(ख) भूमंडलीकरण मूलतः सांस्कृतिक प्रक्रिया न होकर आर्थिक प्रक्रिया है जो मुक्त बाज़ार के सिद्धांत पर टिकी है। स्वाभाविक है कि जिस भाषा के बोलने वाले लोग एक बड़ा बाज़ार बनाते हैं, उसका अस्तित्व इस प्रक्रिया में और मज़बूत होता है। आज की गलाकाट प्रतिस्पर्धा के पूंजीवादी दौर में विज्ञापनों का महत्त्व बढ़ता जा रहा है क्योंकि वही उपभोक्ता के अवचेतन मन में प्रविष्ट होकर 'ब्राण्ड' का प्रभाव उत्पन्न करते हैं। यह प्रक्रिया विदेशी भाषा में असंभव है। हिन्दी के प्रयोक्ताओं की संख्या अधिक है, अतः बाज़ार की शक्तियों से इसे बल ही मिलेगा।

(ग) भूमंडलीकरण का एक हथियार है-सांस्कृतिक आक्रमण। अपना माल बेचने के लिए विदेशी प्रतिष्ठान सबसे पहले उस सोच का निर्माण करना चाहते हैं जिसमें वैसी ज़रूरतें पैदा होने लगती हैं जिनकी पूर्ति वे करते हैं। किसी समाज की सोच बदलने का तरीका है-उसकी भाषा को बदल देना। इस अर्थ में राष्ट्रभाषा सांस्कृतिक साम्राज्यवाद से हमें बचाती है और हमारे वैचारिक अस्तित्व को बचाए रखती है।

(घ) भारत के आप्रवासी विदेशों में बहुत बड़ी संख्या में रहते हैं और उनके सामाजिक संबंध बेहद घनिष्ठ हैं। ये संबंध उन देशों की भाषा में नहीं बनाए जा सकते जहाँ वे नौकरी करते हैं। ऐसे बिन्दु पर हिन्दी ही सहमति का केन्द्र बनती है क्योंकि यह एकमात्र भाषा है जिसे लगभग सभी आप्रवासी समझते हैं।

(ङ) आज का समय अंग्रेज़ी के सर्वोच्च महत्त्व का समय है किन्तु भाषाओं का इतिहास और भविष्य निश्चित नहीं होता। आजकल एक नई वैश्विक भाषा 'Esparento' के निर्माण का प्रयास चल रहा है जो अपनी प्रकृति में लोकतांत्रिक होगी अर्थात् उसमें अंग्रेज़ी के साथ-साथ अन्य प्रमुख भाषाओं की ध्वनियाँ और शब्द होंगे। भविष्य में कई ऐसी संभावनाएँ पनप सकती हैं कि हिन्दी राष्ट्रभाषा ही नहीं, अंतर्राष्ट्रीय भाषा के रूप में उभरे क्योंकि यदि आने वाला समय भारत जैसे देशों का है तो वह उनकी भाषाओं का भी होगा।

यूँ भी भूमंडलीकरण सिद्धांत सांस्कृतिक वैविध्य का ही समर्थक है, न कि सांस्कृतिक समरूपता का। तात्पर्य यह कि भिन्न-भिन्न संस्कृतियाँ और भाषाएँ अपना अस्तित्व बनाए रखें- भूमंडलीकरण का सिद्धांतत: यही अर्थ है। इसलिए आज की मांग यह है कि राष्ट्रभाषा के साथ विश्व की महत्त्वपूर्ण भाषाएँ भी सीखी जाएँ, न कि राष्ट्रभाषा को छोड़ दिया जाए। फ्राँस और जर्मनी में आज भी अंग्रेज़ी सिर्फ उपयोगी भाषा के रूप में सीखी जाती है, न कि अपनी भाषा के विकल्प के रूप में। इंग्लैंड के विद्यालयों में आजकल मंडारिन भाषा सिखाई जा रही है क्योंकि वह विश्व बाज़ार में अंग्रेज़ी के ठोस विकल्प के रूप में उभरने की क्षमता रखती है।

17.10 हिन्दी तथा अन्य भारतीय भाषाओं का संबंध/क्या हिन्दी को महत्त्व देना भाषायी साम्राज्यवाद है?

हिन्दी व अन्य भाषाओं का संबंध अत्यंत विवादास्पद है। हिन्दी के समर्थक मानते हैं कि हिन्दी राष्ट्रभाषा है, अन्य भाषाएँ भी भारत की ही भाषाएँ हैं किन्तु वे प्रादेशिक भाषाएँ हैं। स्वाधीनता संग्राम में हिन्दी ने 'राष्ट्रभाषा' की भूमिका निभाई थी, अत: उसे यह दर्जा मिलना चाहिए। हिन्दीतर भाषाओं के समर्थक इस मान्यता का विरोध करते हैं। उनका मानना है कि हिन्दी तथा अन्य भाषाओं में समता का संबंध है। यदि हिन्दी राष्ट्रभाषा है तो क्या बाकी भाषाएँ राष्ट्रेतर या राष्ट्र विरोधी हैं? इस विवाद में सर्वाधिक प्रमुख भूमिका निभाने वाले विचारक बांग्ला, तमिल तथा उर्दू भाषा के कुछ समर्थक हैं। इनका दावा है कि आठवीं अनुसूची की सारी भाषाएँ राष्ट्रीय भाषाएँ हैं। हिन्दी को ज्यादा से ज्यादा 'सम्पर्क भाषा' के रूप में महत्त्व दिया जा सकता है। यदि हिन्दी को राष्ट्रभाषा माना गया तो यह भाषायी साम्राज्यवाद का नमूना होगा। जिस तरह अंग्रेज़ी ने भारतीय भाषाओं के विकास का मार्ग अवरुद्ध किया, वैसे ही अब हिंदी अन्य भारतीय भाषाओं के विकास में बाधक होगी।

वस्तुत: सही बात यह है कि सभी भाषाएँ राष्ट्रीय भाषाएँ ही हैं, इसलिए सांविधानिक तथा राजकीय स्तर पर सभी को समान स्तर मिलना चाहिए। सभी का विकास संतुलित तथा तीव्र हो, इसका ध्यान भी राज्य को रखना चाहिए। तब भी, यह तो मानना ही होगा कि हिन्दी सारे देश की सम्पर्क भाषा हमेशा रही है और आज भी है। इस दृष्टि से हिन्दी को प्रतीकात्मक तौर पर राष्ट्रभाषा का दर्जा मिलना चाहिए, ठीक वैसे ही जैसे राष्ट्रीय खेल, राष्ट्रीय पशु, राष्ट्रीय पक्षी, राष्ट्रीय ध्वज तथा राष्ट्र गान सिर्फ प्रतीकात्मक हैं। मूलत: हिन्दी का संबंध अन्य भारतीय भाषाओं से बहुत गहरा है। आर्य भाषाओं जैसे पंजाबी, बांग्ला, उड़िया, सिंधी, मराठी इत्यादि से तो उसका बहनों वाला संबंध है ही क्योंकि ये सभी संस्कृत और अपभ्रंश की प्रक्रिया से गुज़रकर एक साथ विकसित हुई हैं। द्रविड़ भाषाओं के साथ भी इसका गहरा संबंध विकसित हो गया है क्योंकि संस्कृत की काफी शब्दावली द्रविड़ भाषाओं में है। इसके अतिरिक्त मध्यकाल से ही उत्तर व दक्षिण में गहरे राजनीतिक व सांस्कृतिक संबंध रहे हैं जिससे भाषाएँ नज़दीक आ गई हैं। पूर्वोत्तर की भाषाएँ भी हिन्दी के नज़दीक हैं। उनमें प्रयुक्त सभी ध्वनियाँ हिन्दी में मिल जाती हैं। होना यह चाहिए कि हिन्दी को राष्ट्रभाषा का दर्जा मिले और हिन्दी का विकास इस प्रकार किया जाए कि वे देश के सभी समूहों तथा देश की सभी भाषाओं का लोकतांत्रिक दृष्टि से प्रतिनिधित्व कर सके। त्रिभाषा सूत्र का दृढ़ पालन इस भाषा समस्या का एक स्थायी समाधान हो सकता है।

17.11 त्रिभाषा सूत्र

भारत की भाषा समस्या के कुछ विशेष आयाम स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद उभरने शुरू हुए जिनके समाधान के लिए त्रिभाषा सूत्र का प्रयोग किया गया। स्वतंत्रता प्राप्ति से पूर्व हिन्दी के राष्ट्रभाषा होने पर आम सहमति थी किन्तु स्वाधीनता प्राप्ति के बाद अहिन्दी भाषी राज्यों की ओर से भाषायी भेदभाव की शिकायत उठने लगी। भारत की बहुभाषिक स्थिति तथा राष्ट्रीय एकीकरण की आवश्यकताओं को संतुलित करने के लिए त्रिभाषा सूत्र प्रयुक्त किया गया।

त्रिभाषा सूत्र का प्रयोग राजनीतिक परिचर्चाओं में स्वाधीनता के तुरंत बाद होने लगा था। 1955 ई. में स्थापित राजभाषा आयोग ने इसी सूत्र को ध्यान में रखते हुए कुछ सुझाव दिए थे। 1968 ई. में संसद के दोनों सदनों ने हिन्दी के पक्ष में जो संकल्प पारित किया, वह मूलत: इसी पर बल देता था।

त्रिभाषा सूत्र के अनुसार प्रत्येक बच्चे को तीन भाषाएँ सीखनी चाहिएँ। उसकी पहली भाषा वह होगी जो उसकी मातृभाषा है अर्थात् जिस भाषा में उसकी परवरिश हुई है। बच्चे की प्राथमिक शिक्षा इसी भाषा में होनी चाहिए, यह बात शिक्षा मंत्रालय ने भी कही है और सर्वोच्च न्यायालय ने भी। दूसरी भाषा राष्ट्रभाषा होनी चाहिए। अहिन्दी क्षेत्र के बच्चों के लिए इसका आशय हिन्दी से होगा जबकि हिन्दी भाषी बच्चों के लिए इसका आशय आठवीं अनुसूची में उल्लिखित राष्ट्रीय भाषाओं में से किसी एक से होगा। राष्ट्रीय एकीकरण के लिए बेहतर यही माना गया कि हिन्दी क्षेत्र के बच्चे जो अन्य भाषा सीखें, वह या तो द्रविड़ परिवार की हो या पूर्वोत्तर प्रदेश से सम्बंधित हो। तीसरी भाषा अंतर्राष्ट्रीय भाषा (International Language) अर्थात् अंग्रेज़ी होगी क्योंकि भूमंडलीय नागरिक बनने के लिए और अंतर्राष्ट्रीय सुविधाओं का प्रयोग करने के लिए अंग्रेज़ी जानना भी अत्यंत लाभदायक है। दूसरी भाषा दसवीं कक्षा तक पढ़ाई जाएगी जबकि तीसरी भाषा की शुरूआत माध्यमिक स्तर पर की जाएगी और 12वीं कक्षा या उसके आगे तक भी उसे पढ़ाया जाएगा।

यह सूत्र अपने आप में बेहद मौलिक तथा समस्या का समुचित समाधान करने वाला था किन्तु इसका परिणाम भी वही हुआ जो भाषा संबंधी अन्य नीतियों का हुआ। कुछ अच्छे सरकारी विद्यालयों, विशेषत: नवोदय विद्यालयों में तो इसका प्रयोग ठीक तरीके से हुआ किंतु सामान्य विद्यालयों तथा राज्य सरकारों ने इसके संबंध में अनिच्छा ही प्रकट की। धीरे-धीरे इसका सरल विकल्प यह बन गया कि बच्चों को संस्कृत या आस-पड़ोस की कोई भाषा सिखाकर कामचलाऊ तरीके से औपचारिकताएँ पूरी कर दी जाएँ। अभी भी यदि इसका प्रयोग सम्यक् तरीके से हो तो एक पीढ़ी के बाद ऐसी स्थिति की कल्पना की जा सकती है जहाँ भाषा समस्या न बने और अनेकता में सचमुच एकता की स्थापना हो सके।

अभ्यास हेतु प्रश्न

1. हिन्दी के प्रचार-प्रसार के आंदोलन में किन्हीं दो प्रमुख संस्थाओं के योगदान पर प्रकाश डालिये। **U.P.S.C. (Mains) 2017**
2. राष्ट्रभाषा के प्रचार-प्रसार में महात्मा गाँधी और राजर्षि पुरुषोत्तम दास टंडन की भूमिका स्पष्ट कीजिये **U.P.S.C. (Mains) 2016**
3. स्वतंत्रता संग्राम की अवधि में हुए हिन्दी के विकास का परिचय दीजिए। **U.P.S.C. (Mains) 2015**
4. 'हिन्दुस्तानी' का परिचय दीजिए। **U.P.S.C. (Mains) 2014**
5. राष्ट्रभाषा हिन्दी के आन्दोलन में सेठ गोविन्ददास के योगदान पर विचार कीजिये। **U.P.S.C. (Mains) 2013**
6. राष्ट्रभाषा हिन्दी के आन्दोलन में निम्नलिखित प्रांतों के योगदान पर प्रकाश डालिए: **U.P.S.C. (Mains) 2012**
   (अ) महाराष्ट्र (ब) पंजाब
7. स्वतंत्रता आन्दोलन और हिन्दी (टिप्पणी) **U.P.S.C. (Mains) 2011**
8. दक्षिण भारत और बंगाल के जिन नेताओं ने हिन्दी को राष्ट्रभाषा बनाने का सुझाव दिया था, उनके विचारों का विवेचन कीजिये। **U.P.S.C. (Mains) 2010**
9. राष्ट्रभाषा हिन्दी (टिप्पणी) **U.P.S.C. (Mains) 2006**
10. राष्ट्रभाषा हिन्दी (टिप्पणी) **U.P.S.C. (Mains) 2002**
11. 'राष्ट्रभाषा' को परिभाषित करते हुए भारत की राष्ट्रभाषा के रूप में हिन्दी के विकास पर विचार कीजिये। **U.P.S.C. (Mains) 2000**

अध्याय
18

हिन्दी भाषा का मानकीकरण

18.1 मानक भाषा की धारणा

'मानक' का अभिप्राय है- आदर्श, श्रेष्ठ अथवा परिनिष्ठित। भाषा का जो रूप उस भाषा के प्रयोक्ताओं के अतिरिक्त अन्य भाषा-भाषियों के लिए आदर्श होता है, जिसके माध्यम से वे (अन्य भाषा-भाषी) उस भाषा को सीखते हैं, जिस भाषा-रूप का व्यवहार पत्राचार, शिक्षा, सरकारी कामकाज एवं सामाजिक-सांस्कृतिक आदान-प्रदान में समान स्तर पर होता है, वह उस भाषा का 'मानक' रूप कहलाता है। मानक भाषा की एक पहचान यह भी है कि उसका प्रयोग शिक्षित वर्ग द्वारा अपने सामाजिक, सांस्कृतिक, व्यापारिक, वैज्ञानिक तथा प्रशासनिक कार्यों में किया जाता है। मानक भाषा को 'किसी देश अथवा राज्य की प्रतिनिधि भाषा' भी कहा जाता है।

हर भाषा अपने आदि रूप में मात्र एक बोली होती है। उस बोली के प्रयोक्ताओं की राजनीतिक, सामाजिक-सांस्कृतिक और प्रशासनिक विकास-प्रक्रिया के साथ-साथ मात्र बोलचाल में प्रयुक्त होने वाली वह बोली भी धीरे-धीरे निखरकर विकसित हो जाती है, उसका व्याकरण निश्चित हो जाता है, उसे अधिकाधिक पत्राचार, शिक्षा, प्रशासन आदि का माध्यम बनने का अवसर मिलता है। तब वह 'बोली' न रहकर 'भाषा' का रूप ले लेती है। यही भाषा एक उच्च स्तर तक पहुँचकर ऐसा आदर्श रूप ले लेती है जिसे 'मानक' भाषा मान लिया जाता है। इस दृष्टि से, किसी भाषा का वह सर्वमान्य, व्याकरणसम्मत परिनिष्ठित रूप मानक भाषा कहलाता है जो विकास की प्रक्रिया से निखर कर अपने प्रयोक्ता- समुदाय के सभी क्षेत्रों का औपचारिक माध्यम बन जाता है।

18.2 भाषा के मानकीकरण की प्रक्रिया

'भाषा के मानकीकरण' का अभिप्राय है उसका 'बोली' रूप से क्रमशः विकसित होकर ऐसी 'परिनिष्ठित भाषा' का रूप धारण कर लेना जो धर्म, शिक्षा, साहित्य एवं प्रशासनिक कार्य-कलाप में सर्वमान्य माध्यम बन सके। भाषा का बोलचाल के स्तर से ऊपर उठकर, मानक रूप ग्रहण कर लेना ही उसका मानकीकरण है।

इस प्रक्रिया के तीन सोपान हैं। पहले स्तर पर भाषा का मूल रूप एक सीमित क्षेत्र में आपसी बोलचाल के रूप में प्रयुक्त होने वाली 'बोली' का होता है जिसे स्थानीय, आंचलिक अथवा क्षेत्रीय बोली कहा जा सकता है। इसका शब्द-भंडार सीमित होता है। इसका अपना नियमित व्याकरण या भाषा-शास्त्र नहीं होता। इसे शिक्षा, आधिकारिक कार्य-व्यवहार अथवा साहित्य का माध्यम नहीं बनाया जा सकता।

वही 'बोली' जब कुछ विशेष भौगोलिक, सामाजिक- सांस्कृतिक, राजनीतिक और प्रशासनिक कारणों से अपना क्षेत्र-विस्तार कर लेती है तो उसका लिखित रूप विकसित होने लगता है और वह व्याकरणिक साँचे में ढलने लगती है। उसके प्रयोक्ता उसे पत्राचार का माध्यम बना लेते हैं। शिक्षा, व्यवसाय और प्रशासन में उसका प्रयोग होने लगता है, उसका अपना साहित्य रचा जाता है; तब वह 'बोली' का चोला त्याग कर 'भाषा' की संज्ञा प्राप्त कर लेती है। यह किसी भाषा के मानकीकरण की प्रक्रिया का दूसरा सोपान है।

तीसरे स्तर पर पहुँचकर मानकीकरण की प्रक्रिया पूर्ण हो जाती है। यह वह स्तर है जब भाषा का प्रयोग-क्षेत्र अत्यधिक विस्तृत हो जाता है। वह एक ऐसा 'आदर्श' रूप धारण कर लेती है जिसमें किसी बोली की गंध नहीं रहती। वह उसका परिनिष्ठित रूप होता है। उसकी अपनी शैक्षणिक, व्यावहारिक, वाणिज्यिक, साहित्यिक, शास्त्रीय, तकनीकी एवं कानूनी शब्दावली होती है। विभिन्न सामाजिक-सांस्कृतिक, शैक्षणिक और प्रशासनिक क्षेत्रों में, भूगोल-इतिहास, व्याकरण आदि की पुस्तकों, साहित्य-कला और संचार-साधनों के स्तर पर उसका एक-सा सर्वमान्य रूप गृहीत होता है। ऐसी स्थिति में पहुँचकर भाषा 'मानक भाषा' बन जाती है। उसी को शुद्ध, उच्चस्तरीय, परिमार्जित आदि विशेषण भी दिये जाते हैं।

18.3 भाषा के मानकीकरण के कारण

मानकीकरण की प्रक्रिया को समझने के लिए उसके प्रमुख कारणों का विशद परिचय आवश्यक है। ये हैं- (क) भौगोलिक, (ख) राजनीतिक, (ग) धार्मिक, (घ) सामाजिक, (ड़) शैक्षणिक और (च) साहित्यिक।

(क) भौगोलिक कारण - भौगोलिक परिवेश का भाषा के मानकीकरण की प्रक्रिया में महत्त्वपूर्ण योगदान रहता है। जहाँ क्षेत्र समतल हो, यातायात और संचार-सुविधाएँ पर्याप्त हों, वहाँ की बोली को 'भाषा' और 'भाषा' को 'मानक भाषा' बनते देर नहीं लगती; क्योंकि उसका प्रयोग-विस्तार उसमें निखार लाने में सहायक होता है। बीहड़ पहाड़ी क्षेत्र की बोलियाँ आज भी 'बोली' के स्तर से ऊपर नहीं उठ पाई हैं जबकि मैदानी क्षेत्रों में प्रयुक्त खड़ी बोली, पंजाबी, गुजराती, मराठी, बंगला आदि 'मानक भाषा' का दर्जा प्राप्त कर चुकी हैं।

(ख) राजनीतिक कारण - राजनीतिक प्रश्रय भाषा के मानकीकरण की प्रक्रिया को बहुत ही तीव्र कर देता है। शासन और प्रशासन जिस भाषा को अपने कार्य-व्यवहार का माध्यम बना लेता है उसका शब्द-भंडार, व्याकरण एवं प्रायोगिक स्वरूप विकसित होना स्वाभाविक है। तेरहवीं शताब्दी से अठारहवीं शताब्दी तक भारतीय राजनीति पर मुस्लिम शासन हावी रहा जिसने फारसी को प्रश्रय दिया। अतः हिन्दी की सभी बोलियाँ जैसे ब्रज, अवधी आदि बोली के रूप में ही प्रचलित रहीं। खड़ी बोली के प्रयोग की संभावनाएँ तो और भी सीमित रहीं। उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य से जैसे-जैसे राजनीतिक परिस्थितियों में बदलाव आया, विभिन्न प्रशासनिक आवश्यकताओं ने खड़ी बोली को विकास का अवसर दिया। देश की समूची राजनीतिक गतिविधियों का माध्यम बनते ही खड़ी बोली क्रमशः विकसित, परिनिष्ठित, व्याकरण-बद्ध और उच्चस्तरीय होती गयी।

(ग) धार्मिक कारण- धार्मिक कारण यद्यपि किसी भाषा के मानकीकरण की प्रक्रिया में अधिक सहायक नहीं होते, तथापि जनसामान्य की धर्म में विशेष रुचि और आस्था होने के कारण विभिन्न धार्मिक ग्रंथों, शास्त्रों और प्रवचनों में प्रयुक्त होने वाली भाषा का प्रयोक्ता-वर्ग अनायास बढ़ जाता है। उसमें अभिव्यक्ति और विवेचन की क्षमता समृद्ध होने लगती है जो उसे बोलचाल के सामान्य स्तर से ऊँचा उठाकर एक परिनिष्ठित रूप की ओर अग्रसर करती है।

(घ) सामाजिक कारण- सामाजिक परिवेश किसी भाषा के मानकीकरण की प्रक्रिया को गति प्रदान करने वाला सबसे सबल कारण है। भाषा मूलतः सामाजिक उत्पाद है जिसका संपोषण भी समाज के संरक्षण में होता है। समाज का बहुसंख्यक वर्ग जिस भाषा-रूप को अधिक प्रयोग में लाएगा, उसे अपनी सभी गतिविधियों का माध्यम बनायेगा, उस भाषा का उत्तरोत्तर विकास एवं संवर्द्धन अवश्यम्भावी है।

(ड़) शैक्षणिक कारण - किसी भी समुदाय की शिक्षा का माध्यम वही भाषा-रूप हो सकता है जो प्रत्येक नागरिक को सरल शब्दावली में विधि, भूगोल, इतिहास, अन्य ज्ञान-विज्ञान और जीवन तथा जगत के विभिन्न पहलुओं से समान स्तर पर अवगत करा सके। एक समुदाय के सभी सदस्यों को एक-सी शिक्षा प्रदान करने वाली भाषा सर्वमान्य, परिष्कृत और आदर्श भाषा ही हो सकती है। इस प्रकार शिक्षा-माध्यम का सम्बल पाकर कोई भी भाषा अल्प समय में मानकीकरण के स्तर तक पहुँच जाती है।

(च) साहित्यिक कारण- साहित्यिक भाषा के पद पर पहुँचने के पश्चात् किसी भाषा के मानकीकरण की प्रक्रिया स्वतः ही आरम्भ हो जाती है। साहित्यकार विभिन्न अनुभूतियों, विचारों और संकल्पनाओं को अभिव्यक्ति प्रदान करने के लिए भाषा के नए-नए प्रयोगों द्वारा उसे सँवारते, निखारते और परिमार्जित करते रहते हैं। भाषा के किसी रूप को सर्वमान्य और प्रयोग-बहुल बनाने तथा एक निश्चित भंगिमा में ढालकर आदर्श रूप प्रदान करने में साहित्य का योगदान प्रमुख रहता है।

18.4 मानक हिन्दी का स्वरूप

मानक हिन्दी से तात्पर्य, खड़ी बोली से विकसित और नागरी लिपि में लिखी जाने वाली उस मानक भाषा से है, जिसे उच्च हिन्दी या परिनिष्ठित हिन्दी भी कहा जाता है। यही हिन्दी भारत की राष्ट्रभाषा, राजभाषा तथा सम्पर्क भाषा है। यही शिक्षा, प्रशासन, वाणिज्य, समाचार पत्र, कला-संस्कृति की विभिन्न विधाओं में संप्रेषण का माध्यम है। ये सब इसके बाहरी रूप या बहिरंग आयाम हैं।

अंतरंग आयाम के अंतर्गत मानक हिन्दी की भाषिक संरचना तथा व्याकरणिक व्यवस्था की दृष्टि से उसके स्वरूप को देखा जा सकता है। हिन्दी निरंतर विकसित और परिष्कृत होती रही है। आज हिन्दी का जो मानक स्वरूप निर्धारित हो पाया है वह लगभग पिछली दस शताब्दियों का परिणाम है। ठोस स्तर पर यह प्रक्रिया भारतेंदु युग से प्रारम्भ हुई। मानक हिन्दी का मूल आधार 'खड़ी बोली' है। हिन्दी की विभिन्न बोलियों में से एक 'खड़ी बोली' ने मानक हिन्दी की ओर अग्रसर होने के क्रम में शब्दावली के स्तर पर विभिन्न स्रोतों का सहारा लिया। इनमें सबसे प्रमुख स्रोत संस्कृत है जहाँ से व्यापक स्तर पर तत्सम शब्दों को ग्रहण किया गया। इसके अतिरिक्त कई विदेशी भाषाओं एवं देशी बोलियों से भी शब्द ग्रहण किये गए। व्याकरण के स्तर पर मानक हिन्दी के स्वरूप- निर्धारण में मूल आधार संस्कृत है जिसने किंचित परिवर्तनों के साथ मानक हिन्दी के व्याकरण के स्वरूप का निर्माण किया है।

18.5 मानक हिन्दी की व्याकरणिक विशेषताएँ

व्याकरण, किसी भी भाषा को अनुशासित करने की एक पद्धति है। हिन्दी भाषा का भी अपना एक स्पष्ट व्याकरण है। इसके प्रमुख रूप से चार अंग है-

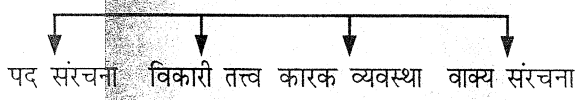

प्रथम है, पद संरचना। आमतौर पर शब्द और पद को पर्यायवाची माना जाता है, परंतु इनमें एक अंतर है। शब्द स्वयं में स्वतंत्र भी हो सकता है, किंतु वही शब्द, जब व्याकरण सम्मत नियमों के आधार पर किसी व्याकरणिक कोटि के रूप में वाक्य में निश्चित स्थान ग्रहण करता है, तो पद बन जाता है। जैसे, मैं, घर, जाऊँगा सभी स्वतंत्र रूप में शब्द हैं, जबकि "मैं घर जाऊँगा" में ये तीनों शब्द, पद में परिवर्तित हो गए हैं। पद संरचना को निम्न चित्र द्वारा दर्शाया जा सकता है-

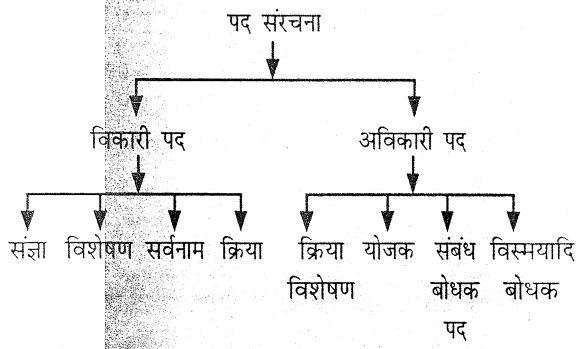

इसे निम्न तरीकों से समझा जा सकता है-

विकारी पद वे पद हैं जो लिंग, वचन या काल आदि के परिवर्तन से बदल जाते हैं। मानक हिन्दी में चार प्रकार के विकारी पद मिलते हैं- संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण एवं क्रिया। संज्ञा वस्तु, व्यक्ति या भाव का नाम है। इसके पाँच प्रकार है-

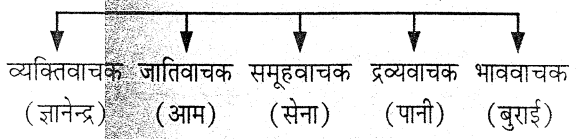

विशेषण वे पद है जो संज्ञा या सर्वनाम की विशेषता बताते हैं। इनकी संख्या चार है-

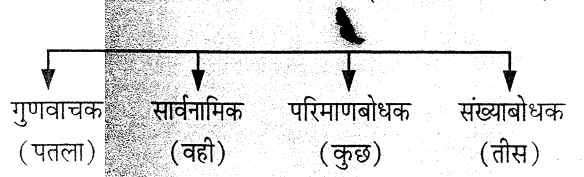

सर्वनाम वे पद है जो संज्ञा के स्थानापन्न होते हैं। इनके छः प्रकार होते हैं-

पुरुष वाचक (यह)	प्रश्न वाचक (कौन?)	निज वाचक (अपना)	निश्चय वाचक (यही)	अनिश्चय वाचक (कोई)	संबंध वाचक (जैसा)

क्रिया वह पद है, जिससे कुछ करना या होना सूचित होता है। इसके कई भेद हैं-

अकर्मक (राम गया)	सकर्मक (राम घर गया)	संयुक्त (गिरते-गिरते बचा)	प्रेरणार्थक (लड़वाना)	नाम धातु (गर्माना मोटाना)

हिन्दी में विकार पैदा करने वाले पाँच तत्त्व माने गए हैं, जिन्हें निम्न चित्र-आरेख द्वारा दर्शाया जा सकता है-

लिंग	वचन	वाच्य	पुरुष	काल

इसे निम्न तरीके से समझा जा सकता है-

मानक हिन्दी में मात्र दो लिंगों की व्यवस्था है, क्योंकि संस्कृत के नपुंसक लिंग को यहाँ पर मान्यता नहीं दी गई है। इसी प्रकार संस्कृत के द्विवचन को भी हिन्दी की वचन-व्यवस्था में शामिल नहीं किया गया है। इस प्रकार मानक हिन्दी में मात्र दो लिंग (पुरुष, स्त्री) तथा दो वचन (एकवचन तथा बहुवचन) ही स्वीकृत हैं। वहीं वाच्यों की संख्या तीन है- (1) कर्तृ वाच्य, (जो कर्त्ता केंद्रित होते हैं), (2) कर्म वाच्य (जो कर्म केंद्रित होते हैं) तथा (3) भाव वाच्य (जो भाव केंद्रित होते हैं)। वाच्य को निम्न आरेख द्वारा स्पष्ट रूप से समझा जा सकता है-

कर्तृ वाच्य (राम पुस्तक पढ़ता है।)	कर्म वाच्य (पुस्तक राम द्वारा पढ़ी जाती है।)	भाव वाच्य (राम से पुस्तक पढ़ी नहीं जा सकेगी।)

हिन्दी व्याकरण में पुरुष भी तीन हैं-

1. अन्य पुरुष (वह)
2. मध्यम पुरुष (तुम)
3. उत्तम पुरुष (मैं, हम, वे)

जबकि कालों की संख्या यहाँ भी स्वाभाविक रूप से तीन है- (1) भूत काल, (2) वर्तमान काल व (3) भविष्य काल।

जहाँ तक अविकारी या अव्यय पदों की बात है तो ये वे पद हैं, जो किसी भी परिस्थिति में परिवर्तित नहीं होते हैं। प्रत्येक काल, वचन तथा लिंग में इनकी, एक सी संरचना बनी रहती है। इनकी संख्या चार है। प्रथम है क्रिया विशेषण। यह संज्ञा की नहीं, बल्कि क्रिया की विशेषता बताते हैं, जैसे: 'तेज दौड़ना' में 'तेज' शब्द 'दौड़ना' क्रिया की विशेषता बताता है। दूसरा अविकारी पद है- योजक या समुच्चय बोधक पद, जो दो वाक्यों या उपवाक्यों को जोड़ता है जैसे- 'और', 'किंतु', 'या' आदि। संबंध बोधक पद भी अविकारी पदों के अंतर्गत आते हैं, जो दो वस्तुओं या व्यक्तियों या वस्तु और व्यक्ति के आपसी संबंधों को व्यक्त करते हैं, जैसे: 'के लिए', 'के बिना' आदि। वहीं चौथा अविकारी पद है विस्मयादिबोधक, जो विस्मय को प्रकट करने के लिए प्रयुक्त होता है, जैसे: 'वाह'!, 'अरे'! आदि।

हिन्दी व्याकरणिक व्यवस्था में कारक व्यवस्था का महत्त्वपूर्ण स्थान है। यह क्रिया के साथ विभिन्न संज्ञाओं का संबंध बताती है। हिन्दी में भी संस्कृत की तरह 8 कारक स्वीकृत है, परंतु इनके साथ संस्कृत की तरह विभक्तियाँ प्रयुक्त नहीं होती हैं, बल्कि परसर्ग (लिंग, वचन निरपेक्ष) प्रयुक्त होते हैं। इन्हें निम्नलिखित तरीके द्वारा समझा जा सकता है-

1. कर्त्ता (ने)
2. कर्म (को)
3. करण (से)
4. संप्रदान (के लिए)
5. अपादान (से वियोगार्थ)
6. संबंध (का, की, के)
7. अधिकरण (में, पर)
8. संबोधन (हे!)

वहीं, वाक्य संरचना किसी भी भाषा की अर्थ प्रदात्री (अर्थ प्रदान करने वाली) इकाई होती है। यह कुछ शब्दों के व्यवस्थित संयोग से बनती है। वाक्य प्रायः तीन प्रकार के होते हैं-

(क) सरल वाक्य (ख) संयुक्त वाक्य (ग) मिश्र वाक्य

सरल वाक्य वे हैं जिनमें एक उद्देश्य व एक विधेय होता है। उदाहरण के लिए- *"मैं घर जा रहा हूँ।"*

संयुक्त वाक्य, ऐसा वाक्य है, जिसमें दो स्वतंत्र वाक्यों को, किसी योजक शब्द के माध्यम से जोड़ दिया जाता है तथा ये दोनों मिलकर एक व्यापक अर्थ को जन्म देते हैं, जैसे- *"राम ने श्याम को मारा और वह जेल चला गया।"*

वहीं मिश्र या जटिल वाक्य वे हैं जिनमें एक प्रधान उपवाक्य होता है तथा एक या अधिक आश्रित उपवाक्य होते हैं। इनमें से कोई स्वतंत्र वाक्य नहीं होता, अतः ये सब मिलकर ही अर्थ को अभिव्यक्त कर पाते हैं, जैसे- *"मैं इस बात की सूचना आपको देना चाहता था लेकिन बीमार पड़ गया और न तो आपको सूचित कर सका, न ही पत्र लिख पाया।"*

भाव की दृष्टि से भी वाक्यों को 8 प्रकारों में विभाजित किया गया है-

1. विधेयात्मक वाक्य
2. निषेधात्मक वाक्य
3. प्रश्नवाचक वाक्य
4. संदेहवाचक वाक्य
5. इच्छावाचक वाक्य
6. आदेशवाचक वाक्य
7. विस्मयादिबोधक वाक्य
8. शर्तवाचक वाक्य

हिन्दी वाक्य निर्माण की व्यवस्था संस्कृत की पद्धति पर आधारित है, जो अंग्रेजी पद्धति से अलग है। हिन्दी वाक्यों में कर्त्ता, कर्म, क्रिया का क्रम स्वीकार्य है। जैसे-

हिन्दी- "मैं पुस्तक पढ़ता हूँ"

↓ ↓ ↓

कर्त्ता कर्म क्रिया

संस्कृत- "अहम पुस्तकम् पठामि"

वहीं अंग्रेजी में कर्त्ता, क्रिया, कर्म का क्रम स्वीकार्य है-

अंग्रेज़ी- "I read a book"

↓ ↓ ↓

कर्त्ता क्रिया कर्म

कुल मिलाकर हिन्दी की व्याकरणिक संरचना मूलतः संस्कृत व्याकरण के ढाँचे का सरलीकृत रूप है। यद्यपि विकास की प्रक्रिया में इसने, अन्य परंपराओं तथा लोक अनुभवों के साथ परिवर्तनशीलता प्रदर्शित की है, फिर भी इसे वैज्ञानिकता के ढाँचे पर आधारित कहना कोई अतिशयोक्ति पूर्ण कथन नहीं लगता।

18.6 हिन्दी के मानक रूप का ऐतिहासिक विकास

वस्तुतः आज हिन्दी का जो मानक रूप उपलब्ध है, वह इस भाषा की लम्बी विकास-प्रक्रिया का परिणाम है जो भारतेंदु युग (1850-1900 ई.) से आरंभ होती है। भारतेन्दु-युग के रचनाकारों की मूल चिंता खड़ी बोली हिन्दी को गद्यभाषा के रूप में प्रतिष्ठित करने की थी, न कि उसे मानक एवं परिनिष्ठित रूप प्रदान करने की। अतः व्याकरण-संबंधी बहुरूपता, लिंग-वचन तथा कारक प्रयोग में अस्थिरता, शब्द चयन की अनिश्चितता, वाक्य-योजना की शिथिलता एवं अन्वयहीनता भारतेन्दुयुगीन हिन्दी का स्वभाव है।

हिन्दी को मानक रूप प्रदान करने के प्रयत्न द्विवेदी युग में शुरु हुआ। इस संबंध में पंडित महावीर प्रसाद द्विवेदी का योगदान अप्रतिम एवं अविस्मरणीय है। उन्होंने खड़ी बोली के मानकीकरण का सवाल एक आन्दोलन की तरह उठाया। उन्होंने अनुभव किया कि भाषा की एकरूपता और परिनिष्ठता के लिए एक तो क्षेत्रीय भाषाओं के प्रयोगों को छोड़ना पड़ेगा और

दूसरे गद्य और पद्य की भाषा को एकरूप करना होगा। अपनी नेतृत्व-क्षमता, दृढ़ संकल्प एवं कठोर अनुशासन के बल पर उन्होंने यह ऐतिहासिक कार्य कुशलतापूर्वक संपन्न किया। द्विवेदी जी की प्रेरणा से कामता प्रसाद गुरु और किशोरीदास वाजपेयी ने खड़ीबोली के आरंभिक व्याकरण भी लिखे।

महावीर प्रसाद द्विवेदी एवं उनके युग के कई अन्य विद्वानों की मानकता-संबंधी सामान्य मान्यताएँ इस प्रकार हैं-

1. संस्कृत, अंग्रेजी, अरबी-फारसी इत्यादि भाषाओं के जो शब्द हिन्दी में प्रचलित हो गए हैं, उन्हें स्वीकार कर लिया जाना चाहिए। आवश्यकता पड़ने पर विदेशी शब्दों का उच्चारण और वर्तनी हिन्दी के अनुरूप कर लिया जाना चाहिए।
2. परसर्ग को संज्ञा से अलग लिखना चाहिए, जैसे - राम ने रावण को मारा।
3. सर्वनाम के प्रयोग में परसर्ग को सटाकर लिखना चाहिए, जैसे - मैंने, उसने, तुमने आदि।
4. संस्कृत, फारसी-अरबी आदि के कई पुल्लिंग शब्दों का हिन्दी में स्त्रीलिंग रूप में व्यवहार होता है। अत: उनका स्त्रीलिंग रूप ही मानक है। ऐसे कुछ शब्द हैं- आत्मा, वायु, अग्नि, पाठशाला, मर्यादा आदि।
5. पुल्लिंग शब्दों के बहुवचन रूप सूरमे, राजे, देवते और स्त्रीलिंग शब्दों के लड़कियें वगैरह अमानक हैं। इनके स्थान पर सूरमा (एक सूरमा, चार सूरमा), राजा (एक राजा, चार राजा), देवता, लड़कियाँ आदि मान्य हैं।
6. क्रिया के आवैं, जावैं, हूजिए, लीजै, कीजै आदि प्रयोग छोड़े जाने चाहिए।
7. केवल आकारान्त विशेषणों को विकारी माना जाना चाहिए, जैसे काला > काली, काले इत्यादि। शेष विशेषण अविकारी ही माने जाने चाहिएँ।

छायावाद और प्रगतिवाद के दौर में हिन्दी के मानकीकरण की दिशा में कोई आंदोलन नहीं हुआ, किंतु भाषा का मानक रूप अपने-आप स्पष्ट होता गया। छायावादी कवियों, कथाकार प्रेमचंद तथा निबंधकार आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने हिन्दी के मानक रूप को प्रतिष्ठित करने का प्रयास निरंतर किया। स्कूलों और कॉलेजों में हिन्दी को अपना स्थान मिला, विद्यार्थियों ने भाषा की प्रकृति को जाना और सर्वत्र हिन्दी का एक रूप प्रतिष्ठित होने लगा।

स्वतंत्रता-प्राप्ति के बाद संविधान ने हिन्दी को राजभाषा के पद पर प्रतिष्ठित किया। अत: जीवन के अनेक क्षेत्रों में शब्दावली निर्माण की जरूरत हुई। प्रशासन, तकनीक, विज्ञान, विधि आदि क्षेत्रों में मानक शब्दावली के निर्माण के लिए अनेक आयोगों की स्थापना हुई। देवनागरी लिपि को छपाई, टाइपराइटर आदि के उपयुक्त बनाने के लिए प्रयास होने लगे। केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय ने लिपि के मानकीकरण पर अपना ध्यान केन्द्रित किया।

18.7 वर्तमान समय में मानकीकरण की समस्याएँ

आज हिन्दी का एक संतोषजनक मानक रूप उपलब्ध है किन्तु इसमें और सुधार की अपेक्षाएँ हैं। कई स्तरों पर हिन्दी में मानकता की समस्याएँ मौजूद हैं, जिन्हें हम निम्नांकित वर्गों के अंतर्गत देख सकते हैं-

(i) उच्चारण (iii) व्याकरण (ii) शब्दावली (iv) लिपि

(i) उच्चारण संबंधी समस्याएँ

विभिन्न बोलियों के प्रभाव के कारण विभिन्न क्षेत्रों के लोगों के हिन्दी के उच्चारण में विभिन्नता दिखाई देती है। यह समस्या मुख्यत: य-ज / क्ष-ख, छ / श-स / ड़-र / व-ब तथा झ-ज ध्वनियों के वर्गों में दिखाई देती है। उदाहरण के लिए-

मानक रूप	अमानक रूप	मानक रूप	अमानक रूप
यमुना	जमुना	मुझे	मुजे
यजमान	जजमान	अरे	अड़े
क्षमा	छमा	शीशा	सीसा
लक्ष्मण	लछमन, लखन	संगम	शंगम

शहर	सहर	वचन	बचन
सड़क	सरक	नीति	नीत
रीति	रीती	गलती	गल्ती

(ii) शब्दावली संबंधी समस्याएँ

शब्दावली के मानकीकरण की समस्या को शब्दावली के विभिन्न स्तरों पर उठाया गया है, जैसे- लोकभाषा, साहित्यिक भाषा तथा राजभाषा की शब्दावलियों के स्तर पर।

(क) एक विशाल भू-भाग में बोली जाने के कारण **लोकभाषा** के स्तर पर अनेकरूपता है जैसे -

कद्दू - घिया, लौकी चींटी - कीड़ी

ताऊ - बड़े पापा, चाचा, काका

(ख) **साहित्यिक** स्तर पर भी एक शब्द के अनेक पर्याय हैं। उदाहरण के तौर पर, वायु के 42 पर्याय मिलते हैं और सूर्य के लिए भी प्राय: इतने ही शब्द पाये जाते हैं।

(ग) **राजभाषा** की शब्दावली में भी बहुत से शब्द भिन्न-भिन्न रूप में चल रहे हैं यद्यपि उनका अर्थ एक है, जैसे -

डाइरेक्टर - निदेशक, निर्देशक, संचालक लेक्चरर - प्राध्यापक, प्रवक्ता, प्रवाचक, व्याख्याता

वर्कशॉप - कार्यशाला, कर्मशाला, कार्यगोष्ठी

(घ) **राष्ट्रभाषा** के रूप में स्थापित होने के लिए मानक हिन्दी को देश की अन्य भाषाओं से ऐसे शब्दों को ग्रहण करना चाहिए जिनका हिन्दी में अभाव हो। कुछ शब्द लिए भी गए हैं, जैसे दक्षिण की भाषाओं से इडली, डोसा, सांभर, मराठी से चालू, लागू आदि।

(ड.) अंतर्राष्ट्रीय शब्दों का प्रयोग भी इस प्रकार से होना चाहिए कि वे एकरूप हों, व्यावहारिक हों तथा बोधगम्य हों। अभी भी कुछ शब्दों में द्विरूपता दिखती है। कभी-कभी कुछ लोग मूल विदेशी शब्द का ही प्रयोग करते हैं जबकि कुछ लोग अनुवाद का, जैसे-

Doctor	चिकित्सक	Computer	संगणक
Internet	अंतर्जाल	Medical Science	आयुर्विज्ञान
Depot	आगार	Blog	चिट्ठा

(iii) व्याकरण संबंधी समस्याएँ

हिन्दी भाषा में व्याकरणिक प्रयोगों के स्तर पर भी मानकता की समस्या मौजूद है। यद्यपि इस धरातल पर अमानक रूपों की संख्या बहुत अधिक नहीं है, फिर भी कुछ स्तरों पर एकाधिक अमानक रूप प्रचलन में हैं। इन्हें विभिन्न व्याकरणिक कोटियों के अंतर्गत देखा जा सकता है-

(क) संज्ञा व्यवस्था- कुछ लोग आकारांत संज्ञाओं के तिर्यक् रूपों में अनावश्यक रूप से 'ए' जोड़ते हैं, जैसे - 'मामे की दुकान से', 'चाचे के कहने से', 'पटने में' या 'कलकत्ते में' आदि। ये प्रयोग अशुद्ध हैं। इनके स्थान पर आकारांत शब्द का ही प्रयोग किया जाना चाहिए।

संज्ञाओं के स्तर पर अमानकता की एक समस्या अवधी में भी दिखती है। इसमें संज्ञा के तीन रूप प्रयोग में आते हैं, जैसे- लरका, लरकवा, लरकउना। शेष बोलियों में संज्ञा का एक ही रूप चलता है जो कि मानक भी है।

(ख) कारक व्यवस्था - कर्ता कारक के लिए पश्चिम में 'हमने जाना है', 'मैंने खाना है' जैसे प्रयोग चलते हैं और पूर्व में 'हमको जाना है', 'हमको खाना है' जैसे। पूर्वी प्रयोगों में संदेह बना रहता है, जैसे 'हमको सीता को गाड़ी में बैठाना है', तथा 'हमको उसको गणित पढ़ाना है' वाक्यों में कर्ता तथा कर्म कारक का निर्णय अस्पष्ट है। इसलिए पश्चिमी प्रयोग अधिक स्पष्ट हैं।

(ग) वचन व्यवस्था - वचन व्यवस्था में कई अमानक रूप दिखाई पड़ते हैं। पूर्वी हिन्दी में 'तुम' तथा 'हम' का प्रयोग एकवचन में होता है, जबकि पश्चिमी हिन्दी में बहुवचन में। दक्खिनी हिन्दी में स्त्रीलिंग संज्ञाओं के साथ विशेषण भी वचन बदलते हैं जो अन्य बोलियों या मानक हिन्दी में मान्य नहीं हैं, जैसे 'आती हुई लड़की' > 'आतियाँ हुइयाँ लड़कियाँ' इत्यादि। स्त्रीलिंग शब्दों के बहुवचन में भी द्विरूपता मिलती है, जैसे-

रोटियाँ - रोटिएँ
चिड़ियाँ - चिड़िएँ
लड़कियाँ - लड़किएँ

(घ) सर्वनाम व्यवस्था - क्षेत्रीय कारकीय रूपों का प्रचलन भी होता है जो अमानक है। जैसे -

मानक रूप		अमानक रूप
मुझे-मुझको	-	मेरे को
तुमसे	-	तेरे से
मुझमें	-	मेरे में
तुममें	-	तेरे में

पूर्व में 'मैं' के लिए 'हम' और 'हम' के लिए 'हमलोग' प्रयोग प्रचलित हैं। इसी प्रकार, कहीं-कहीं इस्ने, उस्ने, उन्ने, इन्ने, किन्ने जैसे रूप आज भी प्रचलित हैं।

(ङ) सम्बोधन व्यवस्था - सम्बोधन में संज्ञा रूपों में कई लोग अनुस्वार का प्रयोग करते हैं जो अशुद्ध है।

शुद्ध रूप	अशुद्ध रूप
भाइयो	भाइयों
बच्चो	बच्चों
लड़को	लड़कों
बहनो	बहनों

(च) लिंग व्यवस्था - कई शब्द ऐसे हैं जिनका पुल्लिंग एवं स्त्रीलिंग दोनों रूपों में प्रयोग होता है, जैसे - 'आत्मा' शब्द संस्कृत में पुल्लिंग है, हिन्दी में कुछ लोग इसे पुल्लिंग मानते हैं तो कुछ स्त्रीलिंग। लिंग के स्तर पर कुछ विवादग्रस्त शब्द ये हैं - वायु, मृत्यु, आयु, चर्चा, कलम, पैंट, कुदाल, आलू, पिस्तौल, साइकिल, ब्याज़, तौलिया, तकिया, गिलास, दही, रुमाल आदि।

इसी प्रकार पदनामों में भी विवाद हैं, जैसे -

मंत्री - मंत्राणी निदेशक - निदेशिका
अध्यक्ष - अध्यक्षा लेखापाल - लेखापालिका

स्त्रीलिंग प्रयोगों में ये दोनों रूप प्रचलन में हैं। 'राष्ट्रपति' शब्द को लेकर अब समस्या आरंभ हो चुकी है। 'प्रधानमंत्री' को लेकर पहले भी समस्या हो चुकी है किंतु 'राष्ट्रपति' में समस्या अधिक है। यद्यपि कुछ भाषाविज्ञानी इन शब्दों को उभयलिंगी मानने पर बल देते हैं, किंतु इन शब्दों की संरचना ऐसी है कि लिंग बोध अपने आप हो जाता है।

(छ) क्रिया संरचना - क्रिया रूपों के स्तर पर भी अमानकता के दर्शन होते हैं, जैसे -

किया - करा
की - करी
कीजिए - करिये

इसी प्रकार वाक्य में पुल्लिंग और स्त्रीलिंग संज्ञाएँ या एकवचन व बहुवचन की संज्ञाएँ एक साथ आ जाएँ तो क्रिया का अन्वय किस लिंग-वचन के साथ हो, इस संबंध में लेखकों में काफी अनिश्चितता दिखाई पड़ती है।

(ज) अप्रत्यक्ष कथन - अप्रत्यक्ष कथन के प्रयोग में अंग्रेज़ी के प्रभाव के कारण द्विरूपता विद्यमान है। हिन्दी की प्रकृति में प्रत्यक्ष कथन और अप्रत्यक्ष कथन में मात्र 'कि' का अंतर है; कर्ता और क्रिया में अंतर नहीं पड़ता; जैसे -

उसने कहा - 'मैं जाऊँगा' = उसने कहा कि मैं जाऊँगा।

'उसने कहा कि वह जाएगा' अंग्रेज़ी का प्रभाव है जो आजकल अनावश्यक रूप से काफी दिखने लगा है।

(iv) लिपि संबंधी समस्याएँ

लिपि के मानकीकरण के लिए देवनागरी लिपि से संबंधित नोट्स देखें।

अभ्यास हेतु प्रश्न

1. हिन्दी भाषा के मानकीकरण में नागरी लिपि के योगदान को स्पष्ट कीजिये। **U.P.S.C. (Mains) 2015**
2. हिन्दी की रूपात्मक त्रुटियाँ (टिप्पणी) **U.P.S.C. (Mains) 2013**
3. हिन्दी भाषा के स्वरूप-निर्धारण में निम्नलिखित साहित्यकारों के योगदान पर प्रकाश डालिए:
   (क) भारतेन्दु हरिश्चन्द्र (ख) महावीर प्रसाद द्विवेदी **U.P.S.C. (Mains) 2012**
4. हिन्दी का मानकीकरण (टिप्पणी) **U.P.S.C. (Mains) 2010**
5. नागरी लिपि का उद्भव और विकास विवेचित करते हुए हिन्दी भाषा के मानकीकरण में उसके योगदान पर प्रकाश डालिए। **U.P.S.C. (Mains) 2009**
6. खड़ी बोली हिन्दी के विकास की रूपरेखा प्रस्तुत करते हुए उसके मानकीकरण पर प्रकाश डालिए। **U.P.S.C. (Mains) 2003**

अध्याय
19

देवनागरी लिपि

19.1 'लिपि' की धारणा एवं महत्त्व

'लिपि' शब्द का अर्थ है - 'लिखावट'। हम 'भाषा' के रूप में जिन ध्वनियों का उच्चारण एवं शब्दों-वाक्यों आदि में प्रयोग करते हैं, वे श्रोताओं के कानों तक पहुँचने के बाद अस्तित्वहीन हो जाती हैं। उनकी सत्ता केवल 'श्रव्य' होने तक सीमित है। भाषा की उन्हीं ध्वनियों को 'दृश्य' रूप में सम्प्रेषण का माध्यम बनाने के लिए हम उन्हें कुछ विशेष 'आकृतियों' में - रेखाओं या चित्राकृतियों द्वारा प्रस्तुत करते हैं, तब वही भाषा 'लिपि' का रूप धारण कर लेती है। इस आधार पर हम कह सकते हैं कि "भाषा की सभी ध्वनियों के लिए निर्धारित प्रतीक-चिह्नों का सामूहिक नाम लिपि है।"

लिपि भाषा की हर एक व्यक्त ध्वनि को एक सुनिश्चित आकृति के रूप में प्रत्यक्ष कर देती है। इस प्रकार 'लिपि' भाषा का लिखित पर्याय ही है।

19.2 भाषा व लिपि का अंतःसंबंध एवं अन्तर

'भाषा' व 'लिपि' दोनों में गहरा संबंध है। 'भाषा' और 'लिपि' दोनों में ध्वनि-संकेत प्रयोग में लाये जाते हैं। दोनों का मूलभूत आधार मानव-मुख से उच्चरित ध्वनियाँ हैं। इन दोनों में मुख्य अंतर निम्नलिखित हैं-

(i) भाषा में ध्वनियाँ 'श्रव्य' रूप में व्यक्त होती हैं, जबकि लिपि में वही ध्वनियाँ 'दृश्य' रूप ले लेती हैं। भाषा 'मौखिक' रहती है और 'लिपि' लिखित।

(ii) भाषा का क्षेत्र सीमित है और लिपि का विस्तृत। भाषा समय और स्थान के दायरे में बंधी रहती है। वाल्मीकि, व्यास, कालिदास या कबीर-सूर-तुलसी ने जो कुछ गा-गाकर सुनाया, उसे केवल उनके समय में, उनके सामने उपस्थित लोग ही सुन पाये - जबकि 'लिपि' के द्वारा हम आज, हज़ारों वर्ष बाद भी, उनके काव्य का रसास्वादन कर रहे हैं। 'लिपि' समय और स्थान की सीमाओं को लांघकर हर युग में, हर समय में, हर स्थान पर पहुँच सकती है।

(iii) एक अन्य दृष्टि से भाषा लिपि की तुलना में अधिक व्यापक है। लिपि का संबंध केवल साक्षर जनता से ही बन पाता है जबकि भाषा का प्रयोग हर शिक्षित-अशिक्षित व्यक्ति समान रूप से कर सकता है। भारत जैसे देशों में, जहाँ लगभग आधी जनता पढ़ना-लिखना नहीं जानती, भाषा का महत्त्व अपने आप बढ़ जाता है।

(iv) 'लिपि' ही किसी 'भाषा' को उसके पूर्ण शुद्ध, मूल, वास्तविक रूप में सुरक्षित रखती है। सहस्रों वर्ष पुराना वैदिक, प्राकृत, अपभ्रंश साहित्य आज भी यदि अपने मूल रूप में हमें उपलब्ध है तो केवल 'लिपि' के कारण। विश्व भर में ज्ञान-विज्ञान, शिक्षा-शास्त्र, प्रौद्योगिकी-तकनीक, शिक्षा, प्रशासन, न्याय-विधि, राजनीति, समाज, भूगोल, इतिहास, ज्योतिष, चिकित्सा आदि अनेकानेक विषयों की सामग्री 'लिपि' के माध्यम से उपलब्ध है। आज 'टंकण' और 'मुद्रण' की जो कला अधिकाधिक विकसित होकर हर समाज और देश के जीवन का एक अनिवार्य एवं अभिन्न अंग बनी हुई है, उसका मूल आधार भी 'लिपि' ही है।

(v) लिपि का मूल आधार है - भाषा। वास्तव में, भाषा नींव है तो लिपि उसी आधार पर स्थापित भवन।

इस प्रकार, भाषा और लिपि में समानता और भिन्नता के विविध आयाम होते हुए भी दोनों का अन्योन्याश्रित संबंध स्पष्ट है। लिपि अपने अस्तित्व हेतु भाषा पर निर्भर है, जबकि भाषा अपने संरक्षण व प्रसार हेतु लिपि पर निर्भर है।

19.3 देवनागरी लिपि का उद्भव

लिपि का विकास भाषा के विकास के बाद होता है। लिपियों के विकास की परंपरा में प्राय: जो क्रम मिलता है, उसमें सबसे पहले चित्रलिपि, फिर सूत्रलिपि, प्रतीकात्मक लिपि तथा अक्षरात्मक लिपि से होते हुए अन्त में वर्णात्मक लिपि के विकास को माना गया है। देवनागरी एक अक्षरात्मक लिपि है क्योंकि इसके सारे व्यंजन स्वरों के माध्यम से ही उच्चरित होते हैं।

भारत में लिपि के विकास की परंपरा में ब्राह्मी लिपि को प्रस्थान बिंदु माना जाता है। इसी की परंपरा में आगे चलकर देवनागरी का विकास हुआ है। ब्राह्मी लिपि के दो रूप प्रचलित रहे हैं- दक्षिणी ब्राह्मी तथा उत्तरी ब्राह्मी। दक्षिणी ब्राह्मी से द्रविड़ परिवार की लिपियों का विकास हुआ तथा उत्तरी ब्राह्मी से उत्तर भारतीय लिपियों का। उत्तरी ब्राह्मी से ही गुप्त काल में गुप्त लिपि विकसित हुई और जब यह साधारण प्रयोग में टेढ़े-मेढ़े अक्षरों से युक्त हो गई तो इसे कुटिल लिपि कहा जाने लगा।

कुटिल लिपि से दो प्रकार की परंपराएँ विकसित हुईं। कश्मीर के पंडितों ने इस कुटिल लिपि को 'शारदा लिपि' कहा। कश्मीर के अतिरिक्त अन्य क्षेत्रों जैसे गुजरात, महाराष्ट्र, मध्य प्रदेश आदि में कुटिल लिपि से विकसित होने वाली लिपि को 'प्राचीन नागरी' कहा गया। इस प्राचीन नागरी से पुन: कई विकास हुए तथा आधुनिक आर्यभाषाओं जैसे हिन्दी, गुजराती, मराठी और बांग्ला इत्यादि के लिए अलग-अलग लिपियाँ विकसित हुईं। हिन्दी भाषा के लिए विकसित होने वाली लिपि को ही देवनागरी कहा गया।

देवनागरी लिपि के प्रयोग का पहला उदाहरण सातवीं शताब्दी में सम्राट हर्षवर्धन के समय से मिलने लगता है। दसवीं शताब्दी तक इस लिपि का क्षेत्र पंजाब से बंगाल तथा नेपाल से दक्षिण भारत तक हो गया था। दसवीं शताब्दी से 19वीं शताब्दी तक यह लिपि किसी न किसी रूप में हिन्दी देश की मुख्य लिपि बनी रही तथा 19वीं तथा बीसवीं शताब्दी में मानकीकरण के वैयक्तिक और संस्थागत प्रयासों की मदद से अखिल भारतीय लिपि के रूप में विकसित होने लगी। आज भी यह एकमात्र लिपि है जो भारत की सभी भाषाओं की भाषिक विशेषताओं को धारण करके राष्ट्रीय एकीकरण का सशक्त माध्यम बन सकती है।

19.4 देवनागरी लिपि का नामकरण

देवनागरी लिपि का नामकरण कब, कैसे और किस आधार पर हुआ, इस संबंध में भाषावैज्ञानिकों में विवाद है। कुछ विद्वान इसकी व्याख्या देव शब्द के माध्यम से करते हैं, कुछ नागरी शब्द के माध्यम से और कुछ देवनागरी शब्द के माध्यम से। भाषा वैज्ञानिकों के प्रमुख मत इस प्रकार हैं -

पहले वर्ग में वे विद्वान आते हैं जो **देव** शब्द को केन्द्रीय मानकर इसके नामकरण की व्याख्या करते हैं। इनके अनुसार ब्राह्मी लिपि के बाद इसी लिपि में देव या धर्म संबंधी साहित्य का प्रणयन हुआ, इसलिए इसे देवनागरी कहा गया। इसी वर्ग के कुछ विद्वानों की मान्यता है कि देववाणी संस्कृत को व्यक्त करने के कारण यह लिपि देवनागरी लिपि कहलाई।

कुछ विद्वान इस नामकरण की व्याख्या **नागरी** शब्द के माध्यम से करते हैं। इनमें से कुछ की मान्यता है कि यह लिपि नगरों में विकसित होने के कारण देवनागरी कहलाई तो कुछ अन्य की मान्यता यह है कि गुजरात के नागर ब्राह्मणों के द्वारा प्रसिद्ध होने के कारण यह लिपि देवनागरी कहलाई।

दो-तीन विद्वानों ने इस नामकरण की अन्य व्याख्याएँ की हैं। एक धारणा यह है कि चौकोर आकृति के तावीज़ जैसे मंत्रलिखित पदार्थ देवनागर के आधार पर यह नामकरण हुआ है। इस मान्यता के अनुसार देवनागरी के चिन्ह तांत्रिकों के इसी यंत्र के आधार पर विकसित हुए हैं। कुछ विद्वान मानते हैं कि देवनगर अर्थात् काशी में विकसित होने के कारण यह लिपि देवनागरी कहलाई। कुछ अन्य के अनुसार पाटलिपुत्र के सम्राट चंद्रगुप्त द्वितीय 'देव' की उपाधि से विभूषित थे, उनके नगर (अर्थात् देवनगर) पाटलिपुत्र से विकसित होने के कारण यह लिपि देवनागरी कहलाई।

वस्तुस्थिति यह है कि ये सारे मत अनुमानों पर आधारित हैं। इनमें से कोई भी तथ्यों द्वारा प्रमाणित नहीं है। तार्किक दृष्टि से यही प्रतीत होता है कि नागर अर्थात सुशिक्षित विद्वानों द्वारा देववाणी संस्कृत के लेखन में प्रयोग किए जाने से इस लिपि का ऐसा नामकरण हुआ होगा।

19.5 मानक या आदर्श लिपि की विशेषताएँ

देवनागरी लिपि की मानकता की समस्या पर विचार करने से पहले यह जान लेना आवश्यक है कि वास्तव में किसी आदर्श या मानक लिपि के मूलभूत तत्व क्या हैं? प्रसिद्ध विद्वान **चितले** ने अपनी पुस्तक **'देवनागरी लिपि : स्वरूप-विकास और समस्याएँ'** तथा हिन्दी के विख्यात भाषावैज्ञानिक **डॉ. उदयनारायण तिवारी** ने **'पाणिनि के उत्तराधिकारी'** नामक ग्रंथ में लिपि के मानकीकरण के ये आधार बताये हैं -

(1) एक ध्वनि को व्यक्त करने के लिए एक चिह्न हो।

(2) एक चिह्न केवल एक ध्वनि का बोधक हो।

(3) मात्रा एवं वर्ण-बोधक चिह्न इतने भिन्न हों कि किन्हीं दो चिह्नों के स्वरूप में परस्पर कोई भ्रम न हो।

(4) चिह्न सुन्दर और कलात्मक होने के साथ-साथ आधुनिक लेखन और मुद्रण के यांत्रिक साधनों के लिए सरलता से अपनाये जा सकें।

इसके अतिरिक्त जहाँ अनेक लिपियाँ प्रचलित हों, वहाँ उन लिपियों में से 'मानक लिपि' के रूप में अपनायी जाने वाली लिपि में मुख्यत: ये विशेषताएँ अपेक्षित हैं -

(5) देश की अधिकांश जनता उस लिपि से परिचित हो।

(6) देश में प्रचलित अन्य लिपियों से उसका घनिष्ठ संबंध हो।

(7) उस लिपि के वर्ण प्रचलित लिपियों के वर्णों के अनुरूप हों तथा उसकी वर्णमाला का क्रम भी अन्य लिपियों के समान हो।

(8) उस लिपि की देश में प्रतिष्ठा हो तथा जनता का उससे भावात्मक संबंध हो।

इन विचारों के आलोक में कहा जा सकता है कि किसी भी भाषा को उसी लिपि में लिखना आदर्श है जिसमें -

(i) उस भाषा की सभी ध्वनियों को व्यक्त करने वाले चिह्न हों।

(ii) एक ध्वनि के लिए एक चिह्न हो और एक चिह्न केवल एक ध्वनि का बोधक हो।

(iii) लेखन और उच्चारण में एकरूपता, सुस्पष्टता हो और भ्रांति न हो।

(iv) लिपि स्वदेशी हो तथा देश के जातीय जीवन, संस्कृति और इतर लिपियों से संस्कारत: जुड़ी हुई हो।

(v) आधुनिक यांत्रिक लेखन की सुविधाओं का उपयोग कर पाने की क्षमता भी उसमें हो।

19.6 'देवनागरी लिपि' की विशेषताएँ/वैज्ञानिकता

(1) देवनागरी लिपि में कुछ विशिष्ट गुण हैं जिनके कारण यह देश के अधिकांश भागों में लोकप्रिय रही है। इसकी सर्वप्रथम विशेषता यह है कि इसके ध्वनि-चिह्न संस्कृत व्याकरण के अनुसार वैज्ञानिक रूप से इस प्रकार वर्गीकृत हैं कि एक स्थान-विशेष से उच्चरित होने वाले अक्षर एक ही वर्ग में सम्मिलित हैं। उदाहरणत: मनुष्य के मुख-विवर में से ध्वनियों के उच्चारण में सहायक होने वाले स्थानों का यदि वैज्ञानिक विवेचन किया जाए तो उसका क्रम इस प्रकार होगा- कण्ठ > तालु > मूर्धा > दन्त > ओष्ठ > नासिका।

देवनागरी लिपि की अक्षरमाला भी इसी क्रम से वर्गीकृत है-

(क) कंठ से उच्चरित ध्वनियाँ - अ, आ, क, क़, ख, ख़, ग, ग़, घ, ङ., ह और विसर्ग (:)

(ख) तालु से उच्चरित ध्वनियाँ - इ, ई, च, छ, ज, ज़, झ, ञ, य।

(ग) मूर्धा से उच्चरित ध्वनियाँ - ऋ, ट, ठ, ड, ड़, ढ, ढ़, ण, र, ल, ष।

(घ) दन्त से उच्चरित ध्वनियाँ - त, थ, द, ध, न, स।

(ङ) ओष्ठ से उच्चरित ध्वनियाँ - उ, ऊ, प, फ, फ़, ब, भ, म।

(च) नासिका से उच्चरित ध्वनियाँ - ङ, ञ, ण, न, म और अनुस्वार (.)

(छ) कण्ठतालु से उच्चरित ध्वनियाँ - ए, ऐ।

(ज) कण्ठोष्ठ से उच्चरित ध्वनियाँ - ऑ, ओ, औ।

(झ) दन्तोष्ठ से उच्चरित ध्वनियाँ - व।

अन्य किसी भी भाषा की लिपि में वर्णमाला का इस प्रकार वैज्ञानिक वर्गीकरण नहीं मिलता।

(2) अक्षरों के क्रम की वैज्ञानिकता से संबंधित 'देवनागरी' की यह विशेषता भी उल्लेखनीय है कि इसमें पहले क्रमानुसार स्वर रखे गये हैं। कंठ से श्वास सीधे स्वरों के रूप में निकलता है। उसके पश्चात् ही व्यंजनों का क्रम है। रोमन लिपि में कोई स्वर कहीं है और कोई कहीं। ए (A) सबसे पहले है तो ई (E) पाँचवे क्रम, आई (I) आठवें और 'ओ' (O) चौदहवें क्रम पर है।

(3) नागरी लिपि की दूसरी विशेषता यह है कि इसके अक्षरों के नाम तथा इनके लिखित एवं उच्चरित रूप में भिन्नता नहीं है जैसी कि अन्य लिपियों में है। उदाहरणत: रोमन लिपि में 'उ' की ध्वनि का बोध 'यू' (U) अक्षर से भी होता है (Put) और द्वित्व 'ओ' (OO) से भी (Foot)। इसके अतिरिक्त 'इ' के लिए कहीं रोमन लिपि का 'ई' (E) अक्षर प्रयुक्त होता है (Begin), कहीं आई (I) (This)। साथ ही एक ही अक्षर कई ध्वनियों का सूचक है। जैसे - 'यू' (U) 'अ' की ध्वनि भी देता है (But) और 'उ' की भी (Put)। देवनागरी लिपि में ऐसी अवैज्ञानिकता नहीं है। विश्वभर की भाषाओं की कोई ऐसी ध्वनि नहीं जिसके उच्चारण का सूचक अक्षर देवनागरी में न हो। जो अपवाद थे, उन्हें मानकीकरण-प्रक्रिया में दूर कर दिया गया है।

(4) 'देवनागरी लिपि' की उल्लेखनीय विशेषता 'मात्रा - व्यवस्था' भी है। 'अ' को छोड़कर, अन्य सभी स्वरों की ध्वनि को अन्य वर्णों के साथ उच्चरित करने के लिए उन्हें (स्वरों को) नहीं लिखना पड़ता, बल्कि उनकी मात्रा से वही ध्वनि उच्चरित हो जाती है। उदाहरणतया 'अमेरिका' शब्द में 'म' के बाद 'ए' ध्वनि बोली जाती है और 'र' के साथ 'इ' तथा 'क' के साथ 'आ' ध्वनि का उच्चारण होता है, पर इन्हें, ि और ा से सूचित कर दिया जाता है। 'रोमन' लिपि की भांति M के बाद E और R के बाद I या K के बाद A अर्थात् पूरा वर्ण नहीं लिखना पड़ता। यदि हम देवनागरी में 'अमएरइकआ' लिखेंगे तो उच्चारण भी 'अमेरिका' न होकर 'अमएरइकआ' होगा।

(5) 'देवनागरी लिपि' को सीखना एकदम आसान है। केवल एक सीधी रेखा (।), एक आड़ी रेखा (–) और अर्द्धवृत्त (˘) सीख लेने पर प्राय: सभी देवनागरी अक्षर बनाना सीखा जा सकता है।

(6) 'देवनागरी लिपि' में हर अक्षर शिरोरेखा युक्त है जो उसकी अलग पहचान और अर्थवत्ता का द्योतक है।

(7) शिरोरेखा की उपर्युक्त व्यवस्था 'देवनागरी' में प्रत्येक एकल शब्द की 'इकाई' को अक्षुण्ण और शुद्ध प्रयोग में सक्षम बनाये रखती है। 'कपड़ा सूख रहा है' वाक्य के 'चारों' शब्द शिरोरेखा द्वारा अलग अस्तित्वयुक्त हैं, इसीलिए वाक्य सार्थक है। शिरोरेखा के बिना 'कप ड़ासू खर हा है' आदि पढ़े जाने की आशंका है।

(8) देवनागरी में एक वर्ण से एक ही ध्वनि संकेतित होती है। उर्दू या अंग्रेजी में ऐसा नहीं है।

(9) देवनागरी में प्रत्येक ध्वनि के लिए एक ही वर्ण है। यह विशेषता भी केवल वैज्ञानिक लिपियों में पाई जाती है।

(10) व्यंजनों के एक साथ होने पर देवनागरी में व्यंजन-संयोग की प्रवृत्ति दिखाई देती है, जैसे - क्ष, त्र, ज्ञ आदि। ऐसा होने के कारण लेखन में स्थान बचता है। अंग्रेज़ी में ऐसे शब्दों में स्थान बहुत अधिक घिरता है। जैसे- क्षत्रिय > Kshatriya।

देवनागरी लिपि की उपरोक्त सभी विशेषताएँ इसे एक वैज्ञानिक लिपि के रूप में स्थापित करती हैं।

19.7 देवनागरी लिपि की सीमाएँ

यद्यपि देवनागरी पर्याप्त वैज्ञानिक लिपि है तथापि उसमें कुछ सीमाएँ भी दिखाई देती हैं। विद्वानों ने देवनागरी के निम्नलिखित दोषों की ओर संकेत किया है -

(1) इसके अक्षरों की बनावट बड़ी जटिल बतायी गयी है। इन अक्षरों को लिखना और सीखना-सिखाना बहुत कठिन तथा परिश्रम-साध्य है। कहा गया है कि नन्हे बच्चों के मस्तिष्क पर इससे बहुत बोझ पड़ता है।

(2) कुछ भाषावैज्ञानिकों के अनुसार इसकी वर्णमाला बहुत लम्बी है अर्थात् इसके अक्षरों की संख्या अधिक है। स्वरों की मात्राओं, आधे अक्षरों, द्वित्व अक्षरों तथा विभिन्न अक्षरों के नीचे अथवा ऊपर लगने वाले चिह्नों की संख्या इससे पृथक है। इतनी बड़ी वर्णमाला को स्मरण रखना, समझना और ठीक-ठीक प्रयोग करना एक सामान्य छात्र के लिए तो कठिन है ही, साथ ही मुद्रण (छपाई) और टंकण (टाइप) के लिए भी बहुत दुरुह है।

(3) व्यावहारिक स्तर पर देवनागरी लिपि के अनेक अक्षर अनावश्यक बताये गए हैं। उन्हें हटाकर अक्षरमाला की संख्या कम करने के सुझाव दिये गये हैं। उदाहरणत: कुछ विद्वान कहते हैं कि सभी स्वरों का केवल 'अ' के साथ उनकी मात्राएँ लगाकर काम चलाया जा सकता है। इ, ई, उ, ऊ, ए, ऐ, ओ, औ आदि की आवश्यकता नहीं है, ये अि, अी, अु, अू आदि के रूप में लिखे जा सकते हैं।

(4) कुछ भाषावैज्ञानिक मात्राओं की व्यवस्था में भी अवैज्ञानिकता खोजते हैं। उनका कहना है कि कुछ मात्राएँ बायीं ओर और कुछ दायीं ओर क्यों लगती हैं? इसी प्रकार कुछ मात्राएँ अक्षरों के नीचे और कुछ ऊपर लगायी जाती हैं। यह भी अवैज्ञानिक है।

(5) देवनागरी लिपि में मुद्रण तथा टंकण कठिन है क्योंकि वर्णों और मात्राओं को मिलाकर चार सौ से भी अधिक टाईप रखने पड़ते हैं।

(6) शिरो रेखा का प्रयोग अनावश्यक है। इसके कारण समय की बर्बादी होती है।

(7) देवनागरी में कई अनावश्यक वर्ण हैं जैसे ;, लृ, ष आदि। इन वर्णों का मूल उच्चारण अब विस्मृत हो चुका है। अब 'रि' और ';' में, 'श' और 'ष' में कोई अंतर नहीं बचा है। अत: वर्णों की अनावश्यक वृद्धि इनकी वजह से हो रही है।

(8) कई वर्ण लेखन में प्राय: एक जैसे प्रतीत होते हैं। ऐसी स्थिति में कई बार भ्रम होने लगता है। उदाहरण के लिए 'ख' में 'र व' होने का खतरा बना रहता है। 'ध' और 'घ' में, 'म' और 'भ' में भ्रम की संभावना बनी रहती है।

(9) देवनागरी लिपि में एक दोष यह भी बताया गया है कि एक ही ध्वनि को व्यक्त करने के लिए एकाधिक संकेत मिलते हैं। यहाँ अंग्रेज़ी जैसी स्थिति नहीं है कि 'उ' को व्यक्त करने के लिए 'U' या 'OO' का प्रयोग हो सके। इसके विपरीत, एक ही ध्वनि के लेखन में द्विरूपता विद्यमान है, जैसे -

- अ	- भ
- ण	- ध
- झ	- छ
- ल	

(10) अनुस्वार और अनुनासिक के प्रयोग को लेकर भी भ्रम की स्थिति लगातार बनी हुई है। प्रत्येक नासिक्य व्यंजन के लिए अनुस्वार का प्रयोग करने का फैशन सा चल पड़ा है, जैसे -

सम्बन्ध > संबंध	गङ्गा > गंगा
कञ्चन > कंचन	गम्भीर > गंभीर

(11) देवनागरी में वर्णों को संयुक्त करने का कोई निश्चित नियम नहीं है। कभी-कभी वर्णों को आमने-सामने रखने से संयुक्तीकरण की प्रक्रिया चलती है, जैसे - कत्त, कन्त, आदि। कहीं-कहीं वर्णों को ऊपर-नीचे रखा जाता है। जैसे - दर्प, अर्ज और भद्दा, गड्डी आदि में।

(12) मात्राएँ लगाने की कोई निश्चित पद्धति नहीं है। कोई मात्रा वर्ण से पहले लगती है (ि), तो कोई बाद में (ी)। कोई ऊपर लगती है (ै) तो कोई नीचे (ु)। अतः वैज्ञानिक आधार का अभाव होने के कारण इससे लिपि के स्तर पर जटिलता पैदा हो जाती है।

(13) 'इ' की मात्रा वर्ण से पहले लगती है जबकि उसका उच्चारण बाद में होता है। इससे वैज्ञानिकता का हनन होता है।

(14) 'क्ष', 'त्र', 'ज्ञ' और 'श्र' संयुक्ताक्षरों का प्रयोग देवनागरी को और जटिल बनाता है। किन्हीं भी दो व्यंजनों के जुड़ने के लिए जब सामान्य नियम हैं तो इनके लिए विशेष संकेत क्यों हैं?

(15) देवनागरी के अंकों को लेकर भी भ्रम की स्थिति बनी रहती है, जैसे 9 के लिये दो संकेत मिलते हैं।

(16) हल् चिह्न को लेकर भ्रम की स्थिति लगातार बनी रहती है। 'जगत' जैसे शब्दों में कुछ लोग हलन्त का प्रयोग करते हैं, कुछ नहीं करते।

अभ्यास हेतु प्रश्न

1. देवनागरी लिपि का विकास (टिप्पणी) **U.P.S.C. (Mains) 2016**
2. देवनागरी लिपि की विशेषताएँ (टिप्पणी) **U.P.S.C. (Mains) 2014**
3. देवनागरी लिपि के विकास की संक्षिप्त रूपरेखा (टिप्पणी) **U.P.S.C. (Mains) 2013**
4. देवनागरी लिपि का क्रमिक विकास (टिप्पणी) **U.P.S.C. (Mains) 2011**
5. नागरी लिपि का ब्राह्मी लिपि से संबंध (टिप्पणी) **U.P.S.C. (Mains) 2010**
6. उन्नीसवीं शताब्दी में नागरी लिपि के विकास पर प्रकाश डालिए। **U.P.S.C. (Mains) 2007**

अध्याय
20

देवनागरी लिपि का मानकीकरण

20.1 देवनागरी लिपि के मानकीकरण के प्रयास

स्वाधीनता आंदोलन में हिन्दी को राष्ट्रभाषा का दर्जा प्राप्त होने के साथ ही देवनागरी लिपि के मानकीकरण का सवाल उठना शुरु हुआ। इस संबंध में कई वैयक्तिक और संस्थाबद्ध प्रयास हुए जिनकी संक्षिप्त चर्चा इस प्रकार है -

(क) वैयक्तिक प्रयास

(i) सबसे पहला प्रयास संभवत: बाल गंगाधर तिलक ने किया। उन्होंने अपने पत्र 'केसरी' के लिए एक फॉन्ट तैयार किया जिसे 'तिलक फॉन्ट' के रूप में प्रसिद्धि मिली। इस फॉन्ट में अनावश्यक संकेतों को काट-छाँट दिया गया और पूरी देवनागरी के लिए 190 टाइपों का फॉन्ट सामने आया।

(ii) 20वीं शताब्दी के आरंभ में ही जस्टिस शारदाचरण मित्र ने 'लिपि विस्तार परिषद' का निर्माण किया जिसका उद्देश्य सभी भारतीय भाषाओं के लिए एक लिपि का निर्माण करना था। देवनागरी में वे ऐसे सुधार करने के पक्ष में थे जिससे अन्य भारतीय भाषाओं के सारे संकेत भी इस लिपि में समाहित हो जाएँ। (एकीकरण का प्रयास)

(iii) 20वीं सदी के आरंभ में ही सावरकर बंधुओं ने स्वरों के लिए 'अ' की बारहखड़ी तैयार की। इसमें सारे स्वरों को 'अ' से ही मात्रा जोड़कर लिखा जाता था, जैसे - अी, अि, अे, अै, अु, अू आदि। यह प्रयोग महाराष्ट्र में काफी प्रचलित हुआ। महात्मा गांधी ने भी अपने पत्र 'हरिजन सेवक' में इस शैली का प्रयोग किया।

(iv) अन्य वैयक्तिक प्रयासों में काशी के श्रीनिवास का प्रयास महत्त्वपूर्ण है। इन्होंने सुझाव दिया कि सारे महाप्राण व्यंजनों को हटा दिया जाए तथा अल्पप्राण व्यंजनों के नीचे 'S' का संकेत करके ही महाप्राण व्यंजनों को व्यक्त कर दिया जाए, जैसे - ?= भ, ?= ख।

(v) डॉ. गोरखनाथ का सुझाव भी इस दृष्टि से महत्त्वपूर्ण था। उन्होंने कहा कि मात्राओं के वर्णों के ऊपर, नीचे, दाएँ, बाएँ होने से जो समस्या पैदा होती है, उसके निराकरण के लिए मात्राओं को वर्णों के बाद अलग से दाहिनी ओर लिख देना चाहिए, जैसे - द ी प ा (दीपा), म ै न ा (मैना) आदि।

(vi) डॉ. श्यामसुंदर दास ने 'अनुस्वार' के प्रयोग को व्यापक बनाकर देवनागरी को सरल बनाने का सुझाव दिया। विशेष रूप से ङ् तथा ञ के स्थान पर अनुस्वार का प्रयोग किया जाना चाहिये क्योंकि ये संकेत काफी जटिल हैं। ऐसा करने से उच्चारण तो समान ही रहेगा, पर लिपि सरल हो जाएगी, जैसे -

गङ्गा - गंगा चञ्चल - चंचल

(ख) संस्थागत प्रयास

(i) संस्थागत प्रयासों में सबसे पहला प्रयास 1935 में **'हिन्दी साहित्य सम्मेलन'** की ओर से हुआ। सम्मेलन ने इस वर्ष महात्मा गांधी के सभापतित्व में 'नागरी लिपि सुधार समिति' बनाई जिसके संयोजक काका कालेलकर थे। समिति की प्रमुख सिफारिशें यह थीं -

(क) सावरकर बंधुओं द्वारा सुझायी गई बारहखड़ी को स्वीकार किया जाए।

(ख) ध और भ में गुजराती घुंडी लगाई जाए (ध, भ)।

(ग) व्यंजन संयोग में ऊपर नीचे की स्थिति को समाप्त कर दिया जाए। द्द, द्ध आदि के स्थान पर द्द, द्ध का प्रयोग हो।

(घ) शिरोरेखा लेखन में न रहे, पर मुद्रण में बनी रहे।

(ङ) 'इ' (ि) की मात्रा जैसी है, वैसी ही रहे। अन्य मात्राएँ, रेफ और अनुस्वार चिह्न व्यंजन के बाद हटाकरअलग से लिखे जाएँ, जैसे -

र ा न ी (रानी)

क ' ज़ (कर्ज़)

स ं ग ी त (संगीत)

(ii) 1945 ई. में **'काशी नागरी प्रचारिणी सभा'** ने 'नागरी लिपि सुधार उपसमिति' का निर्माण किया। इस समिति ने श्रीनिवास और गोरखनाथ के सुझावों को अस्वीकार कर दिया।

(iii) देवनागरी के मानकीकरण के संबंध में सबसे बड़ा और पहला सरकारी प्रयास 1947 ई0 में किया गया। इस वर्ष **उत्तर प्रदेश सरकार** ने आचार्य नरेंद्र देव की अधयक्षता में एक समिति का गठन किया। इस समिति को अभी तक दिए गए सभी सुझावों के आधार पर संतुलित राय व्यक्त करने को कहा गया। सभी सुझावों का गहरा विश्लेषण करने के बाद समिति ने जो संस्तुतियाँ दीं, वे इस प्रकार हैं -

(क) अ' की बारहखड़ी का प्रयोग ठीक नहीं है।

(ख) मात्राएँ यथास्थान (यानी ऊपर, नीचे, दाएँ, बाएँ) बनी रहें, पर उन्हें व्यंजन से हटाकर लिखा जाए।

(ग) पंचमाक्षर (ङ, ञ, ण, न, म) के स्थान पर अनुस्वार का प्रयोग किया जाए।

(घ) व्यंजन संयोग में व्यंजनों को नीचे की ओर न जोड़ा जाए। व्यंजन संयोग की स्थिति में या तो व्यंजन की पाई हटा दिया जाए या हलन्त का प्रयोग किया जाए।

(ङ) शिरोरेखा लगाई जाए।

(च) निम्नांकित संकेतों का बाद वाला रूप ही मान्य हो -

? > अ ? > भ

? > झ क्ष > क्ष

? > ध त्र > त्र

(iv) 1953 ई. में हिन्दी भाषी प्रदेशों के **शिक्षामंत्रियों का सम्मेलन** हुआ जिसने समिति की सिफारिशों पर विचार किया। सम्मेलन में दो नए सुझाव दिए गए -

(क) 'इ' की मात्रा पाई छोटी करके दाहिनी ओर लिखी जाए।

(ख) 'रव' को 'ख' के रूप में लिखा जाए ताकि इसे 'रव' के रूप में पढ़ने का खतरा न रहे।

इनमें से पहले सुझाव का कड़ा विरोध हुआ और बाद में (1957 में) अस्वीकृत कर दिया गया। दूसरा सुझाव सामान्य रूप से स्वीकार किया गया।

(v) भारत सरकार ने 1955 ई. में इन सुझावों को मान्यता दे दी है। राजकीय संदर्भों में भाषा प्रयोग में लिपि के इन्हीं नियमों को स्वीकार किया जाता है।

(vi) भारत सरकार के शिक्षा मंत्रालय ने इस दिशा में कई स्तरों पर प्रयास किया है। सन् 1966 में 'मानक देवनागरी वर्णमाला' प्रकाशित की गई। इसमें मूलत: उन वर्णों पर धयान दिया गया जिनको एकाधिक तरीके से लिखा जाता था। ऐसे वर्णों के लिए एक रूप निश्चित कर दिया गया। इसी मंत्रालय की ओर से 1967 में 'हिन्दी वर्तनी का मानकीकरण' का प्रकाशन हुआ।

ध्यानपूर्वक विश्लेषण करें तो हम पाते हैं कि देवनागरी के मानकीकरण के प्रयासों को काल के हिसाब से तीन चरणों में विभाजित किया जा सकता है -

(i) पहला चरण - यह चरण 1900 ई. के आसपास से 1940 ई. तक चला। इस दौर में ये प्रयास प्राय: वैयक्तिक स्तर पर हुए और प्रारंभिक अवस्था में रहे।

(ii) दूसरा चरण - यह चरण 1941 ई. में हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग के प्रयासों से आरंभ हुआ तथा 1959 ई. तक चला। इस दौर में प्रयासों की प्रकृति संस्थागत रही, पर ये प्रयास निजी संस्थाओं तथा राज्य सरकारों द्वारा ही प्राय: किये गए।

(iii) तीसरा चरण - यह चरण 1961 ई. में शिक्षा मंत्रालय द्वारा अखिल भारतीय स्तर पर गठित मानकीकरण समिति से आरंभ हुआ और आज तक चल रहा है। इस दौर में प्रयासों की कमान सरकारी क्षेत्र के पास रही और प्रकृति अखिल भारतीय रही।

20.2 देवनागरी लिपि के मानकीकरण के सुझाव

1. ध्वनियाँ और उनके संकेत

(क) प्रत्येक स्वनिम के लिए स्वतंत्र संकेत होना ही चाहिए। देवनागरी में **ऍ** और **ऑ** के लिए स्वतंत्र संकेत नहीं हैं जबकि ये **ए** और **ओ** से अलग हैं।

(ख) बहुत सी ध्वनियाँ ऐसी हैं जिनका उच्चारण अब हम भूल गए हैं। ऐसी ध्वनियों को हटा देने से भाषा सरल हो सकेगी। ऐसी ध्वनियों में लृ, ऋ, ष प्रमुख हैं।

(ग) कुछ ध्वनियों का उच्चारण अन्य ध्वनियों के समान ही हो गया है, जैसे श = ष, ऋ = रि। तत्सम शब्दों को छोड़कर ऐसे संकेतों का प्रयोग नहीं किया जाना चाहिये।

(घ) ङ् और ञ के स्थान पर सामान्य रूप से अनुस्वार का प्रयोग किया जा सकता है, पर ये संकेत भाषा में बने रहने चाहियें। कारण यह है कि संस्कृत के कुछ शब्द जैसे 'वाङ्मय' इनके बिना नहीं लिखे जा सकते। इसके अतिरिक्त उत्तर पूर्वी भारत, तिब्बत तथा बर्मा की भाषा में बहुत से शब्द इन ध्वनियों के प्रयोग से बनते हैं। अखिल भारतीय लिपि के रूप में स्थापित होने के लिए देवनागरी को ये ध्वनि संकेत बनाए रखने चाहिये।

(ङ) डॉक्टर, फॉर्म, जैसे शब्दों में आ के ऊपर अर्द्धचन्द्र लगाने की परंपरा चल पड़ी है, जो एकदम ठीक है। कारण यह है कि यह ध्वनि 'आ' और 'ओ' की मध्यवर्ती है तथा इन दोनों से इतनी अलग है कि इसके लिए विशेष संकेत होना ही चाहिए।

(च) ज़, फ़ ध्वनियाँ अंग्रेज़ी और फ़ारसी दोनों भाषाओं में प्रयुक्त होती हैं। हिन्दी में भी प्राय: विद्वान इनका प्रयोग करते हैं जो कि स्वीकृत होना ही चाहिये, जैसे - गज़ल, ज़ीरो, फ़ेल, फ़ोटो, आदि।

(छ) फ़ारसी ध्वनियाँ क़, ख़, ग़ हिन्दी की क, ख, ग से कुछ अलग हैं। वर्तमान में क़ और ग़ तो क और ग के रूप में ही चल पड़े हैं। ख़ को लेकर अभी भी द्वित्व है। नुक्ते का प्रयोग करने में कोई बुराई नहीं है।

(ज) देवनागरी के मानकीकरण का एक पक्ष सार्वदेशिक या अखिल भारतीय लिपि के रूप में इसका विकास करने से भी संबंधित हैं। ऐसा करने के लिए निम्नलिखित भाषाओं के ये चिह्न/संकेत जोड़े जाने चाहियें। यद्यपि शिक्षा मंत्रालय का केंद्रीय हिन्दी निदेशालय सैद्धान्तिक रूप से यह कर चुका है,पर अभी तक प्रचलन में ये संकेत स्वीकृत नहीं हुए हैं -

उर्दू	- अ़ (जैसे आदत में)	**दक्षिण भारतीय**	- र, ष, न
सिंधी	- ग, ज, ड, ब, द	**कश्मीरी**	- ॲ, ऑ, छ़, ज़
बांग्ला	- य (यह असमिया में भी प्रयुक्त होता है)		

2. अनुस्वार और अनुनासिक

(क) अनुस्वार के प्रयोग के संबंध में ध्यान रखना चाहिये कि जहाँ व्यंजन संयोग अपने ही वर्ग के किसी व्यंजन के साथ हो रहा हो, वहाँ अनुस्वार का प्रयोग होना चाहिए- जैसे सम्बन्ध > संबंध, जाम्बवन्त > जांबवंत परंतु, जहाँ पंचमाक्षर का प्रयोग अपने वर्ग के अतिरिक्त किसी और वर्ण के साथ हो रहा हो, वहां पंचमाक्षर ही होगा, अनुस्वार नहीं जैसे- उन्मत्त, जघन्य, अन्याय आदि।

(ख) जहाँ अनुनासिकता का प्रयोग हो, वहाँ चंद्रबिंदु का प्रयोग ज़रूर करना चाहिये, जैसे-हँसना, भँवर, आँख आदि। परंतु, जहाँ कोई मात्रा ऊपर की ओर लगी हो, वहाँ चंद्रबिंदु के स्थान पर केवल बिंदु लगाकर लिखना चाहिये, जैसे बत्तखें, साँसें, महिलाओं इत्यादि।

3. संयुक्त व्यंजन

(क) क्ष, त्र, ज्ञ को सामान्यत: इसी रूप में स्वीकार किया जाना चाहिये। श्र को भी अलग ही रखना चाहिये।

(ख) यदि खड़ी पाई वाला व्यंजन व्यंजनसंयोग में आधा हो, तो सामान्यत: पाई हटा देनी चाहिये, जैसे-

ब् + ध = ब्ध (प्रारब्ध)

व् + य = व्य (अव्यय)

त् + य = त्य (अन्त्यज)

(ग) यदि क या फ आधे हो रहे हों तो अंत का अंकुड़ा हटा देना चाहिये, जैसे -

क् + का = क्का (पक्का)

फ् + त = फ्त (दफ्तर)

(घ) ट, ड, द, ढ यदि पहले व्यंजन हों तो उन्हें हल चिह्न के साथ ही लिखा जाना चाहिये, जैसे - भट्ठी, मुद्दत, गड्डी आदि।

(ङ) र यदि पहला व्यंजन हो तो उसके लिए रेफ का प्रयोग होना चाहिये, जैसे - धर्म, मर्म, कर्त्ता आदि।

(च) र यदि दूसरा व्यंजन हो तो उसके लिए तीन नियम होंगे-

(अ) यदि पहला व्यंजन खड़ी पाई वाला है, तो पाई में ही बाईं और 'र' का संकेत आएगा, जैसे - प्रवीण, भ्राता।

(ब) यदि पहला व्यंजन 'द' है ओ 'द्र' हो जाएगा, जैसे - रुद्र।

(स) यदि पहला व्यंजन ट, ड, छ आदि है तो 'र' उसके नीचे आएगा, जैसे - ट्रक, ड्रम आदि।

4. द्विरूपता की समस्या

(क) देवनागरी के बहुत से वर्णों में द्विरूपता की समस्या है। ऐसे वर्णों के लिए निश्चित रूप होने चाहियें, जैसे- > ध, > भ, > अ, > ण, > झ।

(ख) 'ख' और 'रव' में भ्रम की स्थिति बनी रहती है। इसलिए 'ख' में दोनों संकेतों को नीचे मिला दिया जाना चाहिये- 'ख'।

5. अन्य सुझाव

(क) मात्राओं का प्रयोग पूर्ववत् किया जाना चाहिये। मात्राओं का प्रयोग देवनागरी को वैज्ञानिक लिपि बनाता है क्योंकि इससे व्यंजन और स्वर एक साथ लिखे जाते हैं। अंग्रेज़ी जैसी भाषाओं में स्वर बाद में लिखे जाते हैं जबकि हिन्दी में एक साथ होकर उच्चारण में स्पष्टता पैदा करते हैं।

(ख) अंतिम अर्द्ध-व्यंजन को व्यक्त करने के लिए हल चिह्न का प्रयोग करना चाहिये। जहाँ-जहाँ यह प्रयोग प्रचलन में लुप्त हो गया है, वहाँ इसे पुन: जीवित करने की आवश्यकता नहीं है।

(ग) लिखने में शिरोरेखा का प्रयोग सामान्यत: किया जाना चाहिए। इससे वर्णों का अंतर तो स्पष्ट होता ही है, जैसे- म और भ, घ और ध, साथ ही कोई शब्द कहाँ से कहाँ तक है, यह एकदम स्पष्ट रहता है।

20.3 हिन्दी वर्तनी का मानकीकरण

भाषा के शिष्ट उच्चारणानुरूप लेखन-विधान को वर्तनी कहते हैं। श्रव्य भाषा को लिखित भाषा में व्यक्त करने का संपूर्ण विधान 'वर्तनी' है। वर्तनी का उद्देश्य है कि लिखित भाषा को पढ़कर मौखिक भाषा का संदेश पूर्णत: व्यक्त हो सके। इसलिए,वर्तनी के अंतर्गत, 'लिपि' तो आ ही जाती है, साथ ही कुछ और बातें संकलित हो जाती हैं। हिन्दी वर्तनी के मानकीकरण के सुझावोंके अंतर्गत लिपि के मानकीकरण से संबंधित सुझाव तो आएंगे ही, कुछ अन्य सुझाव भी दिये जाने चाहियें। ऐसे सुझाव इस प्रकार हैं -

1. हाइफन का प्रयोग

(क) द्वंद्व समास के पदों के बीच योजक-चिह्न या हाइफन का प्रयोग अवश्य होना चाहिये, जैसे - राम-कृष्ण, भाई-बहन आदि।

(ख) तत्पुरुष समास में हाइफन की ज़रूरत नहीं है, जैसे- रामराज्य, आत्महत्या। किंतु, यदि संयोग में भ्रम की संभावना हो तो हाइफन लगाना चाहिये, जैसे भूतत्व (भू-तत्व) भूत होने का भाव पैदा कर सकता है।

(ग) बहुब्रीहि समास में हाइफन बिल्कुल नहीं लगाना चाहिए, जैसे घनश्याम, चंद्रशेखर आदि।

(घ) कठिन संधियों से बचने के लिए भी हाइफन का प्रयोग किया जा सकता है, जैसे- जगत् + निस्सारता > जगन्निस्सारता के स्थान पर जगत्-निस्सारता का प्रयोग बेहतर है।

2. परसर्गों का प्रयोग

(क) परसर्गों या कारक चिह्नों का प्रयोग संज्ञा शब्दों से अलग होना चाहिये - राम ने, रावण को आदि।

(ख) परसर्ग या कारक चिह्न सर्वनाम के साथ जुड़कर व्यक्त होने चाहिएँ, जैसे - मैंने, उसको, तुमसे आदि।

(ग) सर्वनाम के साथ दो परसर्ग आने पर उन्हें अलग-अलग कर देना चाहिये, जैसे - उसके लिए, तुममें से आदि।

(घ) श्री और जी का प्रयोग अलग होना चाहिये।

(ङ) संयुक्त क्रियाओं में सभी अंगभूत क्रियाओं को अलग लिखना चाहिए, जैसे - पढ़ा करता है।

3. य-श्रुति तथा व-श्रुति

य-श्रुति और व-श्रुति की समस्या का हल यांत्रिक नियमों से नहीं, उच्चारण के अनुसार होना चाहिए। अत: गया का बहुवचन 'गए' होना चाहिए, न कि 'गये'। इसी प्रकार, 'आवेंगे' के स्थान पर 'आएंगे' का प्रयोग ही उचित है।

4. विरामचिह्न

(क) विरामचिह्नों के संबंध में प्राय: सहमति है। अल्पविराम (,) के साथ-साथ अर्द्धविराम (;) के प्रयोग पर बल दिया जाना चाहिये।

(ख) पूर्णविराम के स्थान पर अंग्रेज़ी के फुलस्टॉप (.) की मांग की गई है। प्रयत्नलाघव तथा स्थानलाघव की दृष्टि से इस सुझाव को स्वीकार करने में कोई समस्या नहीं दिखती है।

5. विसर्ग

संस्कृत के जिन शब्दों में विसर्ग का प्रयोग होता है, वे यदि तत्सम रूप में प्रयुक्त हों तो विसर्ग का प्रयोग अवश्य किया जाए, जैसे 'दु:खानुभूति' में। परंतु यदि उस शब्द के तद्भव रूप में विसर्ग का लोप हो चुका हो तो उस स्थिति में विसर्ग के बिना लिखने में भी कोई समस्या नहीं है, जैसे- 'दुख-सुख में'।

20.4 अखिल भारतीय लिपि के रूप में देवनागरी

देवनागरी के अखिल भारतीय लिपि बनने का मतलब है कि इसमें भारत की सभी भाषाओं को व्यक्त करने के लिए चिह्नों की समुचित व्यवस्था हो। प्राय: सभी भारतीय भाषाओं की सभी ध्वनियाँ देवनागरी में उपलब्ध हैं; जो नहीं हैं, उनका विवेचन हम यहाँ कर सकते हैं।

भारत की भाषाएँ चार भाषायी परिवारों से संबंधित हैं। आर्य-परिवार की भाषाओं के अतिरिक्त द्रविड़ परिवार, कोल/मुंडा/ऑस्ट्रिक परिवार तथा तिब्बती/बर्मी परिवार की भाषाएँ भारत में हैं। इनके अतिरिक्त भारत में प्रचलित विदेशी भाषाओं फ़ारसी, अंग्रेज़ी पर भी धयान देना चाहिए क्योंकि भारत की विभिन्न भाषाओं पर इनका व्यापक प्रभाव पड़ा है।

(i) **तिब्बती, बर्मी मूल** की भाषाओं का प्रचलन तथा प्रभाव भारत में अत्यंत सीमित है। इन भाषाओं में नासिक्य ध्वनियों पर बहुत अधिक बल दिया जाता है। हिन्दी में सभी वर्गों में पंचमाक्षर की जो व्यवस्था की गई है, वह इन भाषाओं की प्रवृत्ति को सुरक्षित रखने के लिये पर्याप्त है।

(ii) देवनागरी लिपि का मूल संबंध **कोल/मुंडा भाषाओं** से जोड़ा गया है। यह अनायास नहीं है कि इन भाषाओं की सारी ध्वनियाँ देवनागरी में उपलब्ध हो जाती हैं।

(iii) **द्रविड़ परिवार** में दक्षिण भारत की चारों भाषाएँ - तमिल, तेलुगू, कन्नड़ और मलयालम आती हैं। इन भाषाओं में कुछ ध्वनियाँ ऐसी हैं जिनके लिए देवनागरी में विशिष्ट संकेत नहीं हैं। ये ध्वनियाँ इस प्रकार हैं -

तमिल - ए़, ओ़ (दोनों ह्रस्व स्वर)
क़, ऩ (व्यंजन)

तेलुगू - ए़, ओ (दोनों ह्रस्व स्वर)
ऱ, च़, ज़ (व्यंजन)

कन्नड़ - ए़, ओ़ (दोनों ह्रस्व स्वर)

मलयालम - ए़, ओ़ (दोनों ह्रस्व स्वर)
क़, ऱ, ट़ (व्यंजन)

इस प्रकार सभी दक्षिण भारतीय भाषाओं को समाहित करने के लिये कुल आठ संकेतों को समाहित करने की जरूरत है-

ए़, ओ़, (दोनों ह्रस्व स्वर)
क़, ऱ, ज़, च़, ट़, ऩ, (व्यंजन)

(iv) **आर्यभाषाओं** की भी कुछ ध्वनियाँ ऐसी हैं, जिनके लिए स्वतंत्र संकेत देवनागरी में नहीं हैं। ऐसी ध्वनियों की सूची निम्नलिखित है -

कश्मीरी - अॅ, ऑ, तथा छ और ज का अन्तर्मुखी उच्चारण

सिंधी - ग, ज, ड, ब, द (अन्तर्मुखी उच्चारण)

मराठी - च, छ, ज, झ (तालव्य के अतिरिक्त दन्तमूलीय उच्चारण, जो हिन्दी में नहीं है)

बांग्ला - य़ (यह असमिया में भी प्रयुक्त होता है)

(v) भारत के भाषिक विकास में जिन **विदेशी भाषाओं** का प्रमुख योगदान है, उनकी ध्वनियों के लिए लिपि-संकेतों का होना भी नितांत आवश्यक है क्योंकि उन्होंने प्राय: भारत की सभी भाषाओं में अपने-अपने प्रभाव की उपस्थिति दर्ज करायी है। ऐसी भाषाओं में फ़ारसी और अंग्रेज़ी प्रमुख हैं। इनकी कुछ ध्वनियों पर ध्यान देना आवश्यक है -

फ़ारसी - क़, ख़, ग़, ज़, फ़

अंग्रेज़ी - ज़, फ़, अ, ऑ

ऊपर किए गए विश्लेषण में जितनी ध्वनियों के लिए नागरी में संकेतों के अभाव की बात कही गई है, वे प्राय: **'संस्वनात्मक'** हैं, **'स्वनिमात्मक'** नहीं। इसका अर्थ यह हुआ कि ये ध्वनियाँ 'श्रुतिभेदक' होते हुए भी 'अर्थभेदक' नहीं हैं। उदाहरण के लिए, तमिल में ऩ, तेलुगू में 'च़', 'ज़' और मराठी में चू, छू, ज़् और झू।

इन संस्वनों के लिए स्वतंत्र चिह्नों की आवश्यकता नहीं है, सिर्फ निकटतम संकेतों में ही कुछ परिवर्तन किया जा सकता है। उदाहरण के लिये, सिंधी की अन्तर्मुख ध्वनियों को देवनागरी में निर्धारित ध्वनियों के नीचे रेखा खींचकर व्यक्त किया जा सकता है। ए़, ओ़ की ज़रूरत हिन्दी को निश्चित ही है। न केवल भारतीय, बल्कि कई विदेशी ध्वनियों का उच्चारण भी इन ध्वनियों से प्रभावित होता है।

क़ और ग़ तो हिन्दी में क, ग हो गए हैं। ज़, फ़ और ख़ को हिन्दी के ज, फ और ख के नीचे बिंदी लगाकर स्वीकार कर लिया जाना चाहिये, जैसे - ज़, फ़, ख़।

अंग्रेजी की ध्वनि 'ऑ' का प्रयोग भारत में काफ़ी अधिक होता है। अत: इसे भी स्वीकार कर लिया जाना चाहिये।

इनके अतिरिक्त क़, ऱ, और ट़ ये तीन ध्वनियाँ ऐसी हैं जिनके लिए स्वतंत्र संकेतों की ज़रूरत बचती है। इन्हें भी देवनागरी में उपलब्ध ध्वनियों के लिये गोल़ निशान बनाकर व्यक्त किया जा सकता है।

इनके अतिरिक्त 'ल' और 'ड़' के बीच की ध्वनि ' ळ ' को भी स्वीकार किया जाना चाहिए जिसका प्रयोग दक्षिण भारत के साथ-साथ मराठी, हरियाणी आदि में होता है।

इतना करने से हिन्दी को अखिल भारतीय लिपि बनाया जा सकता है।

अभ्यास हेतु प्रश्न

1. देवनागरी लिपि की वैज्ञानिकता (टिप्पणी) **U.P.S.C. (Mains) 2017,2000**
2. देवनागरी लिपि में हुए सुधारों का इतिहास (टिप्पणी) **U.P.S.C. (Mains) 2015**
3. नागरी लिपि में सुधार के प्रयत्न की दिशा (टिप्पणी) **U.P.S.C. (Mains) 2012**
4. नागरी लिपि में सुधार के प्रयास (टिप्पणी) **U.P.S.C. (Mains) 2008**
5. वैज्ञानिक लिपि के रूप में देवनागरी लिपि के वैशिष्ट्य पर प्रकाश डालिए। **U.P.S.C. (Mains) 2006**
6. देवनागरी लिपि के 'गुण-दोष' की विवेचना कीजिए। **U.P.S.C. (Mains) 2005**
7. नागरी लिपि की विशेषताओं पर प्रकाश डालते हुए उसमें अपेक्षित सुधारों पर प्रकाश डालिए। **U.P.S.C. (Mains) 2004**
8. नागरी लिपि में सुधार के विभिन्न प्रस्ताव (टिप्पणी) **U.P.S.C. (Mains) 2002**

अध्याय
21

हिन्दी भाषा का वैज्ञानिक एवं तकनीकी विकास

21.1 परिचय

वैज्ञानिक एवं तकनीकी विकास का संबंध भाषा के आधुनिकीकरण से है। 'भाषा' के आधुनिकीकरण के दो संदर्भ हैं- पहला यह कि भाषा आधुनिक प्रयोजनों के अनुकूल विकसित हो तथा दूसरा यह कि भाषा से संबंधित यांत्रिक साधनों का विकास हो। आमतौर पर यांत्रिक साधनों के विकास को तकनीकी विकास तथा भाषिक क्षमताओं के विकास को वैज्ञानिक विकास भी कहा जाता है।

भाषा आधुनिक वैज्ञानिक प्रयोजनों के लिये प्रयुक्त हो सके, इसकी कुछ शर्तें हैं। पहली शर्त यह है कि भाषा आधुनिक जीवन के सारे प्रसंगों को समाविष्ट करती हो। इसका अर्थ यह हुआ कि इन्टरनेट से लेकर मार्केट इकॉनमी तक जितनी स्थितियाँ हमारे सामने हैं, उन सबके लिये हमारी भाषा में सरल तथा सहज शब्द हों। दूसरी आवश्यकता इस बात की है कि आधुनिक प्रशासन तंत्र में जिन पारिभाषिक शब्दों का प्रयोग करना आवश्यक होता है, उनका विकास हो। तीसरी बात यह है कि भाषा अपने सभी स्तरों पर मानकीकृत हो। इन स्तरों में ध्वनि, वर्ण, शब्द, वाक्य रचना, लिपि, वर्तनी तथा प्रोक्ति सम्मिलित हैं। इस विकास के स्तर को छूने वाली भाषा को वैज्ञानिक भाषा कहा जा सकता है।

21.2 हिन्दी का वैज्ञानिक विकास

हिन्दी के संदर्भ में विचार करें तो पिछले कुछ दशकों में हिन्दी के वैज्ञानिक विकास पर काफी ध्यान दिया गया है। यह मुख्यत: चार स्तरों पर दिखता है-

1. मानकीकरण के प्रयास
2. पारिभाषिक शब्दावली का विकास
3. अनुवाद कार्य की प्रगति
4. हिन्दी के टंकण आदि से जुड़ी तकनीकों का विकास

मानकीकरण के प्रयास

मानकीकरण के प्रयास बीसवीं शताब्दी के प्रारंभ से ही दिखने लगते हैं तथा धीरे-धीरे हिन्दी का मानकीकरण सरकारी सहायता के साथ लगभग पूरा हो गया है। (मानकीकरण के संदर्भ में हिन्दी भाषा तथा देवनागरी लिपि के मानकीकरण के नोट्स संलग्न हैं। उन्हीं के प्रमुख बिन्दुओं को यहाँ प्रस्तुत करें।)

पारिभाषिक शब्दों का विकास

भाषा के वैज्ञानिक विकास का दूसरा प्रमुख कार्य है पारिभाषिक शब्दों का विकास। इस संबंध में 1955 में राजभाषा आयोग की संस्तुतियों के आधार पर भारत सरकार ने दो आयोगों का गठन किया है- **वैज्ञानिक एवं तकनीकी शब्दावली आयोग** तथा **विधायी (शब्दावली) आयोग। वैज्ञानिक एवं तकनीकी शब्दावली आयोग** को विधि क्षेत्र को छोड़कर अन्य सभी विषयों के पारिभाषिक शब्दों के निर्माण का दायित्व सौंपा गया। **विधायी (शब्दावली) आयोग** का काम था कि विधि क्षेत्र में काम आने वाली सभी प्रयुक्तियों को वह हिन्दी में समतुल्य रूप में प्रस्तुत करे। यह दोनों आयोग अपनी क्षमता के अनुसार लगातार काम करते रहे हैं। **वैज्ञानिक एवं तकनीकी शब्दावली** आयोग वर्तमान समय में शिक्षा मंत्रालय के अधीन कार्य कर रहा है तथा इसने विज्ञान, वाणिज्य तथा मानविकी क्षेत्रों से संबंधित कई विषयों की मानक शब्दावली तैयार की है। **विधायी (शब्दावली) आयोग,** जो कि अब विधि मंत्रालय के एक विभाग के रूप में काम कर रहा है, ने भी विधि क्षेत्र में पारिभाषिक शब्दावली का तीव्र विकास किया है। इस संबंध में एक समस्या यह आती है कि केन्द्र सरकार

तथा राज्यों की सरकारें कुछ पारिभाषिक शब्दों को लेकर एकमत नहीं हैं। इस वजह से एक ही मूलशब्द के कई हिन्दी पारिभाषिक शब्द बन जाते हैं। जैसे 'डायरेक्टर' शब्द के लिये निर्देशक, निदेशक तथा संचालक; इसी प्रकार 'लेक्चरर' शब्द के लिये व्याख्याता, प्राध्यापक आदि। इन दोनों आयोगों के प्रयासों से शब्दकोश के स्तर पर सिद्धांतत: हिन्दी एक वैज्ञानिक भाषा बन गयी है, किंतु इन शब्दों के प्रचलित ना होने के कारण व्यावहारिक स्तर पर अभी भी स्थिति बहुत उत्साहजनक नहीं है।

अनुवाद कार्य की प्रगति

भाषा की वैज्ञानिकता का तीसरा आधार है अनुवाद कार्य की प्रगति। अनुवाद की प्रगति इसलिये आवश्यक है कि संभावनाशील होने के बावजूद ऐतिहासिक कारणों से हिन्दी विश्व स्तर के संदर्भों को अपने आवरण में नहीं समेट सकी है। आज की दुनिया राष्ट्रीय स्तर तक सीमित नहीं है बल्कि सार्वभौमिक स्तर पर परस्पर संबद्ध है। ऐसे समय में बाहर की दुनिया की जानकारी तथा उन संदर्भों की अपनी भाषा में अभिव्यक्ति आवश्यक है तथा इस कार्य के लिये अनुवाद की सहायता लेना जरूरी है। अनुवाद की ज़रूरत प्रशासन में इसलिये भी है कि भारत सरकार अभी द्विभाषिक नीति पर चल रही है। ऐसी स्थिति में अनुवाद की गति तथा गुणवत्ता भाषा के वैज्ञानिकीकरण में महत्त्वपूर्ण हो जाते हैं। भारत सरकार ने इस संबंध में **केन्द्रीय अनुवाद ब्यूरो** का गठन किया है जो राजभाषा विभाग (गृह मंत्रालय) के अधीन कार्य करता है। ब्यूरो लाखों शब्दों का अनुवाद कर चुका है तथा प्रत्येक वर्ष अपने लक्ष्यों को पूरा कर रहा है।

21.3 हिन्दी का तकनीकी विकास

इन पक्षों के साथ आधुनिकीकरण का दूसरा महत्त्वपूर्ण पक्ष भाषा के लिये **यांत्रिक उपकरणों का विकास** है। भाषा के संबंध में यांत्रिक उपकरणों के विकास की प्रक्रिया को स्वाभाविक रूप से दो चरणों में बाँटा जा सकता है- **(1) कम्प्यूटर पूर्व यांत्रिकीकरण, (2) कम्प्यूटरीकरण।**

1. कम्प्यूटर पूर्व यांत्रिकीकरण

(क) **टाइपराइटर**- भाषा के यांत्रिकीकरण की शुरूआत टाइपराइटर से होती है। हिन्दी में टाइपराइटर के विकास की प्रक्रिया स्वाधीनता मिलने के एकदम बाद शुरू हुई और रेमिंग्टन तथा अंडरवुड जैसी कंपनियों ने कुछ प्रयास किये। यह प्रयास अंग्रेज़ी टाइपराइटर में ही कुछ सुधार करके किये गये थे तथा रोमन एवं देवनागरी के मूलभूत अंतरों को नज़रअंदाज़ करते थे। इस प्रकार यह शरीर के अनुसार कोट नहीं बल्कि कोट के अनुसार शरीर को घटाने-बढ़ाने के प्रयास थे। ऐसी मशीनों को यह कह कर सफल बनाने का प्रयास किया गया कि हिन्दी तकनीकी उपकरणों के अनुकूल भाषा है ही नहीं। दुर्भाग्यवश, वी.पी. काले जैसे कुछ प्रतिष्ठित विद्वान यह मान भी गये कि भारत की भाषाओं के लिये रोमन लिपि को अपना लेना चाहिये। ऐसे समय में हिन्दी का पक्ष लेने वालों में पंडित रविशंकर शुक्ल महत्त्वपूर्ण थे, जिन्होंने स्पष्ट कहा कि तकनीक का विकास भाषा के अनुसार हो सकता है। ऐसी स्थिति में 1960 ईस्वी में डॉ. वी. के. आर.वी.राव, डॉ. एस.एम. कत्रे, डॉ. वी. राघवन, डॉ. रघुवीर, डॉ. बाबूराम सक्सेना, प्रो. कृपानाथ मिश्र आदि विद्वानों ने देवनागरी का रूप निश्चित किया तथा कुछ निजी कंपनियों ने टाइप-राइटरों का विकसित कुंजी पटल बनाया जो कि देवनागरी की सभी आवश्यकताओं को पूरा करने में प्राय: समर्थ था। कुल मिलाकर इस कुंजी पटल में 174 संकेतों की व्यवस्था की गई थी।

(ख) **टेलीप्रिंटर**- उपकरणों के विकास में टेलीप्रिंटर (दूरमुद्रक) पर काफी ध्यान दिया गया। आजादी के बाद संचार माध्यमों की सक्रियता बढ़ी तथा संचार के लिये टेली-प्रिंटर की मांग बढ़ी। 1960 में संचार मंत्रालय के अंतर्गत 'हिन्दुस्तान टेली-प्रिंटर' नामक उद्यम प्रारंभ हुआ। तब तक देवनागरी में कुछ प्रारंभिक टेली-प्रिंटर भारतीय तार विभाग को मैसर्स-आलीवेट कंपनी ने दे दिये थे। यह टेलीप्रिंटर मैसर्स क्रीड ऑफ इंग्लैंड द्वारा तैयार टेलीप्रिन्टरों के ढाँचे को प्रयोग में ला रहा था। देवनागरी की विशेष ज़रूरतों को देखते हुये कंपनी ने कुंजीपटल को बदला किन्तु तीन पंक्तियों वाले कुंजीपटल से ही काम चलाने का प्रयास सफल नहीं हुआ। इन टेलीप्रिंटर में कई वर्ण छूट जाते थे तथा भाषा दुरुह

हो जाती थी। इसके बाद हिन्दुस्तान टेलीप्रिंटर लिमिटेड ने गृह मंत्रालय, शिक्षा मंत्रालय तथा डाकतार विभाग के सुझावों के आधार पर परिवर्द्धित देवनागरी के लिये कुंजीपटल का निर्माण किया तथा यह प्रयास प्राय: सफल रहा। इसके बाद इलेक्ट्रानिक टेलीप्रिंटर का प्रयोग शुरू हुआ अब हिन्दी में सामान्य तथा इलेक्ट्रानिक टेलीप्रिंटर कुशलता से कार्य कर रहे हैं।

(ग) इलेक्ट्रॉनिक टाइपराइटर- कुछ ही समय बाद इलेक्ट्रॉनिक टाइपराइटर का विकास हुआ। मैनुअल टाइपराइटर में केवल एक लिपि का टंकण संभव था, जबकि इलैक्ट्रॉनिक टाइपराइटर एकाधिक लिपियों के लिए काम में आता है। इसमें अशुद्धियों को ठीक करने की स्वचालित व्यवस्था होती है। इसमें कुछ आदेश स्थायी रूप से देने की व्यवस्था भी होती है। ऐसे टाइपराइटर हिन्दी में पूर्ण कुशलता से काम कर रहे हैं। सरकारी कार्यालयों में प्राय: ऐसे ही टाइपराइटरों का प्रयोग किया जाता है।

उपरोक्त घटनाओं ने हिन्दी में यांत्रिक प्रयोग को संभव बनाया। फैक्स के विकास के बाद अब परंपरागत तार संदेशों का स्थान फैक्स ने ले लिया है। यह एक ऐसा यंत्र है जो न केवल दस्तावेजों की प्रति तैयार कर देता है, बल्कि उसे उस स्थान पर जहाँ टेलीफोन व फैक्स मशीन उपलब्ध हैं, भेज भी सकता है। इस काम के लिए यह मशीन पहले दस्तावेज की सामग्री को इलैक्ट्रॉनिक तरंगों में बदल देती है और संचार के बाद पुन: दस्तावेज के रूप में संकेतों को मुद्रित कर देती है। यह मशीन भाषा के अनुसार संचालित नहीं होती। भाषा कोई भी हो, बल्कि चित्र ही क्यों न हो, यह मशीन संकेतों को हू-ब-हू भेजने में सक्षम होती है। इस मशीन ने हिन्दी और अंग्रेज़ी के अंतर को दूर करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई।

2. कम्प्यूटरीकरण

वर्तमान समय में हिन्दी के तकनीकी विकास का अर्थ प्राय: कम्प्यूटरीकरण से ही लिया जाता है। आज सभी क्षेत्रों में कम्प्यूटर का प्रयोग अनिवार्य हो गया है। इसलिए अब प्रयास किया जा रहा है कि हिन्दी सहित सभी भारतीय भाषाओं के लिए कम्प्यूटर उसी प्रकार काम करे जैसे रोमन लिपि के लिए कर रहा है।

कम्प्यूटर के दो अंग होते हैं- हार्डवेयर तथा सॉफ्टवेयर। हार्डवेयर का संबंध कम्प्यूटर की मशीन से है। मशीन के स्तर पर हिन्दी अथवा अंग्रेज़ी का कोई अंतर नहीं पड़ता।

सॉफ्टवेयर का अर्थ उन सभी प्रोग्रामों से है जो कम्प्यूटर को संचालित करते हैं। ये प्रोग्राम दो तरह के होते हैं- (क) सिस्टम सॉफ्टवेयर तथा (ख) ऐप्लिकेशन सॉफ्टवेयर। **सिस्टम सॉफ्टवेयर** का संबंध उन मूल कार्यक्रमों से है जो कम्प्यूटर के प्रयोगों के आधार के रूप में कार्य करते हैं, जैसे- डॉस, विंडोज़, सिस्टम आदि। **ऐप्लिकेशन सॉफ्टवेयर** वे हैं जो किसी खास उद्देश्य की पूर्ति के लिए बनाए जाते हैं। आवश्यकता इस बात की है कि इन दोनों का ही विकास हिन्दी में हो।

जहाँ तक **'सिस्टम सॉफ्टवेयर'** का संबंध है, हिन्दी में अपना सिस्टम सॉफ्टवेयर विकसित नहीं हुआ। हिन्दी में अभी भी आवश्यक निर्देश डॉस, विंडोज़, सिस्टम जैसे सॉफ्टवेयर के माध्यम से दिये जाते हैं जो कि काफी लोकप्रिय हैं। इन कार्य प्रणालियों की रचना भी मूलत: अंग्रेज़ी भाषा और रोमन लिपि के लिए बनाई गई कार्यप्रणालियों पर आधरित है। इन्हें ही भारतीय भाषाओं के लिए काम में लिया जाता है। इसका परिणाम यह है कि भारतीय भाषाओं में काम करते हुए कम्प्यूटर के लिए आवश्यक निर्देश अंग्रेज़ी में ही होते हैं। हिन्दी या अन्य भारतीय भाषाओं में ऐसे निर्देश उपलब्ध नहीं है। ऐसे निर्देश हिन्दी में विकसित होने ही चाहिएँ। जापानी भाषा में भी पहले ये निर्देश उपलब्ध नहीं थे, पर अब उन्होंने यह विकास कर लिया है। अब उन्हें जापानी का प्रयोग करने के लिए अंग्रेज़ी का आधार लेने की ज़रूरत नहीं पड़ती है।

'ऐप्लिकेशन सॉफ्टवेयर' ही वह क्षेत्र हैं जो सीधे-सीधे हिन्दी के कम्प्यूटरीकरण से जुड़ा है। इस क्षेत्र में दो तरह के कार्य कम्प्यूटर प्रमुख रूप से करता है- आँकड़ा संसाधन (डाटा प्रोसेसिंग) तथा शब्द संसाधन (वर्ड प्रोसेसिंग)।

आँकड़ा संसाधन (डाटा प्रोसेसिंग) का अर्थ है दिए हुए आंकड़ों के आधार पर गणनाएँ करके परिणाम निकालना। वेतन बिल बनाना, गणित के सवालों को हल करना, परीक्षा परिणाम निकालना, खाता बही बनाना आदि आँकड़ा संसाधन के उदाहरण हैं। इसके लिए अभी तक प्राय: फोर्ट्रान, कोबोल आदि कार्यक्रम उपयोग में आते हैं, जो अभी तक अंग्रेजी में ही उपलब्ध हैं।

शब्द संसाधन (वर्ड प्रोसेसिंग) ही वह क्षेत्र है, जिसमें हिन्दी में विकास हुआ है। पत्र लिखना, रिपोर्ट आदि तैयार करना, लेख लिखना आदि शब्द संसाधन के प्रमुख कार्य हैं। शब्द संसाधन के लिए पहले से जो कार्यक्रम प्रचलित रहे हैं, उनमें वर्डस्टार, वर्ड परफेक्ट आदि प्रमुख हैं। आजकल एम.एस. वर्ड तथा ऐल्डस पेजमेकर आदि कार्यक्रम भी काफी प्रचलित हो गए हैं।

1977 तक हिन्दी में ऐसा कोई कार्यक्रम उपलब्ध नहीं था। 1977 में हैदराबाद की ई.सी.आई.एल. नामक कंपनी ने फोर्ट्रान नामक कम्प्यूटर भाषा में पहली बार हिन्दी को कम्प्यूटर पर उतारा। 1980 के आस-पास दिल्ली की डी.सी.एम. नामक कंपनी ने **'सिद्धार्थ'** नामक मशीन पर **'शब्दमाला'** कार्यक्रम तैयार किया। यह हिन्दी-मशीन द्विभाषी शब्द-संसाधक थी, एक साथ दोनों भाषाओं में सामग्री संसाधन की सुविधा देती थी। इसी समय हैदराबाद की सी.एम.सी. नामक कंपनी ने तीन भाषाओं (अंग्रेज़ी, हिन्दी और एक भारतीय भाषा) में शब्द संसाधन के लिए 'लिपि' नामक मशीन तैयार की। इसी तरह कई और कंपनियों तथा राजभाषा विभाग ने सॉफ्टवेयर तैयार किए, जिनमें प्रमुख हैं- शब्दरत्न, अक्षर, सुलेख आदि। इन सभी कार्यक्रमों में प्राय: दो कमियाँ थीं। एक तो ये लेज़र मुद्रण या फोटो कम्पोज़िंग में प्रयुक्त नहीं हो सकते थे, तथा दूसरे, इनके कुंजीपटल अलग-अलग थे और अक्षरों की बनावट में भी अंतर था।

इस संदर्भ में पुणे स्थित भारत सरकार की कंपनी **सी डैक** (C-DAC - Centre of Development of Advanced Computing) का योगदान महत्त्वपूर्ण है। इस कंपनी ने 1984 के आसपास GIST (Graphic based Indian Standard Terminology) नामक तकनीक का विकास किया। जिस्ट एक कम्प्यूटर कार्ड है, जिसे कम्प्यूटर में लगा देने पर हिन्दी तथा सभी भारतीय भाषाओं में कम्प्यूटर के पर्दे पर अक्षर छापे जा सकते हैं। इसमें सारी भारतीय भाषाओं के लिए एक ही कुंजीपटल है, इसलिए किसी भी भाषा का किसी भी भाषा में लिप्यंतरण किया जा सकता है। यही नहीं इस कार्ड की सहायता से आँकड़ा संसाधन (Data Processing) के कार्यक्रम भी हिन्दी तथा अन्य भारतीय भाषाओं में चल सकते हैं।

हिन्दी के कम्प्यूटरीकरण में कुछ और क्षेत्रों को भी जोड़ा गया है जिनमें **'अनुवाद'** तथा **'शिक्षण'** प्रमुख हैं। कम्प्यूटर के माध्यम से हिन्दी-अंग्रेज़ी अनुवाद की व्यवस्था हो सके, ऐसे कार्यक्रम का विकास करने पर बल दिया जा रहा है। ऐसे कुछ कार्यक्रम विकसित हुए भी हैं। हाल ही में, मोदी ज़ीरोक्स ने ऐसे ही एक कार्यक्रम का प्रयोग करते हुए एक ऐसी फोटोकॉपी मशीन बनाई है जो अंग्रेज़ी के पाठ को हिन्दी में फोटोकॉपी करती है। नए लोग हिंदी को कम्प्यूटर के माध्यम से सीख सकें, इसके लिए **'लीला'** नामक एक पैकेज तैयार किया गया है जो उच्चारण, लिपि तथा चित्रों के माध्यम से बच्चों तथा विदेशियों को हिन्दी का ज्ञान कराता है। अन्य प्रयासों में एक महत्त्वपूर्ण प्रयास 'स्पेलिंग चेकर' (हिज्जे जाँचक) का विकास करना है जिस पर आजकल काम चल रहा है।

इस प्रकार हमने देखा कि 1977 के बाद से हिन्दी के कम्प्यूटरीकरण में तीव्र प्रगति हुई है। इस तीव्र विकास में जिन संस्थाओं का प्रमुख रूप से योगदान है, उनमें राजभाषा विभाग का 'तकनीकी प्रभाग' तथा 'इलैक्ट्रॉनिक विभाग' प्रमुख हैं। इलैक्ट्रॉनिक विभाग ने 'भाषा प्रौद्योगिकी मिशन' का आरंभ किया था जो आज काफी सफलतापूर्वक आगे बढ़ रहा है। हिन्दी के कम्प्यूटरीकरण के लिये जिन क्षेत्रों में अभी प्रयास हो रहे हैं, वे इस प्रकार हैं-

(क) इलैक्ट्रॉनिक हिन्दी शब्दकोश
(ख) इलैक्ट्रॉनिक बहुभाषी शब्दकोश
(ग) स्पेल-चेकर
(घ) अनुवाद कार्य
(ङ) नेटवर्किंग आदि।

स्पष्ट है कि पिछले कुछ वर्षों में हिन्दी के वैज्ञानिक और तकनीकी विकास में कई महत्त्वपूर्ण चरण हमने पूरे किए हैं। इस क्षेत्र में अभी भी काफी चुनौतियाँ विद्यमान हैं। पहली चुनौती हिन्दी में वैज्ञानिक शब्दावली के साथ कम्प्यूटर के सिस्टम सॉफ्टवेयर के विकास की है। इसके साथ ही, यह भी एक चुनौती है कि हिन्दी में वे सभी सुविधाएँ मौजूद हों जो अभी अंग्रेज़ी और रोमन के लिए है। अंत में, यह भी ध्यान रखना होगा कि वैज्ञानिक और तकनीकी विकास एक सतत् चलने वाली प्रक्रिया है। अत: एक बार अंग्रेज़ी की बराबरी करने के बाद अपने उच्चतम स्तर को बनाए रखना भी एक चुनौती होगी-ऐसी चुनौती जो हमेशा हमारे सामने होगी और हमें सतत् विकास की प्रेरणा देती रहेगी।

21.4 कम्प्यूटर में हिन्दी टाइपिंग

हिन्दी टाइपिंग की समस्यायें

1. की-बोर्ड के मानकीकरण की समस्या: कम्प्यूटर पर हिन्दी में टाइपिंग करने के लिए की-बोर्डों की बहुतायत एक बड़ी समस्या है। हिन्दी में एक-दो नहीं बल्कि पचासों अलग-अलग तरह के की-बोर्ड ले-आउट उपलब्ध हैं। उदाहरण के लिए-टाइपराइटर-रैमिंगटन, टाइपराइटर-गोदरेज, डेपार्टमेंट ऑफ इलेक्ट्रॉनिक्स, फोनेटिक 86, रोमनाइज्ड, ट्रांसलिटरेशन, इनस्क्रिप्ट, नागरी तथा लिंग्विस्ट इत्यादि।

इन सभी की-बोर्ड लेआउट्स में अलग-अलग ढंग से हिन्दी टाइप की जाती है। उदाहरण के लिए-यदि आपने रेमिंगटन कीबोर्ड चुना है तो कीबोर्ड के 'L' बटन को दबाने से 'स' अक्षर टाइप होगा, जबकि इनस्क्रिप्ट कीबोर्ड का प्रयोग करने पर 'त' और ट्रांसटिलरेशन कीबोर्ड का प्रयोग करने पर 'ल' अक्षर। इस प्रकार कीबोर्डों की बहुतायत के कारण हिन्दी टाइपिंग में कठिनाई आती है। विभिन्न प्रकार के फान्ट्स इन कीबोर्डों के साथ अलग-अलग ढंग से काम करते हैं, इससे हिन्दी में टाइपिंग की समस्या और भी अधिक जटिल हो जाती है। कीबोर्ड से जुड़ी एक अन्य समस्या यह भी है कि सामान्यत: सभी कीबोर्डों में केवल अंग्रेजी वर्णमाला के अक्षर ही छपे होते हैं। सरकार चाहे तो की-बोर्ड पर अंग्रेजी के साथ-साथ हिन्दी के अक्षर अंकित करने का आदेश देकर इस समस्या का समाधान निकाल सकती है।

इसके विपरीत अंग्रजी में टाइपिंग की पद्धति मानकीकृत है। चाहे आप विंडोज पर काम करें या मैकिंटोश पर या फिर लिनक्स पर, अंग्रेजी टाइपिंग का तरीका एक समान ही रहेगा। अफसोस की बात यह है कि आस्की (ASCII) तथा यूनीकोड जैसे मानकीकृत फोंट एनकोडिंग्स (व्यवस्थाओं) के सामने आने तथा इनस्क्रिप्ट जैसे विलक्षण सुविधाजनक, सरल और सक्षम कीबोर्ड लेआउट को भारत के अधिकृत कीबोर्ड के रूप में स्वीकार कर लिए जाने के बाद भी हिन्दी टाइपिंग में मानकीकरण के अभाव की समस्या बनी हुई है।

2. फॉन्ट्स की समस्या- टाइपिंग में सबसे बड़ी भूमिका फॉन्ट की होती है। कम्प्यूटर में हिन्दी फॉन्टों में एकरुपता की कमी सबसे बड़ी समस्या है। सैकड़ों फॉन्ट प्रचलित हैं जो भिन्न-भिन्न कीबोर्ड लेआउट्स के साथ अलग-अलग प्रकार से कार्य करते हैं। इस कारण से हिन्दी टाइपिंग में कठिनाई होती है।

इसके अतिरिक्त हिन्दी फॉन्टों के साथ एक समस्या और है कि यदि हम किसी फाइल को दूसरे कंप्यूटर में खोलना चाहते हैं और यदि उस कंप्यूटर में वह फॉन्ट नहीं है, जिसमें हमने टाइप किया तो उस कंप्यूटर में वह फाइल नहीं खुलेगी। हालांकि यूनिकोड के लागू होने के बाद इस समस्या से काफी हद तक निजात मिली है लेकिन अभी तक हिन्दी की लिपि देवनागरी के सभी वर्णों का यूनीकोड मानकीकरण नहीं हो पाया है, इस कारण से कुछ वर्ण लिखने में समस्या होती है।

3. सॉफ्टवेयर की समस्या- हिन्दी में टाइपिंग के लिए उपयुक्त सॉफ्टवेयर की कमी भी एक समस्या है। कुछ समय पहले तक हिन्दी यूनिकोड का फोनेटिक या ट्रांसलिट्रेशन कीबोर्ड लेआउट वाला केवल 'बराहा' सॉफ्टवेयर ही प्रचलित था। किंतु अब भाषा इंडिया का इंडिक आईएमई का प्रयोग बहुतायत में हो रहा है। इसी प्रकार गूगल इनपुट आदि सॉफ्टवेयर भी हिन्दी टाइपिंग के लिए प्रयोग में लाए जा रहे हैं। हिन्दी टाइपिंग को आसान बनाने के लिए ऐसे सॉफ्टवेयर के विकास को प्रोत्साहन देने की आवश्यकता है।

हिन्दी टाइपिंग की विधियाँ

हिन्दी टाइपिंग की वैसे तो कई विधियाँ हैं पर प्रचलन में मुख्य रूप से निम्नलिखित तीन हैं:

1. **रेमिंगटन टाइपिंग:** टाइपिंग का यह सबसे पुराना और अब काफी हद तक आउटडेटेड तरीका है। यह एक टच टाइपिंग विधि है। इसके लिए पहले से टाइपराइटर पर हिन्दी टाइपिंग सीखना जरूरी है। यह सिर्फ उनके लिए उपयोगी है जिन्होंने पहले से टाइपराइटर पर हिंदी टाइपिंग सीखी हो तथा इसके अभ्यस्त हों। कम्प्यूटर पर नए सिरे से सीखने हेतु यह उपयुक्त नहीं है।

2. **इनस्क्रिप्ट टाइपिंग:** इसका विकास भारत सरकार के राजभाषा विभाग ने किया है। यह भी एक टच टाइपिंग प्रणाली है। यह विधि भारतीय भाषाओं में टाइपिंग की सर्वाधिक वैज्ञानिक विधि है। इस विधि से कम्प्यूटर पर सर्वाधिक गति से हिन्दी टाइप की जा सकती है। यद्यपि यह हिन्दी टाइपिंग की सर्वश्रेष्ठ विधि है लेकिन इसके लिए भी कुछ समय अभ्यास करना पड़ता है।
3. **फोनेटिक टाइपिंग:** यह हिन्दी टाइप करने का सबसे आसान तथा वर्तमान में सर्वाधिक प्रचलित तरीका है। इसकी खासियत है कि इसे सीखने में बिल्कुल समय नहीं लगता। आप सीधे हिन्दी में लिखना शुरु कर सकते हैं। उदाहरण के लिए आपको 'राम' लिखना है तो आप टाइप करेंगे 'raama'। यह भारतीय भाषाओं के ध्वन्यात्मक गुण (Phonetic Property) पर आधारित हैं अर्थात "जैसा बोला जाता है वैसा ही लिखा जाता है"। अत: इंटरनेट पर अधिकतर हिन्दी प्रयोगकर्ता इसी विधि का उपयोग करते हैं। अधिकतर नई साइटें तथा सॉफ्टवेयर भी इसी को अपना रहे हैं।

फोनेटिक हिन्दी टाइपिंग के लिए दो तरह के टूल उपलब्ध हैं: ऑनलाइन और ऑफलाइन

- **ऑनलाइन टूल:** ऑनलाइन टूल्स में आप टूल की साइट पर जाकर वहाँ हिन्दी में टाइप करके फिर उसे कॉपी करके जहाँ लिखना हो वहाँ पेस्ट करते हैं। इसलिए यह तरीका उपयुक्त नहीं है, इसमें कॉपी-पेस्ट का झंझट है। दूसरा, चूँकि ये टूल अधिकतर सर्वर पर आधारित होते हैं अत: इनकी टाइपिंग स्पीड कम होती है। इन टूल्स का एकमात्र लाभ यह है कि अपने कंप्यूटर से दूर होने पर (घर से बाहर आदि) आप बिना कोई टूल डाउनलोड किए साइट पर जाकर हिन्दी लिख सकते हैं। उदाहरण के लिए हिंदिनी तथा यूनीनागरी नामक टूल।
- **ऑफलाइन टूल:** दूसरी ओर ऑफलाइन टूल को एक बार डाउनलोड करके उससे किसी भी विंडोज़ ऐप्लीकेशन जैसे वर्डपैड, इन्टरनेट एक्सप्लोरर, गूगल टॉक आदि में कहीं भी सीधे हिन्दी लिख सकते हैं। इस तरह के टूल्स को फोनेटिक IME (Input Method Editor) कहा जाता है। नियमित प्रयोग के लिए यही टूल उपयुक्त होते हैं। इन टूल्स की स्पीड तेज होने के साथ ही इनके द्वारा लिखना कहीं अधिक सुविधाजनक होता है। इसके अतिरिक्त इनमें कई अन्य फंक्शन भी होते हैं। तीन सर्वाधिक प्रचलित IME हैं: Baraha IME, HindiWriter तथा Hindi Indic IME.

इनस्क्रिप्ट: भारत की आधिकारिक टाइपिंग पद्धति

1. इनस्क्रिप्ट हिन्दी और दूसरी भारतीय भाषाओं में कंप्यूटर पर टाइप करन के लिए भारत की आधिकारिक पद्धति है। इसे भारतीय मानक ब्यूरो ने एक मानक (स्टैंडर्ड) के रूप में मान्यता प्रदान की है। अन्य कोई भी कीबोर्ड भारतीय भाषाओं के लिए मानक के रूप में स्वीकार नहीं किया गया और इसके वैज्ञानिक कारण हैं।
2. हर डिजिटल डिवाइस (कंप्यूटर, लैपटॉप, मोबाइल फोन या अन्य) पर भारतीय भाषाओं के लिए इनस्क्रिप्ट कीबोर्ड स्वत: मौजूद होता है, क्योंकि यही हमारा आधिकारिक मानक कीबोर्ड है। अन्य सभी कीबोर्ड पद्धतियों को लाने के लिए अलग से साधनों की जरूरत होती है।
3. हर आपरेटिंग सिस्टम में इनस्क्रिप्ट कीबोर्ड टाइपिंग पद्धति स्वत: मौजूद होती है। भले ही वह विंडोज का कोई भी संस्करण हो, मैकिन्टोश हो या लिनक्स हो। सभी मोबाइल फोनों और अन्य डिजिटल युक्तियों पर भी यही स्थिति है। भविष्य में भी ऐसा ही होगा।
4. इनस्क्रिप्ट कीबोर्ड में कुंजियों (keyboard keys) का संयोजन इस तरह किया गया है कि यह तेज गति से टाइप करने में मदद करता है। यदि समय लगता है तो टाइपिंग के अभ्यास के दौरान। उसके बाद गति अन्य पद्धतियों की तुलना में तेज होती है।
5. इनस्क्रिप्ट की बोर्ड का आधार वैज्ञानिक है। इसमें मात्राएँ बाईं तरफ रखी गई हैं क्योंकि उनका प्रयोग सामान्य अक्षरों की तुलना में कम होता है। कीबोर्ड पर दाईं ओर वे अक्षर रखे गए हैं जिनका अधिक प्रयोग होता है। कीबोर्ड की मध्यवर्ती पंक्ति में वे अक्षर लिए गए हैं जो सबसे ज्यादा इस्तेमाल होते हैं।
6. इनस्क्रिप्ट पद्धति वास्तविक रूप से ध्वन्यात्मक (फोनेटिक) पद्धति है, जो देवनागरी लिपि के लिए अत्यंत अनुकूल है। स्वयं देवनागरी भी ध्वन्यात्मक लिपि है, जिसमें उसी तरह से लिखा जाता है जैसे कि हम बोलते हैं।

7. इस टाइपिंग पद्धति में हलंत का प्रयोग कर आधे अक्षरों के लिए अलग से कुंजियाँ याद रखने की समस्या खत्म कर दी गई है। हर पूर्ण अक्षर के बाद हलंत दबाने पर उससे जुड़ा अर्धाक्षर निर्मित हो जाता है। जैसे क + ् से स्वत: (क्) बन जाता है।
8. संयुक्ताक्षर भी विभिन्न अक्षरों और हलंत के संयोजन से खुद ही बन जाते हैं। जैसे द्ध बनाने के लिए द + ् + ध लिखने की जरूरत है। इस प्रकार इनस्क्रिप्ट कीबोर्ड पर काम करने के लिए बहुत कम कुंजियों को याद करने की जरूरत है।
9. नुक्ते और अक्षरों के नीचे लगने वाली बिंदु दोनों के लिए एक समान कैरेक्टर (.) का प्रयोग किया जाता है जो बड़े कोष्ठक के समापन चिन्ह ']' वाली कुंजी पर मौजूद है। यह चिन्ह अक्षर के हिसाब से स्वयं ही सही स्थान पर लग जाता है।
10. मूल रूप से रोमन से आए चिन्हों को अंग्रेजी के कीबोर्ड से ही ज्यों का त्यों हिन्दी में भी इस्तेमाल किया जा सकता है। जैसे प्रश्नवाचक चिन्ह लगाने के लिए पहले अपने कीबोर्ड की लिपि रोमन करें और फिर '?' कुंजी दबाएं। इसके बाद लिपि पुन: देवनागरी कर लें। यूनीकोड में विभिन्न भाषाओं के अक्षर साथ-साथ प्रयुक्त किए जा सकते हैं।

21.5 तकनीकी भाषा के रूप में नए विकास

(1) कुछ समय पहले तक हिन्दी में अपना सिस्टम सॉफ्टवेयर (System Software) नहीं था। इस क्षेत्र में C-DAC ने पहल की और लीप (स्मंच) नामक सॉफ्टवेयर बनाया। इसी प्रकार माइक्रोसॉफ्ट (Microsoft) ने भारतीय भाषाओं के लिए देहरादून में अनुसंधान केंद्र स्थापित किया और 15 अगस्त 2004 को "हिन्दी विंडोज़" नामक सॉफ्टवेयर प्रस्तुत कर दिया।

(2) एक आवश्यकता यह थी कि हिन्दी और अंग्रेज़ी के शब्दकोष कंप्यूटर पर जुड़ सकें। राजभाषा विभाग के तकनीकी विभाग ने 'शाब्दिका' नामक सॉफ्टवेयर बनाया जो अंग्रेज़ी से हिन्दी तथा हिन्दी से अंग्रेज़ी में अनुवाद करता है। इसके अतिरिक्त भारतीय सूचना प्रौद्योगिकी संस्थान (IIIT) ने ओपन सोर्सिंग (Open Sourcing) के माध्यम से 'अनुस्मारक' नामक सॉफ्टवेयर तैयार किया जिसमें हिन्दी तथा अन्य भारतीय भाषाओं के परस्पर अन्तरण की सुविधा है। अभी कुछ समय पहले गूगल ने भी अंग्रेज़ी व अन्य भाषाओं के साथ हिन्दी में परस्पर अनुवाद की सुविधा उपलब्ध कराई है। यह सुविधा अभी प्रायोगिक स्तर पर है किंतु जल्दी ही इसके व्यावहारिक रूप में सफल होने की उम्मीद है।

(3) सबसे महत्त्वपूर्ण विकास टंकण के क्षेत्र में हुआ है। दो-तीन वर्ष पूर्व तक कम्प्यूटर तथा नेट पर हिन्दी एक बेहद गरीब भाषा मानी जाती थी। इसका मूल कारण यह था हिन्दी के टंकण के लिए जिन फोन्ट्स (Fonts) का प्रयोग किया जाता था, वे अंग्रेज़ी फोन्ट्स से सुमेलित नहीं थे।

उस समय एनकोडिंग की जो प्रणाली प्रचलित थी, उसे आस्की (ASCII) कहते थे। आस्की (ASCII) प्रणाली में 8 बिट्स से एक बाइट बनाई जाती थी। इस कारण इसमें अधिकतम 128 संकेत शामिल हो पाते थे। कुछ वर्ष पूर्व एक नई एनकोडिंग प्रणाली विकसित हुई जिसे यूनिकोड (Unicode) कहते हैं। यूनिकोड का अर्थ है सभी संकेतों को एकीकृत करने वाली व्यवस्था। इसमें 16 बिट्स से एक बाइट बनती है जिसका तात्पर्य है कि किसी भी भाषिक चिन्ह को व्यक्त करने के लिए 16 बाइनरी अंकों के समुच्चय का प्रयोग किया जाता है। 16 अंकों के विभिन्न संयोजनों की कुल संभावनाएँ 65536 बनती हैं अर्थात् यूनिकोड में इतने चिन्हों को व्यक्त करना संभव है। स्पष्ट है कि विश्व की सभी प्रमुख भाषाएँ इसमें शामिल हो सकती हैं। यूनिकोड कन्सोर्टियम (Unicode Consortium) में विश्व की सभी प्रमुख भाषाओं के सभी संकेतों के लिए निश्चित कोड बना दिए हैं। इसका मतलब है कि यूनिकोड में हर प्रसिद्ध भाषा के हर संकेत के लिए कोई न कोई अद्वितीय संयोजन अवश्य मौजूद है। यह व्यवस्था सभी भाषाओं को समान महत्त्व प्रदान करती है तथा अंग्रेज़ी के वैश्विक प्रभुत्व को समाप्त करती है।

यूनिकोड की क्षमता उन्हीं कम्प्यूटरों पर काम कर पाती है जो पी-4 स्तर के हों, जिनकी हार्ड डिस्क 40 गीगाबाइट या उससे अधिक हो तथा जिनकी रैम (RAM) क्षमता कम से कम 256 मेगाबाइट हो। माइक्रोसॉफ्ट के अधिकांश सॉफ्टवेयर यूनिकोड संगत हो चुके हैं, जैसे-माइक्रोसॉफ्ट विन्डोज़ एक्स पी, विन्डोज़ विस्टा इत्यादि। विन्डोज़ में 2000

ई. में पहली बार यूनिकोड का प्रयोग शुरु हुआ था। हाल ही में जो विस्टा नामक सॉफ्टवेयर माइक्रोसॉफ्ट ने जारी किया है उसमें उड़िया जैसी भारतीय भाषाओं को भी यूनिकोड से जोड़ दिया गया है। सिस्टम सॉफ्टवेयर के अतिरिक्त बहुत सारे कस्टम या ऐप्लिकेशन सॉफ्टवेयर यूनिकोड संगत हो चुके हैं, जैसे- माइक्रोसॉफ्ट ऑफिस इत्यादि। अब कम्प्यूटर पर सॉफ्टवेयर के सभी कार्य, वर्तनी जाँच कार्य तथा ई-मेल से संबंधित समस्त कार्य हिन्दी में ही किए जा सकते हैं। नई वेबसाइटें भी यूनिकोड पर आधारित हैं, न कि पुराने फोन्ट्स पर। गूगल, याहू, एम.एस.एन. और बीबीसी तो भारतीय भाषाओं में भी यूनिकोड पर आधारित अपनी वेबसाईट जारी कर चुके हैं। कुछ ही प्रसिद्ध सॉफ्टवेयर ऐसे हैं जो अभी यूनिकोड संगत नहीं है जैसे क्वार्क एक्सप्रेस तथा एडोबी के कुछ अन्य सॉफ्टवेयर।

कुल मिलाकर, यह कहने में कोई अतिशयोक्ति नहीं है कि यूनिकोड के विकास ने डिजिटल तकनीक के स्तर पर भाषायी लोकतंत्र की स्थापना में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है। अभी तक ऐसा भय होता था कि वैज्ञानिक तकनीकी प्रभुत्व के आधार पर अंग्रेज़ी शेष भाषाओं पर प्रभुता स्थापित कर लेगी। किन्तु अब उम्मीद बनती है कि सभी भाषाओं के लोग अपनी भाषा के माध्यम से कंप्यूटर व इंटरनेट की दुनिया में अपनी उपस्थिति दर्ज करा सकेंगे। प्रसिद्ध कवि अशोक चक्रधर ने तो यूनिकोड की प्रशंसा में कविता ही लिख दी-

"सबको प्यारी अपनी भाषा,
कंप्यूटर से जागी आशा,
मां हिन्दी की मिली गोद है,
यूनिकोड का महामोद है।"

(4) पिछले कुछ समय में इंटरनेट की दुनिया में हिन्दी की उपस्थिति बढ़ी है। इस उपस्थिति के कुछ रूप इस प्रकार हैं-

(क) हिन्दी के सभी प्रसिद्ध अखबारों ने नेट पत्रकारिता शुरु कर दी है। कुछ अखबारों को छोड़कर सभी की वेबसाइट हिन्दी में ही विकल्प उपलब्ध कराती है तथा सभी सूचनाएँ व लेख भी। कुछ ऐसे पोर्टल (Portal) उपलब्ध हैं जो हिन्दी की वेबसाइटों से पाठक को जोड़ते हैं। इनमें प्रमुख हैं वैबदुनिया.कॉम (Webdunia.com), हिन्दीनेस्ट.कॉम (Hindinest.com), प्रभासाक्षी.कॉम (Prabhasakshi.com) इत्यादि।

(ख) कई ऐसी वेबसाइटें बन गई हैं जो शुद्ध रूप से हिन्दी साहित्य के लिए समर्पित हैं। एक प्रसिद्ध वेबसाइट है 'काव्यालय.कॉम' जिसमें हिन्दी की नई तथा पुरानी लगभग सभी कविताएँ उपलब्ध हैं। इसका संचालन विनोद तिवारी और वाणी मुरारका कर रहे हैं। इनके अतिरिक्त दो जुड़वाँ वेबसाइटें हैं- अनुभूति.कॉम (Anubhuti.com) तथा अभिव्यक्ति.कॉम (Abhivyakti.com) जो क्रमशः पद्य तथा गद्य साहित्य के लिए समर्पित हैं।

(ग) कुछ साहित्यिक पत्रिकाएँ भी वेबसाइटों पर उपलब्ध हैं। राजेन्द्र यादव द्वारा संपादित पत्रिका हंस अपने नए तथा पुराने अंकों के साथ हंसमंथली.कॉम (Hansmonthly.com) पर उपलब्ध है। इसी प्रकार अखिलेश द्वारा प्रकाशित पत्रिका तद्भव.कॉम पर उपलब्ध है।

(घ) इंटरनेट की दुनिया में एक नया शब्द प्रचलित हुआ है-'ब्लॉग' (Blog) जो वस्तुतः वैबलोग (Weblog) का संक्षिप्त रूप है। यह अवधारणा सबसे पहले 1997 ई. में अमेरिका में प्रचलित हुई। यह वेबसाइट का संक्षिप्त रूप है जिसमें कोई व्यक्ति अपने विचार प्रस्तुत करता है तथा अन्य व्यक्ति उस पर समीक्षात्मक टिप्पणियाँ करते हैं। ब्लॉग लिखने वाले व्यक्ति को ब्लॉगर (Blogger) कहा जाता है और यह नई विधा ब्लॉगिंग (Blogging) कहलाती है। यह समकालीन साहित्य की सबसे नई विधा है। हिन्दी में अंग्रेज़ी के तुरंत बाद ब्लॉगिंग की शुरुआत हुई और इसके लिए जो शब्द प्रचलित हुआ वह है 'चिट्ठा'। आलोक को हिन्दी चिट्ठाकारी की शुरुआत का श्रेय दिया जाता है। पिछले वर्ष (2007) तक हिन्दी में लगभग 900 ब्लॉग संचालित हो रहे थे जबकि 2008 के अंत तक इनकी संख्या बढ़कर 10,000 हो गई है। इनमें सबसे प्रसिद्ध हैं- 'फुरसतिया' (अनूप शुक्ला); 'मोहल्ला' (अविनाश), 'जो कह न सके' (सुनील दीपक), 'मसिजीवी' (विजेन्द्र) इत्यादि।

एक प्रसिद्ध साइट जो सभी चिट्ठाकारों के चिट्ठों को आपस में जोड़ती (Feed Agregater) है, वह है 'नारद'। यह सभी चिट्ठाकारों को सूचना भेजती है कि कौन-कौन से चिट्ठे में आज कुछ नया लिखा गया है।

आज हिन्दी में फोटो ब्लॉग, म्यूज़िक ब्लॉग, वीडियो ब्लॉग, समाचार पत्र ब्लॉग, विज्ञान ब्लॉग, प्रोजेक्ट ब्लॉग, कारपोरेट ब्लॉग आदि का प्रचलन तेजी से बढ़ा है। यानी हिन्दी आज मानवीय संवेदनात्मकता के विकास के दौर में है।

(ङ) इंटरनेट पर अंग्रेज़ी में बहुत सारे विश्वकोष विद्यमान हैं। एक नया विकास 'विकीपीडिया' अर्थात् ऐसा एनसाइक्लोपीडिया है जो ओपन सोर्सिंग (Open Sourcing) पर आधारित है जिससे कोई भी इंटरनेट प्रयोक्ता उसमें सूचनाओं को जोड़ सकता है। हाल ही में हिन्दी में यह व्यवस्था शुरु हुई है। एक प्रसिद्ध विश्वकोष है 'सर्वज्ञ' जो विकीपीडिया पद्धति पर ही आधारित है। इसके अतिरिक्त विकीपीडिया प्रबंधन की ओर से एक औपचारिक विश्वकोश 'हिन्दी विकीपीडिया' भी शुरु कर दिया गया है।

(5) (क) ई-कॉमर्स और ई-गवर्नेन्स जैसे क्षेत्रों में हिन्दी भाषा की स्थिति अभी बहुत आश्वस्तिदायक नहीं है किन्तु इस क्षेत्र में भी आरम्भिक प्रयास होने लगे हैं। हिन्दी भाषी राज्यों की सरकारों की वेबसाइटें प्राय: हिन्दी में उपलब्ध हैं। केन्द्र सरकार के सभी विभागों की वेबसाइटें 1976 के भाषा अधिनियम के कारण हिन्दी अनुवाद के साथ उपलब्ध हैं। जहाँ तक ई-कॉमर्स का सवाल है, हिन्दी में थोड़ी सी ही सुविधाएँ उपलब्ध हैं। उदाहरण के लिए, भारतीय रेलवे से कोई टिकट खरीदने के लिए उसकी साइट का प्रयोग किया जा सकता है। आई.टी.सी. (ITC) का प्रसिद्ध प्रकल्प 'चौपाल' भारतीय भाषाओं पर ही आधारित है जो लोकभाषा तथा ई-कॉमर्स के सुंदर समन्वय का उदाहरण है।

जहाँ तक बैंकिंग क्षेत्र का सवाल है वह धीरे-धीरे कंप्यूटर और इंटरनेट पर आधारित होता जा रहा है किंतु हिन्दी में नहीं, अंग्रेज़ी में। हाल ही में पंजाब नेशनल बैंक ने अपने एटीएम तथा पासबुक व्यवस्था में हिन्दी तथा पंजाबी के प्रयोग की शुरुआत की है। इसी प्रकार विभिन्न सेवाप्रदाता कम्पनियों में जो स्वचालित उत्तर मशीनें प्रयुक्त होती हैं, उनके संदेश कहीं-कहीं हिन्दी में आने लगे हैं। एम.टी.एन.एल., भारतीय रेल तथा कई निजी प्रतिष्ठानों में भी पूर्व रिकॉर्डेड संदेश अंग्रेज़ी के साथ हिन्दी का विकल्प प्रस्तुत करते हैं।

(ख) हाल ही में दूरसंचार के क्षेत्र में एक और विकास हुआ है। डी.टी.एच. (DTH) प्रणाली पर आधारित प्रसारण व्यवस्था भाषा के लिए विभिन्न विकल्पों को प्रदर्शित करने लगी है। तात्पर्य है कि डिस्कवरी (Discovery) तथा नेशनल ज्योग्राफिक (National Geographic) जैसे चैनल देखते हुए दर्शक चाहे तो कार्यक्रम की भाषा बदल सकता है। वह उसी कार्यक्रम को बिना दृश्य बदले हिन्दी भाषा में देख सकता है, शर्त यह है कि चैनल के पास हिन्दी संस्करण उपलब्ध हो। हाल ही में क्रिकेट विश्वकप की कमेंट्री के लिए अंग्रेज़ी व हिन्दी के अतिरिक्त चार भाषाओं का प्रयोग किया गया।

(ग) मोबाइल तकनीक में भी हिन्दी भाषा का पर्याप्त प्रयोग होने लगा है। इस क्षेत्र में रिलायंस जैसी कंपनियों ने शुरुआत की थी। अब मोबाइल उपकरण बनाने वाली कंपनियाँ ऐसे उपकरण तथा सॉफ्टवेयर बना रही हैं जिनमें न केवल सभी विकल्प हिन्दी में आते हैं बल्कि यूनिकोड संगत होने के कारण 'लघु संदेश सेवा' (SMS) का टंकण भी हिन्दी में किया जा सकता है। अंग्रेज़ी में एक सुविधा 'T-9 डिक्शनरी' की है जिसके प्रयोग से मोबाइल में टंकण करना अत्यंत तीव्र व सुगम हो जाता है। अब हिन्दी में भी इसका प्रयोग शुरु हो गया है।

सीमाएँ

(1) अंग्रेज़ी में एक प्रसिद्ध सॉफ्टवेयर है 'ध्वनि पहचान सॉफ्टवेयर' (Speech Recogniction Software)। इसका प्रयोग करने पर कंप्यूटर को इन्पुट (Input) देने के लिए टंकण की आवश्यकता नहीं रहती, वह मौखिक आदेश ग्रहण कर सकता है। तात्पर्य यह कि प्रयोक्ता जो कुछ भी बोलता है, कंप्यूटर उसकी आवाज़ सुनकर वही शब्द खुद टाइप कर देता है। इसके प्रयोग से गति तथा कार्यकुशलता अत्यधिक बढ़ जाती है। हिन्दी में ऐसे सॉफ्टवेयर को प्रायोगिक सफलता तो मिल चुकी है किन्तु व्यवहारत: अभी यह प्रचलित नहीं हो सका है। अभी हाल ही में गूगल ट्रॉंसलिटरेशन की ओर से हिन्दी में मौखिक इनपुट के आधार पर टाइपिंग की व्यवस्था शुरू हुई है जो सटीक भले न हो, किंतु प्रभावशाली अवश्य है। उम्मीद की जा सकती है कि आने वाले दो-तीन वर्षों के भीतर यह तकनीक सामान्य उपयोग में आने लगेगी।

(2) अंग्रेज़ी भाषा में यह सुविधा है कि अंग्रेज़ी में लिखित किसी सामग्री को जब स्कैन किया जाता है तो स्कैन फाइल (Scan File) को टेक्स्ट फाइल (Text File) में रूपांतरित किया जा सकता है। तात्पर्य यह कि स्कैन की गई सामग्री चित्र के रूप में नहीं रहती, लिखित संदेश के रूप में प्रस्तुत हो जाती है जिसे आवश्यकतानुसार प्रयोग किया जा सकता है। हिन्दी में अभी यह सुविधा उपलब्ध नहीं हो सकी है।

(3) अंग्रेज़ी में एक और सुविधा उपलब्ध है जिसे ई-पेन (E-Pen) कहते हैं। इसके अंतर्गत एक निश्चित पटल पर ई-पेन से जो भी लिखा जाता है, उसे कंप्यूटर टेक्स्ट (Text) के रूप में पहचान लेता है। इससे टंकण की आवश्यकता खत्म हो जाती है। यह सुविधा हिन्दी में भी विकसित करने की ज़रूरत है।

(4) अंग्रेज़ी में एक और सुविधा है जिसके अंतर्गत कंप्यूटर किसी भी संदेश को खुद पढ़कर सुनाता है। यह दृष्टिहीनों के लिए बेहद उपयोगी व्यवस्था है। हिन्दी में यह सुविधा लिप्यन्तरण की मदद से थोड़ी बहुत उपलब्ध हो पाती है किन्तु बेहद प्रभावहीन तरीके से। ज़रूरी है कि इस तरह का हिन्दी का अपना सॉफ्टवेयर उपलब्ध हो।

(5) अंग्रेज़ी के शब्द संसाधक (Word Processing) सॉफ्टवेयर में एक सुविधा है जिसे वर्तनी-जाँच (Spell Check) कहते हैं। इसका लाभ यह है कि यदि कोई शब्द गलत लिख दिया गया हो तो कंप्यूटर स्वयं इसकी जानकारी दे देता है। वह कुछ विकल्प भी प्रस्तुत करता है ताकि सही शब्द लिखा जा सके। हिन्दी में यूनीकोड से संगत सॉफ्टवेयरों में यह सुविधा आंशिक रूप से आ गई है, जैसे गूगल तथा ऑर्कुट (Orkut)। चिट्ठा लेखन में भी यह सॉफ्टवेयर काम करता है किन्तु हिन्दी के अपने फोन्ट्स (Fonts) में यह अभी प्रयुक्त नहीं हो सका है।

अभ्यास हेतु प्रश्न

1. हिन्दी की तकनीकी शब्दावली के निर्माण में आने वाली बाधाओं का वर्णन कीजिये। **U.P.S.C. (Mains) 2017**
2. हिन्दी की तकनीकी शब्दावली की उपलब्धियाँ और सीमाएँ बताइये। **U.P.S.C. (Mains) 2016**
3. विश्वमंच पर हिंदी के सफल प्रयोग की संभावनाएँ बढ़ गई हैं। इस कथन की पुष्टि कीजिये **U.P.S.C. (Mains) 2016**
4. वैज्ञानिक और तकनीकी क्षेत्र में हिन्दी भाषा के विकास का सर्वेक्षण कीजिये और उस पर उपयुक्त एवं तर्कपूर्ण टिप्पणी कीजिये। **U.P.S.C. (Mains) 2015**
5. हिन्दी की तकनीकी शब्दावली के उपयोग में आनेवाली कठिनाइयों पर प्रकाश डालिए। **U.P.S.C. (Mains) 2013**
6. हिन्दी भाषा का वैज्ञानिक और तकनीकी पक्ष (टिप्पणी) **U.P.S.C. (Mains) 2012**
7. हिन्दी की वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली के अद्यतन विकास को निम्नलिखित सन्दर्भों में विवेचित कीजिये: **U.P.S.C. (Mains) 2011**

   (क) व्यावसायिक शिक्षा (ख) मौलिक वैज्ञानिक लेखन
8. निम्नलिखित दृष्टि से हिन्दी भाषा की वैज्ञानिक एवं प्रौद्योगिक प्रगति का विवेचन कीजिये: **U.P.S.C. (Mains) 2010**

   (क) पारिभाषिक शब्दावली (ख) अनूदित लेखन
9. तकनीकी विकास और हिन्दी (टिप्पणी) **U.P.S.C. (Mains) 2008**
10. वैज्ञानिक एवं तकनीकी क्षेत्र में हिन्दी के विकास की समीक्षा कीजिये। **U.P.S.C. (Mains) 2007**
11. वैज्ञानिक एवं तकनीकी विकास में हिन्दी भाषा के स्वरूप को स्पष्ट कीजिये। **U.P.S.C. (Mains) 2006**
12. आधुनिक हिन्दी: तकनीकी विकास। **U.P.S.C. (Mains) 2004**
13. वैज्ञानिक एवं तकनीकी भाषा के स्वरूप को स्पष्ट करते हुए हिन्दी में पारिभाषिक शब्दावली के निर्माण को सुलझाने की दिशाएँ रेखांकित कीजिये। **U.P.S.C. (Mains) 2001**

अध्याय
22

पारिभाषिक शब्दावली की समस्या

22.1 पारिभाषिक शब्दावली का अर्थ

पारिभाषिक शब्दावली वह शब्दावली है जो किसी निश्चित क्षेत्र में प्रयुक्त होती है और जिसका अर्थ भी वस्तुनिष्ठ होता है। सामान्यत: इसकी तीन विशेषताएँ बतायी जाती हैं–

(1) पारिभाषिक शब्द अभिधार्थ में ही ग्रहण किये जाते हैं, लक्ष्यार्थ या व्यंग्यार्थ में नहीं। सामान्य भाषा में 'आशा की किरणें' या 'तुम उल्लू हो' जैसे वाक्यांशों में किरण एवं उल्लू शब्द का लाक्षणिक प्रयोग हुआ है किंतु भौतिकी में 'किरणें' सिर्फ प्रकाश तक सीमित हैं एवं प्राणिविज्ञान में 'उल्लू' एक विशिष्ट प्रजाति तक।

(2) विषय-सापेक्षता पारिभाषिक शब्दावली का अनिवार्य गुण है। हर पारिभाषिक शब्द किसी न किसी विषय विशेष में ही प्रयुक्त होता है; जैसे- 'मांग' एवं 'आपूर्ति' अर्थशास्त्र में; 'राज्य' व 'संप्रभुता' राजनीति विज्ञान में; 'अधिकारीतंत्र' लोक प्रशासन में एवं 'प्रस्थिति' समाजशास्त्र में प्रयुक्त होने वाले पारिभाषिक शब्द हैं।

(3) अर्थों का सूक्ष्मीकरण पारिभाषिक शब्दों की अनिवार्य विशेषता है क्योंकि ये शब्द किसी न किसी अत्यंत सूक्ष्म एवं निश्चित अर्थ को ही बताते हैं। उदाहरण के लिए ताप, गर्मी, ऊष्मा एवं ऊष्णता चारों शब्द परस्पर निकट होते हुए भी एक दूसरे से भिन्न हैं। यह इनकी पारिभाषिकता के कारण ही संभव होता है।

पारिभाषिक शब्दों का कुछ आधारों पर वर्गीकरण भी किया जा सकता है। पारिभाषिकता के स्तर के आधार पर दो प्रकार के शब्द होते हैं- **पूर्ण-पारिभाषिक** तथा **अर्ध-पारिभाषिक**। पूर्ण पारिभाषिक शब्द केवल तकनीकी संदर्भों में ही आते हैं जैसे- प्रजाति (species) या स्वनिम (phoneme)। इसके विपरीत अर्ध-पारिभाषिक शब्द वे हैं जो पारिभाषिक या गैर पारिभाषिक दोनों अर्थों में प्रयुक्त होने की क्षमता रखते हैं, जैसे- मांग, आत्मा, वनस्पति, संस्था, राज्य आदि। कुछ शब्द ऐसे भी हैं जो कभी-कभी गैर-तकनीकी संदर्भों में प्रयुक्त होते हैं तो कभी-कभी अर्ध-पारिभाषिक एवं पूर्ण पारिभाषिक संदर्भों में, जैसे- स्पीकर शब्द को यदि वक्ता के रूप में लें तो गैर-पारिभाषिक; यदि लोकसभा अध्यक्ष के रूप में लें तो पारिभाषिक; और यदि लाउडस्पीकर के रूप में लें तो अर्ध-पारिभाषिक है।

अर्थ-संप्रेषण की दृष्टि से भी पारिभाषिक शब्दों के दो वर्ग बनाये जाते हैं- **पारदर्शी शब्द** तथा **अपारदर्शी शब्द**। पारदर्शी शब्द वे हैं जिनका अर्थ शब्द से ही स्पष्ट हो जाता है, जैसे- राजनीतिशास्त्र, अर्थशास्त्र, निजीकरण, भूमंडलीकरण। इनके विपरीत, अपारदर्शी शब्द वे हैं जिनका अर्थ शब्द से स्वत: स्पष्ट नहीं होता। उदाहरण के लिए, श्वेत पत्र, फारेनहाइट, वोल्टमीटर इत्यादि ऐसे ही शब्द हैं।

22.2 निर्माण के ऐतिहासिक प्रयास

भाषा के आधुनिकीकरण में एक मुख्य समस्या पारिभाषिक शब्दावली के विकास की है क्योंकि उसके बिना कोई भी भाषा विश्व के विकास स्तर के बराबर नहीं चल सकती। हिंदी की पारिभाषिक शब्दावली के निर्माण के लिए भी पर्याप्त प्रयास हुए हैं। सबसे पहले इतिहास में एक प्रसंग मिलता है कि मध्यकाल में **शिवाजी** के कहने पर **रघुनाथ पंत** ने राजकीय शब्दावली के निर्माण का प्रयास किया था। **वर्ष 1871** में तत्कालीन **बंगाल सरकार** ने एक समिति बनाई थी जिसे यह निश्चित करना था कि विज्ञान एवं विधि आदि क्षेत्रों के यूरोपीय भाषाओं के शब्द भारतीय भाषाओं (वर्नाक्युलर्स) में किस प्रकार रूपांतरित किये जाएँ। इस समिति के एक वरिष्ठ सदस्य राजेंद्रलाल मित्र ने 1877 ई० में इस समिति के निर्णय को प्रकाशित किया। इसके बाद 1898 ई० में **'काशी नागरी प्रचारिणी सभा'** ने इसी उद्देश्य से एक समिति नियुक्त की जिसकी बनायी हुई **'हिंदी साइंटिफिक ग्लॉसरी'** 1901 में प्रकाशित हुई। 20वीं शताब्दी के आरंभ में **नागरी प्रचारिणी सभा** एवं **हिंदी साहित्य सम्मेलन** जैसी संस्थाओं ने इस उद्देश्य के लिए पर्याप्त प्रयास किए। इसी समय में व्यक्तिगत स्तर पर सबसे

महत्त्वपूर्ण प्रयास **डॉ० रघुवीर** ने किया जिन्होंने 'आंग्ल-भारतीय महाकोश' 4 खण्डों में प्रकाशित किया। इसमें प्रत्येक पारिभाषिक शब्द का पर्याय देवनागरी लिपि के अतिरिक्त बांग्ला, कन्नड़ एवं तमिल लिपियों में भी दिया गया। डॉ० रघुवीर ने अकेले ही 4 लाख से अधिक पारिभाषिक शब्द निर्मित किए एवं उनके आधार पर 'वाणिज्य शब्दकोश', 'सांख्यिकी शब्दकोश', 'वैज्ञानिक शब्दकोश', 'अर्थशास्त्र शब्दकोश' व 'तर्कशास्त्र शब्दकोश' आदि प्रकाशित किये। इसके उपरांत स्वतंत्रता प्राप्ति के तुरंत बाद दिसम्बर, 1950 में **शिक्षा मंत्रालय** ने 'Board of Scientific Terminology' का गठन किया। तत्पश्चात् 1955 के राजभाषा आयोग की संस्तुतियों के आधार पर और संविधान के अनुच्छेद 351 के आधार पर राष्ट्रपति के आदेश से 1961 में **'वैज्ञानिक एवं तकनीकी शब्दावली आयोग'** की स्थापना हुई जो तब से लगातार इस क्षेत्र में सक्रिय है। विधायी शब्दावली के अनुवाद के लिये एक अन्य आयोग– **'विधायी शब्दवाली आयोग'** गठित किया गया।

22.3 पारिभाषिक शब्दावली के निर्माण की युक्तियाँ तथा सम्बन्धित विवाद

पारिभाषिक शब्दावली के निर्माण की कई पद्धतियाँ हो सकती हैं और हिंदी में पारिभाषिक शब्दावली के निर्माण की प्रक्रिया के संबंध में पर्याप्त विवाद भी रहा है। इस संबंध में तीन प्रकार के मत प्रचलित रहे हैं, जो इस प्रकार हैं–

1. **पुनरुत्थानवादी संप्रदाय:** इस संप्रदाय के प्रमुख समर्थक **डॉ० रघुवीर** हैं। इनका मानना था कि हमें न केवल अंग्रेज़ी व अन्य यूरोपीय भाषाओं के बल्कि अरबी-फारसी के शब्दों को भी निकाल बाहर करना चाहिए एवं इन सभी के स्थान पर यदि संस्कृत के शब्द मिलें तो उन्हें; और न मिलें तो पाणिनीय व्याकरण के आधार पर संस्कृत धातुओं, प्रत्ययों और उपसर्गों की सहायता से नये शब्द बना लेने चाहिएँ। इस संबंध में इनका मूल तर्क यह था कि एक तो संस्कृत की धातुओं से बने शब्द अर्थ की दृष्टि से पारदर्शी होते हैं, दूसरे ये अखिल भारतीय अर्थवत्ता रखते हैं क्योंकि भारत की अधिकांश भाषाओं का स्रोत संस्कृत ही है। तीसरी बात यह है कि संश्लिष्ट प्रकृति के कारण संस्कृत भाषा में यह क्षमता है कि एक ही मूल शब्द कई पारिभाषिक शब्दों की व्युत्पत्ति कर सकता है। उदाहरण के लिए, यदि इलेक्शन के लिये चुनाव शब्द का प्रयोग करेंगे तो इलेक्टेड एवं इलेक्टोरेट के लिए इससे जुड़े शब्द नहीं मिलेंगे, किंतु निवार्चन शब्द का प्रयोग करने पर निर्वाचित तथा निर्वाचक मंडल आदि शब्द बन जायेंगे। इसी प्रकार Law के लिए विधि स्वीकार करें तो वैध (Legal), अवैध (Illegal), विधान (Legislation), विधायक (Legislator), विधायिका (Legislature) आदि शब्द सहज रूप से बन जायेंगे। डॉ० रघुवीर ने उपसर्गों एवं प्रत्ययों के प्रयोग को अत्यधिक महत्त्व दिया एवं माना कि पारिभाषिक शब्दों के अनुवाद में उपसर्गों एंव प्रत्ययों का अनुवाद भी अलग से होना चहिए, जैसे 'Decentralisation' में 'De' उपसर्ग के लिए 'वि', central के लिये 'केंद्रीय' एवं 'isation' प्रत्यय के लिए 'करण' एवं इस प्रकार 'विकेंद्रीयकरण' उपयुक्त पारिभाषिक शब्द होगा।

   डॉ० रघुवीर के इस शुद्धतावादी दृष्टिकोण की समस्या यह है कि इससे अत्यधिक जटिल शब्दावली का निर्माण होता है। उदाहरण के लिए, रेलवे स्टेशन के लिये उन्होंने ऋग्वेद में प्रयुक्त शब्द 'स्थात्र' को चुना है। इस आधार पर Station Master को 'स्थात्रपति' एवं Platform को 'स्थात्रमंच' कहा। पुनः रेलगाड़ी को 'अग्निरथ' कहा एवं रेलवे सिग्नल को 'अग्निरथ गमन-आगमन सूचन लौह पट्टिका' कहा। इसी प्रकार 'रिक्शा' के लिये 'नरयान', बल्ब के लिये 'विद्युत्कंद' एवं 'Mill' के लिये 'निर्माणी' शब्द का प्रयोग किया। उनका स्पष्ट मानना था कि पारिभाषिक शब्दावली कठिन ही होती है, इसलिए जटिलता के आधार पर इसकी आलोचना नहीं की जानी चाहिए।

   इस दृष्टिकोण की सीमा यह है कि यह अत्यधिक शुद्धतावादी है जबकि सत्य यह है कि स्वयं संस्कृत भाषा ने भी ऑस्ट्रिक, द्रविड़, ग्रीक, लैटिन, चीनी, अरबी एवं फारसी आदि भाषाओं के अनेक शब्दों को पचा लिया था एवं आज तत्सम कहे जाने वाले अनेक शब्द ऐसे हैं जो मूलतः संस्कृत के लिये विजातीय थे।

2. **लोकवादी संप्रदाय:** इस संप्रदाय का समर्थन करने वाले में **श्री सुंदर लाल** अत्यधिक महत्त्वपूर्ण हैं। संस्थाओं के स्तर पर उस्मानिया विश्वविद्यालय, हैदराबाद और हिंदुस्तानी कल्चर सोसायटी, इलाहाबाद का भी महत्त्वपूर्ण योगदान है। इस संप्रदाय का दृष्टिकोण यह है कि पारिभाषिक शब्दावली यथासंभव सरल होनी चाहिए एवं हिंदुस्तानी शब्दों के आधार पर निर्मित होनी चाहिए। इन्होंने तत्सम शब्दों का खण्डन तो नहीं किया किंतु यह अवश्य कहा कि यदि शब्द

तत्सम हों तो भी उपसर्ग एवं प्रत्यय हिंदुस्तानी के होने चाहिये। ऐसे प्रयोग भी काफी अटपटेपन से भरे हुए थे। उदाहरण के लिए, उस्मानिया विश्वविद्यालय द्वारा निर्मित कुछ पारिभाषिक शब्द इस प्रकार हैं:

Reaction – पलटकारी Stabilize – स्थिरियाना Education – तालीम

3. **अंतर्राष्ट्रीयतावादी संप्रदाय:** इस संप्रदाय के समर्थकों में मुख्य रूप से वैज्ञानिक जगत से जुड़े लोग हैं जिनमें बीरबल साहनी एवं शांतिस्वरूप भटनागर जैसे प्रसिद्ध वैज्ञानिक भी शामिल हैं। इनके अनुसार अंतर्राष्ट्रीय शब्दावली को सामान्यत: वैसे ही स्वीकार कर लेना चाहिये जैसे उसका प्रयोग विकसित देशों की भाषाओं में होता है। इससे हमारे वैज्ञानिकों को विश्वस्तरीय संप्रेषण में समस्या नहीं आयेगी तथा शब्दों को प्रचलित बनाने की जटिल प्रक्रिया से बचा जा सकेगा। उदाहरण के लिए, इलेक्ट्रॉन, रेडियम, कंप्यूटर आदि शब्दों को परिवर्तित करना न तो सहज है एवं न ही काम्य।

22.4 डॉ. रघुवीर का योगदान

हिन्दी में पारिभाषिक शब्दावली-निर्माण के संदर्भ में डॉ. रघुवीर अग्रणी हैं। उनके अनुसार हमारे देश में केवल संस्कृत एक ऐसा स्रोत है जिसको आधार मानकर हम पारिभाषिक शब्दावली की समस्या का स्थायी समाधान खोज सकते हैं।

डॉ. रघुवीर ने शब्द-निर्माण के लिए निम्नांकित आधार और मानदंड निर्धारित किए-

1. एक शब्द का एक ही मुख्यार्थ होना चाहिए। पारिभाषिक शब्दावली में अर्थ के स्तर पर परस्पर अंतर-व्याप्ति नहीं होनी चाहिए।
2. शब्द अर्थवान होना चाहिए।
3. शब्द संक्षिप्त होने चाहिए। जैसे- अंग्रेजी में रेलवे में, 'Signal' शब्द के लिए हिन्दी में 'लौहपथ गमनागमन सूचिका पट्टिका' के स्थान पर 'संकेतक' शब्द होना चाहिए।
4. लैटिन के अवयव संस्कृत के ही समानांतर हैं, इसलिए संस्कृत की समानान्तरता का प्रयोग करना चाहिए। जैसे- Perianth - परिपुष्प, Pericentral - परिमध्य।
5. कोई भी पारिभाषिक शब्द अकेला नहीं होता उसके साथ उससे जुड़े व बने हुए कई शब्द होते हैं। उन सबके आधार पर एक शब्द बनाना पड़ता है। 'law' के लिए हमारे पास दो शब्द हैं- 'कानून' और 'विधि'। 'कानून' शब्द से 'law' से जुड़े निम्नांकित शब्दों के लिए हिन्दी शबदावली का निर्माण नहीं हो सकता जबकि 'law' के पर्यायवाची 'विधि' में यह गुण पूर्णतया उपस्थित है। उदाहरण के लिए, Law - विधि, Lawful - विधिवत, विधिसंगत, Legal - वैध, Illegal - अवैध, Legislation - विधान, Legislative - विधायी, Legislator - विधायक आदि।
6. डॉ. रघुवीर ने अकेले ही बहुत बड़ी संख्या में शब्दों का निर्माण-अन्वेषण किया और यही कारण था कि भारत के स्वाधीन होते-होते डॉ. रघुवीर कई लाख शब्दों का निर्माण कर चुके थे। यह बात निर्विवाद है कि स्वातंत्र्योत्तर समय में पारिभाषिक शब्दावली के निर्माण में उनका योगदान अमूल्य है।

22.5 पारिभाषिक शब्दावली के निर्माण की उपयुक्त नीतियाँ

उपयुक्त नीति उपरोक्त तीनों मतों के समन्वय से ही बन सकती है। वैज्ञानिक एवं तकनीकी शब्दावली आयोग की नीति भी समान्यत: समन्वयकारी ही है। इस संदर्भ में आदर्श नीति के लिये कुछ सुझाव इस प्रकार हो सकते हैं–

(1) वे शब्द जिनके लिए उपयुक्त शब्द हमारी भाषा में मौजूद हैं, उनका अनुवाद किया जाना चाहिए किंतु ये अनुवाद ऐसी शब्दावली में होना चाहिए जिसे प्रचलन में लाना कठिन न हो। युद्धशास्त्र, गणित, चिकित्सा, कूटनीति, दर्शन आदि अनेक विषयों में हमारी प्राचीन परंपरा पर्याप्त क्षमतावान है एवं उपयुक्त शब्द उसमें से खोजे जा सकते हैं। उदाहरण के लिए, Battalion (वाहिनी), Calculus (कलन), Surgery (शल्य चिकित्सा) आदि।

(2) कुछ अंतर्राष्ट्रीय शब्द ऐसे होते हैं जिनके लिए उपयुक्त अनुवाद संस्कृत या हिंदी परंपरा में तो नहीं मिलता किंतु भारत की अन्य भाषाओं या बोलियों में मिल सकता है। यदि ऐसी संभावना हो तो उन शब्दों का प्रयोग किया जाना चाहिए। उदाहरण के लिए, Acknowledgement के लिए 'पावती' शब्द स्वीकार किया गया है जो कि मूलत: मराठी का है।

(3) कुछ पारिभाषिक शब्द ऐसे हैं जिनके समतुल्य शब्द अपनी परंपरा के किसी शब्द का अर्थ-विस्तार या अर्थ-संकोच करने से बनाये जा सकते हैं। यदि ऐसा संभव हो तो इसे भी स्वीकार किया जाना चाहिए। उदाहरण के लिए, विद्युत शब्द को पहले 'तड़ित' या 'दामिनी' के अर्थ में प्रयोग करते थे, किंतु अब Electricity के लिये करते हैं। इसी प्रकार, आकाशवाणी शब्द पहले देववाणी के अर्थ में प्रचलित था किंतु अब All India Radio के संदर्भ में। ये दोनों उदाहरण अर्थ-विस्तार के हैं। अर्थ-संकोच के संबंध में 'संसद' एक महत्त्वपूर्ण शब्द है जिसका प्रयोग पहले किसी भी सभा के लिये होता था किंतु अब Parliament के लिये होता है।

(4) कुछ ऐसे शब्द हैं जिनके समतुल्य शब्द हमारी परंपरा में नहीं हैं किंतु उन शब्दों का सरल अनुवाद करके काम चलाया जा सकता है। उन शब्दों का अर्थग्रहण करते हुए समतुल्य अनुवाद किया जाये तो नये शब्द बन सकते हैं, जैसे–

Literacy - साक्षरता
Television - दूरदर्शन
White Paper - श्वेत-पत्र
Red Tapism - लाल फीताशाही

(5) कुछ ऐसे अंतर्राष्ट्रीय शब्द हैं जिनका अनुवाद संभवत: किसी भी प्रकार करना संभव नहीं है और यदि हठपूर्वक किया भी जाये तो वह इतना जटिल होगा कि प्रचलित नहीं हो पायेगा। ऐसे शब्दों को वैसे ही स्वीकार कर लेना चाहिए जैसे वे अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर स्वीकार किये जाते हैं, जैसे- इलेक्ट्रॉन, कम्प्यूटर, इंजन, पेट्रोल।

(6) कहीं-कहीं संभव है कि अंतर्राष्ट्रीय शब्दावली को स्वीकार तो किया जाए किंतु उसकी ध्वनि व्यवस्था का अनुकूलन हिंदी की प्रकृति के अनुकूल कर लिया जाये। ऐसे कुछ प्रयास हुए भी हैं और होने भी चाहिएँ–

Academy – अकादमी	Tragedy – त्रासदी	Interim – अंतरिम
Technique – तकनीकी	Comedy – कामदी	Madam – मादाम

ध्वनियों का अनुकूलन विश्व की अन्य भाषाओं ने भी अपने अनुसार किया है। उदाहरण के लिये ईरानी भाषा में Television को 'टेलीविज़्यों' तथा Radio को 'रादियो' बना दिया गया एवं जापान में Bridge को 'बुरुज्जि' बना दिया गया है। इसका लाभ यह है कि विदेशी शब्द भी स्वदेशी प्रतीत होने लगता है।

(7) कुछ शब्दों को ठीक उसी रूप में स्वीकार तो किया जाना चाहिए किंतु उन पर लागू होने वाले व्याकरण के नियम अपनी ही भाषा के होने चाहिएँ, विशेषत: उपसर्ग एवं प्रत्यय। उदाहरण के लिए Voltage (वोल्टता), Ionisation (आयनीकरण) तथा Registered (रजिस्ट्रीकृत)।

(8) कुछ शब्द शाब्दिक संकरण से भी बनाये जा सकते हैं जिसका एक अंश किसी विदेशी भाषा का हो तथा दूसरा हिस्सा अपनी ही भाषा का हो। ऐसे कई शब्द प्रचलित हो भी चुके हैं। उदाहरण के लिए- जिला बोर्ड (उर्दू + हिंदी), सिनेमा घर (अंग्रेज़ी + हिंदी), जन्म दर (संस्कृत + उर्दू), रेलगाड़ी (अंग्रज़ी + हिंदी)।

22.6 वैज्ञानिक-तकनीकी शब्दावली आयोग द्वारा स्वीकृत सूत्र

वैज्ञानिक एवं तकनीकी शब्दावली आयोग ने निम्नलिखित सिद्धांतों के आधार पर अपनी कार्य योजना को बढ़ाया है–

(1) अंतर्राष्ट्रीय शब्दों को उनके प्रचलित अंग्रेज़ी रूपों में अपनाना चाहिये और हिंदी व अन्य भारतीय भाषाओं की प्रकृति के अनुरूप उनका लिप्यंतरण कर देना चाहिए। उदाहरण के लिए, तत्वों एवं यौगिकों के नाम जैसे हाइड्रोजन व कार्बन, व्यक्तियों के नाम पर बने शब्द फॉरेनहाइट तथा वोल्टमीटर तथा अत्यंत प्रचलित शब्द जैसे Radio, Petrol इत्यादि।

(2) विज्ञान एवं गणित में प्रयुक्त होने वाले प्रतीक अंग्रेज़ी रूपों में ही स्वीकार होने चाहिए एवं रोमन लिपि में ही लिखे जाने चाहिएँ, जैसे- centimetre इत्यादि। इनके लघु रूप हिंदी एवं अंग्रेज़ी दोनों में स्वीकृत होंगे जैसे- Cm एवं से. मी.। त्रिकोणमिति के प्रतीक अंग्रेज़ी में ही स्वीकृत होंगे लेकिन ज्यामिति में होने वाले प्रतीक अनूदित किये जा सकते हैं, उदाहरण के लिए- अ, ब, स।

(3) अवधारणाओं या संकल्पनाओं का प्राय: अनुवाद ही किया जाना चाहिए, जैसे Gravitation का गुरुत्वाकर्षण, Sovereignty का संप्रभुता।

(4) अंग्रेज़ी, पुर्तगाली, फ्राँसीसी आदि भाषाओं के ऐसे शब्द जो भारतीय भाषाओं में प्रचलित हो गये हैं, प्राय: वैसे ही स्वीकार किये जाने चाहियें जैसे वे हैं। उदाहरण के लिए- मशीन, टॉर्च, प्रिज़्म इत्यादि।

(5) अनुवाद करते समय उन शब्दों को प्राथमिकता देनी चाहिये जो संस्कृत धातुओं पर आधारित हों एवं अधिक से अधिक भारतीय भाषाओं में प्रयुक्त होते हों।

(6) शब्दों के अनुवाद के साथ जुड़ने वाले उपसर्ग एवं प्रत्यय अपनी भाषा के अनुकूल होने चाहियें, जैसे- आयनीकरण, वोल्टता इत्यादि।

(7) पारिभाषिक शब्दावली के अनुवादों को सामान्यत: पुल्लिग रूप में ही स्वीकार करना चाहिए।

(8) ऐसे शब्दों के निर्माण में कठिन संधियों से बचना चाहिए और यदि संयुक्त शब्दों की आवश्यकता हो तो हाइफन के प्रयोग को प्रमुखता देनी चाहिए।

(9) हलन्त का प्रयोग आवश्यक होने पर ही किया जाना चाहिए।

(10) पंचम वर्ण के स्थान पर अनुस्वार का प्रयोग किया जाना चाहिए ताकि पारिभाषिक शब्दावली सुबोध बन सके।

22.7 निष्कर्ष, मूल्यांकन

पिछले 50 वर्षों में, विशेषत: वैज्ञानिक एवं तकनीकी शब्दावली आयोग तथा विधायी शब्दावली आयोग के गठन के बाद पारिभाषिक शब्दावली के निर्माण के क्षेत्र में तीव्र गति से विकास हुआ है, किंतु यह विकास जितना मात्रात्मक है उतना गुणात्मक नहीं। वैज्ञानिक व तकनीकी शब्दावली आयोग 5 लाख के लगभग शब्दों का अनुवाद कर चुका है और विधायी शब्दावली आयोग भी विधि क्षेत्र के लगभग सभी शब्दों का अनुवाद प्रस्तुत कर चुका है किंतु समस्या उनके प्रचलन की है। भाषा का जन्म प्रयोगशाला में नहीं, समाज में होता है एवं यदि शब्दों के निर्माण हो जाने के बावजूद उनका प्रचलन न हो तो विकास की संपूर्ण प्रक्रिया निरर्थक हो जाती है। इस अप्रचलन की समस्या के 2-3 कारण हैं–

(1) विभिन्न विचारधाराओं ने अपने-अपने तरीके से अनुवाद प्रस्तुत किये हैं जिससे वैविध्य एवं जटिलताएँ पैदा हो गयी हैं। उदाहरण के लिए, टेलीप्रिंटर को डॉ० रघुवीर की विचारधारा में 'दूर-मुद्रक' कहा गया, लोकवादी विचारधारा में 'तारलेखी' और अंतर्राष्ट्रीयतावादी विचारधारा में टेलीप्रिंटर ही कहा गया।

(2) जहाँ विचारधारा का प्रश्न नहीं था, वहाँ भी अलग-अलग राज्यों में पर्याप्त समन्वयन के अभाव में अलग-अलग शब्दों को स्वीकार कर लिया गया। उदाहरण के लिए, डायरेक्टर के लिए निर्देशक, निदेशक व संचालक का प्रयोग तथा लेक्चरर के लिए प्राध्यापक, प्रवक्ता व व्याख्याता का प्रयोग द्रष्टव्य है।

(3) तीसरी समस्या यह है कि बहुत से ऐसे शब्द बनाये गए हैं जो नितांत अप्रचलित हैं एवं यदि कोई उनका प्रयोग करना भी चाहे तो अपने आप को असमर्थ पाता है, जैसे कंप्यूटर के लिए संगणक।

(4) भारत सरकार में दृढ़ इच्छा शक्ति का अभाव सबसे महत्त्वपूर्ण कारणों में से एक है। जब तक हिंदी व अन्य भारतीय भाषाओं के प्रयोग के लिए किसी प्रकार की बाध्यता पैदा नहीं की जायेगी, तब तक संभवत: सफलता नहीं मिल पायेगी।

(5) विज्ञान एवं तकनीक में परिवर्तनों की द्रुत गति इस समस्या को और जटिल बना देती है। जब तक हम कुछ शब्दों के अनुवादों को प्रचलन में लाने का प्रयास करते हैं तब तक अनेक नये शब्द सामने आ जाते हैं। इस दुश्चक्र से बचने के लिये अंग्रेज़ी के प्रयोग को ही सरल मान लिया जाता है।

कुल मिलाकर, यह समस्या अत्यंत जटिल है। यदि हम दृढ़ इच्छा शक्ति से काम करें एवं समान्यत: अंतर्राष्ट्रीय शब्दावली को हिंदी व्याकरण से सुसंगत बनाते हुए स्वीकार करें तो संभव है कि हिंदी आधुनिक ज्ञान-विज्ञान की सफल भाषा बन जाए। यह नैतिक रूप से भी आवश्यक है क्योंकि हमारे देश का सामान्य व्यक्ति लोकभाषा ही समझता है और यदि वह आज के दौर की ज्ञान-आधारित अर्थव्यवस्था में ज्ञान के स्तर पर पिछड़ जाता है तो यह कहीं न कहीं भाषाई समस्या के साथ सामाजिक अन्याय की समस्या भी बन जाती है।

अध्याय
23

हिन्दी में वैज्ञानिक लेखन

वर्तमान में यह एक आम धारणा बन गयी है कि हिन्दी में वैज्ञानिक विषयों पर पुस्तकों के लिए आधारभूत सामग्री की कमी है और हिन्दी आदि भारतीय भाषाएँ आधुनिक ज्ञान-विज्ञान को अभिव्यक्त करने में असमर्थ हैं। वास्तव में यह धारणा निराधार, असत्य और भ्रामक है क्योंकि हिन्दी सहित सभी भारतीय भाषाओं में सब प्रकार की प्रगतिपरक संस्कृति तथा ज्ञान-विज्ञान को सहज और गहन दोनों रूपों में अभिव्यक्त और संप्रेषित करने की संपूर्ण क्षमता विद्यमान है।

साहित्य की ही भाँति वैज्ञानिक लेखन की भी भारत में सुदृढ़ परंपरा रही है और इस परंपरा को और आगे विकसित करने के लिए हिन्दी सहित सभी आधुनिक भारतीय भाषाओं ने आधुनिक विषयों और अनुसंधानों के अनुरूप अपने- अपने भाषाकोश का पर्याप्त विकास किया है तथा विकास की यह प्रक्रिया वैज्ञानिक जगत के विकास के साथ-साथ आज भी निरंतर चल रही है।

हिन्दी में वैज्ञानिक और तकनीकी लेखन की परंपरा लगभग दो सौ साल पुरानी है। वैज्ञानिक लेखन के लिए विशिष्ट पारिभाषिक शब्दावली की आवश्यकता को हिन्दी ने बहुत पहले पहचान लिया था। अब शब्दों को बनाने की उतनी ज़रूरत नहीं जितनी बनाए जा चुके शब्दों के प्रयोग की है। वैज्ञानिक और तकनीकी शब्दावली आयोग आदि संस्थाओं ने लाखों की संख्या में विभिन्न विज्ञानों के शब्द बना डाले हैं और नित नए विषयों पर शब्द निर्माण का काम अनेक स्तरों पर चल रहा है। वर्तमान में आवश्यकता है कि विभिन्न विषयों के विद्वान और वैज्ञानिक इस देश के आम जन को ध्यान में रखकर राष्ट्रीय भाषाओं में वैज्ञानिक लेखन में प्रवृत्त हों।

शुरुआत में खड़ीबोली में वैज्ञानिक विषयों पर पाठ्य पुस्तकें तैयार करने करने के लिए अंग्रेज़ी से आए वैज्ञानिक शब्दों के हिन्दी पर्याय तैयार करने की आवश्यकता हुयी होगी। इस आवश्यकता की पूर्ति हेतु खड़ीबोली में वैज्ञानिक शब्द संग्रह और पुस्तक रचना का काम साथ-साथ शुरू हुआ। तकनीकी विषयों पर लिखने वालों के लिए ऐसे शब्द संग्रह का प्रणयन लल्लूलाल जी ने किया। 1810 ई. में प्रकाशित उनके द्वारा संग्रहीत 3500 शब्दों की वह सूची अत्यंत महत्त्वपूर्ण है जिसमें हिन्दी की वैज्ञानिक शब्दावली को फ़ारसी और अंग्रेज़ी प्रतिरूपों के साथ प्रस्तुत किया गया है। शब्द-संग्रह के साथ ही पुस्तक लेखन का काम शुरू हुआ और 1847 में स्कूल बुक्स सोसाइटी, आगरा ने 'रसायन प्रकाश प्रश्नोत्तर' का प्रकाशन किया। विभिन्न वैज्ञानिक, विषयों की पुस्तकें हिन्दी में तैयार करने का बहुत बड़ा काम कार्यस्थ राजकीय पाठशाला के गणित अध्यापक पं. लक्ष्मीशंकर मिश्र ने किया। उनके संबंध में भारतेंदु हरिश्चंद्र ने 'कवि वचन सुधा' (23 अगस्त 1873) में यह जानकारी दी है कि उन्होंने हिन्दी भाषा में 'सरल त्रिकोणमिति' उस समय तक प्रस्तुत कर दी थी और हिन्दी भाषा में गणित विद्या की पूरी श्रेणी बनाने के काम में जुट गए थे। वस्तुतः पं. लक्ष्मीशंकर मिश्र ने गणित, स्थिति विद्या, गति विद्या, वायुमंडल विज्ञान, प्राकृतिक भूगोल और पदार्थ विज्ञान जैसे विषयों पर पुस्तकें लिखकर हिन्दी के आरंभिक वैज्ञानिक लेखन को सुदृढ़ आधार प्रदान किया। आगे चलकर महामहोपाध्याय पं. सुधाकर द्विवेदी ने 'चलन कलन' तथा विशंभरनाथ शर्मा ने 'रसायन संग्रह' (1896, बड़ा बाज़ार, कलकत्ता) की रचना की। ये सभी उदाहरण इस बात की पुष्टि करते हैं कि तकनीकी विषयों की अभिव्यक्ति में हिन्दी आरंभ से समर्थ और सचेष्ट रही है।

19वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में विभिन्न स्तरों पर आधुनिकीकरण की प्रक्रिया के दौरान यह महसूस किया गया कि समाज में नवजागरण तभी संभव है जब भाग्यवादी अंधविश्वासों के स्थान पर तर्क और वैज्ञानिकता पर आधारित सोच का विकास किया जाय। समाज के मानस को वैज्ञानिक संस्कार देने के लिए, साइंटिफिक टेंपरामेंट विकसित करने के लिए, भारतीय भाषाओं में वैज्ञानिक लेखन को और अधिक मज़बूत किए जाने की ज़रूरत थी (और आज भी है।)। इस दृष्टि से साइंटिफिक सोसाइटी अलीगढ़, वाद विवाद क्लब बनारस, काशी नागरी प्रचारणी सभा वाराणसी, गुरुकुल कांगडी और विज्ञान परिषद इलाहाबाद जैसी संस्थाओं ने आंदोलनात्मक ढंग से काम किया और हिन्दी के वैज्ञानिक लेखन को विस्तार दिया।

हिन्दी के वैज्ञानिक लेखन को इस बात से बड़ा बल मिला कि गुरुकुल कांगडी (1900) ने विज्ञान सहित सभी विषयों की शिक्षा के लिए हिन्दी को माध्यम बनाया और तदनुरूप 17 पुस्तकों का प्रणयन भी किया। यहाँ यह जानना रोचक होगा

कि भारतेंदु और द्विवेदी युगीन लेखकों और संपादकों ने हिन्दी में पर्याप्त वैज्ञानिक लेखन भी किया। पं. बालकृष्ण भट्ट, पं. महावीर प्रसाद द्विवेदी, पं. चंद्रधर शर्मा 'गुलेरी' और पं. रामचंद्र शुक्ल जैसे साहित्यकारों ने वैज्ञानिक विषयों पर भी अत्यंत सहज ढंग से लिखा और इस क्रम में अनेकानेक वैज्ञानिक शब्दावली और अभिव्यक्तियों का निर्माण किया।

इलाहाबाद में 1913 में स्थापित विज्ञान परिषद ने 1914 में 'विज्ञान पत्रिका' आरंभ की और वैज्ञानिक लेखन के लिए नए आयाम खोले। हिन्दी भाषासमाज के लिए यह गर्व का विषय है कि 'विज्ञान पत्रिका' तब से अब तक निरंतर प्रकाशित होती आ रही है। हिन्दी में वैज्ञानिक लेखन की संभावनाओं को अनंत आकाश उपलब्ध कराने की दृष्टि से डॉ. रघुवीर के कार्य को कभी नहीं भुलाया जा सकता। उन्होंने 1943-46 के दौरान लाहौर से हिन्दी, तमिल, बंगला और कन्नड - इन चार लिपियों में तकनीकी शब्दकोश प्रकाशित किया।

इसमें संदेह नहीं कि आज वैज्ञानिक शब्दावली और अभिव्यक्तियों की दृष्टि से हिन्दी अत्यंत समृद्ध है। इतने पर भी आज वैज्ञानिक विषयों पर हिन्दी में लेखन बहुत ही कम और अपर्याप्त है। इसका कारण भाषा की असमर्थता नहीं बल्कि वैज्ञानिकों का इस दिशा में रुझान न होना है। इसका निराकरण तभी संभव है जब एक तो, शिक्षा के माध्यम के रूप में भारतीय भाषाओं को अपनाया जाय तथा दूसरे, वैज्ञानिकों को हिन्दी में बोलने और लिखने के लिए प्रेरित किया जाए। यदि ऐसा किया जा सके तो निश्चय ही हिन्दी के माध्यम से वैज्ञानिक चेतना भारत के जनगण तक पहुँच सकती है।

हिन्दी में मौलिक वैज्ञानिक लेखन में निम्नलिखित लेखकों का योगदान सराहनीय है-

लेखक	रचनाएँ
डॉ. निहालकरण सेठी	चुम्बकत्व और विद्युत्व, ध्वनि अथवा शब्द विज्ञान, प्रकाश-विज्ञान, तारा भौतिकी आदि।
डॉ. सत्यप्रकाश	प्राचीन भारत में रसायन का विकास, वैज्ञानिक विकास की भारतीय परंपरा, सामान्य रसायन शास्त्र।
फूलदेव सहाय शर्मा	रबर, प्लास्टिक, कोयला, ईख और चीनी
डॉ. गोरखप्रसाद	भारतीय ज्योतिष का इतिहास, निहारिकाएँ
डॉ ब्रजमोहन	ठोस ज्यामिति
गोरक्ष प्रसाद श्रीवास्तव	रासायनिक तत्त्व विश्लेषण
डॉ रामचरण मेहरोत्रा	भौतिक रसायन की रूपरेखा
निर्मल बंद्रवाल	21वीं सदी वैज्ञानिक खोजें, आपदा प्रबंधन
राजन राना	आधुनिक परमाणु और भौतिकी
शिव कुमार चौहान	अंग संचलन विज्ञान
कृष्ण मोहन	अंतरिक्ष और उड्डयन
मानवेन्द्र सिन्हा	अंतरिक्ष के प्रयोग
विजय चितौरी	अंतरिक्ष में चुनौतीपूर्ण जीवन
ललित किशोर पाण्डेय	भौतिक विज्ञान का रोचक संसार

इनके अतिरिक्त, कुछ वैज्ञानिक ग्रंथों का हिन्दी में अनुवाद भी किया गया।

अनुवादक	रचनाएँ
डॉ. सेठी तथा डॉ. कैलाशचन्द्र निगम	रासायनिक गणनाएँ
डॉ. विजयेन्द्र रामकृष्ण शास्त्री	पृष्ठ रसायन
लज्जाराम सिंहल	गतिविज्ञान, समाकलन गणित
डॉ. झम्मनलाल शर्मा	गतिविज्ञान-2, अवलकन गणित
ओमप्रकाश वर्मा	चिरसम्मत यांत्रिकी

डॉ. हरसरन सिंह विश्नोई	अकशेरुकी प्राणिजगत भाग 1-2
डॉ. कृष्ण कुमार गुप्त	प्राणी विज्ञान की रुपरेखा
रवीन्द्रनाथ वर्मा	आवृतबीजी भ्रूणविज्ञान-परिचय

प्रमुख वैज्ञानिक लेखक

1. गुणाकर मुले

महाराष्ट्र के अमरावती जिले के सिंदी बुजरूक गाँव में जन्मे गुणाकर मुले हिन्दी के प्रथम वैज्ञानिक लेखक कहे जा सकते हैं। हिन्दी में वैज्ञानिक साहित्य लिखने में गुणाकर मुले का कोई मुकाबला नहीं है। मातृभाषा मराठी होते हुए भी उन्होंने अपना अधिकांश लेखन हिन्दी में किया। हिन्दी पाठकों के बीच वैज्ञानिक चेतना पैदा करने और वैज्ञानिक जानकारियाँ उपलब्ध कराने के मामले में उनका योगदान अतुलनीय है। गणित हो या विज्ञान, पुरातत्व हो अथवा समाज विज्ञान, खगोल भौतिकी हो या भूगर्भ विज्ञान, नृविज्ञान हो अथवा जीवविज्ञान- हर विषय पर उनका अद्भुत अधिकार था। तथ्यों की गहरी पड़ताल उनके लेखन की प्रमुख विशेषता रही। आम लोगों एवं स्कूली छात्रों की समझ को ध्यान में रखते हुए उन्होंने सरल हिन्दी में विज्ञान के गूढ़ रहस्यों को समझाने के लिए अपने लेखन को समर्पित कर दिया। एन.सी.ई.आर.टी. की पाठ्य पुस्तकों के निर्माण में उनका विशेष योगदान रहा। उनकी प्रमुख रचनाएँ निम्नलिखित हैं- 'ब्रह्माण्ड परिचय','आकाश दर्शन', 'अंतरिक्ष यात्रा', 'नक्षत्र लोक', 'कैसी होगी 21वीं सदी', 'सूर्य', 'कम्प्यूटर क्या है?', 'भास्कराचार्य' 'भारतीय अंकपद्धति की कहानी', 'भारतीय विज्ञान की कहानी', 'आपेक्षिकता सिद्धान्त क्या है?', 'संसार के महान गणितज्ञ', 'केपलर' तथा 'ज्यामिति की कहानी' आदि।

- **'कैसी होगी 21वीं सदी'** में 21 वीं सदी का भविष्य कैसा होगा और इसका सामना कैसे करना होगा? इसी के वैज्ञानिक तरीकों को इस पुस्तक में बताया गया है। इस पुस्तक में सरल शब्दों में भोजन की समस्या,ऊर्जा के नए स्रोत,ज्ञान भंडार का विस्फोट,भविष्य में अंतरिक्ष यात्राओं,संचार के साधनों और प्रदूषण के फैलाव आदि के बारे में जानकारी देकर इससे पैदा होने वाली परिस्थितियों पर प्रकाश डाला गया है।
- **'कम्प्यूटर क्या है?'**, कम्प्यूटर पर एक प्रमाणिक पुस्तक है जिसमें कम्प्यूटर की कार्यप्रणाली की जानकारी सहज, सरल भाषा में दी गयी है। यह पुस्तक कम्प्यूटर की मूल बनावट, उसके विभिन्न अंगों, कम्प्यूटर के विकास क्रम के विभिन्न चरणों तथा समाज पर कम्पूटर के प्रभाव आदि पर प्रकाश डालती है।
- **'आपेक्षिकता सिद्धान्त क्या है?'** नामक पुस्तक में आइन्स्टीन के आपेक्षिकता के सिद्धांत को बहुत ही सरल, सहज भाषा में समझाया गया है।
- **'नक्षत्र लोक', 'सौर मंडल', तथा 'अंतरिक्ष यात्रा'** आदि उनकी पुस्तकें वैज्ञानिक जानकारियां देने के साथ-साथ अवैज्ञानिक मान्यताओं और भ्रांतियों को दूर करती हैं।
- **'भास्कराचार्य'** नामक पुस्तक में भास्कराचार्य के जीवन व उनकी कृतियों के साथ-साथ भारतीय गणित-ज्योतिष के इतिहास को भी चरणबद्ध ढंग से दर्शाया गया है।
- **'भारतीय विज्ञान की कहानी', 'भारतीय लिपियों की कहानी', 'भारतीय अंक पहेलियों की कहानी'** तथा **'आधुनिक भारत के महान वैज्ञानिक'** जैसी पुस्तकें लिखकर उन्होंने अपने हिन्दी प्रेम के साथ-साथ देश प्रेम को भी उजागर किया।

2. जयन्त विष्णु नार्लीकर

जयन्त विष्णु नार्लीकर प्रसिद्ध भारतीय भौतिकीय वैज्ञानिक हैं जिन्होंने विज्ञान को लोकप्रिय बनाने के लिए अंग्रेजी, हिन्दी और मराठी में अनेक पुस्तकें लिखी हैं। ये ब्रह्माण्ड के स्थिर अवस्था सिद्धान्त के विशेषज्ञ हैं ओर फ्रेड हॉयल के साथ भौतिकी के हॉयल-नार्लीकर सिद्धान्त के प्रतिपादक हैं। उन्होंने कैम्ब्रिज से गणित की उपाधि ली और खगोल-शास्त्र एवं

खगोल-भौतिकी में दक्षता प्राप्त की। आजकल यह माना जाता है कि ब्रह्मांड की उत्पत्ति विशाल विस्फोट (Big Bang) के द्वारा हुई थी पर इसके साथ-साथ ब्रह्मांड की उत्पत्ति के बारे में एक और सिद्धान्त प्रतिपादित है, जिसका नाम स्थायी अवस्था सिद्धान्त (Steady State Theory) है। इस सिद्धान्त के जनक फ्रेड हॉयल हैं। अपने इंग्लैंड के प्रवास के दौरान नार्लीकर ने इस सिद्धान्त पर फ्रेड हॉयल के साथ काम किया। इसके साथ ही उन्होंने आइंस्टीन के सापेक्षता सिद्धान्त और माक सिद्धान्त को मिलाते हुए हॉयल-नार्लीकर सिद्धान्त का प्रतिपादन किया। 1970 के दशक में नार्लीकर भारत वापस लौट आये और टाटा अनुसंधान संस्थान में कार्य करने लगे। 1988 में विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा उन्हें खगोलशास्त्र एवं खगोलभौतिकी अन्तरविश्वविद्यालय केन्द्र (Inter-University Centre for Astronomy and Astrophysics) स्थापित करने का कार्य सौंपा गया। उन्होने यहाँ से 2003 में अवकाश ग्रहण कर लिया। नार्लीकर न केवल विज्ञान में किये गए कार्य के लिये जाने जाते हैं बल्कि वे विज्ञान को लोकप्रिय बनाने के लिए भी पहचाने जाते हैं। उन्हें अक्सर दूरदर्शन या रेडियो पर विज्ञान के लोकप्रिय भाषण देते हुए या फिर विज्ञान पर सवालों के जवाब देते हुए देखा एवं सुना जा सकता है।

हिन्दी में उनके द्वारा लिखित कुछ पुस्तकें: 'ब्रह्माण्ड की कुछ झलकें', 'ब्रह्माण्ड की यात्रा', 'वायरस', 'भारत की विज्ञान-यात्रा', 'विज्ञान, मानव और ब्रह्माण्ड', 'धूमकेतु' तथा 'तारों की जीवन गाथा' आदि।

अभ्यास हेतु प्रश्न

1. "हिन्दी में वैज्ञानिक लेखन की स्थिति अभी भी संतोषप्रद नहीं है"-इस कथन का सोदाहरण उत्तर दीजिये। **U.P.S.C. (Mains) 2017**
2. हिन्दी में विज्ञान-लेखन की दशा एवं दिशा पर प्रकाश डालिए। **U.P.S.C. (Mains) 2016**
3. "हिन्दी में वैज्ञानिक लेखन की स्थिति असन्तोषजनक है।" इस कथन का परीक्षण कीजिये। **U.P.S.C. (Mains) 2014**
4. हिन्दी में वैज्ञानिक लेखन की वर्तमान स्थिति पर प्रकाश डालिए। **U.P.S.C. (Mains) 2013**

अध्याय
24

भाषा खण्ड से संबंधित कुछ अन्य विषय

24.1 हिन्दी व्याकरण लेखन का ऐतिहासिक विकास

भारत में व्याकरण लेखन की समृद्ध परंपरा रही है। संस्कृत में पाणिनी की 'अष्टाध्यायी' हो या प्राकृत अपभ्रंश में हेमचंद्र कृत 'सिद्ध हेम-शब्दानुशासन' हो, यह प्रवृत्ति हमेशा देखी गई है कि भाषा के व्याकरणिक ढाँचे का निर्धारण किया जा सके। किन्तु, हिन्दी व्याकरण का विकास उतनी सहजता से नहीं हुआ। इसका कारण यह था कि पुरानी हिन्दी और उससे विकसित बोलियों के विकास के बाद आचार्यों में लोक भाषाओं के प्रति वैसा सम्मान का भाव नहीं था जो उन्हें व्याकरण रचना हेतु प्रेरित कर पाता। हिन्दी में जन कवि तो होते रहे किन्तु वैयाकरण प्रायः नहीं हुए। यह कमी आधुनिक काल के आरंभ के आस-पास दूर होनी शुरू हुई।

प्रथम चरण

हिन्दी व्याकरण रचना के आरंभिक प्रयास 18वीं और 19वीं शताब्दी में हुए। माना जाता है कि औरंगजेब के समय मिर्जा खाँ ने ब्रजभाषा का व्याकरण लिखा जो हिन्दी का संभवतः पहला व्याकरण था। उपनिवेशवाद के दौर में कई विदेशी विद्वानों ने हिन्दी व्याकरण लिखने में रुचि दिखाई। 1715 के आस-पास एक हॉलैंड निवासी जोहन जोशुआ कैटलर ने हिन्दी व्याकरण लिखा जिसे डॉ. सुनीति कुमार चटर्जी ने हिन्दी का पहला व्याकरण बताया। जॉर्ज ग्रियर्सन ने इसके कालखंड का निर्धारण किया। इसके बाद कई ऐसे व्याकरण प्रकाशित हुए, जैसे- जॉन गिलक्राइस्ट कृत 'हिन्दुस्तानी ग्रामर', प्लॉट्स कृत 'हिंदुस्तानी ग्रामर', येट्स कृत 'हिंदुस्तानी ग्रामर', केलॉग कृत 'ए ग्रामर ऑफ हिन्दी लैंग्वेज' (1875) इत्यादि। इन ग्रंथों में 'केलॉग' द्वारा रचित ग्रंथ को सबसे प्रभावशाली माना जाता है। गौरतलब है कि फोर्ट विलियम कॉलेज के अध्यापक लल्लू लाल ने भी अंग्रेज प्रशासकों को पढ़ाने के लिए 'द ग्रैमैटिकल प्रिंसिपल्स ऑफ ब्रजभाषा' नामक व्याकरण लिखा था।

केलॉग के व्याकरण की विशेषताएँ

केलॉग के व्याकरण में ऐसी बहुत सी सामग्री है, जो उनसे पूर्व के किसी व्याकरण में नहीं मिलती। इस व्याकरण की प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित हैं-

1. इस व्याकरण में हिन्दी और उर्दू के व्याकरणिक गठन में जो समानता है, उसी को इस व्याकरण का आधार बनाया गया है। यहाँ हिन्दी से अभिप्राय उस हिन्दी से है जिसे मानक परिनिष्ठित हिन्दी कहते हैं और जिसे स्कूलों में शिक्षा के लिए ग्रहण किया गया है।
2. हिन्दी के विद्वान के लिए हिन्दी के दो रूपों-ब्रज तथा अवधी का भी ज्ञान आवश्यक है; अतः इन दोनों रूपों का विशद विवेचन इस व्याकरण में किया गया है।
3. ब्रज तथा अवधी के अतिरिक्त इस व्याकरण में हिन्दी की अन्य स्थानीय बोलियों के शब्दरूपों और धातुरूपों पर भी विचार किया गया है। इससे बंगाल के पश्चिम और गुजरात-सिंध के पूर्व की भूमि के बीच हिन्दी क्षेत्र की सभी बोलियों का सामान्य ज्ञान हो जाता है तथा किसी विदेशी के लिए भी, इस विस्तृत भाग में कार्य करते हुए हिन्दी के स्थानीय रूप को समझने में कठिनाई दूर हो सकती है।
4. इस व्याकरण में उदाहरणों को चुनने में प्रायः लिखित पुस्तकों का ही सहारा लिया गया है। जहाँ भी मौखिक स्रोत से प्राप्त उदाहरण दिए गए हैं, वहाँ उनके ठीक होने की पूरी परीक्षा कर ली गई है। चूँकि यूरोपीय विद्वानों के हिन्दी में विदेशीपन के बने रहने की संभावना बनी रहती है; अतः केलाग ने अपने व्याकरण में यूरोपीय विद्वानों की हिन्दी की पुस्तकों से उदाहरण संकलित नहीं किए हैं।
5. इस व्याकरण में हिन्दी-क्षेत्र में प्रचलित चार लिपियों को भी अंकित किया गया है। ये लिपियाँ हैं- नागरी, कैथी, महाजनी और बिनियौटी।

दूसरा चरण

हिन्दी व्याकरण लिखने का दूसरा चरण 1870-1900 ई. के बीच दिखाई पड़ता है। इस काल की विशेषता यह थी कि हिन्दी के व्याकरण हिन्दी में ही लिखे गए। ऐसा पहला प्रयास नवीनचन्द्र राय ने 'नवीन चंद्रोदय' नामक ग्रंथ के माध्यम से किया जिसमें पहली बार तत्सम शब्दों पर विस्तृत विचार किया गया। इससे पहले के विदेशी विद्वानों ने तत्सम शब्दों को 'हाई हिन्दी' कहकर छोड़ दिया था। इसी समय काशी के प्रसिद्ध पादरी एरिंगटन ने 'भाषा भास्कर' नामक ग्रंथ लिखा। 1875 में राजा शिवप्रसाद सितारेहिन्द ने 'हिन्दी व्याकरण' नामक ग्रंथ लिखा। इस ग्रंथ के माध्यम से उन्होंने सिद्ध करना चाहा कि हिन्दी और उर्दू में शब्दावली का भेद भले ही हो, व्याकरण की दृष्टि से दोनों एक हैं। उसी समय राजा लक्ष्मणसिंह संस्कृतनिष्ठ हिन्दी पर बल दे रहे थे और उन्होंने रघुवंश के अनुवाद की भूमिका में लिखा था कि "हमारे मत में हिन्दी और उर्दू दो न्यारी-न्यारी बोलियाँ हैं।" राजा शिवप्रसाद ने आक्षेप करते हुए कहा कि फोर्ट विलियम कॉलेज में काम करने वाले जॉन गिलक्राइस्ट के सहायकों तथा लक्ष्मण सिंह जैसे लोगों ने हिन्दी और उर्दू को अलग कर दिया है जबकि सच यह है कि इन दोनों में कोई अंतर नहीं है। उन्होंने व्याकरण की हर अवधारणा की व्याख्या इस प्रकार की कि वह हिन्दी और उर्दू दोनों पर लागू हो सके। यही कारण है कि उन्हें संधि और कृदंत जैसे विषयों की परिशिष्ट में रखना पड़ा। इसी प्रकार, अरबी भाषा में तालीब (संधि) की जो व्यवस्था है, उसे भी उन्होंने परिशिष्ट में रखा क्योंकि इन विषयों में एकता स्थापित करना संभव नहीं था। लगभग इसी समय अयोध्याप्रसाद खत्री ने भी 'हिन्दी व्याकरण' नामक ग्रंथ लिखा जिसमें हिन्दी और उर्दू को एक साथ व्याख्यायित किया गया।

स्पष्ट है कि व्याकरण लेखन के दूसरे चरण में दो दृष्टिकोण प्रचलित हो चुके थे। पहला, जिसमें हिन्दी को संस्कृत की परंपरा से जोड़ा जाता था और उर्दू को अलग किया जाता था; तथा दूसरा, जिसमें हिन्दी और उर्दू को व्याकरणिक आधार पर एक ही सिद्ध किया जाता था।

तीसरा चरण (विशेषत: श्री कामताप्रसाद गुरु)

हिन्दी व्याकरण लेखन की परंपरा का तीसरा चरण 1900 ई. के आसपास शुरू हुआ। इस समय 'नागरी प्रचारिणी सभा' की स्थापना हो चुकी थी और उसी के तत्वाधान में 'सरस्वती' पत्रिका का प्रकाशन भी आरंभ हो चुका था। सरस्वती के संपादक आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने नवम्बर 1905 के अंक में एक लेख लिखा- 'भाषा और व्याकरण'। इस लेख में इस बात पर चिंता ज़ाहिर की गई थी कि हिन्दी में अभी तक कोई व्यवस्थित व्याकरण नहीं बन सका है और इस कारण विभिन्न क्षेत्रों और व्यक्तियों द्वारा प्रयुक्त की जाने वाली हिन्दी का मानक रूप स्थिर नहीं हो पाया है। 'इसका और इस्का'; 'जिनका और जिन्का', 'सकता और सक्ता' जैसे प्रयोगों की द्विरूपता पर उन्होंने प्रश्न उठाया। अगस्त, 1908 में सरस्वती में ही **श्री कामताप्रसाद गुरू** का एक लेख छपा- 'हिन्दी की हीनता'। इसमें भी हिन्दी के व्याकरण का विकास न हो पाने के बारे में लिखा गया। आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी के लेख के बाद नागरी प्रचारिणी सभा ने हिन्दी व्याकरण के विकास के लिए गंभीर प्रयास किये तथा व्याकरण-ग्रंथ के लिए कई पुरस्कारों की घोषणा की। इन प्रयासों में बाबू गंगाप्रसाद और रामकर्ण शर्मा के प्रयास सबसे बेहतर थे, किन्तु वे भी सभा के प्रतिमानों को संतुष्ट नहीं कर सके। अंतत: आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी और माधवराव सप्रे के विदेन पर सभा ने यह दायित्व **पंडित कामताप्रसाद गुरू** को सौंपा। 2 वर्ष के गहन अनुसंधान के बाद यह पुस्तक 1918 में तैयार हुई। उसके बाद एक समिति ने, जिसमें आचार्य शुक्ल, आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी और पंडित चंद्रधर शर्मा गुलेरी आदि शामिल थे, इस पुस्तक का मूल्यांकन किया और कुछ सुझाव दिए। इन संशोधनों के बाद 1919 में यह पुस्तक के रूप में प्रकाशित हुई।

पंडित कामताप्रसाद गुरू द्वारा लिखित हिन्दी व्याकरण की बड़ी विशेषता यह है कि इसमें लोक-प्रचलित भाषा के आधार पर व्याकरणिक नियम व्यवस्थित किए गए हैं, अपनी ओर से नए नियम बनाये या थोपे नहीं गए हैं। पंडित कामताप्रसाद गुरू ने अरबी फारसी शब्दों के लिए राजा शिवप्रसाद सितारेहिन्द के 'हिन्दी व्याकरण' को आधार बनाया, शैली के तौर पर 'दामले' द्वारा रचित 'मराठी व्याकरण' को आधार बनाया तथा अंग्रेज़ी में लिखे गए व्याकरणों में से प्लॉट्स कृत 'हिंदुस्तानी ग्रामर' का आधार लिया। अब पहली बार हिन्दी का एक व्यवस्थित व्याकरण तैयार हो चुका था। विद्यार्थियों की आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए इसके तीन विभिन्न संस्करण तैयार किये गये- 'प्रथम हिन्दी व्याकरण' (आरंभिक कक्षाओं के लिए); 'मध्य हिन्दी व्याकरण' (माध्यमिक कक्षाओं के लिए); तथा 'संक्षिप्त हिन्दी व्याकरण' (उच्च कक्षाओं के लिए)।

पंडित कामताप्रसाद गुरू द्वारा लिखित हिन्दी व्याकरण से कई महत्त्वपूर्ण परिवर्तन हुए। उच्च परीक्षाओं के लिए पहली बार हिन्दी भाषा को एक विषय के रूप में स्वीकृति प्राप्त हुई। बी.ए. और एम.ए. के पाठ्यक्रम हिन्दी भाषा में शुरू हुए तथा काशी व अन्य विश्वविद्यालयों में हिन्दी विभागों की स्थापना हुई। इसके बाद हिन्दी भाषा में अनुसंधन और शोध की प्रवृत्ति तेज़ी से बढ़ी जिसका परिणाम था कि बाबूराम सक्सेना ने अवधी भाषा पर तथा डॉ. धीरेन्द्र वर्मा ने ब्रजभाषा पर व्यापक अनुसंधान किया। इसके अलावा, स्वाधीनता संग्राम के दौरान जब हिन्दी राष्ट्रभाषा के रूप में उभर रही थी, तब गैर हिन्दी प्रदेशों के हिन्दी सीखने के इच्छुक व्यक्तियों को यह समस्या आ रही थी कि हिन्दी का निश्चित व्याकरण उपलब्ध नहीं था। पंडित कामताप्रसाद गुरू के हिन्दी व्याकरण ने इस समस्या का भी समाधान कर दिया और हिन्दी को राष्ट्रभाषा बनाने में प्रभावी सहायता की।

चौथा चरण (विशेषतः श्री किशोरीदास वाजपेयी)

पंडित कामताप्रसाद गुरू के हिन्दी व्याकरण ने प्रायः व्याकरण संबंधी समस्याएँ दूर कर दी थीं, किन्तु उसके बाद भी दो प्रश्न बचे हुए थे। पहला प्रश्न यह था कि 1915-1950 के दौरान हिन्दी भाषा का स्वरूप तेज़ी से बदल रहा था और मानकीकरण की प्रक्रिया चल रही थी। ऐसे समय में हिन्दी व्याकरण को अद्यतन बनाने की ज़रूरत थी। दूसरा प्रश्न यह था कि कुछ समीक्षकों ने पंडित कामताप्रसाद गुरू के व्याकरण की कुछ कमियों की ओर संकेत किया था और उन कमियों को सुधारते हुए एक नये व्याकरण के लेखन पर बल दिया था।

किशोरीदास वाजपेयी हिन्दी व्याकरण लेखन के इस चतुर्थ चरण के सबसे महत्त्वपूर्ण व्यक्ति हैं। उन्होंने 1942 में 'ब्रजभाषा का व्याकरण' नामक पुस्तक लिखी थी। 1948 में उनकी पुस्तक 'राष्ट्रभाषा का प्रथम व्याकरण' छपने के बाद हिन्दी विद्वानों में उनका स्थान बहुत ऊँचा हो गया था। वे लगभग 20-25 वर्षों से पत्र पत्रिकाओं में भाषा संबंधी लेख लिखते आ रहे थे। 1954 ई. में जब नागरी प्रचारिणी सभा अपनी 'हरीक जयंती' मना रही थी तो उसके सम्मेलन में यह विचार उठा कि क्यों न हिन्दी व्याकरण का पुनर्लेखन कराया जाए। इस कार्य के लिए सर्वसम्मति से किशोरीदास वाजपेयी का नाम स्वीकार किया गया। तय किया गया कि पंडित राहुल सांकृत्यायन, आचार्य हज़ारीप्रसाद द्विवेदी, काका कालेलकर तथा डॉ. विश्वनाथ प्रसाद मिश्र सहित कुछ विद्वानों का परामर्शदाता मंडल एक निश्चित योजना तथा खाका तैयार करेगा और उस योजना के अनुसार पंडित किशोरीदास व्याकरण लिखेंगे। चूँकि किशोरीदास जी की लेखन शैली में व्यंग्य करने तथा कभी-कभार विषय से भटक जाने की प्रवृत्ति थी, इसलिए जो नियम बनाए गए थे, उनमें प्रमुख रूप से वैयक्तिक जीवन की घटनाओं को शामिल न करना, अप्रासंगिक कथनों तथा चलती हुई भाषा एवं मुहावरों से परहेज़ करना, अन्य रचनाकारों पर व्यक्तिगत व्यंग्य न करना आदि प्रमुख थे। किशोरीदास जी ने यथासंभव इन नियमों का पालन किया, किन्तु उनकी विशिष्ट शैली कुछ स्थानों पर आ ही गई है। विशेष रूप से उन्होंने कुछ स्थानों पर पंडित कामताप्रसाद गुरू के व्याकरण के कुछ प्रसंगों पर तीखा व्यंग्य किया है, जैसे- कर्तृवाच्य और कर्मवाच्य वाले प्रसंग में उन्होंने कामताप्रसाद जी की बेहद तीखी आलोचना की है। रोचक तथ्य यह है कि 1956 में प्रकाशित किशोरीदास जी की पुस्तक 'हिन्दी शब्दानुशासन' का समर्पण जिन पाँच व्यक्तियों को किया गया है, उनमें से एक कामताप्रसाद गुरू भी हैं। शेष चारों में आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी, पंडित राहुल सांकृत्यायन, श्री अंबिकाप्रसाद वाजपेयी तथा श्री अमरनाथ झा हैं।

24.2 हिन्दी के शब्दकोश

1. भारत में एकाधिक भाषाओं की शब्दावलियों की परंपरा का आरंभ अमीर खुसरो से माना जाता है। इनका सबसे प्रसिद्ध ग्रंथ "खालिकबारी" है जिसमें हिन्दी, फारसी तथा तुर्की के शब्द हैं। इसके बाद खालिकबारी परंपरा में हिन्दी-फारसी के कई अन्य कोश लिखे गए। किंतु वैज्ञानिक ढंग से यह कार्य अंग्रेज़ों के संपर्क के बाद प्रारंभ हुआ।
2. भारत में अंग्रेज़ पादरियों ने धर्म एवं राजप्रचार की दृष्टि से यहाँ की कई भाषाओं के अंग्रेजी कोश प्रकाशित किए। हिन्दी की दृष्टि से इस श्रृंखला का प्रथम कोश जे. फरगुसन की "ए डिक्शनरी ऑफ हिंदोस्तान लैंग्वेज" है जो 1773 ई. में लंदन से से छपा था। इसके अतिरिक्त डॉ. कामिल बुल्के ने 'अंग्रेज़ी-हिन्दी शब्दकोश' की रचना की।

3. भारतीयों द्वारा बनाये गये कोशों में जिन दो कोशों का सर्वाधिक प्रचार-प्रसार हुआ, वे हैं- श्रीधर त्रिपाठी (लखनऊ) द्वारा रचित "श्रीधर भाषा कोश" (सन् 1894) तथा द्वारका प्रसाद चतुर्वेदी (इलाहाबाद) द्वारा रचित 'हिन्दी शब्दार्थ पारिजात' (सन् 1914)। पहले कोश में शब्दों की संख्या लगभग 25000 है जबकि दूसरे में ब्रजभाषा-अवधी आदि विभाषाओं के शब्दों की पर्याप्त संख्या रहने के कारण शब्द संख्या अधिक है।
4. आधुनिक काल में बाबू श्याम सुंदरदास, आचार्य रामचंद्र शुक्ल, आचार्य रामचंद्र वर्मा के सत्प्रयासों से नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी से 'हिन्दी शब्दसागर' (1922-29) प्रकाशित हुआ। यह कोश वस्तुतः एक सागर था जो शब्दों, अर्थों, मुहावरों, लोकोक्तियों, उदाहरणों तथा उद्धरणों से भरपूर अर्थच्छटाएँ देने में सर्वोत्तम माना जाता है।
5. इसके बाद कोश कला में दीर्घकालीन अनुभव प्राप्त आचार्य रामचंद्र वर्मा के प्रयासों से वाराणसी से 'प्रामाणिक हिन्दी कोश' प्रकाशित हुआ। इसी बीच 'हिन्दी शब्दसागर' का नवीन संशोधित और परिवर्धित संस्करण (1965-75) में प्रकाशित हुआ।

डॉ. कामिल बुल्के का योगदान

1. डॉ. बुल्के 1935 में भारत आए। 1949 ई. में इलाहाबाद विश्वविद्यालय से उन्होंने 'राम कथा का विकास' में डी. फिल की उपाधि प्राप्त की।
2. डॉ. बुल्के संस्कृतनिष्ठ हिन्दी के प्रबल समर्थक हैं। उनका मानना है कि उर्दू को छोड़कर प्रायः सभी भारतीय भाषाएँ संस्कृत से निकली हैं और उनमें संस्कृत शब्दों का बहुलता से प्रयोग किया जाता है। इसलिए यह आवश्यक है कि हिन्दी में संस्कृत के अधिकाधिक शब्दों का प्रयोग किया जाए और ऐसा करने से ही हिन्दी को अहिन्दीभाषियों द्वारा समझा जा सकता है। 1966 में राँची में साहित्य संगम के वार्षिकोत्सव के अवसर पर बुल्के ने जोरदार शब्दों में अपना मत व्यक्त किया कि "अंग्रेजी भारत में नौकरानी की तरह रह सकती है, बहूरानी की तरह नहीं। बहूरानी तो हिन्दी ही हो सकती है।"
3. डॉ. कामिल बुल्के अपने 'अंग्रेज़ी-हिन्दी शब्दकोश' के लिए हिन्दी भाषा में विशेष पहचान रखते हैं।

24.3 काशी नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा देवनागरी लिपि में सुधार का प्रयास

देवनागरी लिपि के सुधार के संस्थागत प्रयासों में हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग के बाद दूसरा महत्त्वपूर्ण प्रयास काशी नागरी प्रचारिणी सभा का था। सभा ने 1945 ई. में हिन्दी तथा संस्कृत के संदर्भ में एक लिपि सुधार समिति गठित की, जिसने देवनागरी लिपि में भारी परिवर्तन के सुझाव दिए। इनमें कुछ इस प्रकार हैं-

1. देवनागरी के सभी वर्ण, खड़ी पाई युक्त हों। जो वर्ण, खड़ी पाई युक्त नहीं हैं, उनमें आवश्यक परिवर्तन कर, उन्हें खड़ी पाई युक्त बनाया जाए। उदाहरण के लिए प, फ, ब, म, स खड़ी पाई युक्त हैं, लेकिन ट, ह, र, छ आदि खड़ी पाई युक्त नहीं हैं।
2. हर व्यंजन वर्ण के दो भाग हों। पहला भाग स्वररहित व्यंजन का प्रतीक होगा और दूसरा, जो खड़ी पाई होगी, उस व्यंजन में निहित स्वर का प्रतीक होगा। यदि खड़ी पाई को हटा दिया जाए तो उस अंश से स्वररहित व्यंजन का बोध होगा और यदि खड़ी पाई उससे जुड़ी हो तो उससे स्वरयुक्त व्यंजन का बोध होगा, जैसे-

व्यंजन (स्वर रहित)	व्यंजन (स्वर युक्त)
ट	प
स	स

3. हर स्वर- वर्ण 'उ' चिन्ह से प्रारंभ हो और उसके बाद जो भी अंश उसमें जुड़े, वह उनकी मात्रा हो। जो स्वर जिह्वा की मात्रा से उच्चरित होते हैं (जैसे- ई, ए) उनकी मात्रा शिरोरेखा से ऊपर तक जाए, जैसे उ-ि, उ-े। जो स्वर जिह्वामूल से उच्चरित होते हैं (उ, ऊ) उसकी मात्रा वर्ण के नीचे तक उतरी हो जैसे अू, अु।

उल्लेखनीय है कि काशी नागरी प्रचारिणी सभा के उपर्युक्त सुझाव स्वीकृत नहीं हुए।

24.4 केंद्रीय हिन्दी निदेशालय (351)

भारतीय संविधान में उल्लिखित राजभाषा संबंधी अनुच्छेदों में से अनुच्छेद 351 के अनुसरण में केंद्रीय हिन्दी निदेशाल की स्थापना की गई। इसकी स्थापना 1 मार्च, 1960 को तत्कालीन शिक्षा मंत्रालय (अब मानव संसाधन विकास मंत्रालय) के उच्चतर शिक्षा विभाग के अंतर्गत की गई थी। इसकी स्थापना के पीछे मुख्यत: दो उद्देश्य थे-

(i) हिन्दी का प्रचार-प्रसार करना।

(ii) समग्र भारत की सम्पर्क भाषा के रूप में हिन्दी का विकास करना।

केंद्रीय हिन्दी निदेशालय का मुख्यालय नई दिल्ली में स्थित है। इसके क्षेत्रीय कार्यालय चेन्नई, कलकत्ता, हैदराबाद और गुवाहाटी में है। अपनी स्थापना के समय से केंद्रीय हिन्दी निदेशालय हिन्दी के प्रचार-प्रसार के लिए कई योजनाएँ चला रहा है। इसके द्वारा कार्यान्वित मुख्य योजनाएँ निम्नांकित हैं।

(i) हिन्दी में सर्टिफिकेट, डिप्लोमा और एडवांस डिप्लोमा पाठ्यक्रमों का संचालन
(ii) सरकारी कर्मचारियों के लिए हिन्दी में प्रबोध, प्रवीण तथा प्राज्ञ पाठ्यक्रमों का संचालन
(iii) हिन्दी में बेसिक पाठ्यक्रम का संचालन
(iv) एकभाषी, द्विभाषी, त्रिभाषी और बहुभाषी शब्दकोशों का प्रकाशन
(v) हिन्दी में पत्राचार पाठ्यक्रम का संचालन
(vi) हिन्दीतर भाषी हिन्दी लेखकों के लिए विभिन्न पुरस्कार
(vii) हिन्दीतर भाषी क्षेत्रों के नए हिन्दी लेखकों के लिए कार्यशाला
(viii) हिन्दीतर भाषी क्षेत्रों के हिन्दी विद्यार्थियों के लिए अध्ययन यात्रा
(ix) पुस्तकों के प्रकाशन एवं खरीद के लिए सहायता की योजना सहित हिन्दी के प्रचार प्रसार के लिए स्वयंसेवी संगठनों को अनुदान
(x) नि:शुल्क वितरण हेतु हिन्दी पुस्तकों का क्रय
(xi) श्रव्य कैसेटों के माध्यम से हिन्दी शिक्षण और हिन्दी का प्रचार-प्रसार
(xii) हिन्दी पत्रिकाओं का प्रकाशन
(xiii) देवनागरी लिपि एवं हिन्दी वर्तनी का मानकीकरण

24.5 हिन्दी भाषा एवं लिपि के विकास में 'नागरी प्रचारिणी सभा' का योगदान

श्यामसुंदर दास, रामनारायण मिश्र तथा ठाकुर शिवकुमार सिंह ने हिन्दी भाषा, साहित्य तथा देवनागरी लिपि की उन्नति, प्रचार एवं प्रसार के लिए सन् 1893 ई. में 'नागरी प्रचारिणी सभा' की स्थापना काशी में की। इस सभा ने हिन्दी भाषा एवं लिपि के विकास उत्तरप्रदेश (तत्कालीन संयुक्त प्रांत) में नागरी के प्रयोग की अनुमति मिली और सरकारी कर्मचारियों के लिए हिन्दी और उर्दू दोनों भाषाओं का ज्ञान अनिवार्य कर दिया गया। सभा ने अपने स्थापना काल से ही इस बात पर ध्यान दिया कि प्राचीन विद्वानों के हस्तलेख जो नगरों और देहातों में नष्ट हो रहे थे, उनका उद्धार किया जाए।

सभा ने हिन्दी शब्द सागर, हिन्दी विश्व कोश, वैज्ञानिक शब्दावली आदि का प्रकाशन किया। हिन्दी शब्दसागर में लगभग एक लाख शब्द हैं जिन्हें कोशबद्ध करने में अनेक विद्वानों ने योगदान किया। विश्वकोश बारह खंडों में प्रकाशित है। काशी नागरी सभा ने पं. कामताप्रसाद गुरु तथा आचार्य किशोरीदास वाजपेयी द्वारा लिखित व्याकरण का भी प्रकाशन किया।

हिन्दी पत्रकारिता के क्षेत्र में जहाँ सरस्वती पत्रिका को आरंभ करने का श्रेय नागरी प्रचारिणी सभा को है वहीं अपने आरंभ से लेकर आजतक शोध-पत्रिका 'नागरी प्रचारिणी पत्रिका' का भी यह प्रकाशन करती आ रही है। इसने हिन्दी के प्रचार-प्रसार हेतु अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन का संगठन तथा सर्वप्रथम आयोजन भी किया।

सभा की यह प्रवृत्ति प्रारंभ से ही रही है कि विभिन्न विषयों के उत्तमोत्तम ग्रंथों के प्रकाशन पर वह प्रतिवर्ष पुरस्कार एवं स्वर्ण तथा रजतपदक ग्रंथकर्ताओं को देती आ रही है। अपनी समानधर्मी संस्थाओं से संबंध स्थान, हिन्दी पढ़ने के लिए

छात्रवृत्ति देना, हिन्दी की संकेतलिपि (शार्ट हैंड) तथा टंकन की शिक्षा देना, संगोष्ठियों का आयोजन आदि सभा की अन्य प्रवृत्तियाँ है। इस प्रकार हिन्दी भाषा एवं देवनागरी लिपि के विकास में 'नागरी प्रचारिणी सभा' का योगदान अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है।

24.6 डॉ. गिलक्रिस्ट का योगदान

कंपनी के शासन के आरंभिक काल में गिलक्रिस्ट ही पहले अंग्रेज थे, जिन्होंने कठिन परिश्रम से इस देश की सबसे व्यापक और महत्त्वपूर्ण भाषा का ठीक से अध्ययन व अनुशीलन किया। उन्हें मार्क्विस वैलेजली द्वारा स्थापित 'ओरिएंटल सेमिनरी' का हेड (प्रधान) बनाया गया। यही संस्था आगे चलकर 'फोर्ट विलियम कॉलेज' के रूप में विकसित हुई। गिलक्रिस्ट इस कॉलेज में हिंदुस्तानी के प्रथम प्रोफेसर नियुक्त हुए।

गिलक्रिस्ट ने हिन्दुस्तानी भाषा के व्याकरण और कोश की रचना की। एक वृहत कोश और व्याकरण की रचना के बाद गिलक्रिस्ट ने कई छात्रोपयोगी पुस्तकें भी लिखीं और इस तरह यूरोपीय लोगों के लिए हिन्दुस्तानी सीखने का मार्ग प्रशस्त किया।

गिलक्रिस्ट 'फोर्ट विलियम कॉलेज' में अधिक दिन तक नहीं रह सके। 1804 में त्यागपत्र देकर वे अपनी जन्मभूमि वापस लौट गए। जन्मभूमि लौटने के बाद भी वे अपने प्रिय कार्य हिंदुस्तानी की सेवा और ज्ञान-दान में ही लगे रहे और विविध रूपों में उसके प्रचार-प्रसार में ही शेष जीवन बिताया।

24.7 खड़ी बोली आन्दोलन व अयोध्या प्रसाद खत्री

साहित्य-भाषा के रूप में खड़ी बोली हिन्दी की प्रतिष्ठा में बिहार के मुजफ्फरपुर के निवासी बाबू अयोध्या प्रसाद खत्री का अविस्मरणीय योगदान है। भारतेन्दु-युग में गद्य भाषा के रूप में तो खड़ी बोली को अपना लिया गया था, लेकिन काव्यभाषा के रूप में इसे अक्षम घोषित करते हुए ब्रज में ही काव्य-लेखन जारी रखा गया था। बाद में द्विवेदी युग में आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी के महत् प्रयत्नों से खड़ी बोली काव्यभाषा के रूप में प्रतिष्ठित हुई लेकिन उनसे भी पहले अयोध्या प्रसाद खत्री खड़ी बोली को काव्यभाषा बनाने के लिए आन्दोलन चला चुके थे। संभवत: हिन्दी कविता की भाषा खड़ी बोली को बनाने के लिए आंदोलन खड़ा करने वाले वे पहले व्यक्ति भी थे। हिन्दी कविता खड़ी बोली में हो, ब्रजभाषा में नहीं, इस सिद्धांत का पहला आंदोलन उन्होंने ही कार्यान्वित किया।

अयोध्या प्रसाद खत्री ने 'हिन्दी व्याकरण', 'खड़ी बोली का पद्य', 'मौलवी स्टाइल की हिन्दी का छन्द भेद', 'मौलवी साहब का साहित्य' आदि पुस्तकों की रचना की। इन पुस्तकों ने खड़ी बोली आंदोलन को प्रखर गति दी। इनमें 'खुडी बोली का पद्य' का विशेष महत्त्व है जिसमें बहुत लोगों की खड़ी बोली में लिखी गयी कविताएँ संगृहीत की गई थीं। काव्य-भाषा के संदर्भ में भारतेन्दु के विचारों का उल्लेख करते हुए ग्रियर्सन और प्रताप नारायण मिश्र ने इस प्रयास को कोई महत्त्व नहीं दिया। अयोध्या प्रसाद खत्री के 'खड़ी बोली आंदोलन' को लेकर 'हिन्दोस्तान पत्र' में छ: महीने तक विवाद चलता रहा। श्रीधर पाठक और खत्री जी ने खड़ी बोली का पक्ष लिया तथा प्रतापनारायण मिश्र और राधाकृष्ण गोस्वामी ने ब्रजभाषा का।

अयोध्या प्रसाद खत्री का विशेष महत्त्व यह है कि उन्होंने अपने प्रति और खड़ी बोली आंदोलन के प्रति उग्र विरोध को झेलते हुए खड़ी बोली काव्य का आंदोलन खड़ा किया जिसे महावीर प्रसाद द्विवेदी ने मुकाम तक पहुँचाया।

24.8 प्रयोजनमूलक भाषा के रूप में हिन्दी

हिन्दी के प्रयोजनमूलक रूप का आज के संदर्भ में बहुत महत्त्व है। प्रयोजनमूलक हिन्दी का कार्यक्षेत्र बहुत बड़ा और विस्तृत है। आज लोक-व्यवहार की विभिन्न आवश्यकताओं की पूर्ति करने के साथ-साथ शिक्षा तथा ज्ञान के विभिन्न क्षेत्रों, प्रशासन और राजकाज के सभी अंगों में अभिव्यक्ति की समुचित माध्यम भाषा होने का दायित्व हिन्दी पर है। इन सभी क्षेत्रों में एक जैसी हिन्दी का प्रयोग नहीं हो सकता, अत: हिन्दी का रूप क्षेत्र एवं विषय के अनुसार बदलता है और हर क्षेत्र में हिन्दी भाषा की भिन्न-भिन्न प्रयुक्तियाँ मिलती हैं।

सामान्यत: प्रयोजनमूलक हिन्दी के निम्नलिखित छह रूप माने जाते हैं। इन छह रूपों में 'सामाजिक हिन्दी' एवं 'साहित्यिक हिन्दी' हिन्दी के पारंपरिक एवं सहज रूप ही हैं। विशिष्ट अर्थ में कार्यालयी हिन्दी, तकनीकी हिन्दी, वाणिज्यिक हिन्दी तथा जन-संचारी हिन्दी प्रयोजनमूलक हिन्दी के महत्त्वपूर्ण रूप हैं।

कार्यालयी हिन्दी: कार्यालयी हिन्दी के रूप में हिन्दी भाषा ने पर्याप्त प्रगति की है। सरकारी पत्र, अर्द्ध-सरकारी पत्र, कार्यालय ज्ञापन, अंतर्विभागीय टिप्पणी, तार, टैलेक्स, कार्यालय आदेश, अधिसूचना, प्रेस-विज्ञप्ति नोट, पृष्ठांकन आदि की भाषा के रूप में आज हिन्दी सक्षम है। बैंकों एवं बीमा कंपनियों की भाषा होने के लिए भी हिन्दी उपयुक्त हो गई है।

तकनीकी हिन्दी: तकनीकी हिन्दी के रूप में भी हिन्दी ने काफी प्रगति की है, लेकिन इस क्षेत्र में अभी हिन्दी को काफी विकास भी करना है। तकनीकी क्षेत्र में अंगेजी से हिन्दी में किए गए अनुवाद के कारण उसकी भाषिक संरचना में काफी क्लिष्टता एवं दुरूहता आयी है। इस समस्या के निराकरण के लिए आवश्यकता इस बात की है कि विज्ञान और प्रौद्योगिकी संबंधी ग्रंथों का निर्माण ही मूलत: हिन्दी में किया जाना चाहिए। इससे उसकी अभिव्यक्ति सहज एवं प्रवाहमयी होगी। अनुवाद जरूरी ही हो तो यह ध्यान देना चाहिए कि भाषा की संरचना हिन्दी की प्रकृति के अनुसार हो।

वाणिज्यिक हिन्दी: वाणिज्य जीवन का एक बड़ा क्षेत्र है। ऐसे में किसी भी भाषा के प्रयोजनमूलक संदर्भों में सशक्त होने के लिए यह आवश्यक है कि उसके पास वाणिज्य-व्यापार के अनुरूप एक व्यापक शब्दावली हो। हिन्दी इस कसौटी पर भी खरी उतरती है। उसने बाजार एवं व्यापार के अनुरूप स्वयं को ढाला है और आज इनसे संबंधित लगभग सभी प्रकार के कार्य-व्यापारों एवं व्यवहारों के लिए उसके पास शब्द मौजूद हैं।

जनसंचारी हिन्दी: जनसंचार माध्यमों में होने वाले भाषिक परिवर्तनों से ज्ञात होता है कि प्रयोजनीयता के इस धरातल पर हिन्दी की संरचना एवं क्षमता में लगातार बदलाव आया है। आज की हिन्दी पत्रकारिता महज समाचार और विचार की प्रस्तुति का जरिया नहीं रह गई है। उसमें सोच और व्यवहार को दिशा देने का संकल्प भी है। इसी संकल्प के अनुरूप पत्रकारिता में हिन्दी का स्वरूप लगातार बदलता रहा है।

विज्ञापनों की दुनिया में हिन्दी एक शक्तिशाली भाषा बनकर उभरी है। आज विज्ञापन की हिन्दी कम शब्दों में अधिक-से-अधिक रोचक, सौन्दर्यपूर्ण तथा प्रभावी ढंग से कथ्य को अभिव्यक्त करती है। सीधी-सादी बात को भी विज्ञापन की भाषा अपनी इसी गुणवत्ता के कारण विशेष बना देती है।

इस प्रकार कुछ सीमाओं के बावजूद आज प्रयोजनमूलक हिन्दी एक सशक्त अवस्था को प्राप्त कर चुकी है तथा निरंतर विकासमान भी है। भाषा के तीन प्रमुख रूपों बोलचाल, साहित्यिक तथा प्रयोजनमूलक की तुलना करने पर हम पाते हैं कि बोलचाल तथा साहित्यिक रूपों की अपेक्षा प्रयोजनमूलक रूप के कारण भाषा में अधिक गत्यात्मकता आती है। कई प्राचीन भाषाएँ प्रयोजनमूलकता के तत्वों के अभाव के कारण ही मृतप्राय हो गई। आधुनिक हिन्दी भाषा अपनी प्रयोजनमूलकता के कारण ज्ञान-विज्ञान के क्षेत्र में अत्यधिक उपयोगी सिद्ध हो रही है और इसी के कारण उसका भाषागत विकास भी चरमोत्कर्ष पर पहुँच रहा है। निश्चित रूप से प्रयोजनमूलक भाषा के रूप में हिन्दी का स्वरूप निरंतर एक सार्थक आकार ग्रहण कर रहा है।

अभ्यास हेतु प्रश्न

1. हिन्दी व्याकरण- लेखन की परम्परा में कामता प्रसाद गुरु के कार्य की समीक्षा कीजिये। **U.P.S.C. (Mains) 2016**
2. कामता प्रसाद गुरु की वैयाकरण के रूप में की गई स्थापनाओं का मूल्यांकन कीजिये। **U.P.S.C. (Mains) 2014**
3. हिन्दी व्याकरण के सन्दर्भ में किशोरीदास वाजपेयी के योगदान का आकलन कीजिये। **U.P.S.C. (Mains) 2014**
4. हिन्दी व्याकरण के सन्दर्भ में किशोरी दास वाजपेयी का योगदान (टिप्पणी) **U.P.S.C. (Mains) 2011**
5. कामता प्रसाद गुरु का 'हिन्दी व्याकरण' (टिप्पणी) **U.P.S.C. (Mains) 2010**

Telegram JOIN @MissionIASofficial